

विचारसागर

निश्चलदासकृत

प्रत्यायान्तरकर्ता

मनःसुखराम सूर्यराम त्रिपाठी

"श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रंथकोटिभिः ।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव केवलम् ॥"

"यल्लाभान्नापरो लाभो यत्सुखान्नापरं सुखम् ।
यज्ज्ञानान्नापरं ज्ञानं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५३ ॥"
शंकरकृत आत्मबोध

४

चतुर्थावृत्ति

प्रसिद्धकर्ता

धर्मसुखराम तनसुखराम त्रिपाठी

मुंबई, संवत् १९८३ सन १९२७.

मूल्य रु. ३.

Published by
The Trustees of the M.S. Tripathi Works Publication Fund
through Dharmasukharama Tanasukharam Tripâthi,
Chinâbâg, Girgaon, Bombay.

Printed by Manilal Itcharam Desai at
THE NEWS PRINTING PRESS OF THE GUJARATI
Bake-House Lane, Meadowe Street, Fort, BOMBAY.



अनुक्रमणिका

अंक. पृष्ठ

विचारसागर

प्रथमस्तरंगः

तृतीयस्तरंगः

चतुर्थस्तरंगः

पंचमस्तरंगः

प्रस्तावना.

(वेदान्तविचारनी)

मूळ विस्तृतग्रंथगत विषयोनी अभिव्यंजिका

आ 'वेदान्तविचार' रूप वन्द्यसेव्यवाक्यामृतसंग्रह, स्वबुद्धिनी विशुद्धिअर्थे तथा स्वात्माना–परमात्माना–अनुसन्धानार्थ आरंभ्यो छे ते क्रियमाण रहेवानो छे. संचित संग्रहनो कइं भाग, अधिकारीवर्गअर्थे अत्र समर्पवामां आवे छे. सर्वान्तर्यामी प्रेरक परमेश्वरने प्रार्थना छे के, सज्जनोने यथाशक्ति ते उपयोगी थवा समर्थ थाय ए प्रकारे ए संग्रहने प्रेरो.



ॐ

परमात्मने नमः

वेदान्तविचार

" वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् । "

भगवद्गीता अ० १५ श्लो० १५

श्रीभगवद्गीतामां श्रीकृष्ण भगवान् वदे छे केः—सर्वे वेदोए करी हुं (=परमात्मा) ज वेद्य (=वेदितव्य-जाणवा योग्य-छुं); वेदान्तकृत् (=वेदान्तना अर्थनो संप्रदायकर्ता) अने वेदवित् (=वेदान्तना अर्थनो ज्ञाता) ए पण हुं ज छुं.

वेदान्त. 'वेदान्त' नाम=वेदनो अन्त-किंवा अवसान-भाग, अथवा वेदनो शिरोभाग. वेदोनी सर्व शाखाओना उत्तर भाग विषे पठ्यमान जे ग्रंथो,-अर्थात् प्रत्यगात्मभूत परमब्रह्म (ए) विशिष्टविषयवती[1] अने आत्यन्तिक संसारनिवृत्ति-ब्रह्मप्राप्तिरूप प्रयोजनवती (ब्रह्मात्मैक्यनो साक्षात्कार छे विषय जेनो एवी) प्रमाणभूता उपनिषदो-ए वेदान्त. अने ते अन्त श्रुतिओ उपनिषद् तेओने उपकारि

१ आ लेखमां जे समत होय ते प्रायशः शंकरोक्तिउपजीव्यक छे, अर्थात् परमपुरुषार्थदायिनी शंकरनी वाणीमाथी ज आ लेखनु बहुकरी उपजीवन छे. अने तेमां जे समत होय ते ज मात्र शंकरवाणीनु गणवु, अने भूमिति आदि शास्त्रो सम तेने गुरुमुखथी वा तज्ज्ञाताथी अभ्यासवानी तथा स्वतः विचारवानी अपेक्षा छे. २ विलक्षण, विशेषणयुक्त विषयवती=विचारयोग्य वाक्यवाली.

शारीरक सूत्र-भाष्य, भगवद्गीता, आदि अध्यात्मशास्त्रो पण गौणवृत्तिथी 'वेदान्त' कहेवाय छे.

वेदान्तशास्त्र

प्रदीपवत् ते वेदान्तशास्त्रना प्रमाणथी ब्रह्मनो यथावत् स्वरूपाधिगम छे. कारण के ब्रह्म इन्द्रियादिप्रमाणक नहि किन्तु (श्रुति-)शब्द-प्रमाणक छे. ते यथाशब्द अभ्युपगन्तव्य छे. मुख्यत्वे करी आत्माने उपदिशवुं (वेदान्त) शास्त्र लोकबुद्धिने अनुसरतुं, (प्रथम) अत्यन्त मूढोने आत्मत्वेकरी प्रसिद्ध एवा अनात्म अन्नमय शरीरनो अनुवाद करी, तेथी अन्तर् तेथी अन्तर्, एम पूर्वपूर्वसमान उत्तरउत्तर अनात्माने आत्मा एम ग्रहावी सर्वान्तर मुख्य आनंदमय आत्माने उपदिशे छे. सर्व वेदान्तोमां तात्पर्येकरी ब्रह्मना अर्थना प्रतिपादकत्ववते वाक्यो समनुगत छे. हेयोपादेयशून्य ब्रह्मात्मताना अवगमथी ज सर्व क्लेशोना प्रहरणथी पुरुषार्थनी सिद्धि छे. यद्यपि अन्यप्रमाण वेदान्तशास्त्र अज्ञातार्थना ज्ञापकत्वेकरी आत्माविषये प्रमाणत्व पामतुं नथी, किन्तु अतत्-धर्माध्यारोपणमात्रनिवर्तकत्वेकरी प्रमाणत्व पामे छे; तथापि ब्रह्मज्ञानने भूतवस्तुविषयत्व तथा अनुभवअवसानत्व होवाथी ब्रह्मजिज्ञासामां श्रुति आदि तथा अनुभवादि यथासंभव प्रमाण छे.

सर्व वेदान्तशास्त्रनो आरंभ, कर्तृत्व-भोक्तृत्व-प्रवर्तक मिथ्याप्रत्ययरूप अनर्थहेतु नैसर्गिक अध्यास तेना प्रहाणार्थ तथा आत्मैकत्वविद्यानी प्रतिपत्तिअर्थ छे.

---

१ शिष्योने अर्थ जेणेकरी तत्त्वनुं शासन किंवा प्रतिपादन थाय छे ए शास्त्र. २ पोताना रूपनुं ज्ञान थवुं ते. ३ श्रुतिशब्दार्थदर्शनेकरी जाणवा योग्य. ४ उपदेश करवाने इच्छयुं. ५ प्रकरणमां पर्यवसित—अन्त पामेला. ६ न जाणेला अर्थने जणाववापणुं. ७ अनात्मधर्माध्यासने दूर करवापणुं. ८ सिद्धपदार्थ. ९ प्रतीति, ज्ञान. १० अविचारसिद्ध, स्वाभाविक. ११ सम्यक् ज्ञान.

सर्वार्थअयर्यांति सर्वज्ञकल्पं वेदोरूप कल्पवृक्षनुं वेदान्त ए परम-पुरुषार्थप्रद अनुपम अमृत छे. अथवा एवा विशिष्ट वेदोरूप कामधेनुनुं वेदान्त ए निःश्रेयसप्रद अमृत दुग्ध छे.

ज्ञानी-अज्ञानी सर्वनी इच्छानो विषयं, सुख-परमसुख-परमआनन्द छे ते ज वेदान्तनो विशिष्ट विषय छे. अवि-द्याए अध्यारोपित ईश्वरना सर्वज्ञत्वादि अने जीवना अल्पज्ञत्वादि विरुद्ध धर्मोना भाग-त्यागलक्षणाए परित्यागपूर्वक शुद्ध-सच्चिदानन्दाद्वैत ब्रह्मना यथार्थ ज्ञानेकरी नित्यप्राप्त स्वरूपना आत्यन्तिक अखंड सुखनो आविर्भाव, एनुं वेदान्त ज प्रतिपादक अने संपादक छे.

वेदान्तनो विषय.

प्राणीमात्रनी इच्छानो विषय सुख छे, ए तो निःसंशय अने निर्विवाद छे. प्राणिमात्र जन्मथी ते मरणपर्यन्त जे सुखनी आशाए अनेक मार्गे, अनेक प्रकारे, अनेक प्रयत्नो करे छे; विद्याभ्यास, शरीरसंपत्ति, कृषि, व्यापार, सेवा, गृह-स्थाश्रम; तनुबल, मनोबल, धनबल, कीर्ति, इत्यादि साध-नोवंते, जे सुखनी आशा होय छे ते सफला थशे एम करीने, ते सुख संपादन करवा बहु परिश्रम वेठे छे, अने अनेक दुःखो सहे छे; परंतु विचारकोने जे सुखाशा क्षिति-जसम दूर अने दूर जती देखाय छे, अने अविचारी मूढोने तो जे सुखाशा असार संसारसागरमां बुडाडीने शोकमोह-ग्रस्त अने अति दुःखी करे छे, ते आशानां वास्तविक जे मूल सत्यसुख तेने प्राप्त करवाने सम्यक्ज्ञान (अथवा ब्रह्मविद्या) ए ज एक सुलभ, सुगम अने सुकर साधन छे: एम ते प्राप्य

---

१ सर्वज्ञजेवु. २ विषयीने स्वरूप साथे बांधे छे ते सुखादि. नित्य-सेवित भोगसाधन.

नित्य सत्य सुखना प्रतिमान् तथा प्रापक महात्माओ स्वानुभवथी सिद्ध करी वदी गया छे अने वदे छे.

वेदान्तप्रवर्तकोथी वेदान्तनी श्रेष्ठतानुं प्रमाण.

स्वप्रयोजननो अभाव सते पण अनुकंपाथी लोकोनो अनुग्रह करवा इच्छता ब्रह्मविद्याना संप्रदायना प्रवर्तक ते महात्माओनी एक श्रेष्ठपरंपरा आ प्रकारे छेः–

सर्वान्तर्यामी आदिकर्ता नारायण, सृष्टिकर्ता पद्मभू-(ब्रह्मा)थी आदि लइने वसिष्ठ, शक्ति, पराशर, व्यास, शुक, गौडपाद, गोविंद, श्रीशंकराचार्य, अने तेओना शिष्यो–पद्मपाद, हस्तामलक, त्रोटकाचार्य, अने वार्तिककार सुरेश्वराचार्य आदिक–एओ तो सुप्रसिद्ध ज छेः अने तेओना अनुयायी-वेदान्तार्थपारग एवा 'श्रोत्रिय,' ब्रह्मलोकना आनन्दथी ते अर्वाचीन आनन्दमां तृष्णारहित एवा 'अकामहत', यथोक्तकारितापकरी पापरहित एवा 'अवृजिन,' अने औपनिषद् ब्रह्मात्माना विज्ञाने परिपूर्ण एवा 'ब्रह्मनिष्ठ'-महात्मा गुरुओ एओए, परमश्रेयोर्थी साधनचतुष्टयसंपन्न यथोक्तकारी मुमुक्षुओना परमपुरुषार्थनी सिद्धिसारु, जे उत्तमोत्तम ज्ञान उपदिश्युं छे, ते ज ज्ञान सदा प्राप्त जे प्राप्य वस्तु–सच्चिदानन्द ब्रह्म-तेनी प्राप्तिनुं महासुखप्रद मुख्य अनुपम साधन छे, एवुं तेना प्रामाणिक वक्ताओनां अने तेओना परमप्रिय महाबुद्धिमन्त श्रोताओनां नाममात्रथी सिद्ध थाय एम छे.

ए परमनिःश्रेयसकरी सदानन्दमयी स्वाराज्यसाम्राज्य-

---

१ पमाडनार. २ चराचरात्मक शरीरोमां चिदाभास जे 'नार', तेओनुं 'अयन' नाम आश्रय—अन्तर्यामी—ए नारायण. ३ उपनिषद्-शान्ति-पाठानुसार. ४ अपर देशकालमां तत्कालवर्ति.

विभूति–अखंडसुखदात्री ब्रह्मविद्या–आदिनारायणना महाप्रसादथी ब्रह्माने प्राप्त थई, अने जेने महादेवे परमप्रसादथी पोतानां परमप्रिया पार्वती प्रति प्रकाशी ते परमपुरुषार्थप्रदा ब्रह्मविद्या ब्रह्माए वसिष्ठ इन्द्रादिने आपी, उद्दालक मुनिए आत्मज श्वेतकेतुने आपी, दक्षिणामूर्तिए सनत्सनकादिकोने बोधी, सनत्कुमारे नारदने प्रबोधी, याज्ञवल्क्ये स्वप्रिया मैत्रेयीने, अने जनकविदेहीने, अर्पी, वसिष्ठे सद्गुणमूर्ति लीलावतार श्रीरामने समर्पी, रामे यथोक्तानुकारी परमप्रिय भ्राता लक्ष्मणने दीधी, लीलावतार श्रीकृष्णपरमात्माए-जे ब्रह्मविद्या विष्णुरूपे प्रथम विवस्वान्–आदित्य–प्रति वदी हती, ते विवस्वाने मनुअर्थे प्रकाशी, मनुए स्वपुत्र आदिराज इक्ष्वाकु प्रति कथी, एम परपराप्राप्त राजर्षिओए वदी ते पुरातनी उत्तमरहस्यब्रह्मविद्या निज परम सखा इष्टभक्त अर्जुन प्रति कथी, अने ते ज ब्रह्मात्मविद्या कृपालु तापत्रवश शिष्टाग्रणी व्यासनारायणे तथा शंकरभगवाने सत्पुरुष पोना अनुग्रहार्थे निर्वाणसदायिनी वाणीद्वारा सुप्रसिद्ध करी छे

ब्रह्मविद्या एवी विशिष्टमहिमावती अने महापुण्यशाली पुरुषोने कृतकृत्यकारिणी छे ए ब्रह्मविद्याद्वारा जे अनुपम सुख,-मलविक्षेपरहित परिशुद्ध अन्त करणनी वृत्ति अन्तर्मुख अने प्रशान्त थई दृष्टानु आत्मस्वरूपमा अवस्थान थये,-विद्वानने प्राप्त थाय छे, ते सुख भगवद्गीतामा आम गायु छे —

ब्रह्मात्मविद्यानु निरतिशय सुख

"सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ॥"

भ गी अ ६ श्लो २१–२२

---

१ भगवद्गीता अ ४ श्लो १–२

'(अविषयजनित होवाथी श्रोत्रनेत्रादि इन्द्रियोए जाणवाने अशक्य एवुं) अति इन्द्रिय, (इन्द्रियोनी निरपेक्षाए बुद्धिवते ज-स्वानुभववते ज-ग्रहण करी शकाय एवुं) बुद्धिग्राह्य (एकवार आविर्भाव थये पुनः कचित् पण नाश न थाय एवुं आत्मलाभनुं अनन्त) आत्यन्तिक सुख,-जेने, (आत्मलाभने वा सुखने) लाभीने-पामीने-अपर लाभने (अन्यत् लाभान्तरने),(तेथी अधिक छे एम (आत्मस्वरूपमां स्थित विद्वान्) मानतो नथी.'

जे सुखनी उपलब्धि थये देवादिनां अने नरपति आदिनां सुखो, सुखाभास जेवां लागी, तेओमां तुच्छबुद्धि थाय छे; जे सुख असाधारण बुद्धिमन्त शिष्टाग्रणी महात्माओए सेवित होवाथी उत्तमोत्तम छे, अने ते वर्गना महापुरुषोना अनुभवने अंशे पण प्रसिद्ध छे; अने जे सुख असंख्य कारणोथी परमश्रेष्ठ छे एम विद्यावन्त विचारकोने सिद्ध छे; ते ज सुख ए वेदान्तप्रतिपादित अवर्णनीय अनुपम सुख छे.

सुखेच्छकने सुखस्वरूप, आप्तवाक्ये अने युक्तिए, सिद्ध करी आपी, सुखनो अनुभव करावी, आत्यन्तिक सुखमय करवा, अर्थात् शातात्मा करवा, ए वेदान्तनुं प्रयोजन छे.

एवा वेदान्तविचारना प्रकाशक, प्रवर्तक अने प्रापक महात्माओ केवा श्रेष्ठतम जगन्मंगल जगद्वन्द्य छे, ते तेओनां पूर्वोक्त नाममात्रथी जाणी शकाय एम छे. ब्रह्मविद्याना सारिष्ठत्वप्रदर्शनार्थ एथी अधिक प्रमाण शुं होई शके ! एवा वेदान्तनो विषय अने प्रयोजन पण तेवुं ज श्रेष्ठतम-मनुष्य मात्रने अभीष्ट एवुं-निःश्रेयस-सुख-छे; ए पण वेदान्तशास्त्रना उपासकोने प्रसिद्ध छे.

ए वरिष्ठस्थिति किंवा मोक्षाख्य अत्युत्तम स्थान प्राप्त करवा, अधिकारी पण तेवा ज महाशय अपेक्षित छे.

अधिकारी.

यद्यपि आ वसुंधरा पृथिवी विषे सर्व पदार्थो छे तथापि योग्य अधिकारी विना ते पदार्थो प्राप्त थता नथी. पदार्थमात्रनी प्राप्तिविषये योग्य अधिकारीनी पूर्ण अपेक्षा छे, कारण अधिकारी अनुसार फलोदय थाय छे. सूर्यनो प्रकाश जे जे पदार्थो उपर पडे छे, तेओमांथी निर्जीव पदार्थोने विकारी करी शुष्क अने निःसत्व करे छे; सजीव पदार्थोने पुष्टि आपी प्रफुल्ल करे छे; मृत्तिकादि अपारदर्शक पदार्थोने प्रकाशे छे; काच-स्फटिक-मणि आदि पारदर्शक पदार्थोने ते प्रकाशे छे एटलुं ज नहि, किन्तु तेओनी तथा प्रभावर्धकउपधाननी स्वच्छताना प्रमाणमां तेओमां ते प्रकाशक सूर्यनुं प्रतिफल किंवा प्रतिबिंब थाय छे, अने ते उपरथी पुनः परावर्तन थाय छे; अने सूर्यकान्तमणिविषे तो सूर्यप्रकाश प्राप्त थतां ते मणिमां प्रतिबिंब-परावर्तन-पूर्वक ते प्रकाशथी अधिकमां तेज तथा ताप उभय (मूल किंवा अग्नि) स्वरूपे प्रकट थाय छे. अर्थात् बिंबभूत सूर्यना ज्वलन-दहन-प्रकाश-समान प्रतिबिंबमां पण निरुपाधिक प्रत्यक्स्वरूप ज्वलन-दहन-प्रकाशनो प्रत्यक्ष आविर्भाव थाय छे. एम अधिकारीना भेदे फलनो भेद थाय छे. ए नियम सर्वत्र वर्ते छे.

शास्त्रमां वेदान्तना अधिकारीनुं लक्षण आ प्रमाणे कह्युं छेः—(आ जन्ममां वा जन्मान्तरमां) विधिवत् अधीतवेदवेदाङ्गत्वे करीने आपाततो

वेदान्त-अधिकारी.

अधिगत अखिल वेदार्थ जेणे, (अने बुद्धिनी शुद्धिअर्थे) आ-

---

१ डांक (Foil). २ अध्ययन करेला. ३ तात्कालिक—उपर उपरथी; आ आम ज छे एवा निश्चय विना. ४ जाण्यो छे.

जन्ममां वा जन्मान्तरमां निषिद्ध (कर्मना) वर्जनपुरःसर नित्य-नैमित्तिक-प्रायश्चित्त (कर्मना अनुष्ठानवते) तथा (चित्तना ऐकाग्र्यअर्थे) उपासनाना अनुष्ठानवते अखिल कल्मषता गयेली तेणेकरी नितान्त निर्मल स्वान्त छे जेनुं, ते (विवेक, विराग षट्संपत्ति अने मुमुक्षुता ए) साधनचतुष्टय-संपन्न प्रमाता ए वेदान्तज्ञानना अधिकारी छे.

शास्त्रसांप्रदायिक लक्षण एवुं छे. परंतु देशनी दशामां अने कालना कारणमां अन्तर पडतां एवा अधिकारी अशक्य नहि तो विरल तो प्रतीत थाय छे ज. तेथी ए ज्ञेय अने प्रापक वेदान्त-प्रतिपादक शास्त्र प्रसिद्ध सते, यथायोग्य प्रापक अधिकारी ज्ञाताना अभावे, प्राप्य जे अत्युत्तम आनन्दस्वरूप फल तेनी प्राप्ति पण क्वचित् ज थाय छे.

आ देशनी विकारिणी स्थिति.

आ भरतखंडनी भूमिउपरनी प्रजानी स्थिति पूर्वरूपनो त्याग करती अने रूपान्तरनी प्राप्तिकर्त्री एवी विकारवती अधुना छे. तेनुं सारं परिणाम आवे ए हेतुथी तेमां संस्कार करवानी अपेक्षा छे. संस्कारना बे प्रकार छेः-द्रव्यान्तरना संयोगे करी आगन्तुक मलनी निवृत्ति (१), अने गुणनी प्राप्ति (२). आ देशनी आधुनिक अवस्थामां उभय प्रकारना संस्कारनी संपूर्ण अपेक्षा छे. तेमां जे दोषरूप मल आव्या होय तेने दूर करवा रूप मलनिवृत्ति (१), अने एम शोधन थये नैसर्गिक गुणनो आविर्भाव अने वृद्धि स्वाभाविक रीतिए थाय छे तेरूप गुणप्राप्ति (२)

---

१ मलिनता. २ अत्यन्त. ३ अन्तःकरण. ४ अन्तःकरणविषे प्रतिबिंबित चैतन्य अथवा लौकिक वैदिक व्यवहारोमां अभ्रान्त जीव, अत्र प्रमाता शब्दे विवक्षित छे. ५ पमाडनार. ६ पामनार.

आ आर्यावर्त देशमां पूर्वे यथावत् वर्णाश्रमनी व्यवस्था हती. ए वर्णाश्रम 'धर्म' कहेवाय छे. ए सर्व-धारक धर्मथी आ देशनी स्थिति सुखप्रदा हती. 'वर्णाश्रमधर्ममां' ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, अने शूद्र, ए चार 'वर्ण'; तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, अने संन्यास, ए चार 'आश्रम' गणाता हता. तेओमां ब्राह्मण-वर्णने चारे आश्रमनो अधिकार गण्यो छे, क्षत्रियवर्णने संन्यास-आश्रम विना त्रण आश्रमनो अधिकार गण्यो छे; वैश्यवर्णने ब्रह्मचर्य अने गृहस्थ ए बे आश्रमनो अधिकार गण्यो छे; अने शूद्रने गृहस्थ-आश्रमनो अधिकार गण्यो छे. एम उच्चवर्गोए अधिकाधिक भार सहन-वहन करवाना नियमानुसार पूर्वपूर्व वर्णने एक एक आश्रमनो प्रयास अधिक राखवो हतो.

वर्णाश्रमधर्म.

स्वधर्मथी भ्रष्ट थतां, पछी अज्ञान अने आलस्य वधी तज्जन्य अनेक विपत्तिओ आ देश उपर आवी पडवा मांडी. परिणामे ए चतुर्वर्णना, बहुकारणोथी, अनेक विभाग थई जई ते वर्णोनी संख्या वधीने एवी विघ्नकरा अने दुःखप्रदा थई छे के निःसीमा. 'वर्णो' नी एम हानिकारिका वृद्धि थई छे; अने 'आश्रम' नो क्षय थयो छे. वानप्रस्थ तथा यथार्थ संन्यास आश्रमनो तो प्रायशः लोप थयो छे. ब्रह्मचर्य[1] अने गृहस्थाश्रम प्रचलित छे, परंतु तेओ पण यथेच्छ छे नहि.

धर्मना अभावे सुखनो अभाव.

एम आ देशनो विकारवती दशामां अभीष्टनो मुख्य हेतु जे वर्णाश्रमधर्म अने तेनां साधन तेओनो विपर्यय थयाथी, सर्वेए साधनीय जे इष्ट सुख तेनो अभाव रहे ए यथाक्रम छे.

---

१ ब्रह्मचर्यनुं विद्याभ्यासअंग.

धर्मनु स्वरूप आ कह्यु छे-जेना अनुष्ठानथी इष्ट फलनो लाभ, अने अनिष्टनो परिहार थाय एवो, रागद्वेष रहित सदाचारी गुणाधिक मनुष्योए गृहीत, अनुष्ठित, तथा आचरित, ते 'वर्णाश्रमधर्म' धर्मसंबंधमां एक सिद्धान्त लक्षमां राखवानो छे के.-ज्ञायमान धर्म पुरुषार्थहेतु थतो नथी, किन्तु अनुष्ठीयमान धर्म पुरुषार्थहेतु थाय छे ज्ञायमान तो ब्रह्म ज पुरुषार्थहेतु थाय छे 'वर्णाश्रमना' धर्मने यथेच्छ अनुकूल देशकाल अवे छे नहि. एथी कोई इतर प्रकारनी व्यवस्था धर्मविषयमां अपेक्षणीया छे अने ते व्यवस्था दूरदर्शी महात्माओए वेदोक्तरीतिए ज सूचवेली छे तेओ द्विविध धर्म वदे छे.

धर्मस्वरूप

प्राणीओना साक्षात् अभ्युदयरूप अभीष्टनो हेतु 'प्रवृत्तिलक्षण' धर्म छे, अने ते आ जगत्नी स्थितिनु कारण छे अने निःश्रेयससंज्ञक परम अभीष्टना हेतु 'निवृत्तिलक्षण' धर्म छे अने तेनु लक्षण ज्ञान, वैराग्य अने आत्मज्ञाननिष्ठा छे.

प्रवृत्ति निवृत्तिलक्षण धर्म

पूर्वे 'प्रवृत्तिलक्षण' धर्ममां, आश्रमत्रयनां सर्व कर्तव्योनो समास थता. (१) प्रथम ब्रह्मचर्यनां स्वाध्यायनु विधिवत् अध्ययन आदि कर्तव्यो, ते करीने धर्मार्थ-जिज्ञासोपर्यन्तनो समावेश थतो, अने (२) द्वितीय गृहस्थाश्रमनां निषिद्धकर्मोना वर्जनपूर्वक काम्य नित्य-नैमित्तिक प्रायश्चित्तादि कर्मोना अनुष्ठानना अने सगुणब्रह्मनी उपासनानो समावेश थतो, अने (३) तृतीय वनप्रस्थाश्रम गृहस्थाश्रमथी आरंभीने वानप्रस्थाश्रमना अन्तपर्यन्त, अन्त करणनी

१ सहेतुक सदाचारनो अथवा उत्तम ... (...) तेनु ... पण, अथवा ... गुणनो आविर्भाव थाय ... आर्यनी उत्पत्ति ...-५ ... २ विद्याभ्यास ३ धर्मनी जाणवानी इच्छा.

निर्मलता अने निश्चलता सारू सत्समागम अने सच्छास्त्रना श्रवण-मननादिए करी योग्य साधननुं संपादन करवामां करातो प्रवृत्तिनो समास थतो. अने 'निवृत्तिलक्षणधर्ममां' चतुर्थाश्रम-संन्यास-तत्त्वज्ञान, वासनाक्षय, मनोनाश, ब्रह्मनिष्ठतादि अन्तर्गत थतां.

अद्युना प्रवृत्ति-धर्मना प्राबल्यनुं कारण.

आ कालमां प्रवृत्तिलक्षण धर्मनुं बल अधिक रहेवा संपूर्ण संभव छे. कारण 'राजा कालस्य कारणं"='कालनुं कारण राजा छे.' ते राजकर्त्ताओनी प्रकृति ज अतिप्रवृत्ति छे. एथी प्रवृत्तिलक्षणधर्मने बहु पुष्टि मळवानी ज.

ज्यां कारण प्रबल होय छे त्यां कार्यनो उद्भव अनिवार्य होय छे. एम छे तो अवे ते विषयमां मात्र व्यवस्था थवी ए ज प्राप्त कर्तव्य छे. संसारीने अभ्युदयफलप्रद प्रवृत्तिलक्षणधर्म आरंभमां बहु प्रकारे उपयोगी अने उपकारक पण छे, अने तेथी पुनः विशेषमां ज्ञाननिष्ठा-योग्यतानी प्राप्ति थाय छे.

आ देशना स्वभावसंबंधी विचार.

तथापि आ देशनी पूर्वनी, अने कइंक आ समयनी पण स्थिति मति गति कृति तथा इतिहास उपर दृष्टि करतां आम अनुमान थाय छेः—बहु समयथी सुस्थायिनी वंशपरंपरागता, अने मनुष्यमात्रे, बुद्धि अने अनुभव वधतां, अभिलषिता, जे निवृत्तिनी प्रकृति, ते आ देशमां स्वाभाविकी छे; ते निर्मूला थई जाय ए तो असंभवित ज छे प्राणिपदार्थनो कालनिमित्त विकार त्वराथी थाय छे. परंतु प्राणिपदार्थनो देशनिमित्त विकार विलंबे थाय छे.

पूर्वे कोइ कोइ काले बहु समर्थ पुरुषोए आ देशमां परिवर्तन करवा प्रयत्न कर्या छे. तथापि तेओने सिद्धि मली नथी. अमुक काल सुधी तेओ बाह्यविकार करी अन्ते शमी

गया छे; अने आ आर्य देशनी दृढता अने स्थितिस्थापकता सबला अने सजीवा गणायि छे.

प्रस्तुत समयनो प्रभाव

आ वेलामां आ पृथिवी उपरि शीघ्र गमनागमननां साधन बहु सुलभ थयां छे एथी दुरता दूर थई गया जेवुं थयुं छे खंडान्तरना अने देशान्तरना लोकोनो परस्पर व्यवहार अतीव वधतो जाय छे; स्वतंत्रता अने क्षमा ए स्वार्थसिद्धिमां उपयोगि साधन गणायां छे; अने तेनुं परिणाम आ थयुं छे केः–लोको ज्ञात अज्ञात, स्वेछाथी ज परस्परना संसर्गजन्य गुणदोषोनुं ग्रहण करे छ. ते ग्रहण कोइवार विवेकपूर्वक होय छे. तथापि बहुवार मात्र तात्कालिकी स्वार्थसिद्धि सारू किंवा लोभार्थे ज होय छे. अने एम होय छे त्यारे तेथी पाशमां पड्या जेवुं थाय छे. एकवार अमुक पक्षमां पतित थया के पछी ते विषयमां ममता थई अभिनिवेश थाय छे जे कार्य पूर्वे समर्थ परिवर्तको बलात्कारे करी शक्या न हता, ते आज तात्कालिक स्वार्थदृष्टि उत्पन्न थये अनायासे सहसा थई जाय छे.

नवीन संबंधना स्वार्थी आरंभमां एवुं प्रवर्तन स्वभावतः होय छे. तथापि आ आर्यदेश विचारप्रधान गणातो आव्यो छे. तेमां नवीन संसर्गसंबंधनो यथायोग्य अनुभव थये गुणदोषनी परीक्षा थई, विवेकविचारपूर्वक दोषो दूर रखाई, स्वदेश-परदेशना केवल गुणनुं ग्रहण थाओ एम ईश्वरने प्रार्थना छे.

एक नियम— वृत्तिनु पर्यवसान निवृत्ति

आ सृष्टिमां एक अचल नियम आवो प्रतीत थाय छे.– सर्व प्रवृत्ति प्रयोजनवती छे. प्रयोजनने उद्दिश्या विना मंद मनुष्य पण प्रवर्ते नहि. अने विचारकोने सर्वत्र मान्य छे के;–प्रवृत्तिमात्रनुं प्रयोजन इष्ट निवृत्तिनी प्राप्ति छे. मनुष्यमात्र दिवसमां प्रवृत्ति करी रात्रिए निवृत्तिना सुखने अवश्य इच्छे

छे. पूर्वावस्थाविषे द्रव्यनुं उपार्जन करवामां मनुष्यो अतिश्रम सहे छे, ते उत्तरावस्थामां निवृत्तिना सुखनी आशा अर्थे ज छे. ए उपरथी सिद्ध थाय छे के, प्रवृत्तिरूप साधनथी जे साध्य-फल अभिलषित छे ते निवृत्ति छे. अविचारिओ साधनमां ज सदा गुंथाई रहे छे. परंतु बुद्धिमान् विचारक सर्वत्र साध्य प्रति प्रवर्ते छे.

एम होवाथी ज्यारे ज्यारे जहिं जहिं विचारनुं बल प्रबल थशे त्यारे त्यारे तहिं तहिं प्रवृत्तिनुं पर्यवसान निवृत्तिमां आणवा लक्ष राखवुं, ए, जेम श्रेष्ठ गणातुं, अने अद्दुणा क्वचित् गणाय छे, तेम गणाशे.

प्रवृत्तिधर्मनो प्राचीन अर्वाचीन ब्रह्मचर्याश्रम

प्रवृत्तिनिवृत्तिलक्षण द्विविध धर्म विषे, पूर्वे जे ब्रह्मचर्याश्रम गणातो अने जे आश्रममां गुरुकुलमां वसी आयुष्नो प्रथम चतुर्थभाग अध्ययनादि कर्मो वापरवा मनुस्मृतिआदिमां विधान कर्युं छे, ते सदृश, अद्दुणा आ लोकमांना व्यवहारने उपयोगिनी विद्याकला यथाशक्ति संपादन करवामां आयुष्नो प्रथम भाग जाय छे. अने पछी गृहस्थाश्रमनो आरंभ थाय छे.

प्राचीन त्रिवर्ण अने गृहस्थाश्रममा प्रवृत्तिना कर्मो

प्राचीनकाले वर्णाश्रमानुसार गृहस्थाश्रम प्राप्त थतां द्विजोने नाम ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य ए त्रिवर्णोने, धर्मसाधक त्रिविध कर्मो–अध्ययन[1], यजन[2], अने दान–तो समान गणातां. विप्र किंवा ब्राह्मणमां इतर त्रिविध कर्मो आजीविकानां साधनरूप विशेष गणातां. अने ते आ हतांः–अध्यापन[3], याजन[4], अने प्रतिग्रह[5]. क्षत्रियमां इतर क्षात्रकर्मो

---

१ वेदवेदाङ्गोनो अभ्यास पोते करवो ते. २ यज्ञादिक्रिया इज्या-पोते करवी. ३ भणाववुं. ४ यज्ञ कराववा. ५ दक्षिणानुं ग्रहण करवुं.

आजीविकानां साधनरूप विशेष आ गणातांः-प्रजापालन, शस्त्रअस्त्र-भृत्त्व किंवा शस्त्रास्त्रधारण. वैश्यमां इतर वैश्य कर्मो आ-जीविकानां साधनरूप आ गणातांः-कृषि, वाणिज्य, कुसीदं, पशुपालन. शूद्रनां प्रधान कर्म आ गणातः-शुश्रूषा, विविध शिल्प, द्विजातिना हितनुं आचरण. राज्यसंबंधी अनेक अधिकारने उचित कर्मोना अनुष्ठानवते पण जीविका संपादन करवा कोइ वर्णने प्रतिषेध वा प्रतिबंध न हतो.

ए प्रकारे पूर्वे हतुं. साम्प्रतकालमां ए प्रवृत्तिलक्षणधर्म कइक आ प्रकारे परिणाम पामतो अने प्रचार थतो जणाय छे.

अर्वाचीन गृहस्थाश्रममां प्रवृत्तिप्रचार

मनु कलियुगने शूद्र कहे छेः—

"शूद्रः कलियुगः स्मृतः" ।

म स्मृ अ १ श्लो. ८६.

ते तमोगुणरूप कलियुगमां शूद्रनुं जे प्रधान कर्म,-उपरिओनी 'शुश्रूषा' करवी-जे पूर्वे अधम गणातुं ते-उत्तम गणावा माडयुं छे. प्रस्तुतकाले विप्र, क्षत्रिय, वैश्य, अने शूद्र ए सर्व वर्ण सेवातत्पर अधिक जणाय छे. लोकमां प्रचलित कथन छे केः-"उत्तम कृषि, मध्यम व्यापार, कनिष्ठ सेवा" ए लोकोक्तिनो विपर्यास थतो देखाय छे, परंतु वास्तविक तो सकलपुरुषार्थसाधक विद्याभ्यास ए ज सुब्राह्मणत्व छे. विद्याभ्यास विना अन्यत्र श्रम करवो ए शूद्रप्रायता छे.

बहु कारणोथी आ देश विकारावस्थामां छे. तेमां पूर्वावस्थानो परित्याग अने अवस्थान्तरनी प्राप्ति संपूर्ण थशे के नहि, ए तो संशयात्मक छे. तथापि ए विकारावस्थाथी आचारविचारना बाह्याकारमां विपरीतता प्रतीता थाय छे, ए तो प्रत्यक्ष छे.

---

१ व्याज उत्पन्न करवुं. २ सेवा.

ए प्रकारनी आ देशनी आधुनिकी स्थिति छे. तेमां प्राणीमात्रने अभीष्ट जे दुःखनी निवृत्ति अने सुखनी प्राप्ति, तेनां साधक साधन अने संपादकमार्ग कया छे ते यथावत् जाणवुं जोइए. अने ते ज्ञातव्य, प्रदीपवत् सर्व अर्थनां प्रकाशक जे अज्ञातार्थज्ञापक शास्त्र[१] तेथी ज, जाणी शकाय एम छे.

श्रेयःसाधक प्रवृत्ति निवृत्ति-मार्ग.

ते इष्टनी प्राप्तिना अने अनिष्टना परिहारना उपायना प्रकाशन विषये तत्पर जे सर्वज्ञकल्प शास्त्र, ते शास्त्र, सर्व देशकालने अनुकूल थाय एवो प्रसिद्ध प्रवृत्ति निवृत्ति-लक्षण धर्मनो श्रेयःसाधक सन्मार्ग, उपदिशे छे.

आ नामरूपक्रियात्मक जगत् त्रिगुणात्मका मायानुं परिणाम छे. ते ऐश्वरी मायाशक्तिने 'प्रकृति' पण कहे छे. ते प्रकृति 'अपरा' तथा 'परा' भेदथी द्विविधा छे. अनर्थकरी संसारबन्धनात्मिका जडभूता प्रकृति अपरा नाम निकृष्टा छे; प्राणधारणनिमित्तभूता जीवभूता प्रकृति परा नाम प्रकृष्टा छे. ते अपरा प्रकृति 'क्षेत्र' नामे पण कथाय छे, अने परा प्रकृति 'क्षेत्रज्ञ' नामे पण कथाय छे. क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ, किंवा प्रकृति-पुरुष, ए पर्याय छे. ए प्रकृतिद्वयद्वारा सर्वज्ञ ईश्वर जगत्नुं कारण छे.

ए सत्त्वरजस्तमोगुणात्मिका प्रकृतिमां सत्त्वगुणनो तथा तमोगुणनो अभिभव[२] थइने रजोगुण वधे छे, त्यारे रजोगुणनुं कार्य जे प्रवृत्ति ते थाय छे. ए प्रकारे प्रकृति,-माया,-अविद्या छे, ते सर्वनी जननी छे, अने तेनुं कार्य प्रवृत्ति होवाथी,

---

१ ज्ञानना हेतु अनेक विद्याना प्रस्थानोएकरी उपबृंहित वर्धित-अने हितनु ज शासन करनार ते शास्त्र. २ तिरस्कार, दबाण.

धर्म. देहादिनी चेष्टा; कर्तानुं ईप्सिततम अने क्रियाए करी व्याप्यमान. आ जगत्‌रूप चक्रनी प्रवृत्तिनो हेतु कर्म छे. अर्थात् कर्ताना व्यापारोए करी जे सधाय; किंवा कर्तानी क्रियाओए करी जे प्राप्य, ते 'कर्म.' कर्ममात्र क्रियाजन्य छे अने धर्म–अधर्मनां जनक छे.

'कर्म' जे श्रुतिस्मृतिमां 'धर्म' नामथी प्रसिद्ध छे, ते

त्रिविध धर्म. कायिक–वाचिक–मानसिक चेष्टारूपे (क्रियारूपे) त्रिविध छे.

कर्मना बे प्रकार छेः-विहित अने निषिद्ध. जेमां इष्ट

धर्मना प्रकार – विहित अने निषिद्ध साधनताज्ञान हेतु छे एवुं, पुरुषने प्रवृत्तिना (करवाना) निमित्त वेदे बोधन कर्युं छे ते 'विहितकर्म;' अने जेमां इष्टसाधनताज्ञान हेतु छे एवुं, पुरुषने निवृत्तिना (न करवाना) निमित्त वेदे बोधन कर्युं छे ते 'निषिद्ध कर्म' छे. ए विहित–निषिद्ध कर्मने धर्म अधर्म कर्म, पण कहे छे. धर्मकर्मनुं फल, अनुकूल विषयना तथा इन्द्रियना संयोग(तेणेकरी)जन्य (एवुं) सुख छे; अने अधर्मकर्मनुं फल, प्रतिकूल विषयना तथा इन्द्रियना संयोग(तेणेकरी)जन्य (एवुं) दुःख छे. अने ते सर्व सुखदुःख शरीरवाक्‌मनेकरी भुज्यमान छे.

'विहितकर्म'ने ,केवल 'कर्म'नी अने 'निषिद्धकर्म'ने विकर्म'नी संज्ञा छे. ए प्रकारद्वयथी शेष जे तूष्णीभाव ते 'अकर्म' कहेवाय छे.

यद्यपि विहित–निषिद्ध कर्म, धर्म–अधर्मनां जनक छे, तथापि ते बेथी शेष रहेति जे स्वभावसिद्धा क्रियाओ छे,– जेवीके गमन, आगमन, शौच, इत्यादि उदासीन सहज क्रियाओ– ते क्रियाओरूप कर्म, धर्माधर्मनां जनक नथी गणातां.

'विहितकर्म' ए-शुद्धि, उपासना, यज्ञादिक-शुभकर्म छे, ते शुभकर्म, स्वअनुष्ठानद्वारा पुण्यरूप अपूर्वनुं जनक छे, अने स्वर्गादिफलक छे; अने तेथी इष्टदेवयोनि प्राप्त थाय छे.

'निषिद्धकर्म' ए, अशुद्धि, असत्य, हिंसादिक-अशुभकर्म छे. ते अशुभकर्म, स्वअनुष्ठानद्वारा पापरूप अपूर्वनुं जनक छे, अने नरकादिफलक छे; अने तेथी अनिष्टतिर्यगादियोनि प्राप्त थाय छे.

मिश्रकर्म.

ए विहित-निषिद्ध किंवा शुभाशुभ उभयविध कर्मनो समावेश जेमां थाय छे ए 'मिश्रकर्म' छे. ते मिश्रकर्म, स्वअनुष्ठानद्वारा पुण्यपापरूप अपूर्वनुं जनक छे अने उच्चावच मनुष्यजन्मफलक छे, तेथी व्यामिश्र मनुष्य जातिमां उच्चावच योनि प्राप्त थाय छे. तेमां अधिक पुण्य अने न्यून पाप जे मनुष्यमां प्रतीत थाय ते मनुष्य, देवसमान गणाय छे; अने अधिक पाप अने न्यून पुण्य जे मनुष्यमां प्रतीत थाय ते मनुष्य, पशुसमान गणाय छे.

ए शुभ, अशुभ, अने मिश्र, कर्मने कोई 'शुक्ल,' 'कृष्ण' अने 'कृष्णशुक्ल' एवी संज्ञा पण आपे छे.

विहितकर्मभेद.

विहितकर्म वळी चतुर्विध छेः-नित्य (१), नैमित्तिक (२), काम्य (३), अने प्रायश्चित्त (४).

पुनः प्रकारान्तरे सात्विक (१), राजस (२), अने तामस (३), भेदथी कर्म त्रिविध छे; अने तेओनां अनुक्रमे फल,-सुख, दुःख अने मोह,-छे; किंवा प्रकाश, प्रवृत्ति अने प्रमाद छे.

ए शुभ-अशुभ कर्मो पोताथी अव्यवहित उत्तरकालमां

---

१ कर्मनी सूक्ष्मावस्था अने फलनी पूर्वावस्था ए अपूर्व कहेवाय छे, अने अदृष्ट पण कहेवाय छे. २ पशुजन्म. ३ ज्ञान. ४ अंतरायरहित.

अनुक्रमे धर्म-अधर्मनी किंवा पुण्य-पापनी उत्पत्ति करे छे. ते धर्माधर्म अन्तःकरणविषये (वासनारूपे-बीजरूपे) रहे छे; अने कालान्तरे तेओनां फलरूप सुख-दुःख थाय छे.

सुखदुःखना हेतु कर्म छे.

ए प्रकारे शुभ-अशुभ कर्मो ज धर्म-अधर्मरूप अपूर्वद्वारा सुख-दुःखरूप फलना हेतु छे. परंतु ए बीजो अने तेओनां फलो एओना मध्ये कालनो अन्तराय बहु पडे छे. एथी शुभाशुभकर्मजनित धर्माधर्मरूप कारणथी सुख-दुःखरूप कार्य-फल-थाय छे, ए नियमनो अनुबन्ध सामान्य मनुष्योए समजातो नथी. किन्तु यथाविधि शास्त्राभ्यासी महात्माओए ए नियम यथावत् गण्यो छे. एथी सुखना लाभसारु प्रयत्नमान जनोए पुण्यकर्मोमां प्रवृत्तिअर्थ प्रयत्न अने पापकर्मोमां निवृत्तिअर्थ प्रयत्न कर्तव्य छे. कारण के सुखदुःखना हेतु, प्रत्येक मनुष्यनां पोतपोतानां जे शुभाशुभ कर्मो छे, ए ज छे. अध्यात्मरामायणमां उपदिशे छे केः–

" सुखस्य दुःखस्य न कोपि दाता
परो ददातीति कुबुद्धिरेषा ।
अहं करोमीति वृथाऽभिमानः
स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः ॥[1]"

अयोध्याकाण्ड, सर्ग ६—६.

ए शुभाशुभ कर्मथी बे अंकुर थाय छेः–(१) वासना अने

---

१ सुखदुःखनो कोई पण दाता नथी, पर (अन्य वा ईश्वर) दे छे एवुं कहेवुं ए कुबुद्धि छे; 'हुं करूं छुं' ए पण खोटुं अभिमान छे. केम के स्वकर्मनां सूत्रवडे गुंथायलो लोक छे. अर्थात् सूत्रयुक्त पुतळीने सूत्रधार नचावे छे, तेम कर्मरूप सूत्रवडे युक्त लोकने तेनां पोताना स्वकर्मोना चालनेकरी ईश्वर विविधस्थितिमां मूके छे–स्वकर्मानुसार सुखदुःख छे. २ पूर्वपूर्व अभ्यासेकरी चित्तमां वसता–चित्तगत–संस्कार.

कर्मना अंकुरद्वय.

(२) अदृष्ट. शुभक्रियाजन्य कर्मथी शुभवासना, अने धर्मरूप अदृष्ट, ए बे अंकुर थाय छे. अने अशुभक्रियाजन्य कर्मथी अशुभ वासना, अने अधर्मरूप अदृष्ट, ए बे अंकुर थाय छे. शुभवासनारूप अंकुरथी पछी शुभकर्ममां प्रवृत्ति थाय छे; अने धर्मरूप अदृष्टअंकुरथी पछी सुखनो भोग[1] थाय छे; अने ए ज प्रकारे अशुभवासनारूप अंकुरथी पछी अशुभकर्ममां प्रवृत्ति थाय छे; अने अधर्मरूप अदृष्टअंकुरथी पछी दुःखनो भोग थाय छे.

ए वासनारूप तथा अदृष्टरूप अंकुरद्वयमांथी, वासनारूप अंकुरनो तो उपाये करी नाश थई शके छे, अने अदृष्टरूप अंकुरनो तो फलनी उत्पत्ति विना कोई प्रकारे पण नाश थई शकतो छे नहि. अशुभकर्मथी उत्पन्न थया जे अशुभवासनारूप अंकुरो तेओनो सत्संगादि उपायेकरी नाश थाय छे; अने शुभकर्मथी उत्पन्न थया जे शुभवासनारूप अंकुरो तेओनो कुसंगादिथी नाश थाय छे. ए रीतिए प्रवृत्तिना हेतु जे वासनारूप अंकुरो तेओनो पुरुषप्रयत्नेकरी नाश थाय छे. अने भोगना हेतु जे अदृष्टरूप अंकुरो तेओनो भोगेकरी नाश थाय छे. पुरुषप्रयत्न तथा अदृष्टनी एवी व्यवस्थाथी उभयनी सफलता प्रतिपादिता थाय छे.

कर्मानुरूपभोगसंबंधमां एक सबला शंका अनुपदे सांभळवामां आवे छे केः-आ असार संसारमां वारंवार आम प्रतीत थाय छेः-अधर्मी दुराचारी मनुष्यो सुखी अने धर्मी सदाचारी मनुष्यो दुःखी; एथी सुखदुःखनुं धर्मअधर्म ए अव्यभिचारी[2] कारण छे ए आशंकनीय छे. एनुं समाधान कंइक आ प्रमाणे कराय छे.

---

१ सुखदुःखनो साक्षात्कार. २ अबाधित. कार्यकारणभावभंगरहित. नियमसंबंधवाळुं.

लिंगदेहमां जन्मजन्मान्तरना पूर्वसंस्काररूपे वसता शुभ-अशुभ कर्मना जे वासनारूप तथा अदृष्टरूप असंख्य अंकुरो छे, तेओमांथी शुभ-अशुभवासनारूप अंकुर अनुसार शुभाशुभ बुद्धि थाय छे. शुभबुद्धिअनुसार धर्माचरण किंवा सदाचार थाय छे. अथवा अशुभबुद्धि अनुसार अधर्माचरण किंवा दुराचार, थाय छे. ते शुभाशुभ **वासनारूप** अंकुरमां अमुक उपायेकरी भेद करी शकाय छे ए पूर्वे जाण्युं छे. अर्थात् वासनारुप अंकुरमां अन्यरूपनी प्राप्तिरुप **विकार,** अने मलनी निवृत्ति तथा गुणनी प्राप्तिरूप **संस्कार,** करी शकाय छे. परंतु **अदृष्टरूप** अंकुरनो तो भोगे करी ज क्षय थाय छे.

वासनारूप अंकुरमां भेद थइ शके छे, अदृष्टरूप अंकुरनो भोगथी ज क्षय थाय छे.

अवे जो, जे कर्मना फलदाननो काल आवे त्यारे ते ज कर्मना अदृष्टरूप तथा वासनारूप अंकुर पण ते अने ते ज होय तो, शुभकर्मना अदृष्टरूप अंकुरनुं फल सुख अने शुभवासनारूप अंकुरनो परिणाम धर्माचरण, अथवा अशुभकर्मना अदृष्टरूप अंकुरनुं फल दुःख, अने अशुभवासनारूप अंकुरनो परिणाम अधर्माचरण, ए एक ज व्यक्तिमां एक ज काले देखवामां आवे. परंतु एवो नियम छे नहि. वासनामां उपायेकरी विकार अने संस्कार थाय छे, अने एथी भेद पडे छे. तेथी एक ज कर्मना अदृष्टनां फल सुखदुःख, अने वासनाना परिणाम शुभाशुभबुद्धिजन्य धर्म-अधर्म-आचरण, एओमां अन्तर पडी जाय छे. अधर्मरूप अदृष्टना फलदाननो काल आव्यो होय त्यारे दुःखनो भोग थाय छे, अने ते काले शुभवासना थई होय तो, ते शुभवासना शुभबुद्धिद्वारा ते भोक्ताने धर्माचरणमां प्रेरे छे. ते प्रसंगे यद्यपि भोक्ताने

अधर्मरूप अदृष्टनुं फल-दुःखनो भोग-तो थाय छे, तथापि ते दुःखनुं बल, शुभवासनाना प्रतापथी, बहु न्यून थाय छे. अने एथी विपरीत घटनामां तदनुसार थाय छे. एक ज प्रकारनां अदृष्टनां फल जे सुखदुःख, ते अनेक व्यक्तिओमां न्यूनाधिक बलथी विचित्र परिणामने पामे छे, तेनुं पण पूर्वोक्त ज कारण प्रतीत थाय छे.

वली कर्मसंबंधमां एक अन्य विचार पण छे. क्रियाजन्य कर्म होय छे. ते कर्ममां स्वकारणीभूता क्रियाना गुण अनुगत होय छे. क्रिया द्विविधा छेः—अदृष्टफला तथा दृष्टफला.

क्रियाना प्रकार—अदृष्टफला-दृष्टफला.

अदृष्टफला क्रिया फल दीधा विना शान्ता थाय छे, अने तेनुं फल कालान्तरे मले छे. जेम कृषिलक्षणा क्रिया थईने नाश पामे छे; पछी

अदृष्टफल क्रिया.

बीजना अने क्षेत्रना संस्कार, तथा तेओनी रक्षा एओना ज्ञानवान् जे कर्ता तेनी अपेक्षा राखी ते कृषिक्रिया कालान्तरे कृषिकने (धान्यादि) फल आपे छे. अथवा सेवालक्षणा क्रिया थईने नाश पामे छे; पछी कोई पृथक् सेव्यनी (राजादिनी) सेवाना संस्कारवती बुद्धिनी अपेक्षा राखी, ते सेवाक्रिया कालान्तरे सेवकने (धनमानादि) फल आपे छे; तेम अदृष्टफला सर्वा क्रिया, तात्कालिक फल दीधा विना, शान्ता थाय छे, अने ते क्रियानां अनुरूप फल कालान्तरे मले छे; सेवालक्षणक्रियासमा ए अदृष्टफला क्रिया संबंधमां कोई पृथक् फलदातानी अपेक्षा छे. कारण कालान्तरे थनार फल कोई एक सेव्यने अधीन छे. ए सर्व अदृष्टफलक्रियाना फलदाता सेव्य,-नित्य कर्तृकर्मफल-विभागज्ञ, देश

---

१ जेनुं फल देखातुं नथी एवुं, कालान्तरे फल आपनार.

कालनिमित्तविपाक-विभागज्ञ, सर्वना आत्मभूत, सर्वक्रियाफल-प्रत्यक्षसाक्षी;-सर्वज्ञ **ईश्वर** छे.

क्रिया किंवा कर्मनुं जे फल प्रत्यक्ष अथवा अनुमानथी प्रतीत होय नहि, किन्तु शास्त्रथी जणाय, ते **'अदृष्ट'** फल कहेवाय छे. अदृष्टफलनी उत्पत्तिमां ते कर्मने जेटला सहाय[१] शास्त्रे बोधन कर्या होय, ते सहाय सहित ते कर्म, फलनो हेतु थाय छे; केवल कर्म नहि. अदृष्टफलना हेतु जे कर्म, ते श्रद्धादिसहित शास्त्रे बोधन कर्या छे तो तेवां कर्ममां ते श्रद्धा-नियम भक्तिनी अपेक्षा छे. अदृष्टफलना हेतु कर्मो जो श्रद्धादि-रहित होय तो यथेच्छ अदृष्टफल थाय नहि ए यथासंभव छे. अर्थात् जेम कृषिकर्ममां बीज, पृथिवी, जल, उष्णता, प्रयत्नादि सहायनी अपेक्षा छे, तो ते सर्व होय छे तो ज फल थाय छे, तेओनी न्यूनता होय तो यथेच्छ फल थतुं नथी; तेम व्यावहारिक अने शास्त्रीय सर्व अदृष्टफलमां छे. सांगोपांग नहि किन्तु व्यंगोपाङ्ग कर्म करे छे अने पछी तेना फलनी सिद्धि थती नथी त्यारे स्वप्रमादना-स्वकृतन्यूनताना-दोषने न जोतां अन्यत्र शास्त्रादि उपर दोषारोपण सामान्य मनुष्यो करे छे. परंतु ते यथार्थ नथी.

> "मंत्रे[२] तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ ।
> यादृशी भावना यत्र सिद्धिर्भवति तादृशी ॥"

ए मानसिक सृष्टिसंबंधमां केटलेक अंशे वास्तविक छे.

दृष्टफला क्रिया अनन्तरफला छे नाम,-फल दईने शान्ता थाय छे. अर्थात् क्रिया अने क्रियाना फलमां अन्तर पडतुं छे नहि, किन्तु तत्काल

दृष्टफला क्रिया

१ सहचर, साथे होवा जोइए ते. २ 'मंत्रमां, तीर्थमां, द्विजमां, देवमां, दैवज्ञ(ज्योतिषी)मां, औषधमां, अने गुरुमां-जेवी भावना जेमां होय तेवी सिद्धि थाय छे.'

फल थई क्रिया समाप्त थाय छे. तेमां पृथक् फलदातानी अपेक्षा नथी. जेम गमनक्रियानुं फल इच्छेला स्थाननी प्राप्ति; अथवा भोजनक्रियानुं फल क्षुधानी (निवृत्तिरूप) तृप्ति छे; ते प्राप्तिरूप अथवा तृप्तिरूप फलने आपीने गमनक्रिया अथवा भोजनक्रिया शान्ता थाय छे. तेम दृष्टफलक्रियारूप बहु विषयोमां छे.

क्रियाजन्य कर्मना अदृष्टरूप अंकुरमांथी थतां फलोमांथी केटलांक शीघ्रकाले भोग देवाने उन्मुख थाय छे. अने केटलांक कालान्तरे भोग देवाने पण उन्मुख थाय छे. एथी ए कर्मना ज अदृष्टरूप तथा वासनारूप अंकुरना फलोदयना कालमां अन्तर पडी जाय छे. ए कारणथी अधर्मी मनुष्यो सुखी अथवा धर्मी मनुष्यो दुःखी, एवुं विपरीत प्रतीत थाय त्यारे तेनो हेतु-अदृष्टना फलोदयनुं अने वासनाना संस्कारनुं अन्तर थाय छे ए-मानवो यथायत् छे.

ए उपरथी एक सिद्धान्त लक्ष्यमां राखवानो छे के.— अदृष्टनो तो भोगथी ज क्षय थवानो छे. तेथी ए अंश उपर उपेक्षा राखी, वासनारूप अंशने ज शुद्धसंस्कारी करवा मनुष्ये प्रयत्न करवो ए ज उचित अने सफल छे. अन्तःकरणनी वासनाओ शुभा तथा सुखदुःखना भोगकाले पण पुनः ते शुभवासनाओ क्रियमाण शुभकर्मो प्रति ज प्रेरे छे. अने तेथी अन्ते शुभकर्मोमां ज प्रवृत्ति रही तेवा मनुष्यो निःश्रेयसना अधिकारी थाय छे.

संचित-प्रारब्ध-आगामि कर्म.

पुनः प्रकारान्तरे कर्म त्रिविध छे. जेम एक ज काल, अवस्थाभेदे, भूत-वर्तमान-भविष्यत्-एवी संज्ञाने प्राप्त थाय छे, तेम एक ज कर्म अवस्थाभेदे करी, सञ्चित (१), प्रारब्ध (२), तथा आगामि (३), ए त्रिविध संज्ञाने प्राप्त थाय छे.

अनेक अतीत जन्मविषे संचय थयेलां फलारंभरहित कर्मो ते '**सञ्चित**' कहेवाय छे. ए 'सञ्चितकर्म' अंतःकरण-उपहितसाक्षिनिष्ट जे अज्ञान, ते अज्ञाननी जे 'आवरणशक्ति' तेमां स्थित होय छे. अने ते कर्मनो नाश ज्ञानरूप अग्निए थाय छे.

अनेक सञ्चित कर्मोमध्ये जे परिपक्व थयेल अने जे ईश्वरे च्छाथी आ वर्तमान शरीरनां आरंभक कर्मो ते '**प्रारब्ध**' कहेवाय छे. ए 'प्रारब्धकर्म' अंतःकरणउपहितसाक्षिनिष्ठ जे अज्ञान ते अज्ञाननी जे 'विक्षेपशक्ति' तेमां स्थित होय छे. अने स्वजनित सुखदुःखना भोगरूप फलने आपे छे. अने ते कर्मनो नाश प्रारब्धभोग समाप्त थये ज थाय छे.

प्रारब्धकर्मजनित भोगोने भोगवते सते, जे आ वर्तमान शरीरविषे क्रियमाण अने भविष्यत् कालमां फलप्रद कर्मो ते '**आगामि**' कहेवाय छे. ए 'आगामिकर्म,'-अन्तःकरणनो कर्तृरूप-वृत्तिमान् अंश जे अहंकृति, ते अहंकृतिनुं साक्षीसह जे भ्रमज-तादात्म्य-ते भ्रमजतादात्म्यमां स्थित होय छे. ए तादात्म्यने ज चित्-जड-ग्रंथि, किंवा, हृदय-ग्रंथि कहे छे. ए भविष्यत्कालमां फलप्रद 'आगामिकर्मोनो' नाश,-श्रुति-आचार्यना अनुग्रहबलेकरी 'अहं ब्रह्मास्मि' (हुं ब्रह्म छुं) एवा-ब्रह्मात्मैक्यसाक्षात्कारथी थाय छे. अर्थात् एवा साक्षात्कारवान् विद्वान्‌ने ए **आगामि** किंवा **क्रियमाण** कर्मनो लेप थतो नथी.

कर्मना फलनो भोगथी ज क्षय.

सामान्यतः कर्मफलनो भोग थये ज क्षय थाय छे, ए सिद्धान्त छे. तेओमां पण प्रवृत्तफल जे प्रारब्धकर्म तेओ तो विशेषतः उपभोगेकरी ज क्षीयमाण छे.

"नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥

'करेलु शुभअशुभकर्म अवश्य ज भोक्तव्य छे. कल्पनां कोटिशतकोयकरी पण भोगाया विनाना कर्मनो क्षय थतो नथी' एम छे तो स्वहितेच्छुके कर्म करतां बहु ज सावधान रहेवु योग्य छे.

पूर्वोक्त सञ्चित, प्रारब्ध, अने आगामि, ए त्रिविध कर्मोमां मध्यनु प्रारब्धकर्म तेनो उपभोगेकरी ज क्षय थाय छे, अने ते बलवत्तर गणाय छे.

"प्रारब्धं बलवत्तरं खलु विदां भोगेन तस्य क्षयः ।"
वि चू ४५४ ।

प्रवृत्तिलक्षण धर्मना अनुसारी सर्व जनो कार्यनी सिद्धि-अर्थे प्रयतमान होय छे. ते सिद्धिने कोइक प्रारब्धने अधीना गणे छे. कोइक पुरुषप्रयत्नने अधीना गणे छे, कोइक उभयने अधीना गणे छे. ए पक्षत्रयना विषयमां शंकासमाधानना बहु विचारो छे तेओमांथी स्वल्पनो सार कइक आ प्रकारे छे

स्वकार्यना जननसारु आरंभायला प्रारब्ध कर्मना,-दैव, भाग्य, विधि आदि शब्दो-पर्याय गणाय छे

पुरुषप्रयत्न अने प्रारब्ध

ए पक्षत्रयमांथी पुरुषकार तथा प्रारब्ध ए उभयथी कार्यनी सिद्धिना वादीओनो पक्ष युक्तियुक्त अने बहुमत, विचारकोए गणाय छे केवलप्रारब्धवादीने क्षुधादिकनी तृप्तिसारु अन्नचेष्टामां अने रोगादिनी निवृत्तिसारु औषध उपचारमां प्रयत्नवान देखीने, अने केवलपुरुषप्रयत्नवादीने अभीप्सितार्थमां अतीव प्रयत्न करे सते निष्फल थएला जोइने, प्रारब्ध-पुरुषप्रयत्नना समुच्चयवादी विचारे छे के, कार्यसिद्धिमां उभयनी अपेक्षा छे तेमां केटलांक कार्यनी सिद्धिमां पुरुषप्रयत्न मुख्य

छे अने प्रारब्ध गौण छे. अने केटलांक कार्यनी सिद्धिमां प्रारब्ध मुख्य छे अने पुरुषप्रयत्न गौण छे. परंतु सर्व कार्योनी सिद्धिमां न्यूनाधिक उभयनी अपेक्षा छे. शास्त्रकारो अन्धपंगुन्याय वर्णे छे ते, ए संबन्धमां यथाघटित छे. एक व्यक्तिना शरीरमां पण चक्षु अने पाद उभयनो उपयोग, रूपने जोवामां अने गमन करवामां, थाय छे. कहिं जई कई रूप जोवानुं होय तेमां चक्षुनो मुख्य उपयोग होय छे; अने पादनो गौण उपयोग होय छे. कई गमन करवानुं होय तेमां पादनो मुख्य अने चक्षुनो गौण उपयोग होय छे. आ अविद्या-मूलक संसारनो स्वभाव अने व्यवस्था ज एवां जणाय छे के, अनेक साधनोए करी एक कार्य सिद्ध थाय. तेमां पण उत्पत्तिसंबंधमां पुरुषप्रयत्न मुख्य जणाय छे, अने भोग थई क्षय थवामां प्रारब्ध मुख्य भासे छे.

पुनः फलसिद्धि संबंधमां प्रारब्ध, जडपदार्थ-विषय-तुल्य छे, अने पुरुषप्रयत्न, चैतन्य-इन्द्रिय-तुल्य छे. ए उभयनो संयोग थयाथी भोग-फल-सिद्ध थाय छे. भोग्यपदार्थ तो उत्पन्न थएला ज होय छे. ते भोग्यपदार्थनो, अने भोक्तानो संयोग, भोगमां अपेक्षित छे; ते संयोग थवामां पुरुषप्रयत्न आवश्यक छे. पुरुषप्रयत्न न थाय तो जड भोग्य ज्यां होय त्यां ज रहे अने तेनो भोग अने क्षय थाय नहि.

सृष्टि किंवा जगत् ईशनुं कार्य अने जीवनुं भोग्य छे. ईश्वरनिर्मितसृष्टिना पदार्थो एक ज रूपे रहे छे. ते भोग्यपदार्थोमां भोक्ता जीवनी बुद्धिवृत्ति नाना होवाथी तेओना भोगमां बहुधा भेद थाय छे.

ईश्वरसृष्ट एक मूल्यवान् मणि छे. ते त्रण जीवोए दीठो. तेमां बे लोभी हता अने त्रिजो विरक्त हतो. तेमांथी जे जीवने

ते मणि मळ्यो ते जीव हर्ष्यो, जे जीवने ते मणि न मळ्यो ते कोप्यो, अने तृतीय जीव जे विरक्त हतो ते न हर्ष्यो न कोप्यो. एम ईश्वरसृष्ट एक ज मणिमां जीवोनी नानारागद्वेषादिवृत्तिअनुसार प्रिय अप्रिय उपेक्ष्य एवा त्रण भेद थया. ए त्रणे भेद जीवोए रचित छे. सर्व जीवोने रागद्वेषादिथी सुखदुःखादि आपी बंधन करनार स्वरचित सृष्टि ज छे. इत्यादि पंचदशीना द्वैतविवेकमां सिद्ध कर्युं छे.

एम ईश्वरकृतसृष्टि अने जीवकृतसृष्टि छे. तेमां ईश्वरकृता सृष्टिनुं निवारण अशक्य छे. तेथी ते संबंधमां प्रारब्धने प्रधान गणवुं उचित छे. जीवकृता सृष्टिमां यथेच्छ व्यवस्था करी शकाय छे. ए सृष्टि जीवना अन्तःकरणनी वृत्तिने अधीना छे. वस्तुतः जीवकृता सृष्टि ते जीवना ज संकल्पविकल्पनुं परिणाम छे. ते जीव पुरुषप्रयत्न करी यथार्थदर्शी थाय तो ते मनोजय अने वासनाक्षय करवा समर्थ थाय छे जे केवल पुरुषप्रयत्नाधीन छे, अने तेम थये जीवकृतसृष्टिना दुःखद परिणाम दूर थाय छे. अर्थात् जीवकृतसृष्टिमां पुरुषकार प्रधान छे ए स्पष्ट छे. एथी जीवकृतसृष्टिसंबंधमां पुरुषप्रयत्नने प्रधान गणवो उचित छे. फलना उपभोग समये उभयसृष्टिमां प्रारब्ध प्रवेशे छे. अने 'प्रारब्धनो भोगेकरी ज क्षय थाय छे.'–ए कथन ए प्रकारे सफल थाय छे. प्रारब्ध उभयसृष्टिमां प्रवेशी सुख-दुःखना साक्षात्काररूप **भोग** आपीने क्षयने पामे छे.

ए उभयसृष्टिनी ए प्रकारे व्यवस्था करे एक अन्य लाभ पण थाय छे. ईश्वरकृतसृष्टिमांथी फलनी उत्पत्तिमां प्रारब्ध प्रधान गणायाथी, तज्जन्य अनिवार्य प्रसंगोमां कराता व्यर्थ प्रयासो अने कालक्षयादि बचे छे; तेओने संरक्षी पुरुषप्र-

'(फलनी सिद्धि) मानुष विना नाम पुरुषप्रयत्न विना, दैवथी नाम प्रारब्धथी थती नथी; अने दैव विना मानुषथी थती नथी. जेम एक अरणि अग्नि उत्पन्न करी शकती नथी' तेम एक ज दैव वा मानुष अर्थनी सिद्धि करी शकतुं नथी.

"कृषिवृष्टिसमायोगात् दृश्यन्ते फलसिद्धयः ।

'कृषि (खेती) रूप पौरुष अने वृष्टिरूप दैव ए उभयने सारो योग थये फलनी सिद्धिओ देखाय छे.'

प्राक्कर्म किंवा दैव ए बीजरूप छे; आधुनिक क्रियमाण कर्म किंवा पुरुषकार ए, पृथिवी, जल, उष्माना संस्काररूप छे. उभयना योगथी फलसिद्धि थाय छे. पुरुषकार-सदाचार पुनः अभीप्सितार्थना अनिष्टने शोषे छे; अने इष्टने पोषे छे.

एम पुरुषकार, दैवनो-प्रारब्धनो-जनक छे, तथा फलसिद्धिनो उत्पादक अने पोषक छे. ए तत्त्व गण्युं छे.

ए रीतिए पुरुषकार अने प्रारब्ध एओनो जनकजन्यभावसंबंध स्पष्ट प्रतीत थाय छे.

पुरुषार्थमा पुरुषप्रयत्न अने प्रारब्ध.

(नरनारी आदि देहधारी) सर्वपुरुषनी जेमां प्रीति छे एवा 'अर्थ' ते पुरुषार्थ. ते पुरुषार्थने चतुर्विध गणी 'पुरुषार्थचतुष्टय' कहे छे. ते पुरुषार्थचतुष्टयनां नाम-धर्म (१), अर्थ (२), काम (३), अने मोक्ष (४) छे. ए पुरुषार्थचतुष्टयमां पुरुषना सर्व कर्त्तव्यनो समावेश थाय छे. ए चतुर्विध पुरुषार्थ सिद्ध करवा यथामति सर्वनो प्रबल अभिलाष तथा प्रयत्न होय छे. ते पुरुषार्थनी सिद्धिसारू पुरुषकारनी अने प्रारब्धनी आ प्रकारे व्यवस्थिति कल्याणकारिणी तथा सुखप्रदा छे.

---

१ अरणि नामे वृक्षना लाकडाना बे कटकाना घर्षणथी अग्निहोत्रादि सारु अग्नि प्रकट करता. ते अग्नि मात्र एक कटकाथी उत्पन्न थाय ज नहि तेम.

आदि अन्तना 'धर्म' तथा 'मोक्ष' ए द्वयनी सिद्धि पुरुषकारनी अधीना छे, अने मध्यना 'अर्थ' तथा 'काम' ए बेनी सिद्धि प्रारब्धनी अधीना छे. कारण धर्मज्ञ विद्वान् आर्यो जे क्रियमाणने प्रशंसे छे ते धर्म, तथा प्राप्य मोक्ष, ए पुरुषतंत्र छे. मनुष्ये विद्यासंपन्न, सद्विचारी, सत्यवादी, सदाचारी, परोपकारी, स्वधर्मनिष्ट, सद्गुणी इत्यादि थवुं एमां ते स्वतंत्र छे. तेमां कई अन्यनी अपेक्षा नथी. मनुष्यनी बाह्यस्थिति रंकनी हो किंवा राजानी हो, तथापि जो तेनो संकल्प दृढ होय तो, ते सद्गुणीमां श्रेष्ठ थई शके छे. गुणमां श्रेष्ठ पदे पहोचवामां कोइने किञ्चित् पण परतंत्रता नथी; श्रेष्ठगुणी थवामां परनो प्रतिबंध सफल थई शकतो नथी. प्राप्य जे परमपुरुषार्थ मोक्ष तेमां पण समानरीतिए मनुष्य स्वतंत्र छे. ए उभय पुरुषतंत्रा पुरुषार्थनी सिद्धिमां पुरुषकार किंवा पुरुषप्रयत्न ज प्रापक समर्थ साधन छे.

धर्म अने मोक्षमा पुरुषप्रयत्ननी प्रधानता

मध्यना 'अर्थ' अने 'काम' ए परतंत्र छे. जे क्षेत्र, धन धान्य पशु आदि पदार्थो भोगनां साधन छे ते 'अर्थ' कहेवाय छे, अने ते अर्थोपकरी थाय छे. जे-इन्द्रियोए वाञ्छित, सकाम पुण्यादिना फलरूप, विषयनो यथेच्छ भोग,-ते 'काम' कहेवाय छे.

अर्थ अने काममा प्रारब्धनी प्रधानता

ए अर्थ अने काम उभयमां परनी अन्यनी-आवश्यकता

---

१ "यमार्याः क्रियमाणं हि शंसन्त्यागमवेदिनः ।
स धर्मो, यं विगर्हन्ति तमधर्मं प्रचक्षते ॥"

विश्वामित्र. ।

छे, तेथी ते परतंत्र गणाय छे. तेनी प्राप्ति ईश्वरसृष्टिमांथी ज थाय छे. तेमां प्रारब्ध ज प्रधान होवाथी पुरुषप्रयत्न करे सते पण अर्थनी अने कामनी सिद्धि थती नथी; ए सर्वने वारंवार प्रत्यक्ष छे. इत्यादि कारणोथी परतंत्र "अर्थ काम" प्रारब्धाधीन गणाय छे.

व्यवहारमा अज्ञानताथी तेओनी विपरीतता

यथार्थ दृष्टिए ए प्रमाणे व्यवस्था छे. तथापि लोकदृष्टितेथी विपरीतता ज जणाय छे. प्रायशः सर्व मनुष्यो परतंत्र 'अर्थ-काम'नी सिद्धि सारू पुरुषप्रयत्न मरणपर्यंत कर्या ज जाय छे, अने स्वतंत्र 'धर्म-मोक्ष'नी सिद्धिअर्थ पुरुषकारमां प्रमाद राखी, तेने प्रारब्धाधीन मानी, ते सारू कंई पुरुषप्रयत्न करता ज नथी. एम कह्युं होय तो चाले.

एवा विपरीत ग्रहणे करी स्वतंत्र परतंत्र उभय वर्गना फलथी अविचारी मनुष्यो भ्रष्ट थई दुर्भागी रहे छे, अने जन्मथी मरणपर्यन्त दुःखी थई आ दुर्वार निःसार संसारनी घटमालामां भ्रमण कर्या जाय छे.

ए संबंधमां लक्षमां राखवा योग्य एका आख्यायिका छे.

ए संबंधमा आख्यायिका

कोई एक ग्रामना लोक, उदरना अने नेत्रना व्याधिथी बहु पीडाता हता. तेमां एक श्रद्धालु जन सन्तनी सेवामां परायण थई वसतो हतो. ते ग्राम महायात्राना धोरी मार्ग उपर हतु, तेथी त्यां अनेक अतिथि साधुसंतनां गमनागमन थतां. एक परिव्राजक महात्माए पेला श्रद्धालुने पूछयुं केः-आ ग्रामना सर्व लोक दुःखी केम देखाय छे ? तेणे उत्तर आप्युं केः—महाराज ! अत्रस्थ लोक उदरना तथा नेत्रना रोगथी पीडित होवाने लीधे दुःखित छे. ते कृपालु महात्मा, उभय व्याधिनां औषधो समान देखाती काचकूपीमां, आपीने सिधाव्या. ते औष-

थयी ए ग्रामना लोकोनो रोग निवृत्त थवा मांड्यो, अने पेला श्रद्धालुने वैद्यराजनी पदवी मळी अने धननी सारी प्राप्ति थवा मांडी. पछी ते वैद्यराज परण्या अने तेनो विस्तार थवा लाग्यो; तेम तेम स्त्रीसन्ताननी सेवामां परायण थया अने सन्तसेवा विसऱ्या.

एकवार एम थयुं के ते वैद्यराजना कोइ बालके पेला औषधनी कूपीओ विपरीते मूकी दीधी. वैद्यराजे ते जाण्युं नहि तेथी उदरना औषधने नेत्रना औषधरूपे अने नेत्रना औषधने उदरना औषधरूपे वापरवा अने आपवा मांड्यां. ए विपरीत प्रकारे अपायला औषधनो जेणे जेणे उपयोग कर्यो तेने तेने अधिक पीडा थई. ते उभय औषधोना उपरथी सर्वनो विश्वास उठी गयो, अने पेला वैद्यराजनी जीविका पण परवारी. ते वैद्ये तर्क कर्यो के,-महात्माए ते कूपीओना मुखभागमां रोगहर औषध मूकेलुं अने नीचेना भागमां रोगकर औषध मूकी कपट कर्युं छे. परिणाम ए थयुं के ते वैद्यनो व्यापार गयो अने ते ग्रामवासी पण रोगग्रस्त अने दुःखी थवा लाग्या.

ए आख्यायिकामां, जेम यथार्थ ग्रहणथी फलसिद्धि थई सर्व स्वस्थ अने सुखी थयां हतां, अने अज्ञानजनित विपरीत ग्रहण थतां सर्व रोगग्रस्त अने दुःखी थयां, तेम पुरुषप्रयत्न अने प्रारब्ध संबंधमां आ जगत्‌मां थतुं जणाय छे. पुरुषप्रयत्नरूप औषध ए, धर्म-मोक्ष संबंधमां सिद्धिसाधक छे; अने तेओनुं विपरीतग्रहण तथा प्रारब्धरूप औषध ए, अर्थकाममां उपयोगि साधन छे. तेओनो विपरीत प्रयोग थाय छे, तेथी आ जगत्, असार संसारना आधि व्याधि अने उपाधिना सन्तापमां मग्न छे. पुण्यना परीपाकथी सत् समागमनी

१. अवळ सवळ, फेरफार.

सीमामां अथाई विपरीतग्रहथी मुक्त अने यथार्थग्रहणना संबन्धी थवाय तो ज सन्ताप शान्त थई स्वस्थता अने सुख संप्राप्त थई तराय एम छे.

पुरुषप्रयत्ननी प्रबलता.

सामान्यरीतिए एम प्रारब्ध कर्म अने पुरुषकारनी व्यवस्था छे, तथापि शिष्टोनो आवो अभिप्राय स्पष्ट जणाय छे केः—कर्मनो जनक पुरुषप्रयत्न किंवा पुरुषकार छे, एथी पुरुषप्रयत्न बलिष्ठ अने सर्वार्थसाधक छे. तेमां पण मन-जे पशुवत् पुरुषोने संसारबंधननो हेतु छे-ते मनना जय करवामां अने वासनानो क्षय करवामां तो पुरुषकार ज प्रधान छे. अने ए ज कारणथी तत्त्वज्ञान-मनोनाश-वासनाक्षयरूप जीवन्मुक्तिना अनुपम सुखप्रसंगमां पुरुषप्रयत्न प्रधानपदे निरुपाय छे. श्रीवसिष्ठ मुनि श्रीरामचंद्र प्रति योगवासिष्ठमां वदे छे केः-

"सर्वमेवेह हि सदा संसारे रघुनन्दन ।
सम्यक्प्रयत्नात् सर्वेण पौरुषात्समवाप्यते" ॥

'अहो रघुनन्दन ! आ संसारमां सारा प्रयत्नथी अने पौरुषथी सर्वे (जनोए) करी सर्व ज (पदार्थ) सदा सारी रीतिए पमाय छे'.

ज्यां यथेच्छ प्राप्ति थती नथी त्यां पुरुषप्रयत्नरूप यथायोग्य साधनसंपत्तिनी प्रायशः विकलता के अभाव होय छे. पुरुषप्रयत्न सर्वसाधक छे. ए सुनिश्चित छे. कारण के पुरुषार्थचतुष्टयमां जे आदि अन्तना परम पुरुषार्थ 'धर्म-मोक्ष' ए तो पुरुषकारअधीन ज छे.

एम मध्ये प्रारब्ध अने पुरुषकारसंबंधी प्रासङ्गिक विचार जाणीने तेओ उभयमां अनुस्यूत जे कर्मनुं अनुष्ठान-जे प्रवृत्ति-

लक्षण धर्मनुं अंग होवाथी प्रकृत विषय छे-ते गहनगतिमत् कर्म विषये पुनः कइंक आ प्रमाणे विचार छे.

कर्म प्रकृतिसिद्ध ज छे.

प्रवृत्तिलक्षण धर्म ए आ जगत्नी स्थितिनुं कारण छे. अने प्राणीओना साक्षात् अभ्युदयनो हेतु छे, तथा परंपराए ज्ञानोत्पत्तिनो हेतु छे, ए शास्त्रसिद्ध अने युक्तिसिद्ध छे. एम होवाथी प्राणीमात्र सदा कर्ममां प्रवृत्त होय छे.

"कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥" गी. ३।५

ए यथार्थ छे. अवश सर्व प्राणी प्रकृतिना सत्वरजस्तमोगुणोएकरी कर्म करे छे. एक क्षण कोइ प्राणी कदाचित् अकर्मकृत् थई रही शकतो नथी.

" नहि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ॥ "

भ. गी. १८।११

'देहभृत् नाम देहात्माभिमानवान् तेणे अशेषथी कर्मोने त्यजवानुं शक्य नथी.' केटलाएक विमूढो मनवडे विषयोने स्मरता सते हस्तादि कर्मेन्द्रियोने संयमीने-खेंची राखीने-बेसे छे तेओ पापाचार छे. तेओना करतां जेओ ज्ञानेन्द्रियोने नियमीने फलाभिसन्धिवर्जित थई कर्मेन्द्रियोवडे कर्मनुं अनुष्ठान करे छे, तेओ विशेष (अधिक सारा) छे. कारण के फलथी, अकर्म करतां कर्म अधिकतर छे. अकर्मथी तो शरीरयात्रा पण सिद्ध थती नथी. जगत्रूप चक्रनी प्रवृत्तिनो हेतु जे कर्म ते अधिकारीओए अवश्य कर्तव्य छे. आत्मज्ञाननिष्ठानी योग्यतानी प्राप्तिअर्थ पण अनात्मज्ञ अधिकारीओए कर्मोनुं अनुष्ठान कर्तव्य छे. व्यास नारायण पण वदे छे के –

" अयमेव क्रियायोगो ज्ञानयोगस्य साधकः ।
कर्मयोगं विना ज्ञानं कस्यचिन्नैव दृश्यते ॥"

'आ ज क्रियायोग ज्ञानयोगनो साधक छे. (कारण) कर्मयोग विना कोइने ज्ञान (थयुं होय एम) देखातुं ज नथी.'

कर्मनिष्ठा ज्ञाननिष्ठाप्राप्तिनो हेतु छे.

कर्मनिष्ठाने ज्ञाननिष्ठाप्राप्तिनुं हेतुत्व छे. आ जन्ममां वा जन्मान्तरमां अनुष्ठित कर्मोने उपात्तदुरितक्षयनुं हेतुत्व छे. ते हेतुत्वेकरी कर्मोने सत्त्वशुद्धिनुं कारणत्व छे. ते सत्त्वशुद्धिना कारणत्वेकरी ज्ञानोत्पत्तिद्वारा ज्ञाननिष्ठाना हेतु अनुष्ठित कर्मो थाय छे. एम कर्मनिष्ठारूप उपायेकरी ज्ञाननिष्ठा लब्धात्मिका छे. अर्थात् कर्मोनुं अनुष्ठान छे ए सम्यक्दर्शननो-ज्ञाननो-उपाय छे; एथी सत्त्वशुद्धिअर्थ अने ईश्वरार्थ कर्मो-योगी-कर्मो करे छे.

" ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात् पापस्य कर्मणः ।
यथाऽऽदर्शतले प्रख्ये पश्यन्त्यात्मानमात्मनि " ॥

'जेम निर्मल दर्पणना तलमां पुरुष पोताने देखे छे; तेम पापकर्मनो क्षय थये पुरुषने ज्ञान उत्पन्न थाय छे, अने ते ज्ञानथी आत्मामां (अन्तःकरणमां) आत्माने (परमात्मस्वरूपने) देखे छे.' अर्थात् कर्मनुं अनुष्ठान छे ते विद्योत्पत्तिनो अने ब्रह्मसाक्षात्काररूप ज्ञाननो हेतु छे.

कर्मोने करवा, न करवा, अन्यथा करवा पुरुष समर्थ छे एथी कर्मो पुरुषव्यापारतंत्र गणाय छे.

कर्मना बे भेद सकाम निष्काम.

कर्मना सकाम अने निष्काम एवा बे भेद छे. श्रूयमाण, स्मर्यमाण वा अनुभूत सुखना हेतु, आत्माने अनुकूल, इन्द्रिय गोचर, प्राप्त हुए विषय, तेमां जे तृष्णा-राग-ते काम कहेवाय छे. ते

'काम' सहित जे कर्म ते सकाम कर्म छे. शरीरनी प्रवृत्तिनो हेतु होवाथी ते सकाम-कर्मने 'प्रवृत्तकर्म' पण कहे छे; अने ते विशिष्टफलप्रद छे. इह अमुत्र अर्थना भोगनी तृष्णारहित जे कर्म ते 'निष्काम' कर्म कहेवाय छे. ते निष्कामकर्म ब्रह्मज्ञानना अभ्यासपूर्वक होय तो संसारनी निवृत्तिनो हेतु होवाथी तेने 'निवृत्तकर्म' पण कहे छे; अने ते मुक्तिप्रद छे. ज्यांसुधी मनुष्यने भोगविषे आसक्ति होय अने आत्मज्ञाननी इच्छा उत्पन्न न थई होय त्यांसुधी ते सकाम कर्म करे छे; अने ते सकाम कर्म संसारनो हेतु छे. सत्समागम, विचार, अनुभवादिएकरी बुद्धिनी वृद्धि थाय छे त्यारे पुरुषने ब्रह्मज्ञाननी जिज्ञासा थाय छे. तेवा जिज्ञासु निष्काम कर्मना अधिकारी छे. निष्कामकर्म अन्तःकरणनी शुद्धिद्वारा ज्ञाननो हेतु छे.

कर्मथी बंध.

एम एक दृष्टिए कर्म अनिवार्य अने आवश्यक प्रतीत थाय छे. परंतु अन्यदृष्टिए जोतां कर्म, बन्धनस्वभाव अने अनिष्टकारी पण गणाय छे. कारण आ दुःखमय निःसार संसारनी आपत्तिनो मुख्य हेतु कर्म छे. भोगमात्रनुं आयतन जे शरीर ते रूप विलक्षण बंदिशालामां जीवमात्र बंधाई रहे छे. अने तेमां सुखवियोगनिमित्त मोह, तथा दुःखसंयोगादिनिमित्त शोक, एओना आघातथी प्रवर्तित चक्रमंडलमां पडी, ते जीवो एवा भ्रमित अने मूर्छित थई जाय छे के, अतीव दुःख अनुभवते सते पण तेओने ते शरीररूप बंदिशालामांथी मुक्त थवाना योग्य उपाय अने प्रयत्न क्वचित् ज सुझे छे. ए बंदिशालामां वसी भोगने भोगववा अर्थ कर्मो करे छे, अने ते करेलां

१ आ लोक परलोकना विषय.

कर्मोना अनुसार पुनः फळ भोगवे छे. एम घटीयन्त्रवत् पुनः पुनः जीवमात्रनुं आवर्तन थयां ज जाय छे. मुहूर्त पण न सहेवाय एवुं नव दश मास गर्भवासनुं कष्ट सही जीव जन्मे छे. पछी ज्यांसुधी कर्मोपात्त आयुष् होय छे त्यांसुधी घटीयन्त्रवत् गमनागमनअर्थे, वा कुलालचक्रवत् तिर्यक्भ्रमण सारू कर्म करतो जीवे छे, अने क्षीणायुष् थये कर्मनिर्दिष्ट लोकमां जाय छे. एम जन्म-मरणरूप घोर दुस्तर संसारसागरमां, उत्तरण प्रति निराश थई, भ्रम्यां करे छे.

"कर्मणा वध्यते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते ।
तस्मात् कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः" ॥

महाभारत-शान्तिपर्व-मोक्षधर्म अ. २४१।७.

शुकानुशासनविषये वदे छे केः-'कर्मे करी जंतु बंधाय छे, अने विद्याए करी मूकाय छे. तेथी पारदर्शी यतिओ कर्म करता नथी परंतु विद्याए करी मुक्त थाय छे.'

रामगीतामां पण गाय छे केः-

"क्रिया शरीरोद्भवहेतुरादृता
प्रियाऽप्रियौ तौ भवतः सुरागिणः ।
धर्मेतरौ तत्र पुनः शरीरकं
पुनः क्रिया चक्रवदीर्यते भवः ॥ ८ ॥
अज्ञानमेवास्य हि मूलकारणं
तद्धानमेवात्र विधौ विधीयते ।
विद्यैव तन्नाशविधौ पटीयसी
न कर्म तज्जं सविरोधमीरितं ॥ ९ ॥

अध्यात्मरामायण उत्तरकाण्ड, सर्ग ५.

'आदृतां[1] क्रिया, शरीरना उद्भवनो[2] हेतु छे, तेमां सुरागी-

---

१ आदरपूर्वक पूर्वजन्मार्जित कर्म. २ जन्मनो.

ओना धर्म अधर्म ते, प्रिय अप्रिय (सुख-दुःख-जनक) थाय छे; (ते जन्ममां करेलां कर्म करी) पुनः शरीर थाय छे, पुनः क्रिया थाय छे, एम चक्रवत् भव नाम संसार कहेवाय छे. (भ्रमता चक्रनो उपरनो भाग नीचे अने नीचेनो भाग उपर आवे जाय छे तेम, जन्म अने कर्म संबंधमां जन्यजनकभाव छे.) एनुं मूल कारण अज्ञान ज छे. ए विधिमां नाम-संसारनिवृत्तिलक्षण कर्तव्य अर्थमां-अज्ञाननुं हान-नाश-ए ज (साधन) आज्ञापाय छे. ते अज्ञानना नाशमां विद्या ज पटीयसी छे, अज्ञानथी जनित कर्म (अज्ञान नाश करवामां समर्थ) नथी, केम के सविरोधी ज 'नाशक' कह्युं छे. (कर्म अने अज्ञान विरोधी नथी परंतु विद्या-ज्ञान-ज अज्ञाननुं विरोधी छे. तेथी ज्ञानथी ज अज्ञाननो नाश थाय छे. कर्मथी नहि.)

कर्मनो अने तेना फलनो सदा अव्यभिचार छे. कर्मना प्रकारानुसार तत्काल अथवा कालान्तरे कर्मनुं फल थया विना रहेतुं ज नथी. क्रियापूर्वक फलनो उदय छे. क्रिया विना-कर्म विना-फल थतुं ज नथी.

एम कर्म प्रकृतिसिद्ध-स्वाभाविक-छे, आवश्यक छे, कर्तव्य छे, तेम लाभहानिप्रद-इष्टअनिष्टफलकारि-छे, इत्यादि अनेक-विरुद्धकोटीमत् पण कर्म छे; तथापि कर्मनुं इष्ट फल थाय अने तेना अनिष्ट फलथी वंचाय, एवी कोइ विशिष्ट व्यवस्था होवी जोइए, अने छे भक्तवत्सल श्रीभगवाने तेवी व्यवस्था श्रेयोर्थी सारु गीतामां गाई छे. तेनो सारभूत आशय कईक आपो छे.

---

१ समर्था. २ अवियोग. नित्यसंबन्ध.

कर्म करतां कर्मना फलनी तृष्णा करवी नहीं, किन्तु सिद्धिअसिद्धिमां समत्वबुद्धियुक्त थई केवल ईश्वर-आराधनार्थ कर्मो करवां. कारण के, कर्मोनुं फल जन्ममरणरूप संसार छे, परंतु ईश्वरार्पणबुद्धिपकरी समत्वबुद्धियुक्त स्वधर्मनां कर्मोमां जे मनुष्य प्रवर्त्ते छे ते बंध छे स्वभाव जेनो एवां कर्मोना पण बंधस्वभावने निवर्ते छे; अने ते ईश्वरार्पित कर्मोना साधने करी सत्त्वशुद्धिरूपा तथा ज्ञानोत्पत्तिलक्षणा संसिद्धिने पामे छे.

कर्मनां इष्ट फल थाय अने अनिष्ट फल न थाय एवी व्यवस्था.

पूर्वे विद्वानो पण सत्त्वशुद्धिसाधनभूत कर्मना क्रमेकरी मोक्ष प्रति जवा प्रवृत्त हता. यद्यपि पूर्वकृत धर्माधर्मादि संस्कार वर्तमान जन्मादिमां अभिव्यक्त थया होय एरूपा प्रकृति, ते स्वप्रकृतिसदृश सर्व जन्तु चेष्टा करे छे,-अने इन्द्रियोनां शब्दादि इष्ट विषये राग अने अनिष्ट विषये द्वेष अवश्यंभावी छे,-ते रागद्वेषपुरःसर ज ज्यारे पुरुषनी 'प्रकृति' स्वकार्यमां प्रवर्त्ते छे,-त्यारे स्वधर्मनो परित्याग अने परधर्मनुं अनुष्ठान थाय छे. तथापि शास्त्रदृष्टि विद्वानो ते प्रकृतिने वश न थतां पुरुषकारवते स्वधर्ममां प्रवर्त्ते छे.

कर्मोना फलनो संग त्यजीने जे जन सर्व कर्मो ईश्वरार्पण करे छे, ते जन,-जेम जले करी पद्मपत्र लेपातुं नथी तेम,-ते कर्मोए करी लेपातो नथी. ते कर्मोनुं फल केवल सत्त्वशुद्धिमात्र ज तेने थाय छे.

कर्मो ईश्वरार्पण करवां

ए प्रकारे कर्मयोगनिष्ठानुं परम रहस्य ईश्वरशरणता[1] छे; ईश्वरार्पणबुद्धिए करेलां कर्मो धर्माधर्मबंधनरूप थतां नथी.

---

१ शरण=संसारार्तिहरणार्थं आश्रय.

परंतु सत्वशुद्धिद्वारा ज्ञानप्राप्तिनां साधन थाय छे. ते ज सर्व हितोनुं हिततम छे. अने कर्मयोगनिष्ठानुं फल सर्व वेदान्तसारविहित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-छे.

प्रवृत्तिलक्षण धर्मनी सीमा तथा फळ.

संक्षेपमां प्रवृत्तिलक्षण धर्मनां कर्मोनां फलनी सीमा चक्राकारा अने परिमिता छे. कर्म अज्ञानमूलक छे. अज्ञानथी भेदबुद्धि थाय छे. जेमां भेदबुद्धि थाय छे, तेमां अनुकुल ज्ञान किंवा प्रतिकूल ज्ञान थाय छे. जेमां सुखनुं साधन अनुकूळ ज्ञान थाय छे तेमां राग थाय छे; जेमां दुःखनुं साधन प्रतिकूल ज्ञान थाय छे तेमां द्वेष थाय छे; ते रागद्वेषयुक्त प्राणीए करेलां शुभाशुभ कर्मो धर्माधर्मरूप अपूर्वनां जनक छे. तेओनां फल, स्वर्गनी, नरकनी, वा आ लोकनी, प्राप्ति छे. तर्हि कर्मफलनो भोग थाय छे, किंवा कर्मफल भोगवतां नवां कर्म थाय छे. ते कर्मना फल भोगववा पुनः जन्ममरण थाय छे. एम सामान्य रीत्या सर्व प्राणीओने पुनरावृत्ति किंवा दुःसह दुःखमय संसार चक्रमंडलमां भ्रमण थाय छे. तेमां कोइ विरल पुरुषने अनेक जन्मोनां सुकृतेकरी पुण्यसंचय थयो होय तेना योगे सत्शास्त्रनो अने सत्समागमनो योग थाय छे. तेवा सत्समागमी विरल पुरुषो आसक्तिवर्जित थई ईश्वरार्पणबुद्धिए स्वपर उपकारनां स्वधर्मनां महत् शुभकर्मो करे छे, तेथी सत्वशुद्धि थाय छे; जेथी निःश्रेयसरूपा ज्ञाननिष्ठानी योग्यता आवे छे; अने पूर्वोक्त चक्रमंडलमांथी मुक्त थवानुं द्वार मले छे. प्रवृत्तिलक्षण धर्मनुं जे फल ए ज अभ्युदय छे. परंतु तर्हि विरमवानुं नथी. ए साधनथी साध्य जे निःश्रेयस छे तेनी प्राप्तिना मार्गे चढाय त्यारे ज ए प्रवृत्तिलक्षण धर्मथी जनित अभ्युदय सफल गणाय छे; अने तेम

थए ज मनुष्यनो उत्तरोत्तर उच्चतर उच्चतम थवानो उत्साह तथा महाशय, ते सार्थक थाय छे. तेम थवामां मुख्य अधिकरण अन्तःकरण छे.

प्राणीनुं ते अन्तःकरण किंवा सत्व, दर्पण समान छे. जेम दर्पणमां यथावत् प्रतिबिंब ग्रहण करवानी योग्यतामां निर्मलतानी अने निश्चलतानी पूर्ण अपेक्षा छे, तेम अन्तःकरणमां यथार्थ ज्ञान ग्रहण करवानी योग्यतामां पण अन्तःकरणनी निर्मलतानी तथा निश्चलतानी संपूर्ण अपेक्षा छे.

अंतःकरणनी शुद्धि.

जेम शुभकर्मो अंतःकरणनी निर्मलताना हेतु छे; तेम इष्टदेवनी उपासना, ए अंतःकरणनी निश्चलतानो हेतु छे.

जेम स्थूल देहमां वात, पित्त, कफ, ए त्रिदोष छे, अने तेना निवारणार्थ आयुर्वेद छे; तेम अन्तःकरणमां पण मल, विक्षेप, (स्वरूपनुं) अज्ञान, ए त्रिदोष छे. तेना निवारण सारू कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड, ज्ञानकाण्ड, ए रूप वेद छे. ते वेद, प्रत्यक्ष अनुमान (प्रमाणोए करी) अनवगत–सर्व प्राणीओने अभीष्ट जे इष्टनी प्राप्ति अने अनिष्टनो परिहार–तेओना उपायना प्रकाशनअर्थ तत्पर छे.

अन्तःकरणनो मलदोष ते पापरूप छे. ते पापरूप मलदोषेकरी अन्तःकरणमां जन्मजन्मान्तरनी अनेक वासनाओ होय छे. तेओएकरी वर्तमान जन्मविषये पण पापाचारमां वर्ती मनुष्यो बहिर्मुख रहे छे. एथी सच्छास्त्रना विचारविषये अने सत्समागमविषये तेओनी रुचि हती नथी. निष्काम शुभकर्मोरूप उपायेकरी ते पापरूप मलदोष दूर थाय छे. ए

अंतःकरणना त्रिदोष अने तेना उपाय.

उपाय वेदना कर्मकाण्डेकरी प्रकाशित छे. अने ते कर्मोसंबंधमां पूर्वे विचार थई गया छे.

अन्तःकरणनो विक्षेप दोष ते चंचलतारूप छे. ते चंचलतारूप विक्षेप दोषेकरी अन्तःकरण प्रतिक्षण रजोगुणे आकृष्ट थइ विषयों प्रति चलन करे छे. ए चंचलताथी ज शास्त्रनां हितकारी वचनो श्रुणते पढतां सते पण ते वचनोनुं, बहिर्मुख मनुष्योना अन्तःकरणमां, ग्रहण धारण नथी थतुं. ध्येय वा ज्ञेय इष्टनी उपासनारूप उपाये करी ए चंचलतारूप विक्षेप दोष निवृत्त थाय छे. ए उपाय वेदना उपासनकाण्डेकरी प्रकाशित छे.

विक्षेप दोषनो उपाय उपासना.

ते उपासन किंवा उपासना नाम उपास्यना अर्थवादमां जेवुं देवतादिनुं स्वरूप श्रुतिएकरी जणाय छे तेवुं, मनेकरी 'उप' नाम समीप जई लौकिकप्रत्ययना अव्यवधानसहित, 'आसन' नाम चिन्तन, अथवा यथाशास्त्र समर्थित किञ्चित् आलंबन लइने तेमां तेथी विलक्षण-प्रत्यय-अनन्तरित समानचित्तवृत्तिनुं सन्तानकरण, ए उपासन. अर्थात् विषयाकारा वृत्तिना तिरस्कारपूर्वक अन्तःकरणनी वृत्ति इष्टदेवना स्वरूपाकारा करवी ए उपासना. ते उपासना यथार्थ संपूर्ण थाय तो ते उपासक, उपास्य इष्टदेवसह, अभिन्न थाय छे. उपासकना पोताना लौकिकआत्मा-देह-ना अभिमानवत् उपास्य देवना स्वरूपे आत्माभिमाननी अभिव्यक्ति, ते उपासकने थाय छे. ए उपासनाना प्रयत्नथी अन्तःकरणनी चंचलता दूर थवानो अभ्यास थाय छे. ए अन्तःकरणनी-चित्तनी-वृत्तिना निरोधना उपायो योगशास्त्रमां बहुसारा प्रकारे वर्ण्या होय छे.

---

१ दीर्घकाल-आदर-निरन्तर-रुप विशेषण त्रयनो अर्थ अत्र छे.

अन्तःकरणनो अज्ञानदोष ते स्वरूपना अज्ञानरूप छे. एनो उपाय वेदना ज्ञानकाण्डेकरी प्रकाशित छे. अज्ञाननी आवरण-विक्षेपनामिका बे शक्ति छे जेम अल्पमेघ, अनेक योजनना विस्तारवाला आदित्यमंडलने, द्रष्टानी दृष्टिना मार्गना आच्छादनेकरी, आच्छादे छे, तेम आवरणशक्तिवाळुं अज्ञान पोते तुच्छ-परिच्छिन्न-(अल्प) सते पण, असंसारी अपरिच्छिन्न आत्माने वस्तुतः आवरणनो अभाव सते, द्रष्टानी बुद्धिना आच्छादनेकरी ते आत्माने आच्छादे छे, एम उपचारथी कहेवाय छे. जेम स्वअज्ञानेकरी आवृता रज्जुमां सर्पत्वनी संभावना थाय छे तेम ए अज्ञाननी आवरणशक्तिए आवृत आत्मामां कर्तृत्व-भोक्तृत्व-सुखदु:खमोहात्मक तुच्छ-संसारभावना संभवे छे. जेम रज्जुनुं अज्ञान, पोते ढांकेली रज्जुमां पोतानी शक्तिवते, सर्पादिकने उपजावे छे तेम अज्ञान पण, स्वावृत आत्मामां, विक्षेपशक्तिवते, प्रपंचने उपजावे छे. ज्ञानरूप उपायेकरी ए अज्ञानदोष निवृत्त थाय छे ए ज्ञान वेदान्तनो विषय होवाथी अत्र अनेक प्रकारे पुनः पुनः निरूप्यमाण छे.

अज्ञान दोषनो उपाय ज्ञान

एम अन्तःकरणनी शुद्धि तथा एकाग्रताअर्थे कर्मनी अने उपासनानी आवश्यकता छे. पूर्वे, अभ्युदय-निःश्रेयस साधनवर्णाश्रमादिलक्षणधर्मनी प्रवृति समये ए प्रकार अधिक अनुकूल हतो.

कर्म-उपासनानो समुच्चय

१ सच्चिदानंद स्वरूपने आवरे–ढांके–तेथी आवरणशक्ति. आवरणशक्तिए करी सत् चित्-आनंद अद्वय आत्मामां असत् जड दु:ख द्वैत एवो विपरीत व्यवहार संपादित थाय छे. २ ब्रह्मादिस्थावरान्त, जलबुद्बुदवत्, नामरूपात्मक जगत्ने विक्षेपे सृजे-तेथी विक्षेपशक्ति. विक्षेपशक्तिए करी स्थूल-सूक्ष्मादि प्रपंच तथा तेनुं ज्ञान थाय छे.

अधुना ए कर्म-उपासननी पृथक् मर्यादा थती नथी, किन्तु कर्मउपासननो समुच्चय प्रकार अनुकूल प्रतीत थाय छे.

जे अन्तर्यामी ईश्वरेकरी आ विश्व व्याप्त छे, जे अन्तर्यामी ईश्वर सर्व प्राणीओना हृदयदेशमां वसे छे, अने जेथी प्राणीओनी प्रवृत्ति थाय छे, ते ईश्वरने शरण जई स्वकर्मोना अनुष्ठानथी पूजतां, तेना प्रसादथी अन्त करणनी निर्मलता तथा निश्चलता प्राप्त थई ज्ञाननिष्ठायोग्यतालक्षणा सिद्धि प्राप्त थाय छे, अने अन्ते परमपुरुषार्थरूप ईश्वरनु परमपद पमाय छे.

ईश्वरपूजन — ते सर्वव्यापी अन्तर्यामी ईश्वरना पूजननो प्रकार, वसिष्ठ मुनि आ प्रमाणे वर्णे छे.-

"येन केन प्रकारेण यस्य कस्यापि देहिनः।
सन्तोषं जनयेद्राम तदेवेश्वरपूजनम् ॥"

'हे राम ! जे काइ प्रकारे (मन-वाणी कर्मे) करी जे काइ पण देहीने सन्तोष उपजावे ते ईश्वरनु पूजन छे.'

एम ईश्वरसमर्पणबुद्धिए निष्काम थई परोपकारना कर्मो जे पुरुष करे छे, तेने, यज्ञादिकर्मथी[1] अने अष्टागयोगरूप उपासनथी जे फलनी सिद्धि थती अने थाय, तेवी सिद्धि, ईश्वरना अनुग्रहथी प्राप्त थाय छे.

कर्म-उपासनानु फल ज्ञान — कर्मना तथा उपासनाना कोइ पण प्रकारेकरी ज्ञाननिष्ठा योग्यतालक्षणा सिद्धिने प्राप्त पुरुष थाय छे, त्यारे तेना अन्त करणना तृतीय दोष-आवरणविक्षेपशक्तिमत् अज्ञान किंवा अविद्या-जे आत्माअनात्माना इतरेतरअध्यासरूप छे-तेनी ज्ञानरूप उपायेकरी निवृत्ति थाय छे. जेणे करी जणाय ते **ज्ञान.** ज्ञाननु आवरक अज्ञान तेनी निवृत्ति-तिरस्कार-थये, परम

१ देवताना उद्देशेकरी द्रव्यनो त्याग.

पुरुषार्थनी-आत्यन्तिक निःश्रेयसनी-सिद्धि थाय छे. ज्ञान ए ज सर्वनुं सर्वोपरि फल छे.

सत्शास्त्रना उपदेशनो देहइन्द्रियविषे आरोह ए **कर्म** छे; ते कर्मना अनुष्ठानथी बुद्धिनी शुद्धि थाय छे. सत्शास्त्रना उपदेशनो बुद्धिविषे आरोह ए **उपासना** छे; ते उपासनाथी अन्तःकरण ज्ञाननिष्ठाने योग्य थाय छे; अने ते सत्शास्त्रोक्त ज्ञाननिष्ठानो चिदाभास स्वयंप्रकाश जीवविषे आरोह जे सम्यक्दर्शने करी थाय ए **ज्ञान.** जन्मथी आरभीने एओनी उत्तरोत्तर फलता छे.

श्रीभगवान् वदे छे केः–

" सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते । "

भ गी ४।३३.

'अहो पार्थ ! सर्व अखिल कर्म, मोक्षसाधन जे ज्ञान, तेमां समाप्त थाय छे नाम अन्तर्भूत थाय छे'. जे ज्ञानेकरी पापने (दुःखने) तरी जवाय छे, अने जे ज्ञानेकरी ब्रह्मादि स्तम्बपर्यंत भूतो अशेषेकरी, आत्मामां ईश्वरमां प्रत्यक्ष देखाय छे। अर्थात् जे ज्ञानेकरी क्षेत्रज्ञ ईश्वरनुं एकत्व प्रत्यक्ष देखाय छे, ए विशिष्ट ज्ञाननुं एवुं अलौकिक माहात्म्य छे.

ज्ञानना साधन

ज्ञान ए ज ज्ञानकाण्डरूप वेदान्तशास्त्रनो विषय छे. ए ज्ञाननां कर्म तथा उपासना ए **बहिरंग** साधन छे; अने विवेक, वैराग्य, षट्संपत्ति, मुमुक्षुता; श्रवण, मनन, निदिध्यासन; ए सप्त **परंपराथी**

---

१. अंगथी–शरीरथी-बाह्य, दूरनां. २ विवेकथी नित्य अनित्यनो विचार करीने विषयरूप अनित्यनो विरागवते त्याग करतां थाती यता अन्तःकरणमां सिचवा योग्या—शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान, ए छ रूप संपत्ति. ३ विवेकादिचतुष्टय ज्ञानना 'साधन' छे, श्रवणादित्रय ते ज्ञानना 'हेतु' छे एवो भेद पण गणाय छे.

अन्तरंग[1] साधन छे; अने ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रिय गुरुना मुखार-विंदथी महावाक्योना यथायोग्य अर्थनुं श्रवण ए **साक्षात् अन्तरंग** साधन छे.

निष्काम शुभकर्मोना अनुष्ठानथी धर्मनी उत्पत्ति थाय छे, धर्मोत्पत्तिथी पापनी हानि थाय छे. पापरूप मळनी हानि थये सत्त्वशुद्धि थाय छे, ते शुद्ध-अन्तःकरणमां संसार-याथात्म्यनो अवबोध थाय छे. तेथी विवेकवैराग्यादि षट्संपत्ति अने मुमुक्षुत्व प्राप्त थाय छे. एम उत्तरोत्तर साधनथी अविद्यानो उच्छेद थई ज्ञाननिष्ठायोग्यता आवे छे

जे (साधन) सते ज नियमेकरी जे (साध्य सिद्ध) थाय अने जे (साधन) न सते जे (साध्य सिद्ध) न थाय ते ज साध्यनुं **साधन** छे. एम होवाथी साधनसंपन्न पुरुषने ज साध्य ज्ञाननो आविर्भाव थाय छे. तेथी विवेकादिसाधनसं-पन्न प्रमाता ते ज वेदांतज्ञाननो अधिकारी गण्यो छे.

मनुष्योना चार वर्ग

शुभाशुभकर्मना परिपाकवशथी उच्चनीचस्थितिमां संसरतां सर्वे प्राणीओ स्वभावथी ज दुःखनां द्वेषी अने सुखनां अनुरागी देखाय छे. मनुष्योना चार वर्ग थाय छेः-(१) पामर, (२) विषयी, (३) जिज्ञासु, (४) मुक्त.

पामर.

शास्त्रना संस्कारथी रहित पशुतुल्य, आ लोकना निषिद्ध अने विहित भोगो विषे आसक्त, अने तेवां विषय-भोगमां ज सुखनी अलं-पूर्ण-बुद्धिवाळां जे प्राणी ते 'पामर'[2] छे. तेओनी संख्या सर्वथी महोटी छे.

---

१ अंगमां—शरीरमां अन्तर, समीपनां, प्रत्यक्ष फलप्रद. २ 'पा' नाम पाळनार जे नथी धर्म ते 'मर' नाम मराय छे जेणे ते 'पामर', मूर्ख, नीच, खल.

शास्त्रानुसार विषयोने भोगवतां आ लोकना अथवा परलोकना भोगोना निमित्त जे मनुष्यो सकाम कर्मो करे छे अने तेवा विषयसुखमा ज जे अलंबुद्धि माने ते **'विषयी'** कहेवाय छे. तेओमांथी कोइकने काइ सुभाग्यना योगथी सत्समागमेकरी विषयसुखथी उपरि उच्च सुखनी इच्छा थाय छे, अने जो सद्भागी होय तो सन्मार्गस्थ थाय छे, तेनी बुद्धिमां प्रकाश थई बुद्धिवर्द्धन थाय छे, अने ते अन्ते यथार्थ धर्मजिज्ञासु अथवा ब्रह्मजिज्ञासु थाय छे. परतुवहु करीने तेवा विषयीओ दुर्भागी होय छ, अने ते दुर्भाग्ये अज्ञानथी अने मिथ्या स्वाभिमानथी ते उच्च सुखना जे उपाय नहि तेमां उपायबुद्धि करी प्रवर्ते छे. तेवाओनो बुद्धिप्रकाश अथवा बुद्धिवर्धन थतु नथी. तेओ जननमरणरूप चक्रदोलामां उंचे नीचे भ्रम्यां ज करे छे

विषयी

पूर्वोक्त पामरप्राणी अने विषयी मनुष्यो ज्ञानना अधिकारी नथी.

मुमुक्षुओ ज मात्र, निशेष दुःखोच्छेदननो तथा निरतिशयानन्दनो हेतु जे ज्ञान तेना अधिकारी छे तेओने उत्तम सस्कारेकरी सत्शास्त्रना श्रवणथी आपाततः वेदान्तज्ञान होय छे जे विवेकी, विरक्त, शमादिगुणशाली पुरुष, भवबधनी विमुक्ति अर्थ बाह्यविषयाना सुखनी स्पृहा त्यजीने आत्मवस्तुनी सम्यक् हितोक्तिमां अने विचारमा प्रवर्ते छे, अने जे पुरुष, अज्ञानकल्पित अहकारादि देहान्त बन्धोने स्वस्वरूपना अवबोधे करी, मूकवानी इच्छा करे छे, ते पुरुष 'मुमुक्षु' कहाय छे

मुमुक्षु

तेवा साधनसंपन्न मुमुक्षु, अशेष क्लेशनिवर्तक तथा नित्यनिरतिशयानन्दप्रापक अत्यन्त उत्तम जे ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञान तेना अधिकारी थाय छे. तेओमां विशुद्धसत्त्व अने समाहितचेता पुरुष उत्तम अधिकारी छे. तेने वेदान्तश्रवणमात्ररूप उपायेकरी आत्मा-अनात्माना विवेकपूर्वक ब्रह्मात्मैकत्वबोधे ज्ञान थाय छे. एवा मुख्याधिकारीने वेदान्तविचार ज प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मना अपरोक्षज्ञानद्वारा, मुख्य मोक्ष कारण छे.

उत्तम अधिकारी.

जे पुरुष विवेकवैराग्यसंपन्न सते रजोगुणलेशनी अनुवृत्तिए विक्षिप्तचेता थई सहसा चित्तनुं एकाग्रत्व नथी पामता, ए मंद अधिकारी छे. तेने अष्टांगयोग ए ज पूर्वोक्त ज्ञाननो उपाय छे.

मंद अधिकारी.

पुरुषने, 'पोते उत्तम वर्गमां छे, एम मानवानी स्वाभाविकी वृत्ति होय छे. परंतु ते वर्गनी पोतामां योग्यता नथी हती तो, मात्र ते वर्गमां पोताने गण्याथी तेनुं फल मळतुं नथी. एटलुं ज नहीं किन्तु हानि थाय छे. क्यी हितकारी कर्तव्य तो योग्यता संपादिता करवी ए ज छे. पात्रता विना पदार्थनी प्राप्ति थती ज नथी. आरोप करे अधिकार आवतो नथी, मात्र विकलता अथवा बुद्धिनाश ज गणाय छे. उत्तम वर्गमां जवातुं नथी, कनिष्ठमां रहेवातुं नथी, तेथी उभयथी भ्रष्ट ते थाय छे.

ज्ञान सारु योग्यता.

"अकृत्वा शत्रुसंहारमगत्वाऽखिलभूश्रियम् ।
राजाहमिति शब्दान्नो राजा भवितुमर्हति ॥"

वि० चू० ६६

---

१ आत्मा नाम स्थूलसूक्ष्मकारणशरीरत्रयविलक्षण, पचकोशव्यतिरिक्त, अवस्थात्रयसाक्षी, सच्चिदानन्दरूप. २ अनात्मा नाम अवृत जड दु:खात्मक समष्टिव्यष्टि आत्मक स्थूलसूक्ष्मकारणशरीरत्रय.

'शत्रुओनो संहार न करी, अखिल भूश्रीने न पामी, हुं 'राजा' एवा शब्दथी राजा थवाने कोई योग्य थतुं नथी.' ए यथार्थ छे.

ते योग्यता अर्थ अनेक कर्तव्य, अनेक ज्ञातव्य अने अनेक प्राप्तव्य छे. पुरुषप्रयत्नानुसार ते कर्त्तव्यनी, ज्ञातव्यनी, अने प्राप्तव्यनी सिद्धि थाय छे. महाभागी अधिकारीओए मनुष्यतानां साफल्यअर्थ, मुमुक्षुत्वेकरी, सत्संग, सत्शास्त्रविचार, अने हरिप्रसादकर निष्काम सत्धर्मकर्म अवश्य 'कर्त्तव्य' छे. जीव-ईश्वर-माया-जगत्नां तत्त्वअतत्त्व,-हेयउपादेयअर्थ किंवा त्याग-ग्रहण सारू,-'ज्ञातव्य' छे. अने सत्संग अने बहिरंग तथा अन्तरंग साधनोनुं फलभूत ब्रह्मात्मैकत्वज्ञान ज 'प्राप्तव्य' छे.

श्रवण-मनन निदिध्यासन ए कर्त्तव्यकोटीमां छे.

श्रवण-मनन-निदिध्यासन.

परमात्मानुं यथार्थदर्शन-ज्ञान-थये सते, जे सर्वपुरुषार्थनी सिद्धि थाय छे ते दर्शन, श्रवण मनन निदिध्यासन ए त्रयपूर्वक, थाय छे. ते श्रवण पूर्वे आचार्यथी तथा आगमथी श्रुणी, पुनः तेनुं मनन तर्क अने उपपत्तिएकरी-विचारी, पश्चात् निदिध्यासन नाम 'एम ज ए छे अन्यथा नथी एम निर्धारित-निश्चये करी ध्यान-करवुं,' ए श्रवण-मनन-निदिध्यासननो क्रम छे.

"श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः ।
मत्वा च सततं ध्येय एते दर्शनहेतवः" ॥

सामान्यतः प्रसिद्ध परंतु विशेषतः अप्रसिद्ध ब्रह्मात्मैकत्वज्ञान तेना स्वरूपना साक्षात्कारअर्थ विचारप्रवृत्ति-मीमांसा-

---

१. एकरस ब्रह्ममां वेदान्तोनो (उपनिषदोनो) (शब्द)शक्तितात्पर्य निश्चय ए श्रवण, तेमां ज श्रुतिअनुसारिणी युक्तिए संभावनानुं आधान ए मनन, एम श्रुत मत ब्रह्ममां बुद्धिनुं स्थैर्य ए निदिध्यासन छे.

फलोपकारिणी छे. ते विचारनां श्रवण-मनन-निदिध्यासन ए अंग छे. तेणे करी ब्रह्मात्मभावनी अवगति थाय छे.

ए अन्तरंग श्रवणादि साधनोपकरी जे ज्ञातव्य छे ते अति संक्षेपतः आ छेः-प्रथम जीव-जगत् परमात्मा ए त्रिवर्गनुं ज्ञान; किंवा अहं-हुं-द्रष्टा, त्वं-तुं दृश्य, तत्-ते-अदृश्य सर्वानुगत परमेश्वर,-ए हुं-तुं-तेनी त्रिपुटीनुं शास्त्राचार्योपदेशजनित ज्ञान. ए त्रिवर्गनो अन्तर्भाव द्विवर्गमां थाय छेः-आत्मा-अनात्मा, किंवा चैतन्य-जड. पुनः ए द्विवर्गनो पण एक वर्ग एकत्व-परिशेष थाय छे.

ज्ञातव्य.

पंचदशीमां आपे छे के-

"सदा विचारयेत्तस्मात् जगज्जीवपरात्मनः ।
जीवभावजगद्भावबाधे स्वात्मैव शिष्यते ॥ १२ ॥
नाप्रतीतिस्तयोर्बाधः किन्तु मिथ्यात्वनिश्चयः ॥"

चित्रदीप.

समस्तप्रपंचनी मूलकारणभूता अविद्या-अज्ञान-तम-प्रकृति-मोहादिशब्दवाच्या सर्वानर्थबीजभूता अनिर्वचनीया **माया** जे आत्माने-सच्चिदानन्दब्रह्मने-आश्रिता छे ते मायानी निवृत्ति, अन्ते यथाभूतार्थ ज्ञानेकरी थये, एक ज अद्वितीय परमात्मा ज प्रकाशे छे. ते शास्त्राचार्यथी जनित ज्ञान, सात्त्विकज्ञान, छे. ते ज्ञानेकरी, परस्परव्यावृत्त ब्रह्मादिस्थावरान्त विभक्त सर्वभूतोमां अनुस्यूत, अविभक्त एक अद्वय निर्विकारभाव परमात्मतत्त्व देखाय छे. ते परमात्मा आ प्रकारे वर्ण्यो छे. 'स्वमां (पोतामां) जीवभावनो, स्वथी अतिरिक्त अन्यमां जगत्भावनो, बाध थये, प्रत्यक्-अभिन्न ब्रह्म-**परमात्मा**-ज एक अवशेष रहे छे.'

ए संबंधमां परंपराथी असंख्य विचारो थता आव्या छे,

अनेक ग्रंथो गुंथाया छे, अने बहु संवादो चाल्या छे; परंतु परंतु मोक्षफलक सम्यक्ज्ञान, ईश्वरानुग्रह गुरुप्रसाद शास्त्रप्रसाद अने स्वात्मसहाय किंवा पुरुषकार, एओ विना थतुं नथी. ए कारणथी 'तत्वोपदेश'मां शंकरभगवान् स्वशिष्य मंडनमिश्र वार्तिककार प्रति वदे छे केः-

"यावदायुस्त्रयो वन्द्या वेदान्तो गुरुरीश्वरः ।
मनसा कर्मणा वाचा श्रुतिरेवैष निश्चयः" ॥ ८५ ॥

'ज्यां लगी आयु होय त्यांलगी मन, कर्म अने वाणी एओए करी वेदांत, गुरु अने ईश्वर ए त्रय वंद्य छे. ए श्रुति छे, अने ए ज निश्चय छे.'

ए जीव-जगत्-परमात्मा-नी त्रिपुटीना **सामान्य** ज्ञानथी

ज्ञान

ते त्रिपुटीना भेदभ्रमना अधिष्ठान नित्य स्वप्रकाश सच्चिदानन्दरूप एक अद्वितीय परमार्थ सत्यना तत्त्वनुं **विशेष** ज्ञान विलक्षण छे. सामान्य ज्ञानमां प्रकाशपूर्वक ज्ञाता, ज्ञान अने ज्ञेयनी अपेक्षा होय छे. वेदान्तनिर्णीत अपूर्व स्वयंप्रकाश अधिष्ठानना विलक्षण विशेष ज्ञानविषये, अज्ञानमात्रनी निवृत्ति करवानी छे.

"ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।
तेषामादित्यवत् ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥"

भ. गी. अ. ५।१६

'जे अज्ञानेकरी जन्तुनुं आत्माअनात्मानुं विवेकज्ञान आवृत थयुं छे तेथी ते मोहवश थया छे. परंतु जे जन्तुओनुं ते पोतानुं अज्ञान आत्माअनात्माविषयक विवेकज्ञानेकरी नाशित थाय छे, ते जन्तुओनुं अनावृत ज्ञान, आदित्य जेम समस्तरूपने-वस्तुमात्रने-प्रकाशे छे तेम, 'तत्पर'ने नाम परमार्थसत्यने-सर्व ज्ञेय वस्तुने, प्रकाशे छे.'

स्वयंप्रकाश वस्तुने देखवाने अन्य प्रकाशनी अपेक्षा नथी. मात्र आवरण दूर करवानी ज तहिं अपेक्षा छे. ए आवरण द्विविध संभवे छे. एक आवरण प्रकाशना अने द्रष्टाना अन्तरालमां होय अथवा एक आवरण द्रष्टानी दृष्टिगत होय. सूर्य या दीपक, अपारदर्शक मेघे या कंई अन्य आवरणे आच्छादित होय, ते अन्तराल आवरण छे. कोइ मनुष्यना अक्षि उपर पटबंधन होय किंवा ते अक्षि दूषित या अशक्त होय, ए बीजा प्रकारनुं आवरण छे. एक मेघादि अन्तरिक्षनिष्ठ आवरण छे अने एक द्रष्टानिष्ठ आवरण छे. सूर्य या दीपक देखावामां ए आवरणो दूर करवानी ज अपेक्षा छे; अन्य प्रकारनी अपेक्षा नथी. तेम जीव-जगत्-परमात्माना स्वयंप्रकाशस्वरूप तत्वना दर्शन-अर्थ अज्ञानरूप आवरणने ज दूर करवानी अवश्य अपेक्षा छे. तेमां सूर्यनुं मेघादि आवरण दूर करवु ए मनुष्यतंत्र नथी. किन्तु द्रष्टा जीवनिष्ठ आवरण,-पटबंधन, दृष्टिदोषादि-दूर करवुं ए मनुष्यतंत्र छे; अने ते आवरणदूरीकरण साध्य छे; अने ते ज मुख्यत्वे कर्तव्य छे. कारण मेघादिना अन्तराल आवरणे करी सूर्यादि आच्छादित न होय तो पण, द्रष्टृनिष्ठ आवरण होय त्यां सुधी सूर्यना प्रकाशने पण जीव जोई शकतो नथी. मेघादि आवरण बहुवार रहेवा पण संभव नथी, तेम ते अनायासे स्वतः दूर थई जाय छे. परंतु दृष्टनिष्ठ-जीवनिष्ठ-आवरण तो पुरुष-प्रयत्न कर्या विना दूर थतु ज नथी. एथी जीवगत अज्ञानआवरणनुं दूरीकरण करवा संपूर्ण पुरुष-प्रयत्न कर्तव्य छे; अने ते साध्य छे. जीवनिष्ठ अज्ञानआवरणनी निवृत्ति करवामां ज आपण जीवोनी कृतकृत्यता छे.

ज्ञानना प्रतिबंध.

ए जगत्निष्ठ नामरूपादि अन्तराल आवरण तथा द्रष्टृजीव-

आवरणदूरीकरण

निष्ठ अज्ञानरूप आवरण एओने दूर करवा वेदान्तादिनुं ज सम्यक्ज्ञान समर्थ छे; अन्य नहि. वेदान्तशास्त्रो अविद्याकल्पित वेदिता-वेद्य-वेदनादि भेदने दूर करे छे. ए अज्ञानजनित भेद दूर थये ब्रह्मतत्त्व ज प्रकाशी रहे छे.

स्थूलदृष्टिना ज्ञान अर्थ बाह्यइन्द्रिय-दृष्टि-ना आवरणने दूर करवानी आवश्यकता छे, तेम तत्त्वज्ञान-अर्थ सर्वात्मज्ञान-अर्थ-आन्तर-इंद्रिय-बुद्धि-ना आवरणने दूर करवानी संपूर्ण आवश्यकता छे. अन्तर्दृष्टिनुं किंवा बुद्धिनुं आवरण ए सम्यक् ज्ञाननो प्रतिबंध छे. ते ज्ञानप्रतिबंध बहु प्रकारना होय छे. राग, द्वेष, संशय, असंभावना, विपरीतभावना, तथा विषयासक्ति, प्रज्ञामान्द्य, कुतर्क, विपर्ययदुराग्रह. पुनः पुनः विचार सते पण प्रतिबंधेकरी पुरुष, तत्त्वने जाणतो नथी. ते प्रतिबंध-भूत, वर्तमान, भावी, प्रकारेकरी-त्रिविध छे. ते प्रतिबन्धो होय तो, अर्धीतवेदान्त पुरुष होय तो पण, तत्त्वज्ञान, प्रकट थतुं नथी. एथी ते ते प्रतिबंधना निवर्तनमां उचित साधनो षट्संपत्ति, श्रवणादि, एओएकरी ने ते प्रतिबंधनो क्षय कर्येथी अधिकारी पोताना-प्रत्यगात्माना-ब्रह्मत्वने पामे छे.

पुरुषकारेकरी प्रतिबंध दूर थये जीवने प्रत्यगात्मस्वरूपनुं सम्यक् ज्ञान थाय छे. एकदेशप्रसिद्धिएकरी अशेष प्रसिद्धि थाय छे; तेम एक जीवसंबंधमां यथार्थ ज्ञान थये ते उदाहरणथी अन्यनुं अशेषनुं ज्ञान थई शके छे. अने जे प्रयु-

१ अतीत इष्टविषयनो स्नेहथी अनुसन्धानेकरी श्रवणादिथी तत्त्व जाणवामां आवे नहि, ए भूत प्रतिबन्ध, विषयमां आसक्ति, बुद्धिनी मंदता, कुतर्क, उलटो दुराग्रह, ए वर्तमान प्रतिबंध; जन्मान्तरहेतु प्रारब्धशेष ए भावी प्रतिबंध कहाय छे.

द्रतत्त्व पुरुष थाय छे. तेने बंधथी मुक्ति छे, अने मुक्तात्माने नित्यसुखनी अनुभूति छे, ए तो ज्ञानीओने प्रसिद्ध छे.

अधिकारीओना विचित्र अंतःकरणो.

ए वेदान्तना निःश्रेयसप्रद परमतत्त्वज्ञाननी प्राप्तिनो मुख्य आधार अधिकारीना अन्तःकरणनी अवस्था उपरि छे. त्रिगुणात्मिका अविद्यानुं परिणाम अन्तःकरण, ते त्रिगुणनां न्यूनाधिक असंख्य मिश्रणथी रचायुं होय छे, तेमां पुनः आ सृष्टिनी त्रिगुणात्मप्रकृतिनी असंख्य विकृतिओना संस्कार ते अन्तःकरण उपरि थाय छे, एथी असंख्य अधिकारीनां असंख्येय प्रकारनां अन्तःकरणोनी रुचि पण विचित्र होय छे. तेवा अधिकारीनी मतिगतिना भेद अनुसार फलमां भेद पडे छे. एथी एवा विलक्षण अन्तःकरणना समाधानअर्थ भिन्नरुचि अनुसार विविध विचारो महात्माओए प्रसिद्ध कर्या छे; आवा आशयथी के तेओमांथी जेने जे रुचिकर लागे तेनुं तेणे ग्रहणकरी तेद्वारा तत्त्वज्ञाननी सुखसंपत्ति मेळवी पुरुषार्थ सिद्ध कराय. आ सृष्टिना महामंडलनुं तत्त्वज्ञान

सृष्टिमहामंडलनुं केन्द्र तत्त्वज्ञान छे.

ए केन्द्र छे; अने तेना परिधिसमीप जीवो भ्रमे छे. ते मध्यबिंदुने संपादक सद्विचाररुपा असंख्य त्रिज्याओ छे. तेमांथी गमे तेनो आधार पकडी जे अधिकारी जीव, ज्ञानप्रकाशरूप केन्द्रने संमुख थाय छे, ते जीव, ते वेगवान् चक्रमंडलना परिधिथी केन्द्रने समीप आवतो आवे छे. अने तेनी अज्ञानरूपा छाया उत्तरोत्तर अल्पा, अल्पतरा, अल्पतमा थई निवृत्ता थाय छे. अने जे असंख्य जीवो ए ज्ञानकेन्द्रथी विमुख रहे छे, ते जीवो चक्रना दूरपातुक वेगेकरी केन्द्रथी दूर अने दूर भ्रमता जता जाय छे; अने तेओनी अज्ञानरूपा छाया अधिकाधिक वर्धमाना थती रहे छे.

मातृपितृसहस्रोथी पण अधिकहितैषी सत्शास्त्रो छे.

प्रक्रिया. आत्मवस्तु तत्त्वज्ञान-दुर्बोध होवाथी सत्शास्त्रो पुनः पुनः प्रसंग आणीने शब्दान्तरे तथा अर्थान्तरे ते ज एकगम्य आत्मवस्तुने निरूपे छे. ए ज्ञान-प्रकाश गोळनी विचाररूपा त्रिज्याओनुं पारिभाषिक नाम 'प्रक्रियाओ' छे.

"यया यया भवेत्पुंसां व्युत्पत्तिः प्रत्यगात्मनि ।
सा सैव प्रक्रियेह स्यात् साध्वी सा चानवस्थिता" ॥

बृहदारण्यक भाष्यवार्तिक प्रथम अ० १ ब्राह्मण ४ श्लो० ४०२

'पुरुषोने प्रत्यगात्मामां जेणेजेणेकरी व्युत्पत्ति-ज्ञान थाय ते ते ज प्रक्रिया इहां साध्वी छे. परंतु ते अनवस्थिता छे, कारण के अधिकारीनी बुद्धिनुं तारतम्य होवाथी ते प्रक्रियानी व्यवस्था (स्थिति) नथी.

सत्वरजस्तम-प्रकृति प्रमाणे ते प्रक्रियाना विचारो अन्तरमां उत्तरे छे. कोइ अधिकारीनी बुद्धिने ऋजु तो कोइ अधिकारीनी बुद्धिने कुटिल, कोइ बुद्धिने स्थूल तो कोइने सूक्ष्म, कोइने बाधक तो कोइने साधक, कोइने बोधक, शोधक, पावक तो कोइने वर्णक, स्तावक, मोहक, कोइने वाचक, लक्षक, व्यंजक, सूचक तो कोइने आकर्षक, आवेशक, विचारक, कोइने रेचक, शोषक तो कोइने रोचक, पोषक तोषक, कोइने उत्तेजक तो कोइने प्रतिबंधक, कोइने परोक्ष तो कोइने प्रत्यक्ष, कोइने प्रवृत्तिसाध्य तो कोइने निवृत्तिसाध्य, कोइने तटस्थ-लक्षण तो कोइने स्वरूपलक्षण,-एम नाना प्रकारना विचारोमांथी कोई एक या अनेक रुचे छे. तेमां अज्ञानना निवर्त्तक अने ज्ञानना समर्पक एवा बोधक, निर्णायक अने अनुभावक

१ परगजी.

विचारो ज श्रेयःसाधकोए ग्राह्य-श्रोतव्य-मंतव्य-निदिध्यासितव्य-छे. इतर विचारो हदय-श्रव्य-छे, अने कर्तव्य अवश्य व्यवहार साधवामां ज मात्र उपयोगी छे. ए प्रक्रियाओमांनी केटलीक तो संप्रदायना अनेक प्रकारना ग्रंथोमां गुंथेली होय छे अने केटलीक तो संप्रदायविदोना मुखथी परंपरागता होय छे. अधिकारीनी स्थिति अनुसार ते कथाय छे, परंतु ते लिखिता होती नथी.

शास्त्र अने प्रकरण ग्रंथो.

परमात्मविषयक विचारनुं निरुपण मुख्यत्वेकरी तत्संबन्धि शास्त्रमां अने प्रकरणोमां सुवर्ते छे. 'एक-प्रयोजन-उपनिबद्ध अशेषार्थ-प्रतिपादक' ए शास्त्रनुं लक्षण छे. अध्यात्मशास्त्रमां ऊहापोहविचक्षण मेधावी विद्वान् पुरुषो उत्तम अधिकारी गणाय छे. तेवा उत्तमबुद्धिमान्ना अर्थे श्रीशंकर भगवान्नां भाष्यसहित उपनिषदो (१), ब्रह्मसूत्रो (२), तथा भगवद्गीता (३) ए प्रस्थानत्रयादिरूप शास्त्रोने महात्माओए संकलित कर्यां छे. तेओना अवलोकनमां असमर्थोना अनुग्रहार्थ वेदान्तसिद्धान्तनो सार-जे आत्मा परमात्मानुं ऐक्य-तेना संग्रहणरूप 'प्रकरणोने' अपि महात्माओए निर्माण कर्यां होय छे. प्रकरणनुं लक्षण आ प्रमाणे छे.—

"शास्त्रैकदेशसम्बद्धं शास्त्रकार्यान्तरे स्थितम्।
आहुः प्रकरणं नाम ग्रन्थभेदं विपश्चितः॥"

'शास्त्रना एकदेश-(मुख्य) निर्गुण वस्तु-परमात्मा-

---

१. "उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामागतिं गतिं।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति॥"

'(सृष्टिनां) उत्पत्ति अने प्रलय, भूतोनी अने गति (आय-व्यय आववुं-जवुं,) अने विद्या तथा अविद्या, एओने जे जाणे ते भगवान् एम वदाना योग्य छे.' २ एकार्थप्रतिपादक ग्रंथांश, प्रस्ताव, कर्तव्यनुं वचन.

मात्रसह संबद्ध अने शास्त्रकार्यना अन्तरमां स्थित एवा ग्रंथभेदने विपश्चितो प्रकरण कहे छे.'

एवां प्रकरणोथी पण अनेक अधिकारीओनुं कल्याण थई तेओने सदाप्राप्त निःश्रेयसनी प्राप्ति थई छे. एथी तेवां प्रकरणोने प्रक्रियारूपे अत्र समर्पण कर्यां छे.

वृत्ति तदाकारा थये ज्ञान अने साफल्य.

जेम यंत्रकला, रसायनकला, चित्रकला, गायनकला, आदि अनेक प्रकारनी कलाओमां तत्संबंधी लेखो मात्र वाच्यार्थी अर्थसिद्धि थती नथी; तेओना अभ्यासपूर्वक प्रयोगो करवानी पूर्ण आवश्यकता छे, अने शिक्षानुसार तादृशकृतिरूप फल थाय छे, त्यारे ज ते कला प्राप्त अने सफला थई गणाय छे; तेम उत्तम वेदान्तशास्त्रसंबंधमां छे. एतद्देशीय आर्योए अभिमत सर्वज्ञकल्प वेदमां वेदान्त-तत्त्वज्ञानसारभूत गणाय छे. मुक्तिकोपनिषत्‌मां श्रीराम परमात्मा स्वभक्त हनुमान् प्रति वदे छेः—

"तिलेषु तैलवद्वेदे वेदान्तः सुप्रतिष्ठितः ॥"

मुक्तिकोपनिषत् १।९॥

'ते तिलोरूप वेदमां तेल—सार—रूप वेदान्त सुप्रतिष्ठित छे-सारी रीतिए वर्त्ते छे.' ते वेदान्त किंवा तत्त्वज्ञानना उत्तमोत्तम सिद्धान्तो श्रुत मत ज्ञात होय, तदर्थाकारा अन्तःकरणनी वृत्ति थाय, त्यारे ज तेओनुं साफल्य छे.

मुण्डकोपनिषद्‌मां अन्ते वदे छे केः—

"स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति" ॥

३।२।९॥

१ शास्त्रनुं कार्य-अनुबंधचतुष्टय, अधिकारिनिर्णय, गुरुउपसदननुं, अथवा अन्वय, अविरोध, साधन, फल, आदिनुं, विस्तारथी प्रतिपादन करवुं-तेना अन्तरमां-मध्यमां-आवेल. अर्थात् संक्षेपमां प्रतिपादन करवामां स्थित.

विद्याएकरी ज सर्व प्रतिबंध दर कर्याथी अन्य प्रतिबंध मोक्षने नथी. तेथी लोकमां 'ते जे कोइ ते ब्रह्मने जाणे (ते ब्रह्मने विद्वान्) ब्रह्म ज थाय छे.' ए यथार्थ छे.

तत्त्वज्ञानसंबंधमां ज्ञानं[1] ते भवन् छे, जाणवुं तेवुं थवुं छे. जाणवा जेवा थवामां जेटलुं अन्तर तेटली ज्ञाननी न्यूनता गणाय छे.

शास्त्रगता अथवा प्रकरणगता कोइ एका किंवा अधिका प्रक्रियाओनुं अवलंबन करी तत्पर थई जे उत्तम अधिकारी स्ववृत्तिने दृढा तदर्थाकारा करीने स्थित थाय छे ते कृतार्थ अने धन्य धन्य धन्य थाय छे.

अधिकारीनुं कर्तव्य.

यथोक्तकारी अधिकारीए कोइ सद्गुरुद्वारा नानाविध प्रक्रियारूप रेखामांथी कोइ एकानुं दृढ आलंबन करी ते द्वारा अविद्याने अपकृष्यमाणा करवी, अने विद्याने उत्कृष्यमाणा करीने ब्रह्मावगतिरूप केन्द्रनी संप्राप्ति करवी. कोइ एक शास्त्रे करी वा शास्त्रीया अशास्त्रीया युक्तिओएकरी आ सृष्टिनी उत्पत्ति-स्थिति-लयआदिना विचारो तथा अभ्युदयलक्षण प्रवृत्तिविषयना विचारो अने निःश्रेयसलक्षणनिवृत्तिना विचारो, यद्वा तद्वा जाणीने, तथा साध्यसाधनसंबंधना प्रकाशननी अनेका श्रुतिस्मृतियुक्तिओना श्रवणे करीने, बुद्धि विक्षिप्ता थई होय छे, तेनुं कोइ प्रकारे समाधान करी तेने स्वस्था-निर्मला निश्चला-करी परमपुरुषार्थ जे-सच्चिदानन्द ब्रह्मात्मैक्य स्वरूपावस्थानलक्षण मोक्ष-ए सिद्ध करवा प्राप्तविवेक पुरुषे बहुधैर्यथी भगीरथप्रयत्न कर्तव्य छे. आप्तवाक्योए संसिद्ध थएला अधिकारीए प्रमितिजनक वेदवाक्योना

१. जाणवु ते थवुं Knowing is Beng. To know is to be

विचारोमां विश्वास पण दृढ करवो. विश्वासमां-श्रद्धामां-जेटली न्यूनता तेटली फलसिद्धिनी दूरता रहे छे.

"यादृशी भावना यत्र सिद्धिर्भवति तादृशी ।"

ए प्रायशः यथार्थ छे. ए परमपुरुषार्थरूपा सर्वोपरि फलप्राप्तिअर्थ महत्प्रयास पण तेवो ज सर्वोपरि कर्तव्य छे. एवा अनुत्तम फलनो परिपाक थवामां पण अमुक समयनी अपेक्षा छे. एथी स्वअज्ञानथी उद्भवेली कल्पनानुसार तत्काल फल न थाय त्यां अधीर न थवु. पुरुषप्रयत्नानुसार प्राप्यविषयनी प्राप्ति थाय छे ज. ते प्राप्ति न थाय तेमां पुरुषप्रयत्ननी ज न्यूनता समजवी.

शास्त्र, गुरु, अने शिष्यना ज्ञाननी एकतानी आवश्यकता

यथार्थ ज्ञाननी प्राप्तिमां ते विषयनुं ज्ञेय शास्त्र, ते शास्त्रनां ज्ञाता, शास्ता, अने ते शास्त्रना जिज्ञासु शिष्य, ए त्रिपुटीनी संपूर्ण आवश्यकता तो छे ज, अने विशेषमां ए त्रिपुटीनी एकतानी -समानतानी-पण संपूर्ण अपेक्षा छे. ए त्रिपुटीनी एकता थए ज रहस्य अभिव्यक्त थई, शिष्यने फलसिद्धि थाय छे.

"शास्त्रदृष्टिर्गुरोर्वाक्यं तृतीयश्चात्मनिश्चयः ।
त्रिधैव यो विजानाति स मुक्तो नात्र संशयः ॥"

'शास्त्रनी दृष्टि, गुरुनु वाक्य, त्रीजो आत्मानो निश्चय, ए त्रण प्रकारे ज जे जाणे ते मुक्त छे. एमां संशय नहि.'

तत्त्वज्ञानना तात्पर्यार्थनी यथार्थ प्राप्तिनां तुलायन्त्र समान ए समता-एकता-थवानी आवश्यकता छे. तुलायन्त्रमां शंकु[1]-सहित तुलादण्ड[2], अने ते दण्डना अन्तभागे शिक्याए लटकावेलां बे मापनपात्र[3] ए एक भाग; तथा तुलादण्डना

---

१. तोल करवानो कांटो. २ हेमांनी कांटावाळी-सोयवाळी दांडी. ३ ते दांडीना बे छेडाए शिक्यां बांधी लटकावेलां बे त्राजवां.

शंकुना मूलमां प्रवेश करी ते शंकुने धरी रहेनार तुलाधर- जे ते शंकुना उभय पार्श्वे लंब वलयाकार द्विपक्ष होय छे ते- द्वितीय तृतीय भाग; ए सर्व भाग मळी तुलायन्त्र सिद्ध थाय छे. तेमां जे दाय पदार्थनो तोल करवो होय छे ते दाय तथा परिमाण, पेलां पात्रोमां मूकाय छे. ज्यारे ते तुलादण्डनो शंकु ते तुलाधरना द्विपक्षना मध्ये आवी, ते शंकु तथा तुलाधर समता-एकता पामे छे त्यारे यथावत् तोल थयो गणाय छे. ज्यां सुधी समतोल न थाय त्यां सुधी ए तुलाधरना द्विपक्ष मध्ये तुलादण्डनो शंकु अस्थिर-दोलायमान-रहे छे; अने तेनां पात्रोमां पदार्थ पडे छे तेम ते दंड अधऊर्ध्व जाय छे. ए वृत्तान्त सर्व तोलकारने अनुभवसिद्ध छे.

ए दृष्टान्तनुं दार्ष्टान्त शिष्य तथा शास्त्र-गुरु छे; तोल-यन्त्रना प्रथमभागस्थानीय शिष्य छे; अने द्वितीयभाग तुलाधरस्थानीय शास्त्र-गुरु छे. शंकुस्थानीय शिष्यनी बुद्धि अने तुलाधरना द्विपक्षस्थानीय शास्त्र-गुरुनी उक्ति ए भाग-द्वय एकता पामे-समधारण थाय, त्यारे शिष्यनुं ज्ञान यथार्थ थयुं गणाय छे. शिष्यना अन्तःकरणमां शंका समा-धानरूप पदार्थो पडतां ते दोलायमान-कंपायमान-रहे छे. अने ते काले शास्त्र-गुरुरूप तुलाधरना द्विपक्ष अने शिष्यबुद्धिरूप शंकु, ए भागत्रय भिन्न भिन्न जेवा देखाय छे; परतु सच्छास्त्रनुं तात्पर्य अने सद्गुरुनुं विवरण सदा संब-न्धवान् अने समान होय छे. शिष्यबुद्धिरूप शंकुना आन्दो-लनथी ए त्रयमां विषमता प्रतीता थाय छे. शिष्यना अन्तःकरणमां संभवासंभव, बलाबल, फलाफलनी परीक्षा थई यथार्थ ज्ञानप्राप्ति थये, ते शिष्यनी बुद्धिरूप शंकु, शास्त्र-

---

१ कांटानी सोयनी बे बाजुए चीपीओ जेवां बे पांतीओ रहे छे ते.

शास्तारूप तुलाधरना द्विपक्षसह, समतामां आवी स्थिर-शान्त-थई रहे छे. ज्ञान यथार्थ थयानुं प्रत्यक्ष चिह्न ए छे. कारण आ संसारभ्रम, भ्रान्तिप्रत्ययनिमित्त ज छे, परमार्थथी तो नथी ज, एम सम्यक्दर्शनथी, अत्यंत ज उपरम थाय छे.

ए शास्त्र, शास्ता अने शिष्यनी त्रिपुटीमां शास्त्र, प्रकाश तथा जल सम छे; शास्ता, बीज सम छे; अने शिष्य, पृथिवी सम छे. ए त्रिकमां शास्ता गुरुएकरी स्वोपदेशजातीय बोधद्रुम शिष्यरूप क्षेत्रमां समर्पित थाय छे. अथवा आ दुःखमय तरणीय भवसागर तरवामां तार्य शिष्योने अर्थ तरि-नौका-रूप शास्त्र छे अने तेना कर्णधार तारक शास्ता गुरु छे. अर्थात् तारक गुरुतंत्र सर्व छे, एथी गुरु श्रेष्ठ गणाय छे. तेथी संसारतारक स्वप्रकाशात्मस्वरूपसमर्पक श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु समीप श्रेयःसाधक शिष्यो विधिवत् जाय छे. अने तेवा गुरु परमकृपावते शाखाचन्द्रदर्शनवत्, वा सोपानारोहणवत्, स्थूलथी आरंभी सूक्ष्मने सूक्ष्मतरने बुद्धिविषय जणावी, तेथी अतिरिक्त सच्चिदानन्दस्वरूप उपदेशे छे. अथवा अध्यारोपापवादन्यायेकरी परमरहस्य ब्रह्म स्वरूप उपदेशे छे. अने ते शिष्य अधिकारी होय छे तो स्वाराज्यमां अभिषिक्त थाय छे.

गुरु.

"अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपंचं प्रपंच्यते ।
शिष्याणां बोधसिद्ध्यर्थं तत्त्वज्ञैः कल्पितः क्रमः" ॥

'अध्यारोप[1] अने अपवाद[2] ए बेएकरी निष्प्रपंच परमात्मा प्रपंचाय (वर्णाय) छे. तत्त्वज्ञोए शिष्योना बोधनी सिद्धिसारू ए क्रम कल्पित छे.'

---

१. वस्तुमां अवस्तुनुं कथन. २. अधिष्ठान शेष.

असर्पभूता रज्जुविषे सर्पना आरोपवत्, वस्तुविषे अव-स्तुनो आरोप ते **अध्यारोप** कथाय छे.

अध्यारोप.

सत्, चित्, आनन्द, अनन्त अद्वय ब्रह्म ए वस्तु छे, अने अज्ञानादि सकल जड समूह अवस्तु छे... ... ए अवस्तु जडसमूह महाप्रपंच अने तदुपहित वस्तु-चैतन्य ए बेथी, तप्तायसपिण्डवत्, अन्योन्य तादात्म्याध्यास थाय छे. ए अध्यारोप छे.

अनात्मा जड जे भास्य छे ते अवस्तु छे, अने तेनो भासक आत्मा चैतन्य छे ते वस्तु छे.

अपवाद अने विवर्त

रज्जुना विवर्त सर्पनुं रज्जुमात्रत्ववत्, वस्तुना विवर्त अवस्तु अज्ञानादि प्रपंचनुं वस्तुमात्रत्व ते **अपवाद** कथाय छे. ए संग्रहवाक्यनुं विवरण आ छे. रज्जुस्वरूप परित्याग कर्याविना सर्पाकारे भासमान रज्जु, ए **विवर्त.** ए विवर्तनो अपवाद (बाध) नाम अधिष्ठान रज्जुमात्रताए करी अवस्थान; तत्सम चिद्वस्तुविवर्त जे अज्ञानादि प्रपंचनो अपवाद (बाध) नाम चिद्वस्तुमात्रताएकरी अवस्थान ए **अपवाद.** यथास्वरूपे करी अवस्थित वस्तुनो अन्यथा-भाव द्विधा थाय छे.-परिणामभाव अने विवर्तभाव यथार्थथी स्वरूपने परित्यजीने स्वरूपान्तरनी प्राप्ति ते वस्तुनो परिणामभाव छे. जेम दुग्ध ज स्वरूपने परित्यजीने दधिआकारे परिणमे छे तेम- स्वस्वरूपना परित्याग विना स्वरूपान्तरे मिथ्या प्रतीति, ते वस्तुनो विवर्तभाव छे, जेम रज्जु, स्वस्वरूपना *अपरित्यागेकरी, सर्पाकारे मिथ्या प्रतिभासे छे तेम.*

---

१. कालत्रय अनपायी–अबाध्य–आत्मा ए ज वस्तु शब्दनो अर्थ छे

२. तपावेला लोखंडना गोळानी पेठे.

वेदान्तविषे ब्रह्ममां प्रपंचना भाननो परिणामभाव अंगीकार करातो नथी, कारण के दुग्धादिवत् ब्रह्मने विकारित्वना प्रसंगथी अनित्यत्वादि दोषनी आपत्ति थाय. (ब्रह्मना) विवर्तभावना अंगीकारमां ए दोष नथी. अधिष्ठानअवशेष ए ज कल्पितवस्तुनो (आत्यंतिक) नाश (बाध) छे. तेथी चिद्विवर्त प्रपंचनुं चिन्मात्र अवस्थान ए ज **अपवाद.**

एम प्रथम निष्प्रपंच आत्मवस्तुमां प्रपंचनो **अध्यारोप** (करी, पछी) कारण-सूक्ष्म-स्थूल-प्रपंचान्त उत्पत्तिना वैपरीत्येकरी तेना तेना कारणरूपे अवस्थान (करवुं) ए ज **अपवाद.** अखंड ब्रह्मस्वरूप (वाणीनुं) अगोचर होवाथी (लक्षणा कर्या विना) विधिमुखेकरी उपदेशावाने अशक्य छे; तेथी अविद्याए अध्यारोपित मिथ्या नाना पदार्थना निषेधमुखेकरी, 'नेति नेति' उपलक्षित अखण्ड चैतन्य ज उपदेशाय छे. कोइवार लक्षणाएकरी 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' एम विधिमुखे पण ब्रह्म उपदेशाय छे. विधिनिषेधादि सर्ववेदान्तवाक्योनुं साक्षात् वा परंपराएकरी अद्वितीय आत्मवस्तु प्रतिपादनमां

१. जेम रज्जुमां व्यावहारिक सर्पनो त्रैकालिक अभाव आप्तवाक्य, युक्ति ने ज्ञानथी जाणीने ते रज्जुरूपे अवस्थानरूप बाधमय अपवाद थाय छे, तेम ब्रह्ममां पारमार्थिक प्रपंचनो त्रैकालिक अभाव, श्रुति, युक्ति ने अपरोक्षज्ञानथी जाणीने अधिष्ठानरूपे अवस्थानरूप बाधमय अपवाद थाय छे. पक्षान्तरे उत्पत्तिना विपरीत क्रमे कार्यनुं कारणमां लय करी कारणरूपे अवस्थान ए स्थूलबुद्धिमानने लयचिंतनरूप ध्यान उपदेश्युं छे. ए मुख्य अपवाद नथी. ब्रह्ममां प्रपंचनो त्रैकालिक अत्यंताभाव ज्ञानथी पूर्व सिद्ध छे, ते विषय-(प्रकाश्य) रुप बाध छे. तथा तेनुं प्रकाशक वृत्तिज्ञान ते विषयी (प्रकाशक)-रूप बाध छे. तेमां ज्ञानरूपजन्यबाध शास्त्रीय (शास्त्रवाक्यजन्य), यौक्तिक (अनेकविधयुक्तिजन्य), अने अपरोक्ष (अधिष्ठानज्ञानजन्य) बाध ए भेदेकरी त्रण प्रकारनो छे. तेमां प्रथम द्वितीय परोक्ष बाध छे, अने तृतीय अपरोक्ष बाध छे. ए त्रिविध बाध अपवाद शब्दनो अर्थ छे.

ज तात्पर्य छे. अनात्मवस्तु प्रतिपादन करवामां वेदान्तवाक्योनो आदर नथी.

एम ईश्वरना अनुग्रहथी शास्त्रगुरुकृपापकरी बोध थये अविद्याकल्पित अध्यारोपनो अपवाद थई आत्मानुं परतत्त्व प्रकट थाय छे. ए प्रकारे प्रबुद्ध शिष्य कृतार्थ थाय छे. शंकर भगवान् वदे छे के:-

"स्वस्याविद्यावन्धसंबंधमोक्षात्
सत्यज्ञानानन्दरूपात्मलब्धौ।
शास्त्रं युक्तिर्देशिकोक्तिः प्रमाणं
चान्तःसिद्धा स्वानुभूतिः प्रमाणं॥"

'स्वनी अविद्याना बन्धना संबन्धना मोक्षथी सत्य-ज्ञान-आनन्दरूप आत्मानी उपलब्धि विषये, शास्त्र, युक्ति, देशिकनी उक्ति नाम गुरुनां विवरण वचन, ए प्रमाण छे, अने अन्तःसिद्ध स्वानुभव प्रमाण छे.'

गुरुमहिमा.

शास्त्रप्रतिपादित सच्चिदानन्द ब्रह्मनो शिष्यने संबंधकरावनार गुरु छे, तेथी ब्रह्मसंबंधक गुरु श्रेष्ठ गणाय छे. जे गुरुनी कृपाथी शिष्यनी बुद्धिमां बोधरूप प्रकाश थई, अविद्यारूप अन्धकारनो अभाव थई जाय छे, अने ब्रह्म-आत्मानी एकतानी अवगतिएकरी अपार अखण्ड स्वानन्दसुखना वैभवनो आविर्भाव थाय छे, ते अनुपम ब्रह्मविद्याना प्रकाशक सद्गुरु, प्रकाश्य श्रेयोर्थी शिष्योने कृतकृत्य करीने स्वसदृश करे छे. एथी शंकरभगवान् तेवा गुरुने निरुपम गणी शतश्लोकीमां प्रथम ज प्रशंसे छे के:-

"दृष्टान्तो नैव दृष्टस्त्रिभुवनजठरे
सद्गुरोर्ज्ञानदातुः। स्पर्शश्चेत्तत्र कल्प्यः

स नयति यदहो स्वर्णतामश्मसारं ॥
न स्पर्शत्वं तथापि श्रितचरणयुगे
सद्गुरुः स्वीयशिष्ये । स्वीयं साम्यं विधत्ते
भवति निरुपमस्तेन वाऽलौकिकोपि ॥ १ ॥"

'त्रिभुवनना जठरमां ज्ञानदाता गुरुनुं दृष्टान्त नथी ज दीठुं, (अथवा अलौकिक दृष्टान्त पण नथी दीठुं;) तेमां कंइक समानताथी स्पर्शमणि दृष्टान्तरूपे कल्पवा योग्य गणाय, पण ते घटे नहि. कारण के ते स्पर्शमणि लोहने सुवर्ण करे छे, तथापि स्वसदृश स्पर्शत्व पमाडी शकतो नथी. सद्गुरु तो चरणयुग-आश्रित स्वशिष्यमां स्वसाम्य (पोताना समानपणुं) करे छे. ते कारणे करी स्पर्शादिनी उपमा योग्य न होवाथी गुरु निरुपम छे, या अलौकिक पण छे.'

प्रक्रियाओ.

शिष्टसंप्रदायविद् महात्माओने संमत परमात्माना तत्त्व-ज्ञानना सिद्धान्तनो सारभूत पिण्डीकृत श्लोक आ छेः

"श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः ।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव केवलं" ॥

(दोहरा)

'अर्धश्लोके ते वदु उक्त कोटि ग्रंथे ज.
सिद्धान्तसार. ब्रह्म सत्य, मिथ्या जगत, जीव ब्रह्म ज छे ज.'

मुख्यत्वे ए ब्रह्म जगत् जीव किंवा जीव-जगत्-परमात्मा ए त्रिवर्गमां ज सर्वनो अन्तर्भाव थाय छे. पछी श्रूयमाणा प्रक्रि-याओमां प्रकारान्तरे नाना विचारो आवे तेना तात्पर्यार्थना निर्णयमाटे तेनुं वर्गीकरण तदनुसार करवा लक्ष राखवुं. भेदमां भय छे, अभेदमां-ऐक्यमां ज आनन्द-सुख छे. व्यवहारमां

१. "अर्धश्लोकेन प्र॰" एम पण पाठांतर छे.

अने परमार्थमां ए सिद्धान्त समान प्रवर्ते छे. भेदप्रमाणे भय, एकता प्रमाणे आनन्द. अभ्युदयार्थी अने श्रेयोर्थी उभयने एकतानो विस्तर थये ज स्वार्थनी सिद्धि छे. ए तत्त्वज्ञाननुं फलित स्वारस्य छे. भेदनो धिक्कार अने अभेदनो सत्कार तथा स्वीकार ए ज कर्तव्य छे. अविद्या प्रक्षीयमाणा थये अने विद्या उद्भूता थये आत्मानो परिच्छिन्नभाव जई सर्वात्मभाव थाय छे. अखिल एकता-ब्रह्मआत्मानी एकता-ए ज सर्वात्मभाव छे.

उत्तम अधिकारी प्रति सदात्मैकत्वनिर्णयपरतापकरी परमार्थतत्त्वोपदेश ज प्रधान छे. आत्मज्ञानथी अन्यत् निरतिशय श्रेयःसाधन छे नहि. यद्यपि गुरुसंप्रदायरहित, अश्रुतवेदान्त, अत्यंतबहिर्विषयासक्तबुद्धि, सम्यक् प्रमाणोमां अकृतश्रम एवा अविवेकीओने, अविद्याकल्पित नामरूप विशेषआकारेकरी अपहृतबुद्धियी, आत्मभूत परमात्मा ब्रह्म,-अत्यन्त प्रसिद्ध सुविज्ञेय आसन्नतर सते पण, अप्रसिद्ध दुर्विज्ञेय अतिदूर अन्यत् जेवां,-भासे छे; तथापि एओथी विपरीत जे विवेकीओ ते विवेकीओने, आत्मचैतन्य विना वस्तु-अन्तरनी अनुपलब्धिथी, लौकिकग्राह्यग्राहकद्वैतवस्तुमां सद्बुद्धि नितरां दुःसंपाद्या छे. तेथी बाह्याकार-निवृत्तबुद्धिमान् लब्ध गुरु आत्म-प्रसाद पुरुषने अतःपर (परमात्माथी पर) सुज्ञ, सुप्रसिद्ध, सुविज्ञेय, स्वात्मभूत छे नहि.

तेथी आत्मैश्वरैकत्वदर्शनलक्षण ज्ञानमां स्थित ज्ञाननिष्ठ पुरुषने अविद्याए अध्यारोपित नामरूपादि अनात्मानी निवृत्ति तथा आत्मचैतन्य धिष्ठाननुं दर्शन सतत विद्यमान छे. ए ब्रह्मनुं सर्वात्मदर्शन कंइक आ प्रकारे छेः–

---

१. अधिकसमीप, घणारेपासे. २. बहुसमीप, बहुपासे.

"अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपञ्चकं ।
आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम्" ॥ २० ॥

दृग्दृश्यविवेक किंवा वाक्यसुधा

पंचाशक जगत्.

आ जीव 'जगत् परमात्मा, 'अस्ति' नाम छे, 'भाति' नाम प्रकाशे छे-जणाय छे, 'प्रिय, नाम प्रेमास्पद[1] छे, तेओनुं अमुक 'रूप' छे अने अमुक 'नाम' छे. ए पंच अंश मलीने लोकव्यवहारगोचर भूतभौतिकात्मक समस्त वस्तु प्रतीत थाय छे. ए पंचांश विना व्यवहारनो असंभव छे. ए सर्वेमां 'आद्य त्रय' नाम, अस्ति-भाति-प्रिय-अंश, किंवा, सत्-चित्-आनन्दात्मक अंशत्रय छे ते, ब्रह्मनुं स्वरूप छे; अने सच्चिदानन्दात्मक अंशत्रयथी उपरितन 'नामरूपात्मक' अंशद्वय छे ते, जगत्-मायां-रूप छे.'

जगत्नी त्रिधा प्रतीति

ते जगत्रूप कार्यथी अनुमेया, अन्य सामग्री अनपेक्षित अन्यस्वरूपप्रदर्शना[2] मायाना अंशनुं नाम-रूपकर्माख्य जगत् तेनी प्रतीति त्रिधा छेः १ लौकिकी, २ शास्त्रीया, ३ आनुभविकी. तेओनी निवृत्ति, क्रमथी, वेदान्तज्ञानना श्रवण-मनन निदिध्यासने करी, आत्मसाक्षात्कारे करी, अने प्रारब्धक्षये करी थाय छे, अन्य प्रकारे थाय नहि. एम थये केवल परमात्मा ज जेम छे तेम प्रकाशे छे. अथवा अज्ञानदशामां पूर्वे अनुभूत प्रपंचगत पारमार्थिक सत्यत्वनी दृष्टि, ते सत्यत्वदृष्टि अद्वैत शास्त्रना श्रवणजन्य 'ज्ञाने' करी नाशे छे; ते पछी व्यवहारक्षमत्वे करी प्रपंचनुं व्यावहारिकत्व प्रतीत थाय छे, ते व्यावहारिकत्व, श्रवणना मननथी प्रादुर्भूत परोक्षविज्ञानेकरी नाशे

१. प्रेम-स्नेहनु प्रतिष्ठित स्थान. २. विचित्रकार्यजनकत्व आकार छे जेनों एवी माया.

छे, ते पछी प्रतीतिकालस्थायित्वे करी जगतनुं प्रातिभासिकत्व स्फुरे छे, ते प्रातिभासिकत्व, निदिध्यासनथी प्रादुर्भूत सम्यक्ज्ञाने करी प्रारब्धादि कर्मत्रयना नाशे करी विनाशे छे. एम त्रिधा आत्ममाया नाशे छे. अने ब्रह्मात्मत्वनुं ज्ञान थाय छे. ए आत्मज्ञान किंवा तत्त्वज्ञान समकाल ज विद्वान् मुक्त थाय छे.

आत्मानात्मविवेक नामे प्रकरण ग्रंथमां शंकरभगवान् आत्मा-अनात्मानुं लक्षण आ प्रकारे वर्णे छेः-

"दृश्यं सर्वमनात्मा स्याद्दृगेवात्मा विवेकिनः ।
आत्मानात्मविवेकोऽयं कथ्यते ग्रंथकोटिभिः ॥"

दृक्-दृश्य. 'विवेकीने दृश्य सर्व अनात्मा थाय, दृक्-द्रष्टा-ज आत्मा थाय. आत्मा अनात्मानो ए विवेक ग्रंथनी कोटीओएकरी थाय छे.'

आत्मा नाम स्थूल-सूक्ष्म-कारण-शरीरत्रयथी विलक्षण, पंचकोशथी व्यतिरिक्त, अवस्थात्रयनो (जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति एओनो) साक्षी, सच्चिदानंदस्वरूप. 'सत्'-स्वरूप नाम कोइथी पण अबाध्यमानत्वे करी कालत्रयमां पण एकरूपे विद्यमान वस्तु. 'चित्'-स्वरूप नाम साधनान्तर निरपेक्षताएकरी स्वयंप्रकाशमान होई, स्वमां आरोपितसर्वपदार्थअवभासक वस्तु. 'आनन्द'-स्वरूप नाम नित्यनिरतिशयपरमप्रेमास्पद.

ए आत्मा द्विविध छेः ईश्वर अने जीव. तेमां शुद्ध अशुद्ध भेदथी ए बे-ईश्वर अने जीव पण द्विविध छे. तेओमां माया-उपाधित्वे करी अशुद्ध ईश्वर, अने अविद्या-उपाधित्वे करी अशुद्ध जीव, भेदव्यवहारना हेतु छे. उपाधित्वरहित शुद्ध ईश्वर अने शुद्ध जीव अभेदव्यवहारना हेतु छे. तेओमां देहत्रयविशिष्ट अशुद्ध जीव ए अपकृष्ट छे, अने माया अने

ते विवेकविचारनो आ क्रम छे. कर्ता भोक्ता सुखी दुःखी इत्यादि व्यवह्रियमाण व्यवहारनो वहनकर्त्ता-व्यवहारनुं मूल-अहम् (हुं) ते कोण शुं स्वरूप? ए प्रथम विचार छे. अर्थात् स्वस्वरूप प्रथम यथावत् जाणवुं, ए ज आदिकर्तव्य छे. ते स्वस्वरूप, अज्ञानदशामां, कर्ताभोक्तादि लक्षणवाळुं प्रतीत थाय छे एवुं ज छे किंवा तेथी विलक्षण छे, एनो अनेक प्रमाणोए करी निर्णय कर्त्तव्य छे. ए विषये विचार ए ज 'आत्मविचार' छे.

विविधविचार-क्रम

पश्चात् आ स्थावरजंगमात्मक जगत् यांथी 'जात' नाम जायु छे. जगत्नुं अधिष्ठान शुं छे? तथा आ जगत्नो कर्त्ता (उत्पादक) कोण छे? जीवोनां अदृष्ट, किंवा ईश्वर, किंवा अन्यत् कंई. आ जगत्विषये उपादान शुं छे? ए विषये विचार ए ज ज्ञानप्रकाशक विचार छे.

आत्मविचार करतां स्पष्ट थाय छे के: अज्ञानरूप अधिष्ठानथी-उत्पत्तिस्थानथी-जात (थएलु) अने जेनो कर्त्ता संकल्प छे, एवो आ नामरूपात्मक अज्ञानप्रभव सर्व दृश्य जडवर्ग-देह-इंद्रिय संघातथी ते ब्रह्माण्ड सुधी-छे ते आत्मा हु नथी किन्तु एओथी विलक्षण सर्वविक्रियारहित आत्मा छे.

---

१. 'अहम्' शब्दसंबंधमां आवी कल्पना छे. अ आदि (१६) स्वर, तथा कथी ह सुधीना (३३) व्यंजन मळी कुल (४९) वर्ण छे. ते अ थी ह पर्यंतनो प्रत्याहार जेमां सर्व वर्णो—अक्षरो-आवी जवाथी समस्त नामो अने रूपो पण आवी गयां गणाय छे, ते ज कारणथी ज ते 'जीव' शब्दनो वाचक छे. सर्व दृश्यवर्ग जीवमात्रने अवलम्बीने ज छे, तेनु प्रथम स्फुरण 'अह' छे. ए 'अह' संज्ञा थवानु कारण ए ज छे के, ते 'अह' प्रत्याहारमां समस्त नाम-रूप अन्तर्गत थाय. वाणीनुं साधन सर्ववर्णोनो प्रत्याहार 'अह' ए कंठस्थानथी उद्भवी तेनो ओष्ठस्थान 'म्'कारमां अंत आवी 'अहम्' शब्द थाय छे. ते सूचवे छे के सर्व वाक्यनो आरंभ अने अंत 'अहम्' मां ज छे.

मनुष्यमात्रमां प्रथम 'अहं' बुद्धि समाना-एका-ज होवाथी अनेक जलपात्रोमां एक ज सूर्यवत् सजातीयविजातीयभेद-रहित एक ज, सर्वनो प्रकाशक, ज्ञाता, साक्षी, अहंप्रत्ययवेद्य एवो आत्मा छे, ते सत्यज्ञानआनंदअद्वयादिलक्षण ब्रह्म ज छे. ए जीव-ब्रह्मनुं किंवा आत्मा-परमात्मानुं ऐक्य, ज्ञाने करी देहात्मभाव दूर थई अज्ञाननो प्रविलय थते, अनुभवसिद्ध थाय छे. ते आत्मविचार अनेक प्रकारे कराय छे.

"पञ्चानामपि कोशानामपवादे विभात्ययं शुद्धः ।
नित्यानन्दैकरसः प्रत्यग्रूपः परं स्वयं ज्योतिः ॥ १५३ ॥
आत्मानात्मविवेकः कर्त्तव्यो बन्धमुक्तये विदुषा ।
तेनैवानन्दी भवति स्वं विज्ञाय सच्चिदानन्दम्" १५४॥

शंकरविरचित विवेकचूडामणि.

(जेम वापीस्थ जल ते वापीमांथी ज उत्पन्न थएला शैवालपटलोए करी ढंकाय छे, एथी पोते-जल जणातुं नथी; ते शैवालने दूर करे सते तृष्णा-संतापहर पुरुषने सद्यः सौख्यप्रद परमशुद्ध सारूं जल प्रतीत थाय छे; तेम आत्मानी उपाधि स्वशक्ति जे अपराप्रकृति माया तेमांथी उत्पन्न थएला अन्नमयादि पंचकोशोए करी आत्मा आवृत थयो छे ते सम्यक् भासतो नथी. ते पंचकोशोनो पण अपवाद थये आ (आत्मा) नित्यानन्दैकरस स्वयंज्योतिः प्रत्यक्रूप परमशुद्ध विभासे छे-स्पष्ट प्रतीत थाय छे. विद्वाने बंधथी मुक्ति सारू आत्मा-अनात्मानो विवेक कर्त्तव्य छे. तेणेकरीने ज स्वरूपने सच्चिदानन्द जाणीने (विद्वान्) आनंदी थाय छे.)

'देहोऽहमित्येव जडस्य बुद्धि-
र्देहे च जीवे विदुषस्त्वहंधीः ।

---

१. लीलना पडदा, दाखणां. २. अधिष्ठानरोप.

मायानां कार्य पथी वस्तुतः शून्य परंतु पओनो आश्रयभूत होवाथी सर्वनुं कारण जे ईश्वर ए सर्वोत्कृष्ट छे.

अनात्मा नाम अनृत-जड-दुःखात्मक समष्टि-व्यष्टि-आत्मक स्थूल-सूक्ष्म-कारण-शरीरत्रय. तेमां **अनृत** नाम काल-त्रय-विषे अविद्यमान वस्तु. जड नाम स्वविषय-परविषय-ज्ञानरहित वस्तु. दुःख नाम अप्रीतिरूप वस्तु.

ए चित्-जडरूप वैलक्षण्यथी, प्रकाश अने तम सम वि-भक्त 'आत्मा' अने 'अनात्मा' ए उभयनो अविवेक ए ज प्राणीने बंधनुं कारण छे. अने ए आत्मा अनात्मा पओनो विवेक ए मोक्षनुं कारण छे.

अनन्यलभ्य वेदान्तनो विषय-अद्वितीय ब्रह्मात्मत्व-तेना ज्ञानथी परम पुरुषार्थ जे सर्वात्मभावनी अभिव्यक्ति, ए रूप साक्षात् फल थाय छे.

स्थूल लिंग-देहथी व्यतिरिक्त मुख्यात्मा-पुरुष-चिद्रूप-साक्षी, ते मुख्यात्मामां ज जगत्कारण परमात्माने, वेदान्त-महावाक्योद्वारा, देखे छे .....परमात्मा ज सर्व जगत्नुं उपा-दान छे, उपादान विना कार्यरूप कई वस्तु छे ज नहि। जेम मृत्सुवर्णादि विना घटकुंडलादि वस्तुनुं अदर्शन छे-वस्तु छे ज नहि-तेम. पथी जगत्कारण परमात्माने स्वात्मत्वे करी देखतां सर्व जगत्ने पण स्वात्मत्वे करीने ज (विद्वान्) देखे छे. एम मुख्यात्माना स्वात्मना-ईश्वरत्वने अने अशेष जगत्रूपत्वने उपनिषदो प्रतिपादन करे छे.

---

१. '(मुख्य) आत्मामां ज (परम) आत्माने देखे छे,' एम आधार आधे यभेद प्रतीत थाय छे, ए,—राहुनु शिर—एनी पेठे, एक ज वस्तुमा औपचा रिक छे. जीवात्माने ज परमात्मत्वे करी, वेदान्तमहावाक्योए (साक्षी) देखे छे एम अर्थ छे.

एवा अद्वितीयत्वना बोधथी पश्चात् अविद्या निवर्ते छे. एम थये राहुथी (पृथिवीनी छायाथी) विमुक्त चंद्रमा उज्ज्वल भासे छे, तेम आच्छादिका अविद्याथी बोधे करी विमुक्त आत्मा सच्चिदानंदस्वरूप भासे छे, अने तेना अद्वितीयत्वनो तथा आनन्दैकरसत्वनो आविर्भाव थाय छे.

पदार्थना परिशोधनमां प्रसिद्धना अनुवादे करी अप्रसिद्ध निरूपणीय छे-एवो न्याय छे. जीवमांना आत्मा-अनात्माना स्वरूपविषये विवेक थये, जगत्मांना आत्मा-अनात्मा-स्वरूपनुं, किंवा चैतन्यईश्वरना स्वरूपनुं अने जडप्रकृतिना स्वरुपनुं ज्ञान सुलभ थाय छे. तेथी आत्मज्ञान ज परम-पुरुषार्थीओए प्रथम साधवा योग्य छे.

स्वानुभवथी सर्वानुभवअर्थे प्रथम आत्मानुं-'अहं'नुं-'हुं'नुं-ज्ञान.

आ जगत्मांना गत तेम ज विद्यमान तत्त्ववेत्ताओनां मतनो अन्त, कइंक आ प्रकारनी एकाग्रतामां आवतो प्रतीत थाय छे. प्रसिद्ध एकदेश सुसाध्य स्व-आत्मा-अस्मत्-विषये यथार्थ जाणेथी अप्रसिद्ध अशेष विश्व-युष्मत्-विषये अनुमानादियी जाणवुं सुतर-सुलभ थाय छे. अर्थात् पिण्डविषये यथार्थ जाण्याथी ब्रह्माण्डविषये जाणवुं, किंवा व्यष्टिविषये जाण्याथी समष्टिविषये जाणवुं ए संभवित कोटिमां आवे छे. तेथी प्रामाणिक पुरुषो ज्ञानसिद्धिअर्थे सारासार विचारना क्रमनो प्रचार आ प्रमाणे राखे छेः-(अने जेम प्रकाश विना घटादि पदार्थोनुं भान थतुं नथी तेम विचार विना केवल कर्म-उपासनलक्षण साधनोए करी ज्ञान उत्पन्न थतुं नथी, ए तो प्रसिद्ध छे.)

"कोऽहं कथमिदं जातं को वै कर्त्ताऽस्य विद्यते ।
उपादानं किमस्तीह विचारः सोऽयमीदृशः" ॥ १२ ॥

अपरोक्षानुभूति.

ते विवेकविचारनो आ क्रम छे. कर्ता भोक्ता सुखी दुःखी इत्यादि व्यवह्रियमाण व्यवहारनो वहनकर्त्ता–व्यवहारनुं मूल–अहम् (हुं) ते कोण शुं स्वरूप? ए प्रथम विचार छे.

विविधविचार-क्रम.

अर्थात् स्वस्वरूप प्रथम यथावत् जाणवुं, ए ज आदिकर्तव्य छे. ते स्वस्वरूप, अज्ञानदशामां, कर्ताभोक्तादि लक्षणवालुं प्रतीत थाय छे एवुं ज छे किंवा तेथी विलक्षण छे, एनो अनेक प्रमाणोए करी निर्णय कर्त्तव्य छे. ए विषये विचार ए ज 'आत्मविचार' छे.

पश्चात् आ स्थावरजंगमात्मक जगत् क्यांथी 'जात' नाम जायुं छे. जगतनुं अधिष्ठान शुं छे? तथा आ जगतनो कर्त्ता (उत्पादक) कोण छे? जीवोनां अदृष्ट, किंवा ईश्वर, किंवा अन्यत् कई. आ जगत्विषये उपादान शुं छे? ए विषये विचार ए ज ज्ञानप्रकाशक विचार छे.

आत्मविचार करतां स्पष्ट थाय छे केः अज्ञानरूप अधिष्ठानथी–उत्पत्तिस्थानथी–जात (थएलुं) अने जेनो कर्त्ता संकल्प छे, एवो आ नामरूपात्मक अज्ञानप्रभव सर्व दृश्य जडवर्ग–देह–इंद्रिय-संघातथी ते ब्रह्माण्ड सुधी–छे ते आत्मा हुं नथी किन्तु एओथी विलक्षण सर्वविक्रियारहित आत्मा छे.

---

१. 'अहम्' शब्दसंबंधमा आवी कल्पना छे. अ आदि (१६) स्वर, तथा कथी ह् सुधीना (३३) व्यंजन मळी कुल (४९) वर्ण छे. ते अ थी ह् पर्यंतनो प्रत्याहार जेमा सर्व वर्णो—अक्षरो–आवी जवाथी समस्त नामो अने रूपो पण आवी गयां गणाय छे, ते ज कारणथी ज ते 'जीव' शब्दनो वाचक छे. सर्व दृश्यवर्ग जीवभानने अवलम्बीने ज छे, तेनुं प्रथम स्फुरण 'अहं' छे. ए 'अहं' संज्ञा थयानुं कारण ए ज छे के, ते 'अहं' प्रत्याहारमां समस्त नाम-रूप अन्तर्गत थाय. वाणीनुं साधन सर्ववर्णोनो प्रत्याहार 'अह' ए कंठस्थानथी उद्भवी तेनो ओष्ठस्थान 'म्'कारमा अंत आवी 'अहम्' शब्द थाय छे. ते सूचवे छे के सर्व वाच्यनो आरंभ अने अंत 'अहम्' मां ज छे.

मनुष्यमात्रमां प्रथम 'अहं' बुद्धि समाना-एका-ज होवाथी अनेक जलपात्रोमां एक ज सूर्यवत् सजातीयविजातीयभेद-रहित एक ज, सर्वनो प्रकाशक, ज्ञाता, साक्षी, अहंप्रत्ययवेद्य एवो आत्मा छे, ते सत्यज्ञानआनंदअद्वयादिलक्षण ब्रह्म ज छे. ए जीव-ब्रह्मनुं किंवा आत्मा-परमात्मानुं ऐक्य, ज्ञाने करी देहात्मभाव दूर थई अज्ञाननो प्रविलय थते, अनुभवसिद्ध थाय छे. ते आत्मविचार अनेक प्रकारे कराय छे.

"पञ्चानामपि कोशानामपवादे विभात्ययं शुद्धः ।
नित्यानन्दैकरसः प्रत्यग्रूपः परं स्वयं ज्योतिः ॥ १५३ ॥
आत्मानात्मविवेकः कर्त्तव्यो बन्धमुक्तये विदुषा ।
तेनैवानन्दी भवति स्वं विज्ञाय सच्चिदानन्दम्" १५४॥

शंकरविरचित विवेकचूडामणि.

(जेम वापीस्थ जल ते वापीमांथी ज उत्पन्न थएला शैवाल-पटलोए करी ढंकाय छे, एथी पोते-जल जणातुं नथी; ते शैवालने दूर करे सते तृष्णा-संतापहर पुरुषने सद्यः सौख्य-प्रद परमशुद्ध सारू जल प्रतीत थाय छे; तेम आत्मानो उपाधि स्वशक्ति जे अपराप्रकृति माया तेमांथी उत्पन्न थएला अन्नमयादि पंचकोशोए करी आत्मा आवृत थयो छे ते सम्यक् भासतो नथी. ते पंचकोशोनो पण अपवाद थये आ (आत्मा) नित्यानन्दैकरस स्वयंज्योतिः प्रत्यग्रूप परमशुद्ध विभासे छे-स्पष्ट प्रतीत थाय छे. विद्वाने बंधथी मुक्ति सारू आत्मा-अनात्मानो विवेक कर्त्तव्य छे. तेणेकरीने ज स्वरूपने सच्चिदानन्द जाणीने (विद्वान्) आनंदी थाय छे.)

'देहोऽहमित्येव जडस्य बुद्धि-
र्देहे च जीवे विदुषस्त्वहंधीः ।

---

१. छीलना पडदा, ढांकणां. २. अधिष्ठानरूप.

विवेकविज्ञानवतो महात्मनो
ब्रह्माहमित्येव मतिः सदात्मनि " ॥ १६२ ॥

शंकर–विवेकचूडामणि.

'देह हुं' एम ज जडनी (अज्ञानीनी) बुद्धि होय छे; विद्वान्नी 'अहं' बुद्धि तो देहमां अने जीवमां होय छे; अने विवेकविज्ञानवान् महात्मानी ब्रह्माहं (ब्रह्म हुं) एम ज मति सदात्मामां होय छे.

अधिकारानुसार आत्मदर्शन.

अग्निहोत्रादि यजनमां अरणिना मन्थनेकरी अग्निनुं उत्पादन करे छे. तेमां प्रथम अरणिनां बे काष्ठ मात्र होय छे. तेओनुं यथाविधि संघर्षण कराय छे. तेथी तेमां अग्निनुं उत्पादन थाय छे, अने ते उत्पन्न अग्नि ते अरणिने अन्ते स्वस्वरूप–अग्निस्वरूप–करे छे. प्रथम जे अरणिविषे काष्ठनो अने तिरोहित अग्निनो अभेद होई, ते अरणि काष्ठरूपा मात्र प्रतीता थती हती, तेमां तिरोहित सामान्य अग्नि हतो, ते संघर्षणादिए करी प्रकट थतां ते ज अरणिमां काष्ठ अने अग्नि उभय भाग प्रतीत थई भेद प्रतीत थवा मांडे छे. अने अन्ते ते न्यूनसत्ताक काष्ठभागनो अधिकसत्ताक अग्निसह अभेद थई ए ज अरणि अग्निरूपा प्रतीता थाय छे.

ए दृष्टांतसदृश स्वसंबन्धमां–अहंकारादि देहान्तवर्गना नियन्ता आत्मा संबंधमां,–अज्ञानीनी, विवेकीनी, अने ज्ञानीनी, बुद्धिने भिन्न प्रतीति थाय छे. सर्व प्राणीओ जडचेतनमय छे; तेमांथी अज्ञानीओने देहमां ज आत्मबुद्धि होय छे. जेम अरणि प्रथम काष्ठरूप देखाय छे तेम आत्मा, अज्ञानीओने देहरूप प्रतीत थाय छे. अर्थात् जडचेतननो अभेद प्रथम जड देहरूपे ज प्रतीत थाय छे. ए अज्ञानजन्य अभेदने दूर करवा कल्पितभेदरूप विवेक कर्त्तव्य

छे. ते विवेकथी, जेम संघर्षणथी अरणिमां अग्नि प्रकटित थई काष्ठ तथा अग्नि बे देखाय छे तेम, आत्मामां जडचेतन बे भाग जणाय छे. अर्थात् जडदेह तथा चेतनआत्मा बन्नेनो भेद विवेकथी विद्वानोने आत्मामां जणाय छे. ए भिन्नसत्ताक जडचेतनमांथी न्यूनसत्ताक जडपदार्थनो बाध थई, अधिकसत्ताक चेतननुं अवशेष रहेवुं ए 'बाधकृत अभेद' छे अने ते ज वास्तविक **अभेद** ए तत्त्वज्ञान छे. अने ज्यारे विवेकविज्ञानथी यथार्थ ज्ञान थाय छे त्यारे ते ज्ञानी महात्माने, जेम अरणि अन्ते केवल अग्निरूपा प्रतीता थाय छे तेम, **आत्मा** चेतनरूप-ब्रह्मरूप-प्रतीत थाय छे. अर्थात् तत्त्वदर्शी पुरुष, सर्व उपाधिना बाधपूर्वक, जीवने शिवरूप, आत्माने परमात्मारूप,-आत्मा परमात्मानो अभेद-देखे छे. प्रतिबंधक उपाधिए करी तत्त्वनुं तिरोधान होय छे, ते उपाधिनो बाध थये आत्मतत्त्व प्रकटे छे.

अभ्यासथी काळनो पाक थतां आत्मदर्शन.

रासायनिको प्रयोगथी सिद्ध करे छे के,-अंगारमां (कोयलामां) हीरारत्ननुं तत्त्व छे. अंगारनो मलिन उपाधि दूर थई तत्त्वभाग अवशेष रहे ए अंगारनुं तत्त्व, ते, हीरारत्न ज छे. तेम 'पापो हमस्मि' एवा जीवभावनो अहंकारादि देहान्त उपाधि, विवेकविज्ञानद्वारा दूर थये, ते जीवनुं अधिष्ठान मूलतत्त्व अवशेष रहे ते शोधित जीव. ए **शिव**—जीवात्मा ए परमात्मा-ए ज छे. अने ते निरुपाधिका ब्रह्मनिष्ठामां 'अहं ब्रह्मास्मि' एवुं जीवनुं स्वरूप रहे छे; एटलुं ज नहि किन्तु सर्वानर्थबीजभूता अविद्या अपकृष्यमाणा, अने विद्या उत्कृष्यमाणा थये, सर्वात्मभाव-सर्वात्मैक्यभाव-प्रकटित थाय छे. ज्ञान उत्पन्न थये परमार्थतत्त्व ज्ञात थाय छे, अने परमार्थ-

तत्त्व ज्ञात थये सर्व द्वैतनो उपशम थाय छे; अने तेम थये अद्वैत सिद्ध छे. द्वैतनो बाध थई अद्वैतनुं-ब्रह्मैकत्वनुं-दर्शन ए ज मोक्ष छे. परंतु ए परमगतिनी प्राप्ति बहु जन्मोना अन्ते सुदुर्लभ ज्ञानवान् महात्माने ज थाय छे.

"बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते"[1]।

भ० गी० अ० ७।१९॥

ए परमपुरुषार्थप्रद ब्रह्मात्मैकत्वनी प्राप्ति एम दुर्लभ छे. तेनुं साक्षात्साधन अविद्यानिवर्तक ज्ञान छे. ते उत्पाद्यमान ज्ञान तत्विपरीत अज्ञानने, प्रकाश तमवत्, अवश्य बाधे छे. ते ज्ञानसारु तत्पद ब्रह्म अने त्वंपद आत्मा एओनो वाक्यार्थ जे ब्रह्मात्मैकत्व तेनो वारंवार विचार कर्तव्य छे. ते विचारना परिपाकने अन्ते ज्ञानद्वारा निःश्रेयस प्राप्त थाय छे. परंतु ए सर्वोत्तम महत्फलना लाभार्थे सधैर्य प्रयत्न पण तेवो ज भगीरथवत् कर्तव्य छे पंचदशीकार विद्यारण्यमुनि वदे छे केः-

"कालेन परिपच्यन्ते कृषिगर्भादयो यथा ।
तद्वदात्मविचारोऽपि शनैः कालेन पच्यते" ॥ ३७ ॥

'जेम कृषि(खेती)गर्भआदि काले करी पाके छे-फलप्रद थाय छे-तेम आत्मविचार पण धीरे धीरे काले करी पाके छे-ज्ञानरूप फलप्रद थाय छे. जे शास्त्रज्ञानथी ज्ञातपदार्थ-सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्मात्मैकता-तेनुं, तथैव-ते ज प्रमाणे,-स्वानुभवकरण ते **विज्ञान** वदाय छे.

सच्चिदानन्दविषे संस्था सवधमां अतिशय धैर्यनी तथा अभ्यासनी अपेक्षा छे जे नित्य फलप्रद छे तेने फलदाननो अवसर आवतां विलंब थाय छे. अमुक समय सुधी तेनां फल गर्भमां रही पछी ते व्यक्त, वर्धमान, परिपक्व, अने

१. 'दर्मा. एवु पाठान्तर छे.

सुस्वादु, उपयोगि, अने सिद्धिप्रद थाय छे. विशेषे करी मालती चंपकादि उत्तम पुष्पराज तथा आम्रादि उत्तम फलराज संबंधमां ए नियम अस्खलित प्रवर्ते छे. आम्रफलना बीजमां, अंकुरमां, स्कंधमां, शाखामां, पत्रमां, पुष्पमां अने फलमां पण-, जे परिपक्व आम्रफलमां सुस्वाद होय छे ते-सुस्वाद अभिव्यक्त थतो नथी. जेणे अतिसुस्वादु आम्रफलनो स्वाद लीधो नथी, एवा कोई अज्ञ प्रति परमकारुणिक आप्तजन आम्रफलनी उत्कृष्टतानुं निरूपण करी तेना द्रुमनुं बीज आपीने तेमांथी फल उत्पन्न करवानो विधि कही, तेना अनुपम फलथी थता निरुपम लाभनी तथा ते द्रुमनी छाया शीतलतादिथी थता अनेक लाभनी प्रशंसा करे, ते सांभळी ते अज्ञ ते बीजने रोपी, पछी तेना अंकुरादिथी फलपर्यन्त उत्तरोत्तर स्थितिमां ते आप्तनिरूपित परिपक्व फलनो स्वाद चाखवानी आशा राखे तो ते परिपूर्ण थाय नहि. ए अनुत्तम फलनो सुस्वाद, ते फलनी परिपाकदशामां ज आवे छे. ते संपूर्णपक्वतापर्यन्त ते द्रुमनी यथाविधि सेवा करवी ज जोइए, अने धैर्य राखवुं ज जोइए तेम थये ए अनुपम फलनी प्राप्ति अने भोग थाय छे. अन्नादिसंबंधमां पण तेओनो पाक थये कइक अपर ज स्वाद थाय छे. ए दृष्टान्तानुसार तत्त्वज्ञान संबंधमां छे. पुरुषकारेकरी तेनी प्राप्तिनां साधनोनो सद्भाव करवो अने तेनी प्राप्तिनां बाधनोनो अभाव करवो ए प्रथम कर्तव्य छे पछी कोइ आप्त महात्माथी तेनो विधि यथार्थ समजवो जोइए. अने पश्चात् तदनुसार अनुष्ठान कर्तव्य छे. ए सर्व कृत्य समाप्त थये फलसिद्धि थाय छे तेमां प्रमादरहितता, दृढ धैर्य, सदाग्रह, सदभ्यासादिनी अपेक्षा

परिपाकमां सुस्वाद

छे. तेवा यथोक्तकारी भगीरथप्रयत्नवान्‌ने अज्ञान निवृत्त थये तत्त्वज्ञाननी प्राप्ति थाय छे, ते समये ज आत्यन्तिक सुखरूप अनुत्तम फलना सुगंधसुस्वादनो आविर्भाव थाय छे; अने ज्ञाननिष्ठा थये स्वरूपमां अवस्थान थई-मनवाणीने अप्राप्य एवा-स्वाराज्यसाम्राज्यना अलौकिक नित्य सुखमय थवाय छे.

सर्वत्र सच्चिदानंददर्शन.

बुद्धिमान् श्रेयःसाधकोए, कपोलकल्पित काले फलसिद्धि न थये, कर्तव्यमां प्रमाद तथा अनास्था करवां नहि. ए हितकारक तथा फलसाधक छे. धैर्य राखी जे सद्भागी जन फलप्राप्तिपर्यन्त प्रमादरहित प्रवर्धमान वर्ते छे तेने सदाप्राप्त सच्चिदानंदस्वरूप ब्रह्मभावनी प्राप्ति थाय छे ए निःसन्देह छे. जेम प्राणिपदार्थोना रूपमात्रनुं ग्रहण केवल चक्षु ज करी शके छे; तेम आ विश्वना सत्यस्वरूप सच्चिदानंदमात्रनुं ग्रहण केवल प्रबुद्ध ज करी शके छे. चक्षु जेम सर्वत्र रूपमात्र ज देखे छे तेम प्रबुद्ध सर्वत्र सच्चिदानन्द ज अनुभवे छे.

"सत्यज्ञानानन्दं प्रकृतं परमात्मरूपमद्वैतम् ।
अवबोधयन्ति निखिलाः श्रुतयः स्मृतिभिः समं
समस्ताभिः" ॥

शंकरविरचित स्वात्मनिरूपण. ६५.

दृश्य प्रपंचना विलापनेकरी द्वैतरहित सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मरूप एक ब्रह्म ज अवशिष्ट रहे छे, ते ज्ञेय स्वरूपने ज समस्त स्मृतिओ सहित निखिल श्रुतिओ बोधे छे-प्रतिपादे छे.

सच्चिदानन्द परमात्मा ज आ दृश्य जगत् विवर्तरूपे भासे छे, आ दृश्यमान सर्व जगत् ब्रह्म ज छे एम परमहितैषिणी

श्रुति श्रवणमननादिपकरी परिपक्कमनना सुकृती पुरुषवरोने बोधे छे. अने ते ज सत्य छे. कारण विद्वानोनो अनुभव पण आवो ज छे केः-'सर्वात्मक सच्चिदानन्द ब्रह्म ज एक अद्वितीय छे, किञ्चित् अन्य नथी ज.' ए भगवती श्रुतिनां महावाक्योना पश्चात् अने विद्वद्अनुभूतिनी पूर्वे, मध्यमां युक्तिओनी अपेक्षा छे, तेओनी संपूर्ति सकलसन्देहनाशक परमदयालु गुरु करे छे.

श्रुतियुक्तिअनुभूतिपकरी जगत्‌जीवपरमात्मा भेदना बाधक ज्ञानमां असंख्य युक्तिओ छे. तेमांथी, सर्वत्र सर्वात्मक ओतप्रोत सच्चिदानन्द ब्रह्मस्वरूप छे तेनी अनुभूतिना प्रदर्शनसारु, एक आ प्रकार पण छेः—

जगत्-जीव किंवा समष्टि-व्यष्टि एओमांना असंख्य पदार्थो असंख्य नामरूपना होय छे. परंतु ते सर्वेमां अनुगत जे 'सत्ता' एटले 'छेपणुं'; 'स्फुरता' एटले 'जणावापणुं-भान-चलनवलनसामर्थ्य'; अने 'प्रियता' एटले 'सुखसाधनतानुं भान थये जेनो संग्रह करवानो प्रीतिभाव थाय छे ते,' ए सर्वे, अधिष्ठान परमात्माना सत्-चित्-आनन्द स्वरूपना ज प्रतापी अंशोथी छे. ए पदार्थोमांथी परमात्मानां सत्ताभाननो वियोग थये ते पदार्थोनुं छेपणुं तथा भान जाय छे तो प्रीति तो क्यांथी ज रहे. एथी सिद्ध छे के पदार्थोनो आत्मा, सर्वात्मक भूमा-ब्रह्म-ज छे.

प्रकृतिनुं परिणाम जे जगत्, तेना तमोगुणप्रधान स्वतंत्र-चलन-वलनशून्य अखिल अचेतन मृत्तिका काष्ठादि पदार्थोमां सच्चिदानंदस्वरूपमांनां 'सत्ता' रूपनो ज आविर्भाव प्रतीत थाय छे. जगत्‌ना रजोगुणप्रधान चलनवलनसमर्थ अखिल जडउपाधिसंयुक्त प्राणी आदि चेतन पदार्थोमां सच्चि-

दानन्दस्वरूपमांना 'सत्ता-स्फुरता' ए द्विरूपनो आविर्भाव थाय छे. अने ते ज जडउपाधिसंयुक्त चेतन प्राणिपदार्थोनो आनन्दप्रतिबंधक उपाधि, कोइ पण निमित्तथी दूर थाय छे त्यारे, ते प्राणिपदार्थरूप जगत् सत्त्वगुणप्रधान थाय छे; अने तेओमां 'सत्ता-स्फुरता-प्रियता' ए पूर्ण त्रिरूपनो आविर्भाव थाय छे. ए प्रकारे जगत्-किंवा समष्टि-संबंधमां छे.

जीव किंवा व्यष्टि संबंधमां आ प्रकारे छे.

जीवमां (देहीमां) जड-चेतन, किंवा प्रकृति-पुरुष, किंवा अनात्मा-आत्मा उभय प्रतीत थाय छे. तेमां आत्मभाग छे ए तो सदा सच्चिदानन्दस्वरूप ज छे. अनात्मभाग देहादि-जे अविद्यानुं परिणाम छे-ते देहादिमां आत्माने अविद्याना सत्त्वरजस्तमोगुणो बांधे छे. बाह्यान्तरना कोइ निमित्तकारणथी तमोगुण प्रवर्ते छे, त्यारे ते अन्तःकरणविशिष्ट जीवना ज्ञानने आवरण थइ ते जीव प्रमादी, आलसु, मूढ, थाय छे; तेमां सच्चिदानन्दस्वरूप आत्माना 'सत्ता' रूपनो ज आविर्भाव प्रतीत थाय छे: रजोगुण प्रवर्ते छे, त्यारे जीवने तृष्णा अने आसंग थई, ते जीव प्रवृत्तिमान्, लोभी, कर्मी दुःखी थाय छे; तेमां सच्चिदानन्दस्वरूप आत्माना 'सत्ता-स्फुरता' ए द्विरूपनो आविर्भाव थाय छे. तमोगुणवती तथा रजोगुणवती वृत्तिने आसुरी वृत्ति कहे छे; अने सत्त्वगुणवती वृत्तिने दैवी वृत्ति कहे छे. अने सत्त्वगुण प्रवर्ते छे.त्यारे जीव प्रकाशक अने निरुपद्रव थई निवृत्तिमान्, ज्ञानी, सुखी, थाय छे; अने तेमां सच्चिदानन्दस्वरूप आत्माना 'सत्ता स्फुरता प्रियता' किंवा सच्चिदानन्द ए त्रिरूपनो आविर्भाव थाय छे.

आ जगतनुं केन्द्र सूर्य तेमां आकर्षण, प्रकाश, उष्णता, ए

त्रय प्रतीत थाय छे. अन्धकार समये आ पृथिवी सूर्यथी विमुख होवाथी ते उपर केवल आकर्षणनो आविर्भाव प्रतीत थाय छे; अरुणोदयसमये पृथिवी उपर आकर्षण तथा प्रकाश ए द्वयनो आविर्भाव थाय छे; अने पृथिवी सूर्यने संमुख थयं आकर्षण प्रकाश उष्णता ए त्रयनो आविर्भाव प्रतीत थाय छे.

ए सर्व उपरथी एम सिद्ध थाय छे के, वस्तुना सर्व गुणना आविर्भाव थवानो आधार तेना ग्राहकना अधिकार उपर छे.

सत्-चित्-आनन्द ए भिन्न छे नहि, किन्तु ग्राहकनी वृत्तिना भेदेकरी भेद जेवुं प्रतीत थाय छे.

चंपक, मालती, गुलाब आदि पुष्पराज, आम्रादि फलराज, एओमां स्पर्श रूप रस गंध छे. तेओनुं पृथक् पृथक् इन्द्रियद्वारा ग्रहण थाय छे; स्पर्श त्वक्इंद्रियद्वारा ज ग्रहण थई शके छे; रूप चक्षुरिन्द्रियद्वारा ज ग्रहण थाय छे इत्यादि. तेम अन्तःकरणनी पृथक् पृथक् वृत्ति अनुसार सत् चित् आनन्दनुं ग्रहण थाय छे.

अंतःकरणनी सात्त्विकादि त्रण वृत्तिओ.

अन्तःकरणनी वृत्तिओ त्रिधा छेः-सात्त्विकी, राजसी, तामसी, किंवा शान्ता, घोरा, मूढा. ए सर्व वृत्तिओमां परमात्मानी सच्चित्स्वभावतानुं प्रतिबिंब थाय छे; परंतु शान्ता सात्त्विकी वृत्तिमां ज परमात्माना सच्चित्स्वभावसह आनन्दस्वभाव पण विशेष प्रतीत थाय छे. अर्थात् सात्त्विकीवृत्ति ज परमात्माना समग्र सच्चिदानंद स्वरूपनी अभिव्यंजिका छे अनेक घट कूप सरोवरादि जलाशयोमां एक ज प्रतिबिंबित चंद्रमाना समान,

वेदान्तमर्यादा.

परमनिःश्रेयसप्रापक तथा परमात्मानुं अभिव्यञ्जक विशिष्ट वेदान्त ते वेदान्तनी मर्यादा.

आत्मा स्वतः चिदानन्द अद्वितीय ब्रह्मात्मस्वरूप छे, पण स्वाश्रया स्वविषया अविद्या जे स्वानुभवगम्या अने स्वाभासा छे, तेणे (अविद्याए) करी स्वाभाविक चित्सदानन्द अद्वितीय ब्रह्मात्मभावथी (ते आत्मा) प्रच्युत (थई,) अनात्मा (जड) देहादिमां आत्मभावने पाम्यो सतो, अप्राप्त छे अशेष पुरुषार्थ जेने, अने प्राप्त छे अशेष अनर्थ जेने एवो, आत्मा अविद्याकामकर्मोए परिकल्पित ज साधनोवते इष्टनी प्राप्ति अने अनिष्टनी परिहृति (निवृत्ति) आकांक्षतो अनुष्ठित लौकिकवैदिकसाधनवते पण, मोक्षनामे परमपुरुषार्थरूप स्वार्थ प्रति न पामतो, मकरादिओ जेवा रागद्वेषादिओए अहिं-तहिं (आलोक-परलोकमां) आकृष्यमाण थतो, अने सुर-नर-तिर्यक्आदि प्रभेदे करी भिन्न नाना योनिओमां परिवर्तमान (वारंवार भ्रमतो) अने मोमुह्यमान (बहु भ्रान्तिथी मूर्छित थई संसारने प्राप्त थतो) संसरतो सतो, पुण्यवशात् ईश्वरार्थ वेदोदित कर्मना अनुष्ठानवते कष्टेकरी रागादिमल गया छे

---

१. भगवान् सनत्सुजाते विदुरना योगबलथी प्राप्त थई शोकमोहथी अभिव्याप्त धृतराष्ट्रने ब्रह्मविद्यावते पूर्णानन्द परमात्माना परमपदरूप स्वाराज्ये स्थापवा सारू जे उत्तम उपदेश कर्यो छे ते सनत्सुजातीयना भाष्यमां परमकारुणिक शंकर भगवान् उपोद्घातरूपे जे वदे छे ते वेदान्तमर्यादा. २. 'स्व' नाम आत्मा-परमात्मा ब्रह्म छे 'आश्रय' नाम आधार जेनो ए 'स्वाश्रया.' अथवा ब्रह्मने आश्रिना होवाथी 'स्वाश्रया'. ३. 'स्व' नाम ब्रह्म तेने ज 'विषय'—नाम आवरण करनारी तेथी 'स्वविषया' ४. मनुष्यना पोताना (हुं कंई नथी जाणतो-में कंई न जाण्युं एवा प्रकारना) अनुभवे करी जणाती. ५. चिदात्मा ब्रह्मना प्रकाशथी ज भासती जणाती. ६ धनस्त्रीपुत्रादि 'लौकिक' साधन. यज्ञादिक 'वैदिक' साधन.

जेना, अने अनित्यादि दोषना दर्शने करी उत्पन्न थयो छे इहामुत्र फलभोगमां विराग जेने, अने वेदान्तोथी प्रतीयमान ब्रह्मात्मभावनो बुभुत्सु (बोधने–अवगतिने-इच्छतो–जिज्ञासु) वेदोदित शमदमादि साधनसंपन्न, (एवो विशिष्ट अधिकारी थई) ब्रह्मविद् आचार्य प्रति (विधिपूर्वक) समीप जई आचार्यने अनुसारे (आचार्यनुं मन प्रसन्न थाय एवा व्यापारवते वेदान्तना श्रवणादिए करी 'अहं ब्रह्मास्मि' (हुं ब्रह्म छुं) ए ब्रह्मात्मतत्त्वने यथावत् जाणीने, अज्ञान अने तेनां कार्य निवृत्त थयां छे जेनाथी एवो ब्रह्मरूपे स्थित थाय छे एवी वेदान्तमर्यादा छे.

'ज्ञान' शब्द अनेकार्थवाचक छे. प्रस्तुत प्रकरणना अनन्यलभ्य अद्वितीय ब्रह्मात्मतत्त्वज्ञानना विषयमां ए ज्ञानशब्दना मुख्य अर्थ लक्ष्मां राखवानी अपेक्षा छे

ज्ञानना भिन्न अर्थ

जे ज्ञाने करी सर्व विषय अविशेषे सामान्ये-जणाय ते ज्ञान, साधन कहाय छे. ते ज्ञानरूप साधने करी अज्ञान निवृत्त थये, जे ज्ञान–परमात्मतत्त्व, आत्मस्वभावचैतन्य, स्वस्वरूपस्फुरण, स्वयंज्योति, स्वयंप्रकाश, ज्ञप्तिमात्र, किंवा चिन्मात्र केवल वस्तु, एरूपे-आविर्भूत थाय छे, ते चित्उपलक्षित सच्चिदानन्दस्वरूप केवल सिद्ध ज्ञान, ते साध्यज्ञानवाचक छे. ए साधनज्ञान, अने साध्यज्ञान जे सिद्धज्ञान, ए उभयमां एक ज 'ज्ञान' शब्दनो प्रयोग थाय छे, तथापि प्रसंगवशात् अर्थमां भेद होय छे. ए अधिकारीए लक्ष्मां राखवा योग्य छे.

साध्य जे **सिद्धज्ञान** ते तो अखंडैकरस चिन्मात्र-भातिमात्र केवल वस्तु-एक ज छे. परंतु ते सदा प्राप्त ज्ञाननी प्राप्ति

अर्थ साधनज्ञानना उपाधिभेदथी, अनेक भेद प्रतीत

१. (सिद्धज्ञाननु)–चैतन्यनुं–अनादिमत्त्व मते पण तेनी अभिव्यञ्जिका अन्तःकरणवृत्ति, इन्द्रियोना सन्निकर्षादिए करी, उद्भवे छे. एथी वृत्तिविशिष्टचैतन्य आदिमत् वदाय छे. ज्ञानना अवच्छेदकत्वथी वृत्तिविषे ज्ञानत्वनो उपचार थाय छे. अन्तःकरणवृत्तिअवछिन्नचैतन्य (ज्ञान) 'प्रमाणचैतन्य' छे. अन्तःकरणअवच्छिन्नचैतन्य 'प्रमातृचैतन्य' छे. ज्ञानना विषय घटादिए करी अवच्छिन्नचैतन्य 'विषयचैतन्य' किंवा 'प्रमेयचैतन्य' छे.

जेम जलाशयमांनुं जल, छिद्रद्वारा नीकळी कुल्यात्माए (नीकना आकारे) थई केदारो प्रति (क्यारामो प्रति) प्रवेशी केदाराकार थाय छे; तेम अन्तःकरण पण चक्षुरूप छिद्र आदिद्वारा नीकळी घटादिविषयरूप केदार देशप्रति प्रवेशी घटादिविषयाकारे करी परिणमे छे, स्थां शरीरथी लइने घटादिविषयपर्यन्त अन्तःकरणनो नीकना समान परिणाम ते वृत्तिज्ञान छे. ते वृत्तिए करी विशिष्टचेतन (किंवा चैतन्य) ते प्रमाणचेतन छे. अने वृत्तिज्ञानरूप जे अन्तःकरण॰नो परिणाम ते प्रमाण. जेम केदारमां जल जईने केदारना समानाकार थाय छे, तेम घटादि जे विषय छे तेओमां वृत्ति जईने घटादिना समानाकारने प्राप्त थाय छे, ते वृत्तिए अवच्छिन्न जे चेतन ते प्रमाचेतनज्ञानना विषय घटादिए करी अवच्छिन्नचेतन ते विषयचेतन किंवा प्रमेयचेतन. ए प्रकारे चैतन्य किंवा ज्ञान एक सते उपाधिसंबधथी लौकिक बुद्धिए अनेकवत् कल्पाय छे.

अन्तःकरणनी घटादि विषयाकार जे वृत्ति, तेमां आरूढ चेतनने प्रमा किंवा यथार्थज्ञान वदाय छे. तेनुं साधन जे इन्द्रिय ते प्रमाण छे.... अन्तःकरणनो सर्व परिणाम प्रमा नथी, किन्तु शरीरना अन्तर जे अन्तः–करण तेनो घटादिविषयपर्यंत जे परिणाम ते प्रमाण अने विषयसह मिलीने विषयना समान जे अन्तःकरणनो परिणाम ते प्रमा.

षट्प्रमाणज अन्तःकरणना परिणामरूपा वृत्ति तद्विशिष्ट चैतन्य ए ज्ञान किंवा चिदाभासविशिष्ट चेतन ए ज्ञान. अन्तःकरणविशिष्ट चेतन ए ज्ञाता छे, अथवा सर्व ज्ञानोनुं अधिकरण जीव ए ज्ञाता छे. दृश्यमान श्रूयमाण अज्ञात स्वअधिष्ठान सहित अन्तर्बाह्य स्थूलसूक्ष्म कार्यकारणरूप, प्रपंच, जे ज्ञानना विषय, ते ज्ञेय छे.

वेदान्तविषयक ज्ञाननु विशेषस्वरूप एक आ छे:–'एक एव परब्रह्म एवं परमार्थदर्शन ए ज्ञान. (गीता. ९।१५) अर्थात् महावाक्यानुसार भागत्यागलक्षणाथी जीवविषे अविद्याभागनो अने ईश्वरविषे मायाभागनो त्याग करी,

थाय छे. तत्त्वज्ञानविषये, आत्माअनात्म सर्व पदार्थना अवबोधनरूप शास्त्राचार्यना उपदेशे करी जनित 'विवेकसामर्थ्य', जेनो विषय परमात्मा छे अने साक्षात् फल मोक्ष छे, एवुं परम निःश्रेयसनुं साधनरूप ज्ञान छे. ए ज्ञानथी अविद्याकल्पित संसारित्वना निवर्तनद्वारा नित्यमुक्त सच्चिदानन्द आत्मरूपना समर्पणरूप मोक्षनी-ब्रह्मभावनी अभिव्यक्ति थाय छे.

भगवद्गीता-भाष्यानुसार आत्मज्ञानना प्रकार.

ए उभय साध्य-साधन ज्ञान तथा ते ज्ञानवान् ज्ञानी, किंवा ए शब्दोना पर्याय-सम्यग्दर्शन, सच्चिदानन्दैकरस परमात्माने जाणनार सम्यग्दर्शी,—एओना संबंधमां श्रीभगवद्गीताना भाष्यमां श्रीशंकरभगवान् दृढप्रतीति अर्थे अनेक प्रामाणिक विचारो निरूपे छे, तेओमांना स्वल्पनो आशय अत्र समर्पाय छे.

परमेश्वरना जे तत्त्वने जाणीने अन्यत् पुरुषार्थसाधन ज्ञातव्य अवशिष्ट न रहे ए प्रकृत प्रकरणमां ज्ञान कथाय छे. ते ज्ञान शास्त्रआचार्यना प्रसादरूप उपदेशजनित अने आत्मनुं प्रत्यायक होय छे. ए आत्मप्रत्यायक ज्ञान भेदप्रत्ययनिवर्तक अने कैवल्यफलावसान[1] छे. ते निःश्रेयसहेतु

तेओनो जे भेद प्रतीत थाय छे तेने दूर करी, जीव-ईश्वरमां जे चेतन भाग छे तेने भेदरहित-एक ज-ब्रह्मस्वरूप जाणवो. संपूर्ण प्रपंच अने तेनुं ज्ञान, स्वरूपना अज्ञानकालमां ज छे. स्थूलसूक्ष्मकारणशरीरथी भिन्न जे स्वस्वरूप ते स्वरूपनुं सच्चिदानन्द ब्रह्मरूपे अभेदज्ञान ते स्वरूपज्ञान. ए स्वरूप ज अधिष्ठान, ते अधिष्ठानना ज्ञानथी भ्रान्तिनी निवृत्ति थाय छे. रज्जुसर्पवत् अज्ञानथी प्रतीत थता मिथ्या प्रपंचनुं अने मिथ्या बन्धनुं जे भ्रान्तिज्ञान ते स्वरूपना ज्ञाने करी दूर थतां एक अधिष्ठान मात्र ज अवशेष रहे छे. सविषय भ्रान्तिज्ञाननो बाध अधिष्ठान स्वरूप ज होय छे.

१. कैवल्यफल छे अवसान-अन्त-प्राप्ति-जेथी एवुं ज्ञान.

आत्मज्ञाननो आकार आवो छे. क्रियाकारकफलना भेदनी बुद्धि, अविद्याए करी, आत्मामां नित्य प्रवृत्त छे. ते अविद्या,-'मारुं कर्म, हुं कर्ता; आ (अमुक) फलअर्थे आ कर्म करीश',-एवा भेदवती अनादिकालथी प्रवृत्त छे. ए अविद्यानुं निवर्तक जे आत्मविषयक ज्ञान छे ते आ छेः-'आ हुं केवल अकर्ता अक्रिय अफल छुं. माराथी अन्य कंई पण नथी.' अव्यक्तादि स्थावरान्त भूतोमां, ए अद्वैतात्मविषय सात्त्विकज्ञानद्वारा, एक आत्मवस्तु देखाय छे, अने ए आत्मज्ञान साक्षात् शोकमोहादि संसारहेतु दोषो तेओनी निवृत्तिनुं कारण छे. ए ज्ञान 'सम्यग्दर्शन' पण वदाय छे.

ए विशिष्टज्ञान, जे विधिए पमाय छे ते आ छेः-श्रद्धावान् तत्पर संयतेन्द्रिय मुमुक्षु, तत्त्वदर्शी ज्ञानी प्रति अभिगमन करीने प्रणिपात[१]सहित परिप्रश्न करे केः-'केवे प्रकारे बन्ध छे? केवे प्रकारे मोक्ष छे? केवी अविद्या छे?' ते ज्ञानी, मोक्षसाधनविशिष्ट अने कार्यक्षम ज्ञानने उपदेशे छे. ए उपदिष्ट ज्ञानने जाणीने-पामीने-अज्ञानज समस्त संसारना अनर्थनो हेतु जे मोह[२] ते मोहने (मुमुक्षु) पुनः पामतो नथी, अने ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्त भूतोने आत्मामां-परमेश्वरमां-देखे छे. जेम दीप्त अग्नि, काष्ठोनो भस्मीभाव करे छे; तेम ए ज्ञानरूप अग्नि, जन्ममरणादिमां हेतुभूत सर्व कर्मोने भस्मीभूत-निर्बीज-करे छे. आत्मेश्वरैकत्वदर्शनलक्षण ज्ञानसदृश शुद्धिकर इहां कंई छे नहि.

विशिष्टज्ञानद्वारा जे मोक्ष-निःश्रेयस-प्राप्त थाय छे तेनो क्रम आ छेः-(फलनिरपेक्ष अनुष्ठीयमान ईश्वरार्पणकर्मोप

---

१. दीर्घ नमस्कार. २. अविवेक बुद्धि, आत्मा अनात्माना विवेकनो अभाव, कर्तामोक्तारूपा बुद्धि.

करी) सत्त्वशुद्धि, ज्ञानप्राप्ति, (विवेकबुद्धिए कर्मादिमां अकर्मदर्शनरूप) सर्वकर्मसंन्यास, अने ज्ञाननिष्ठा.

शास्त्राचार्यना उपदेशे करी तथा न्यायेकरी जेना संस्कृतात्माने अहंकृतभाव थतो नथी, अविद्याए आत्मामां कल्पित पंच अधिष्ठानादि छे ए ज सर्व कर्मोना कर्ता छे, हुं नहि; हुं तो तेओना व्यापारनो साक्षीभूत छुं; एवुं जे जाणे छे, विद्वान्, स्वकर्मेकरी ईश्वरने सम्यक् पूजीने तेना प्रसादे करीने जनिता ज्ञाननिष्ठायोग्यतालक्षणा सद्योमुक्तिअवस्थानरूपा सिद्धिने प्राप्त थईने, जे ज्ञाननिष्ठारूप प्रकारे, (ज्ञानना पर्यवसानरूप-ज्ञाननी परिसमाप्तिरूप-सम्यक्प्राप्तिरूप-प्रकारे) परमात्माने पामे छे ते ज्ञाननिष्ठानी प्राप्तिनो क्रम आपो छेः—

भगवत्शरणैकपरायण थई स्वकर्मकरी (सर्वात्मा सर्वभूतस्थित) भगवान्नुं अभ्यर्चन ए भक्तियोग छे. ते भक्तियोगेकरी मोक्षफल अवश्यंभावि छे. कारण ते भक्तियोगनी सिद्धिनी प्राप्तिरूप जे फल, ते ज्ञाननिष्ठायोग्यता छे. अने ते ज्ञाननिष्ठायोग्यताना निमित्तथी मोक्षफलावसाना जे **ज्ञाननिष्ठा**, तेनी सिद्धि छे. प्रत्यगात्मविषय प्रत्ययसन्तानकरणनो अभिनिवेश ए ज्ञाननिष्ठानुं स्वरूप छे. अने ते मोक्षफलावसाना छे. शास्त्राचार्यना उपदेशेकरी ज्ञाननी उत्पत्तिना परिपाकना हेतुनां सहकारिकारण-बुद्धि-

ज्ञाननिष्ठा

१. युक्तिएकरी. २. शरीरवाणीमने करी थतां सर्व धर्मो, तेनी सिद्धिना पंच करणो छे, ते ज कर्ता छे, तेनां नाम:— (१) इच्छा द्वेष सुख दुःख ज्ञान आदिनी अभिव्यक्तिना आश्रयरूप अधिष्ठान शरीर, (२) उपाधिलक्षण भोक्ता-कर्ता, (३) शब्दादिनी उपलब्धिसारू श्रोत्रादि द्वादश करण, (४) प्राणादि विविध चेष्टा, (५) चक्षु आदिना अनुग्राहक सूर्यादि देव.

विशुद्धत्वादि, अने अमानित्वादि गुण,-एओने अपेक्षीने जनित क्षेत्रज्ञपरमात्मैकत्वज्ञान,.........ते ज्ञाननुं स्वात्मानुभवनिश्चयरूपे जे अवस्थान ते **परा ज्ञाननिष्ठा** छे.

अज्ञानेकरी आत्मानात्मज्ञान आवृत छे; तेथी संसारी जन्तुओ मोह-कर्तृभोक्तृरूपा अविवेकबुद्धि-पामे छे. आत्माना

समदर्शन. ज्ञानेकरी जे जन्तुओनुं अज्ञान नाशित थाय छे, ते जन्तुओनुं ज्ञान, आदित्यवत्, सर्वज्ञेयवस्तुने-परमार्थतत्त्वने-प्रकाशे छे. तेवा पंडितो समदर्शी थई तत्त्वने देखे छे. तेवा केवलात्मदर्शीओ इष्टने-प्रियने-पामीने हर्षता नथी अने अनिष्टने-अप्रियने-पामीने विषादता नथी. तेओनां अन्तःकरण बाह्यविषयोमां असक्त-प्रीतिवर्जित-होय छे, अने सच्चिदानन्द ब्रह्ममां व्यापृत होय छे. तेथी ब्रह्मनुं अक्षयसुख तेओ पामे छे. तेओ जीवतां ज सर्व भूतोना हितमां-आनुकूल्यमां-रत थई, ब्रह्मभूत-ब्रह्मप्राप्त-थई ब्रह्ममां मोक्षने पामे छे. सर्व संसारना विच्छेदनुं कारण जे ब्रह्मैकत्वदर्शन तेणे युक्त थई समदर्शी आम देखे छेः—

"सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥"

गीता ६।२९

'सर्वत्र' नाम सर्व ब्रह्मादि स्थावरान्त भूतोमां-विषयोमां-'सम' नाम निर्विशेष ब्रह्मात्मैकत्वविषय 'दर्शन' नाम ज्ञान छे जेनुं एवो 'सर्वत्र समदर्शन,' योगयुक्तात्मा पुरुष सर्व भूतोमां स्थित स्व-आत्माने देखे छे अने ब्रह्मादि-

१ सर्व भूतोमां अत्यन्त असदृश अचिन्त्य 'सम' नाम एक ब्रह्मने देखवानुं शील छे जेओनु एवा,

स्तम्बपर्यन्त सर्व भूतोने आत्मामां एकता प्रति प्राप्त थएला देखे छे.'

ए प्रकारे सर्व भूतोमां वासुदेवने-ईश्वरने-जे देखे छे अने सर्वना आत्मा जे ईश्वर ते ईश्वरमां सर्व भूतोने देखे छे. एवो योगी परमेश्वरना परमपदमां ज वर्ते छे. अने ते नित्यमुक्त छे.

"आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥"

भ. गी. ६।३२

'यथा मने सुख इष्ट-अनुकूल-छे तथा सर्व प्राणीओने सुख इष्ट-अनुकूल-छे, अने जेम मने दुःख अनिष्ट-प्रतिकूल-छे, तेम सर्व प्राणीओने दुःख अनिष्ट-प्रतिकूल-छे' एम हे अर्जुन ! स्वआत्मानी उपमाना भावे सर्व भूतोमां सुखदुःखने-अनुकूल प्रतिकूलने-'सम' नाम तुल्यताए देखे छे, ते कोइनुं प्रतिकूल आचरतो नथी एवो समदर्शी-सम्यग्दर्शननिष्ठ-योगी-ज्ञानी-सर्वमां उत्कृष्ट अभिमत छे.'

ईश्वरनी 'क्षेत्र'लक्षण अपरा प्रकृति अने 'क्षेत्रज्ञ'लक्षण परा प्रकृति छे. ए प्रकृतिद्वय द्वारे सर्वज्ञ ईश्वर ज जगतनुं कारण छे,-सर्व भूतोनी उत्पत्ति स्थिति तथा लयनो हेतु छे. एम छे तेथी सूत्रमां मणिना गणो परोवाया होय छे तेम परमेश्वरमां ज सर्व जगत् प्रोत छे-प्रथित छे. ए प्रकारे सर्व भूतोना आत्मा परमेश्वर छे. तथापि ते नित्यशुद्धबुद्धस्वभाव[1] परमेश्वरने, रागद्वेषमोहादिदोषकरी अविवेकि जगत् जाणतुं नथी. प्राप्तपरिपाकज्ञान महात्मा ज प्रत्यगात्मा-परमात्मा सर्वात्मा-परमेश्वरने जाणे छे,

१ शुद्धान्तरात्मस्वभाव, विशुद्धान्तःकरण.

यद्यपि परमेश्वर, सर्व भूतोने सम छे-तुल्य छे, तथापि जेम अग्नि सर्वने सम सते पण समीपस्थनुं शीत हराय छे, दूरस्थनुं शीत हरातुं नथी, तेम, ब्रह्मनिष्ठज्ञानीनो अनुग्रह थई दुःखादि हराय छे, अज्ञानीओनो-परमेश्वरथी विमुखोनो-अनुग्रह थई दुःखादि हरातुं नथी. पुनः जेम सूर्यनुं व्यापक तेज स्वच्छ दर्पणमां प्रतिफले छे, मलिन दर्पणमां प्रतिफलतुं नथी, एम ज्ञानी अज्ञानीना संबन्धमां परमेश्वर छे.

जे सम्यग्दर्शी, इन्द्रियना समुदायने सम्यग् नियमीने, सर्वकाले इष्टअनिष्टनी प्राप्तिविषये समबुद्धि छे, अने जे सर्व भूतोना हितमां रत छे, ते ज्ञानी परमेश्वरने पामे छे; अने अभेददर्शित्वथी ते परमेश्वरना आत्मभूत थाय छे. कैवल्यनी प्राप्तिमां सम्यग्दर्शीनुं स्वातंत्र्य छे.

तत्त्वज्ञानेकरी प्राप्तव्य जे ज्ञेय परब्रह्म ते अनिन्द्रियत्वे करी शब्दैकप्रमाणगम्य छे; अने ते 'नेति नेति' इत्यादि विशेष प्रतिषेधे करी निर्देशाय छे.

ज्ञायमान जे ज्ञेय ते ज्ञात थते ज्ञानफल-ज्ञानगम्य-पदार्थ छे. सर्व प्राणिजातना हृदयमां-बुद्धिमां-ते ज्ञेय परमात्मा विशेषे करी स्थित छे. रज्जुशुक्तिकादिओना तद्विवेकना ज्ञानना अभावथी, अध्यारोपित सर्परज-

क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ ज्ञान.

तादिना संयोगवत् भिन्न स्वभाव छे जे बेनां, एवा क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ, किंवा विषय विषयी, ते बेनो

१ वेदान्तज्ञानद्वारा 'आत्मा ज एक छे' ए पारमार्थिक विज्ञान न होय त्यारे सत्ताद्वय प्रतीत थाय छे. द्रष्टा दृश्य, किंवा विषयी-विषय किंवा आत्मा-अनात्मा, किंवा जीव-जगत्. ए बे सत्ताओमांथी बीजी दृश्यसत्ताने जाणवाने इन्द्रियादि प्रमाणो छे. प्राथमिक सत्ता जे द्रष्टा-आत्मा तेना ज्ञान अर्थे सत्शास्त्र छे, ते शास्त्र अज्ञातार्थज्ञापकत्वेकरी नहि, किन्तु अतद्धर्माध्यारोपण मात्रना निवर्तकत्वेकरी अन्त्य प्रमाण छे.

इतरेतर धर्माध्यासलक्षणसंबंध छे, ते, क्षेत्रज्ञत्व स्वरूपना विवेकना अभावना निबन्धनरूप छे. ते ए अध्यासस्वरूप क्षेत्र-क्षेत्रज्ञनो संयोग, ते मिथ्याज्ञानलक्षण छे. प्रकृतिस्थत्वरूप मिथ्याज्ञानेयुक्त पुरुषनो, सुखदुःखमोहात्मक भोग्य गुणोमां-सुखी दुःखी मूढ हुं छुं-एवा रूप जे संग, ए ज ते पुरुषने सत्असत्योनिजन्मप्राप्तिलक्षण संसारनुं कारण छे. कार्यकारणविषयाकारे परिणत प्रकृतिना सत्वरजस्तमोगुणोथी अन्य कर्ता नथी; सर्व अवस्थामां गुणो ज कर्ताओ छे, अने ते गुणोथी पर, ते गुणोना व्यापारनो साक्षीभूत आत्मा छे, एम जे देखे छे; अर्थात ए मायोपाधिभूत त्रिगुणोनुं अतिक्रम जे करे छे ते गुणातीत सम्यग्दर्शी छे.

प्रकृतिपुरुषनां किंवा क्षेत्रक्षेत्रज्ञनां लक्षणना भेदना यथाशास्त्र परिज्ञानपूर्वक, मायानिर्मित क्षेत्रथी भिन्न, निरस्तसर्वोपाधिविशेष ज्ञेय जे क्षेत्रज्ञ ते क्षेत्रज्ञने ब्रह्मस्वरूप करी जे देखे छे, ते निश्चित विज्ञानवान्‌नुं मिथ्याज्ञान दूर थाय छे.

परमात्मा ब्रह्मना ज्ञानना परानिष्ठा, उपनिषद्‌वाक्योए तथा न्यायथी भगवाने गीतामां आत्माने जेवो गायो छे ते आत्माना ज्ञानसदृशी छे. ते परमात्माना अत्यन्त निर्मलत्वनी, अतिस्वच्छत्वनी, अने अतिसूक्ष्मत्वनी उपपत्तिथी, अने आत्माना समान बुद्धिना पण निर्मलत्वनी, स्वच्छत्वनी, सूक्ष्मत्वनी, उपपत्तिथी (संभवथी) आत्मचैतन्याकारणा अवभासत्वनी उपपत्ति छे. अर्थात् यथोक्त साम्यानुसारथी आत्मचैतन्यआभासे करी प्राता-ज्ञानपरिणामवती बुद्धि (ज्ञान) थाय छे.

---

१ शास्त्रयुक्ति, संगति, प्रतिपादन, प्रकरणप्रतिपाद्यअर्थनिर्णायकत्व, सिद्धि.

आत्मचैतन्याभासे व्याप्त बुद्धि छे, एवी साभासबुद्धिए व्याप्त मन छे, एवा मनना आभासे व्याप्त इन्द्रियो छे, एवां इन्द्रियोए व्याप्त स्थूल देह छे- एथी लोकोए देहमात्रमां आत्मदृष्टि कराय छे.........एम बुद्धिआदि देहपर्यन्त सर्वत्र आत्मचैतन्याभासता छे. ए ज आत्मभ्रान्तिनुं कारण छे. एथी नामरूपादि अनात्माना अध्यारोपणनी निवृत्ति ज कार्या छे, विज्ञान कार्य नथी. विज्ञान तो सिद्ध ज छे.

आत्मज्ञानथी मोक्ष.

ते अनात्माध्यारोपणनी निवृत्ति आत्मज्ञानथी थाय छे, तेथी परमनिःश्रेयसनो हेतु केवल आत्मज्ञान ज छे. ते आत्मज्ञान कैवल्यफलावसानत्वथी भेदप्रत्ययनुं निवर्त्तक छे......यद्यपि निःश्रेयसनुं अकार्यत्व (स्वाभाविकत्व, नित्यत्व) होवाथी तेने (कर्मना किंवा ज्ञानना) साधनत्वनी अनुपपत्ति छे,-कारण जे नित्य वस्तु होय छे ते ते कर्मे किंवा ज्ञाने करातुं नथी-तथापि निःश्रेयसमां ज्ञान अनर्थक नथी; कारण के ज्ञान अविद्यानिवर्तक छे. अने अविद्यानिवर्तक ज्ञाननुं कैवल्यफलावसानत्व-परमनिःश्रेयसत्व-दीठुं छे. रज्जुआदि विषयमां सर्पादि अज्ञानतमनो निवर्तक प्रदीपप्रकाश ते प्रदीपप्रकाशना फलवत् ज्ञान छे. जेम प्रकाशनुं फल सर्प-विकल्पनी निवृत्ति अने रज्जुकैवल्यावसान छे, तेम ज्ञाननुं फल अविद्यानी निवृत्ति अने आत्मकैवल्यावसान छे. सम्यग्दर्शनवान् प्रसन्नात्मा ज्ञानी, विध्वस्त-सर्वोपाधिभेद

१ अर्थात् ज्ञाननो स्वभाव आ छे के:—जे वस्तुनुं ज्ञान थाय ते वस्तुविषये अध्यास अने अज्ञान एओने दूर करे छे. जेम रज्जुनुं ज्ञान रज्जुविषये सर्पना अध्यासने अने रज्जुना अज्ञानने दूर करे छे; तेम आत्मानुं ज्ञान आत्मविषये अहंकारादि देहान्तना अध्यासने दूर करे छे तथा आत्माना अज्ञानने दूर करे छे; एथी आत्माना सच्चिदानन्द स्वरूपनो प्रादुर्भाव थई रहे, छे.

सच्चिदानन्दात्मैकरस परमात्माने जाणे छे-अनुभवे छे, ते समकाल ज ते तद्रूप थाय छे. कारण स्वात्मोपपत्तिपरिपाकहेतुयुक्त प्रतिपक्षविहीन जे ज्ञान ते ज्ञाननुं आत्मानुभवनिश्चयावसानत्व छे. अने ते स्वात्मानुभवनिश्चयरूपे अवस्थान ते ज परा ज्ञाननिष्ठा कहाय छे. भ्रान्तिप्रत्ययनिमित्त आ संसारभ्रम छे, परमार्थथी तो नथी ज. एम सम्यग्दर्शनथी अत्यन्त उपरम ज सिद्ध छे. सम्यग्दर्शनथी अज्ञानज सर्वसंसारानर्थहेतु सागरसमदुरुत्तार मोहनो नाश थाय छे, आत्मतत्त्वविषया स्मृतिनो लाभ थाय छे, अने ए लाभथी सर्व हृदयग्रंथिओनो विप्रमोक्ष थाय छे.

आत्मबोध[1].

यथोक्त साधनसंपन्न मुमुक्षुओने अपेक्ष्य आत्मबोध आ छेः- (जेम पाक करवामां काष्ठ जल पात्रादि साधनो छे परंतु प्रधान साधन अग्नि छे, तेम मोक्षमां परंपराक्रमेकरी कर्मउपासनादि साधनो छे परंतु ए) अन्य साधनोथी मोक्षनुं साक्षात् एक साधन बोध छे. पाकना अग्निवत् (अग्नि विना पाक सिद्ध थतो नथी तेम) ज्ञान विना मोक्ष सिद्ध थतो नथी. (२) अविद्याने कर्म निवर्तनुं नथी; कारण (अविद्या अने अविद्याजन्य कर्म उभयनी परस्पर) विरोधिता नथी. जेम तेज तिमिरसंघने हणे छे, तेम विद्या ज अविद्याने निश्चय हणे छे ज. (३) जेम मेघना दूर थयाथी सूर्य (स्वयं प्रकाशे छे) तेम (ज्ञानेकरी) अज्ञाननो नाश थये अज्ञानथी

१. श्रीशंकरभगवान्कृत प्रकरण ग्रंथ छे. ते मूल अने तेनुं समश्लोकी पद्यप्रत्ययान्तर संवत् १९४७ ना वर्षना मासिकपत्रो–आर्यधर्मप्रकाश, सुदर्शन अने महाकालमां प्रसिद्ध थयुं छे, ते मूलनुं प्रायशः गद्यप्रत्ययान्तर अत्र छे. एमां वेदान्तना–तत्त्वज्ञानना सिद्धान्तना–संग्रहनो संक्षेप आवे छे.

परिच्छिन्न जेवो (जणातो) आत्मा केवळ (परिपूर्ण) ज स्वयं प्रकाशे छे. (४) जेम कतकरेणुं जलने (निर्मल करी पोते नाश पामे छे-शमी जाय छे) तेम (जेणेकरी जणाय ए, वृत्तिनुं) ज्ञान, अज्ञाने कलुषीकरेला जीवने ज्ञानना अभ्यासथी निर्मल करी, पोते नाशे छे-शमी जाय छे. (अने एक ज अद्वय आत्मस्वभाव चैतन्य मात्र रहे छे. (५)

रागद्वेषादिए करी संकुल संसार स्वप्नतुल्य छे. स्वकालमां सत्यवत् भासे छे, अने प्रबोध थये असत्यवत् थाय छे. (जेम स्वप्न असत्य मिथ्या-छे, पण पोताना निद्राकालमां सत्य जेवुं भासे, छे जाग्रत् थये असत्य जणाय छे तेम संसार असत्य-मिथ्या-छे, पण पोताना कारणभूत अज्ञानकालमां सत्यवत् भासे छे;) महावाक्यश्रवणादिएकरी आत्मज्ञान थये-प्रबोध थये-संसार असत्य-मिथ्या-जणाय छे. (६)

जेम (शुक्तिनुं नीलपृष्ठ त्रिकोणादि विशेषज्ञान ज्यांसुधी उत्पन्न थयुं नथी त्यांसुधी) शुक्तिमां रूपुं सत्य भासे छे तेम सर्वनुं अधिष्ठान अद्वय ब्रह्म जणायुं नथी त्यांसुधी जगत् सत्य भासे छे. (७)

जेम हाटकमां (सुवर्णमां) कटकादि (कल्पित छे) तेम नित्य सच्चिदात्मा अनुस्यूत विष्णुमां विविध (देव, नर, स्थावर, जंगमादि) सर्व व्यक्तिओ (कल्पित छे.) (८)

(जेम मठ, घट आदि उपाधिओना भेदेकरी तेओमां एक ज आकाश नानाविधरूपे भासे छे अने ते उपाधिओनो नाश

---

१ सीमा करेल, कटको. २ निर्मली नामे ओषधि जे मलिन पाणीने निर्मल करे छे ते. ३ कर्तृत्वभोक्तृत्वादिए अभिमानी-संसारी-मलिन-दुःखी-करेल. ४ व्याप्त, मरेलो. ५ शीपनो काळो पाछळनो भाग अने त्रिकोण आकार. ६ कडु, दोरो, अंकोडा, सांकळां, कुंडल आदि घरेणाना घाट. ७ अनुगत. ८ व्यापक. ९ स्थावर जंगमनां जूदां जूदां रूप.

थये केवल एक ज आकाश जणाय छे तेम,) आकाश सम नाना उपाधिगत हृषीकेश[1] विभु[2], ते देहादि नाना उपाधिना भेदथी भिन्नवत् भासे छे, (परंतु ब्रह्मात्मैक्य ज्ञानेकरी) ते उपाधिओनो नाश थये केवल (एक ज परमात्मा) छे. (९)

जेम (स्वभावथी मधुर शुद्ध) जलमां (आम्लादि रस अने रक्तादि रंग मलेथी) रसवर्णादिभेद आरोपित थाय छे, तेम आत्माविषये नाना उपाधिना वशथी जाति, वर्ण, आश्रम आदि आरोपित छे. (१०)

(आत्माना अविद्याए कल्पित उपाधित्रय.)

कर्मोपकरी संचित[3], पंचीकृत महाभूतथी संभव छे जेनो एवुं, (स्थूल) शरीर छे. ते सुखदुःखोना भोगनुं आयतन[4] छे-कहेवाय छे. (११) पंचप्राण, (ज्ञानअर्थ तथा कर्मअर्थ) दश इन्द्रिय, मन अने बुद्धि (ए १७) एओथी समन्वित[5], अपंचीकृत भूतोथी उठेलुं सूक्ष्म शरीर छे. ते (सुखदुःखोना) भोगनुं साधन छे (१२). अनिर्वाच्या अनादि अविद्या कारणउपाधि (कारण शरीर) कहेवाय छे. ए उपाधित्रयथी अन्य (ए उपाधिनो साक्षी) आत्माने निश्चय जाणे. (१३)

जेम नीलवस्त्रादिना योगेकरी (श्वेत) स्फटिक (ते ते वस्त्रना रंग जेवा रंगनो भासे तेम) पंचकोशआदिना[6] योगेकरी शुद्ध आत्मा ते ते कोशमय जेवो स्थित[7] छे. (परंतु वस्तुतः आत्मा उपाधिरहित शुद्ध छे.) (१४)

(असंग आत्मस्वरूपना ज्ञानना विवेचननो प्रकार.)

जेम तुषादि (फोतरांरूप) कोशोए युक्त शरीरने युक्तिए

१ मन आदि सर्व इन्द्रियना प्रवर्तक, नियामक. २ व्यापक. ३ रचित. ४ भोगनु स्थान. ५ युक्त. ६ अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, अने आनन्दमय ए पंचकोश, अने देहत्रयना जाडु, पीडु आदि धर्म. ७ मिथ्या तादात्म्य.

खांडीने तंदुलने जुदो करे छे, तेम पंचकोशोए मुक्त शरीरने युक्तिवते भिन्न करीने आन्तर शुद्ध आत्माने (अधिकारी) विवेचे,-विवेक करी (भेद करी शरीरथी भिन्न) जाणे. (१५)

जेम (सूर्यप्रकाश सर्वत्र होय छे पण पृथिवीतलादि अस्वच्छमां तेनुं प्रतिबिंब भासतुं नथी किन्तु दर्पणादि) स्वच्छोमां प्रतिबिंब भासे छे, तेम आत्मा सदा सर्वगत छे पण सर्वत्र भासतो नथी, (किन्तु स्वच्छा) बुद्धिमां ज भासे छे. (१६)

(प्रजाप्रकृति आदिनी सभामां स्थित सते तेओथी भिन्न सर्व दृश्यना साक्षीरूप) राजावत्, देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्रकृति (एओमां स्थित सते) एओथी विलक्षण ते(मनादि)नी वृत्तिओना साक्षी आत्माने (अधिकारी) जाणे. (१७)

जेम अभ्रो धातां चंद्रमा धातो होय एम (लोकोने) देखाय छे, तेम इन्द्रियोना व्यापारो थए आत्मा व्यापारी जेवो अविवेकीओने देखाय छे. (१८)

जेम सूर्यना प्रकाशने आश्रीने जनो वर्ते छे, तेम आत्माना चैतन्यने आश्रीने देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि पोताना अर्थमां (विषयोमां) वर्ते छे. (१९)

जेम (निर्मल) गगनमां नीलतादिने (जनो) अध्यसे छे-कल्पे छे, तेम अमल (असंग) सच्चिदात्मामां देहइन्द्रियोना गुणोने तथा कर्मोने अविवेकवते (जनो) अध्यसे छे. (२०)

जेम जलनां चलनादि जलगत चंद्रमामां कल्पाय छे, तेम मानस उपाधिना कर्तृत्वादिओ आत्मामां अज्ञानथी कल्पाय छे. (२१)

बुद्धि सते राग, इच्छा, सुखदुःखादि प्रवर्ते छे, सुषुप्तिमां

१. जड परिणामी दृश्यो. २. वादळां. ३. पाणीमां प्रतिबिंबित थयेला. ४. अहंकारना.

बुद्धिनो नाश थये रागादि नथी होतां 'तेथी रागादि बुद्धिनां छे, आत्मानां तो नथी. (२२)

(आत्मानो स्वभाव.)

जेम सूर्यनो स्वभाव प्रकाश छे; जलनो स्वभाव शैत्य छे, अग्निनो स्वभाव उष्मता छे, तेम आत्मानो स्वभाव सत् चित् आनन्द नित्यनिर्मलता छे. (२३)

आत्मानो सच्चिद्अंश अने बुद्धिनी वृत्ति ए बेने अविवेके करी संयोजीने 'हुं जाणुं छुं' एम (अहंकारवृत्ति) प्रवर्ते छे. (२४) (परंतु) कोइ काले आत्माने विक्रिया छे नहि अने बुद्धिने बोध छे नहि. (साभास अहंकार) जीव, (देहेन्द्रियादि) सर्वने अेलं जाणीने (ए देहेन्द्रियादि सर्व हुं छुं एम विचारीने हुं (ज्ञाता, द्रष्टा एम मोहे छे-भ्रान्त थाय छे. (२५) जेम (अन्धकारमां) (रज्जुने सर्प जाणीने) (बीहीकण) (भयने वहे छे,) तेनुं वास्तव रज्जुस्वरूप जाण्युं तो निर्भय थाय छे तेम आत्माने जीव जाणीने (अज्ञानीओ) भयने वहे छे. 'हुं जीव नहि, परमात्मा छुं' एम जाण्युं तो निर्भय (सुखी) थाय छे. (२६)

जेम दीप घटादिने (प्रकाशे छे, घटादिवते दीप प्रकाशातो नथी तेम,) एक आत्मा बुद्धिआदि इन्द्रियोने अवभासे छे, ते बुद्धिआदि जडोए स्वात्मा अवभासातो नथी. (२७)

जेम (आपेक्षिक स्वयंप्रकाशे करी दीपने (पोताना प्रकाश निमित्त) अन्य दीपनी इच्छा नथी, तेम बोधस्वरूपताएकरी आत्माने स्वबोधमां अन्य बोधनी इच्छा नथी. आत्मा पोते प्रकाशे छे. (२८)

---

१. आश्चर्य, संपूर्ण छे एम.

(आत्मज्ञाननो प्रकार.)

'नेतिनेति' ए वाक्येकरी निखिल उपाधिओने निषेधीने (भागत्याग लक्षणाएकरी) महावाक्योवते जीवात्मा अने परमात्मानुं ऐक्य (ज्ञान अधिकारी) पामे. (२९) आविद्यक शरीरादि दृश्य बुद्बुद्वत् क्षर छे, एथी विलक्षण निर्मल (निरुपाधिक सच्चिदात्मक) ब्रह्म छे, ते हुं छुं, एम (विद्वान्) जाणे. (३०)

(आत्मज्ञानीना मननो प्रकार.)

देहथी अन्यत्व होवाथी (हुं देहथी अन्य होवाथी) जन्म, जरा, कार्श्य, लय आदिओ मारां नथी; अने निरिन्द्रियता होवाथी शब्दादि विषयो सह संग पण नथी (३१)

'अप्राण, अमन, शुभ्र' (आत्मा छे) इत्यादि श्रुतिना शासनथी मारूं अमनस्त्व होवाथी दुःख, राग, द्वेष, भय आदिओ मारां नथी. (३२-३३)

'हुं निर्गुण, निष्क्रिय, नित्य, निर्विकल्प, निरंजन, निर्विकार, निराकार, नित्यमुक्त, निर्मल छुं. (३४)

'आकाशवत् (हुं) सर्व (दृश्यना) बहिरंतर्गत छुं, सर्वमां सदा सम छुं, अच्युत, शुद्ध, निःसंग, निर्मल, अचल छुं. (३५)

जे नित्य, शुद्ध, विमुक्त एक अखंडानन्द, अद्वय, सत्य, ज्ञान, अनंत परब्रह्म छे ते (परब्रह्म ज) हुं छुं.' (३६)

ए प्रकारे 'ब्रह्म ज छुं' एम निरंतर अभ्यस्ता वासना, जेम रसायन रोगोने हरे छे तेम, अविद्याना विक्षेपोने हरे छे. (३७)

---

१. अनात्माना निरसनवाळां वचनो. २. जड अज्ञानना कार्य. ३ पाणीना परपोटा जेवां क्षणभंगुर. ४. मनरहितता, अमनपणुं. ५. श्लोक ३३मो बहु आवृत्तिओमां नथी अने प्रसंगोपात्त आवश्यक न होवाथी क्षेपक जेवो भासे छे तेथी लीधो नथी.

(ब्रह्मना अनुसन्धाननां साधन.)

विविक्त देशमां आसीन, विरागवान्, विजितेन्द्रिय, अनन्यथी (विद्वान्) ते अनन्त एक आत्मा प्रति भाव करे आत्मानुं अनुसन्धान-करे.) (३८)

सुबुद्धिमान् बुद्धिवते अखिल दृश्यने आत्मामां ज प्रविलापीने निर्मल आकाशवत् एक आत्मा प्रति सदा भाव करे. (३९)

परमार्थवित् (ज्ञानी) रूप, वर्ण आदिक सर्वने त्यजीने परिपूर्ण चिदानन्द स्वरूपे (अभेदेकरी) रहे छे. (४०)

परमात्मामां ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयनो भेद विद्यमान नथी. चिदानन्दना एकरूपत्वथी स्वयं (आत्मा पोते) ज दीपे छे-प्रकाशे छे. (४१)

एम आत्मारूप अन्तःकरणरूप-अरणिमां ध्याननुं मथन सतत करतां, अवगतिरूप-ज्ञानरूप-ज्वाला उदिता थई अज्ञानरूप इन्धनने दहे छे-बाले छे (४२)

अरुणसम बोधवते पूर्वे तम(समअज्ञान)नो नाश थये पछी अंशुमान् सूर्यसम स्वयं आत्मा ज आविर्भवे छे-प्रकट थाय छे (४३)

आत्मा तो सतत प्राप्त छे पण अविद्याएकरी अप्राप्तवत् भासे छे, ते अविद्यानो नाश थये, स्वकंठना आभरणसम, (आत्मा) प्राप्तवत् भासे छे. (४४)

स्थाणुमां पुरुषवत् भ्रान्तिए करेली, ब्रह्ममां जीवता छे.

१. जनसंबाधवर्जित, एकान्त देशमां सुखासन धरी बेसनार. २ अन्य अनात्मा विषयोमां नहि किन्तु ब्रह्मात्मामां ज निश्चयात्मिका बुद्धि छे जेनी एवो विद्वान्, ३. अरणिना बे लाकडाना नीचेनामां उपरना भागवते मथन कर्याथी अग्नि उत्पन्न थाय छे तेम.

जीवनुं ते तात्त्विकरूप दृष्टे-दीठे-सते, (जीवनो जीवभाव) निवर्ते छे. (४५)

तत्त्वस्वरूपना अनुभवथी उत्पन्न ज्ञान, अहं मम (हुं अने मारूं) एवा अज्ञानने, (उदितसूर्य) दिशाना भ्रमने जेम (दूर करे तेम), अञ्जसा बाधे छे दूर करे छे. (४६)

सम्यक्विज्ञानवान् योगी, ज्ञानरूप चक्षुवते, अखिल सर्वने (दृश्य प्रपंचने) आत्मामां ज स्थित एकआत्म-एक अभिन्न स्वरूप-देखे छे. (४७)

आ सर्व जगत् आत्मा ज छे, मृत्तिकाथी घटादिओ (अन्य छे नहि) तेम आत्माथी (दृश्य विविध जगत्) अन्य छे नहि. (तेथी ज्ञानी) सर्वने आत्मरूप ज देखे छे. (४८)

भ्रमरकीटवत्, जीवन्मुक्त तो, पूर्वना उपाधिना (देह मन बुद्धि आदिना) गुणोने त्यजे छे अने सच्चिदानन्दरूपत्वथी ते (ब्रह्मने) जाणतो सतो ब्रह्म थाय छे-ब्रह्मभावने पामे छे. (४९)

मोहार्णवने तरीने, रागद्वेषादि राक्षसोने हणीने, शान्तिपःकरी समायुक्त योगी आत्माराम थई विराजे छे. (५०)

(जीवन्मुक्तना लक्षण.)

आत्माना सुखेकरी निर्वृत्त (जीवन्मुक्त योगी) बाह्यनां अनित्य सुखोमां आसक्तिने त्यजीने, घटस्थ दीपवत्, स्वच्छ स्वअन्तर्मां ज प्रकाशे छे. (५१)

मुनि उपाधिस्थ सते पण ते(उपाधिओ)ना धर्मोए व्योमवत् निर्लिप्त छे, सर्वविद् सते मूढवत् रहे छे, अने वायुवत् असक्त आचरे. (५२)

---

१ शीघ्र, यथार्थ, अनायास. २ ए श्लोकमां श्रीरामचन्द्रनो ध्वनि भासे छे. ३ सुख्य-सुखी. ४ आकाशसम.

(विदेहकैवल्य.)

जेम जलमां जल, आकाशमां आकाश, अथवा तेजमां तेज प्रवेशे छे, तेम उपाधिना विलयथी (सर्वत्र व्यापक) विष्णुमां मुनि, निर्विशेषं जेम थाय तेम, प्रवेशे. (५३)

(ब्रह्मनुं सर्वातिशयत्व.)

जे लाभथी अपर लाभ नथी, जे सुखथी अपर सुख नथी, जे ज्ञानथी अपर ज्ञान नथी, ते ब्रह्म, एम (ज्ञानी) निश्चय धारे-जाणे. (५४). जे देखीने-दीठा पछी अपर दृश्य नथी, जे थईने-जे थया पछी-पुनर्भव नथी, जे जाणीने अपर ज्ञेय नथी, ते ब्रह्म एम (ज्ञानी) अवधारे. (५५). जे तिर्यक्, ऊर्ध्व, अधः, पूर्ण, अद्वय, अनन्त, नित्य, एक सच्चिदानन्द छे ते ब्रह्म एम (ज्ञानी) अवधारे. (५६). जे अव्यय, अखंडानन्द, एक, अंतत्नी व्यावृत्ति रूपेकरी, वेदान्तोए लक्षाय छे ते ब्रह्म छे, एम (ज्ञानी) अवधारे. (५७). ते अखंडानन्द-रूपना आनन्दना लवने आश्रित अखिल ब्रह्मादिओ तारत-म्येकरी आनन्दी थाय छे. (५८). अखिल (देहादि अनात्मा) वस्तु ते ब्रह्मयुक्त छे, व्यवहार (पण) ते ब्रह्म अन्वित छे, तेथी, अखिल क्षीरविषे सर्पि सम, सर्वगत ब्रह्म छे-विश्वविषे ब्रह्म व्याप्त छे. (५९)

जे अनणु, अस्थूल, अह्रस्व, अदीर्घ, अज, अव्यय, अरूप, अगुण, अवर्ण, अनाख्य छे, ते ब्रह्म छे एम अवधारे. (६०) जेना भासेकरी अर्कादि भासे छे, भास्योपकरी-जे भासाय नहि, जेणेकरीने आ सर्व (दृश्य जगत्) भासे छे, ते ब्रह्म छे एम अवधारे. (६१)

---

१ भेदक धर्मरहित. २ अनात्माना निरसनेकरी, दृश्य प्रपचना निषेधेकरी. ३ वधारे-बहु-वधारे-पणावते, न्यूनाधिक्यावते. ४ समग्र दूधमां घी व्यापी रहे छे तेम. ५ सूर्यादि.

वह्निप्रतप्त आयसपिंडवत् ब्रह्म, स्वयं अन्तर् बहिर् व्यापीने अखिल जगत्ने भासावतुं, प्रकाशे छे. (६२). (आ) विलक्षण जगत् (अधिष्ठानरूपे जोतां) ब्रह्म छे, ब्रह्मथी अन्यत्, किंचित् नथी, ब्रह्मथी अन्यत् जो भासे तो ते, जेम मरुमरीचिका छे तेम, मिथ्या छे. (६३). जे जे देखाय छे, श्रुणाय छे (ते) ब्रह्मथी अन्यत् नथी, तत्त्वज्ञानथी ते सच्चिदानन्द अद्वय ब्रह्म ज छे. (६४). ज्ञानचक्षु ज, सर्वगत सच्चिदात्माने निरखे छे, जेम भास्वान् भानुने अन्ध (मनुष्य देखी शके नहि तेम) अज्ञानचक्षु (मनुष्य सच्चिदात्माने) निरखी शके नहि. (६५)

श्रवणादिक उद्दीप्त (थएला) ज्ञान (रूप) अग्नि परितापित, सर्व मलोथी मुक्त जीव-आत्मा, सुवर्णवत्, स्वयं प्रकाशे छे. (६६). कारण के (थयो बोधित) हृदयाकाशमां उदित सर्वव्यापी सर्वधारी आत्मा (रूप) बोधभानु तमोपहत्-अन्धकारने हरनार-छे, जे आत्मापकरी स्वयं प्रकाशे छे. (६७)

(आत्मबोधरूप तीर्थने संबंधी कृतकृत्यता.)

जे विनिष्क्रिय (तत्त्वमार्गी परमहंस), दिशा, देशकाल आदिने अपेक्ष्या विना, स्वात्मा (रूप) तीर्थ-जे सर्वगत छे, शीतादिहृत् नित्यसुख (रूप) निरंजन छे-ते (परमात्मा-रूप) तीर्थने भजे छे ते सर्ववित् सर्वगत अमृत (मुक्त-पर-मात्मा-) थाय. (६८)

---

१ अग्नि लाल तपेला लोढाना गोळानी पेठे. २ निर्जन मरु देशमां सूर्यना किरणमां जळनी भ्रान्ति थाय छे तेवुं. झांझवांना जळ जेवुं खोटुं.

माण्डूक्य उपनिषद्मांथी.

"निवृत्तेः सर्वदुःखानामीशानः प्रभुरव्ययः ।
अद्वैतः सर्वभावानां देवस्तुर्यो विभुः स्मृतः" ॥ १० ॥

गौडपादीयकारिका-प्रथम प्रकरण.

(प्राज्ञ–तैजस–विश्वलक्षण) सर्वदुःखोनी निवृत्तिथी (तुरीय आत्मा) 'ईशान' नाम प्रभु (दुःखनिवृत्ति प्रति समर्थ थाय) छे, कारण दुःखनी निवृत्तिनुं निमित्त तेनुं विज्ञान ज छे. (स्वरूपथी व्यभिचरतो नथी तेथी) 'अव्यय' छे. (रज्जुसर्पवत्) सर्वभावोनुं मृषात्व छे तेथी 'अद्वैत' छे; (ते ए द्योतनथी) 'देव' छे, 'तुर्य' नाम (अवस्थात्रयातीत) चतुर्थ छे, 'विभु' नाम व्यापी (विद्वत्अनुभवसिद्ध होवाथी) स्मृत छे.

एम अविद्याकृत दुःखप्रद द्वैतप्रपंच विद्याएकरी शान्त थये सच्चिदानन्द परमात्मा ज प्रकाशे छे.

जेम रोगार्तने रोगनिवृत्ति थये स्वस्थता छे, तेम दुःखात्मक आत्माने द्वैतप्रपंचनो उपशम थये स्वस्थता छे. द्वैतप्रपंच अविद्याकृत छे, विद्याएकरी तेनो उपशम थाय छे. एथी ब्रह्मविद्यानुं प्रकाशन महात्मा करे छे. कइंक विस्तरथी एनो अर्थ आ प्रमाणे छेः–

---

१ जेम मंडूक (देडको स्थल उपरथी त्रण कुदका मारीने जलमा प्रवेश करे छे तेम, ए तत्त्वअप्रबोधलक्षण जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति ए स्थलथी उल्लंघीने सुखमय जलस्थानीय चतुर्थपाद ब्रह्मभावने जीवात्मा पामे छे. एवा मंडूकरूप आत्मानी प्रतिपादिका उपनिषद् ते मांडूक्य कहेवाय छे.

"माण्डूक्यमेकमेवालं मुमुक्षूणां हितार्थये
तथाप्यसिद्धं चेत् ज्ञानं दशोपनिषदं पठ" ॥

मुक्तिकोपनिषद्. १।२७

---

१ विमुक्तये, एवुं पण पाठांतर छे.

जेम रज्जुमां सर्पादिना विकल्पनो उपशम थये रज्जु तत्त्वनी उपपत्ति थाय छे तेम द्वैतप्रपंचनो उपशम थये अद्वैतनी प्रतिपत्ति थाय छे, अने एक ज आत्मा सर्वभूतस्थ देखाय छे. स्वरूपभूत मोक्षप्रतिबन्धनुं विवर्तकत्व ए वेदान्तशास्त्रनुं प्रयोजन छे यथा ज्वरादि रोगेकरी अभिभूत मनुष्यने स्वरूपभूता स्वस्थता प्रथम होय छे, पण ते रोगेकरी प्रतिबद्धा थये, न होय एवी थाय छे. ते स्वस्थता पाछी, चिकित्साशास्त्रीय उपायोना प्रयोगवशथी प्रतिबंधभूत रोग गये सते, अभिव्यक्ता थाय छे.

तथा स्वअविद्याथी प्रसूत अहंकारादि द्वैतप्रपंचना संबंधथी आत्मामां दुःखने आरोपीने 'हुं दुःखी छुं, मारे सुख प्राप्तव्य छे,' एम जाणनार मनुष्य पोते स्वतः निखिल दुःखरहित अने निरतिशयानन्द-एकतान छे, तेने परमकारुणिक आचार्येकरी उपदिष्ट वाक्योवते उठेली अद्वैत-विद्याथी द्वैत-निवृत्ति थये, अने प्रतिबंधनो ध्वंस थये स्वभावभूता परमानन्दता अने निरस्तसमस्तानर्थता स्वास्थ्येकरी अभिव्यक्ता थाय छे. ए ज स्वस्थता छे ते परिपूर्ण वस्तु स्वभावथी अतिरिक्ता-भिन्ना नथी.

आत्मदेव प्रथम स्वमायावते जीवभाव-कर्ता-भोक्ता-कल्पे छे. सर्व कल्पनानुं मूल जीवकल्पना छे. ते जीवकल्पना शा-निमित्ता छे ते वदे छेः—

"अनिश्चिता यथा रज्जुरन्धकारे विकल्पिता ।
सर्पधारादिभिर्भावैस्तद्वदात्मा विकल्पितः ॥"

वैतथ्यप्रकरण १७.

लोकमां मंद अन्धकार विषे स्व-रूपेकरी अनिश्चिता रज्जु, पूर्वस्वरूपना अनिश्चित निमित्तेकरी, सर्प, उदकधारा, वा

दण्ड एम अनेकधा विकल्पिता थाय छे. जो पूर्वे ज रज्जु-स्वरूपेकरी निश्चिता होत तो, सर्पादि विकल्प थात नहि. जेम स्वहस्तनां अंगुली आदि (प्रथमथी निश्चित होवाथी सर्पादिना विकल्पनो संभव छते ते संबंधमां थतो नथी) ए दृष्टान्त छे.

ते प्रमाणे हेतुफलादि (जे कर्तृत्व, भोक्तृत्व, रागद्वेषादि) संसारधर्मरूप अनर्थथी विलक्षणतारूपे-नाम स्वविशुद्धविज्ञप्ति मात्र सत्ता अद्वयरूपे,-अनिश्चितत्व(निमित्त)थी आत्मा, जीवप्राणादि अनन्त भाव भेदो ए करी विकल्पित थाय छे. ए सर्व उपनिषदोनो सिद्धान्त छे.

"निश्चितायां यथा रज्ज्वां विकल्पो विनिवर्तते ।
रज्जुरेवेति चाद्वैतं तद्वदात्मविनिश्चयः ॥ १८ ॥"

वैतथ्यप्रकरण.

जेम रज्जु निश्चिता थये (सर्प, उदकधारा, दण्डादि) विकल्पो निवर्ते छे, अने रज्जु ज छे एम अद्वैत (निश्चित थाय छे), तेम 'नेति नेति' एम सर्वसंसारधर्मशून्य प्रति-पादक शास्त्रेकरी जनित विज्ञानरूप सूर्यना आलोककृत) प्रकाश-कृत) आत्मानो निश्चय छे-'आत्मा ज आ सर्व छे.''''''. अमर, अमृत, अभय, एक ज, अद्वय छे.'

प्राणादिलक्षण संव्यवहार, रज्जुसर्पवत्, आत्मामां कल्पित छे. रज्जुसर्पादिलक्षणा मनोविकल्पनानां प्रलय वा उत्पत्ति रज्जुमां थतां नथी; अने रज्जुसर्पनां उत्पत्ति वा प्रलय मनमां पण थतां नथी, अने (बाह्यरज्जु अने अन्तर् मन ए) उभयमां पण थतां नथी. एथी द्वैत मनोविकल्पना मात्र ज छे.

जेम महाकाशथी घटाकाशोनी उत्पत्ति छे तेम परमा-

त्मायी ज, रज्जुसर्पवत्, विकल्पित पृथिवीआदि भूतसंघातनी तथा आध्यात्मिक कार्यकारणलक्षण जीवोनी उत्पत्ति छे.

जेम घटादिनी उत्पत्तिएकरी घटाकाशादिनी उत्पत्ति छे, अने घटादिनो प्रलय थये घटाकाशादिनो प्रलय छे; तेम देहादि संघातनी उत्पत्तिएकरी जीवनी उत्पत्ति छे, अने देहादि संघातनो प्रलय थये जीवोनो, ए आत्मामां ज, प्रलय छे. स्वतः (जीवना उपाधि प्रलय) नथी. (अर्थात् जीवोनी उत्पत्ति तथा प्रलय औपाधिक छे, स्वाभाविक नथी.)

जेम आकाशने, अविद्याए अध्यारोपित, रजोधूममलत्वादि दोषवत्त्व छे; तेम आत्माने, अविद्याध्यारोपित बुद्धिआदि उपाधिकृत, सुखदुःखादि दोषवत्त्व अने व्यावहारिक बंधमोक्षत्व छे.

एक ज आकाशमां घट, करक, अपवरकादि आकाशोनां अल्पत्व, महत्वादि रूपो भेद पामे छे, अने तेओनां कार्य,- जलहरणादि अने नाम-घटाकाश, करकाकाश-पण भिन्न छे, ते रूप कृत छे....ते रूपादिभेदकृत सर्वव्यवहार छे, परमार्थथी नथी. परमार्थथी तो आकाशनो भेद ज नथी; अने परोपाधिकृत द्वार विना आकाशभेदनिमित्त व्यवहार छे नही; तेम आत्मामां देहोपाधि जीवभेदकृत जन्ममरणादि व्यवहार छे. परमार्थथी नथी.

एवुं परमार्थतत्त्व छे. परंतु परमार्थज्ञान दुर्लभ होवाथी ते लोकोए गृहातुं नथी. कारण गमे ते कोइ द्वय वस्तुना धर्मना मिथ्या ग्रहणना आवेशेकरी (आत्मतत्त्वस्वरूपनुं) सुख अनायासे आच्छादाय छे, अने दुःख प्रकट थाय छे. आत्मा, उपनिषद्-आचार्योएकरी बहुशः उपदेशाय छे तो पण जणावाने शक्य नथी. द्वैतविषयथी निवृत्त अने विप-

यान्तरमां अप्रवृत्त (परमार्थदर्शी कोई विरल ज आत्मस्वरूपने जाणे छे) तेवा परमार्थदर्शीनी स्थिति अद्वय विज्ञानैकरसघनलक्षणा ब्रह्मस्वरूपा थाय छे.

ए (परमार्थ) आत्मतत्त्वनी प्रतिपत्तिना उपायभूत आगमप्रधान (माण्डूक्य उपनिषद्नुं) प्रथम प्रकरण छे. अने तेमां ॐकारनो निर्णय कर्यो छे.

रज्जुआदि-सर्पादिविकल्पना आस्पद (अधिष्ठान) समजेम परमार्थ सत्, अद्वय आत्मा प्राणादि (संसार) विकल्पनुं आस्पद छे; तेम प्राणादि आत्मविकल्पना विषय सर्व आत्मप्रपंच पण ॐकार ज छे; अने ते (ॐकार) आत्मस्वरूप ज छे. कारण के ॐकारने आत्मानुं अभिधायकत्व (वाचकत्व) छे.

(**मूल उपनिषदार्थ.**) "ॐ एम ए अक्षर आ सर्व (अर्थजात) छे. तेनुं (परापर ब्रह्मस्वरूप ॐ अक्षरनुं) उपाख्यान[1] (प्रस्तुत वेदितव्य छे.) भूतभवत्भविष्यत् (जे कालत्रयपरिछेद्य) ए सर्व ॐकार ज छे अने जे अन्यत् त्रिकालातीत (कार्याधिगम्य कालेकरी अपरिछेद्य अव्याकृतादि) ते अपि ॐकार ज छे. १

(**शांकरभाष्यमांथी.**) अभिधान अने अभिधेय[2] एओनुं एकत्व छे. पण उपरनो निर्देश[3] अभिधानना प्राधान्येकरी कर्यो छे. अवे अभिधान-अभिधेयनी एकत्वप्रतीतिअर्थ पुनः अभिधेयना प्राधान्येकरी निर्देश छे. कारण तेम न थाय तो अभिधानने तंत्र अभिधेयनी प्रतिपत्ति (गणाई) अभिधेयनुं अभिधानत्व गौण छे एम आशंका थाय. एम

१. ब्रह्मप्रतिपत्तिना उपायरूप समीप विस्पष्ट कथन. २. वाचक—वाच्य, नाम—नामी. ३. उपदेश.

अभिधानअभिधेयनी एकत्वप्रतिपत्तिनुं प्रयोजन छे. (अभिधानअभिधेय ए बेने) एक ज प्रयत्नेकरी युगपत् (एक ज काळे) प्रविलाप करतां तेथी विलक्षण ब्रह्मने (विद्वान्) पामे छे.

(**मूल उपनिषदार्थ.**) 'सर्व (जे 'ॐकार मात्र छे' एम कथ्युं ते) ए ब्रह्म ज छे. (ए पण परोक्ष ज कथ्युं गणाय तेथी प्रत्यक्ष विशेषेकरी निर्देशे छे केः-प्रत्यक्) '**अयमात्मा ब्रह्म**'[१] आ आत्मा ब्रह्म छे. ते आ आत्मा चतुष्पाद छे. २ (ते चार पादने वदे छे.) (१) जागरितस्थान बहिःप्रज्ञ सप्ताङ्ग (१९) एकोनविंशतिमुख स्थूलभुक्[२] **वैश्वानर** ए प्रथम पाद. ३. (२) स्वप्नस्थान अन्तःप्रज्ञ सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुख प्रविविक्तभुक्[३] **तैजस** ए द्वितीय पाद. ४ (३) ज्यां सुप्त (जन) कइ काम (विषय) इच्छतो नथी, कइं स्वप्नने देखतो नथी ते सुषुप्त. (एवं सुषुप्तस्थान छे जेनुं ते) सुषुप्तस्थान (सप्रपंच) एकीभूत प्रज्ञानघन ज (मननुं विषयविषयी आकारे स्पन्दन तेना आयासना दुःखना अभावथी) आनन्दमय (जेवी स्थिति जेणे अनुभवाय ते) आनन्दभुक् चेतोमुख **प्राज्ञ** ए तृतीय पाद. ५

ए (प्राज्ञ ज स्वरूपावस्थ सर्व भेदावस्थ थतां) सर्वेश्वर, ए सर्वज्ञ, ए अन्तर्यामी, ए सर्वनी योनि, अने (ए ज) भूतोनो प्रभव अप्यय (उत्पत्तिलय). ६

(**शंकरभाष्यमांथी.**) आत्माना परमार्थ अपरमार्थरूप चतुष्पाद छे. तेमां अपरमार्थरूप उक्त पादत्रय, रज्जुसर्पादिसम, अविद्याकृत छे. अने रज्जुस्थानीय परमार्थरूपने,

---

१. ए महावाक्य छे. २. शब्दादि स्थूल विषयोने भोगवनार. ३. (विषयसंस्पर्शशून्या) वासनामात्ररूपा प्रज्ञावडे विविक्त भोग भोगवनार.

सर्पादिस्थानीय उक्तस्थानत्रयना निराकरणवते, श्रुति वदे छे.

(मूल उपनिषदार्थ.) (क्रमप्राप्त चतुर्थपाद जे तुरीय ते) 'अन्तःप्रज्ञ नथी, बहिःप्रज्ञ नथी, उभयतःप्रज्ञ नथी, प्रज्ञान घन नथी, प्रज्ञ नथी, अप्रज्ञ नथी; (एथी तेने) अदृष्ट अव्यवहार्य, अग्राह्य, अलक्षण, अचिन्त्य, अव्यपदेश्य, एकात्मप्रत्ययसार प्रपंचोपशम शान्त, शिव, अद्वैत, चतुर्थ (तुरीय) माने छे. ते आत्मा ते विज्ञेय छे.' ७

(शंकरभाष्यमांथी.) प्रतीयमान सर्प भूछिद्र दण्डादिव्यतिरिक्त जेम रज्जु छे तेम प्रतीयमानपादत्रय-विश्वतैजस-प्राज्ञ-रूपथी विलक्षण तुरीय छे ते तुरीय आत्मा विज्ञेय छे.

"आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा ।
वितथैः सदृशाः सन्तोऽवितथा इव लक्षिताः ॥ ६ ॥"

माण्डूक्य-वैतथ्यप्रकरण.

जे मृगतृष्णिकादि वस्तु, आदिमां अने अन्तमां होतुं नथी, ते मध्यमां पण नथी, एवुं लोकमां निश्चित छे. तेम आ जगत्ना दृश्य (भावना-पदार्थना) भेदो तेओनो आदिमां अने अन्तमां अभाव होवाथी, अने वितथ ज मृगतृष्णिकादिओ सह सदृश होवाथी, तेओ वितथ (असत्य ज छे) तथापि अनात्मविद् मूढोपकरी अवितथ (सत्य) जेवा लक्षित छे.

द्वैत मिथ्या छे, परमार्थथी आत्मा ज एक छे. ए अर्थना उपसंहारमां योगीश्वर गौडपाद वैतथ्यप्रकरण विषये वदे छे केः—

(आ लौकिक वैदिक सर्व व्यवहार अविद्या विषय ज छे एम निष्पन्न थाय छे तो-)

"न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः ।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥ ३२ ॥"

'निरोध' नाम प्रलय नथी, 'उत्पत्ति' नाम जनन नथी, 'बद्ध' नाम संसारी जीव नथी, 'साधक' नाम मोक्षना साधनवान् नथी, 'मुमुक्षु' नाम मोचनार्थी नथी, 'मुक्त' नाम विमुक्त छे बंध जेनो एवो कइं नथी, एम उत्पत्ति अने प्रलय ए बेनो अभाव छे. एटले बद्धादि छे ज नहि, एम ए परमार्थता छे.

मनोविकल्पना मात्र ज उत्पत्तिप्रलय छे. विकल्पनानो क्षय थये अविकल्पितना स्वरूपनी उत्पत्ति (प्राप्ति) छे.

रज्जुमां सर्पादिवत्, आत्मामां अविद्याएकरी द्वैतनुं अध्यस्तत्व छे. एथी हु सुखी, हु दुःखी, मूढ, जात, मृत, . .. कर्ता, फली, संयुक्त, वियुक्त, क्षीण, वृद्ध, हु छुं, मारां एओ छे, ए आदिओ सर्वे आत्मामां अध्यारोपाय छे. जेम सर्पधारादि भेदोमां रज्जु अनुगत छे, तेम पूर्वोक्त ए सर्वमां आत्मा अनुगत छे. ..... एथी अविद्याए अध्यारोपित सुखित्वादि विशेष प्रतिबंधथी आत्मानुं स्वरूपेकरी अनवस्थान छे. (नेति नेति इत्यादि वाक्योएकरी वेदान्तशास्त्र, ते अविद्याकृत प्रतिबंधनुं, निवर्तक छे. ते प्रतिबंध दूर थये स्वरूपावस्थान थाय छे अने ते) स्वरूपेकरी अवस्थान ज श्रेय छे. . .....निर्विशेष आत्मामां सुखित्वादि विशेषो कल्पित छे ए आत्मज्ञाने निवर्ते छे

जेम रज्जुमां 'आ सर्प, आ धारा, आ दंड' एम रज्जु द्रव्य ज कल्पाय छे, तेम परमार्थसत् अद्वय सर्व विकल्पोना आस्पदभूत आत्मा ज, रज्जुवत्, अनन्त, असत् प्राणादि-संसार रूप विकल्पो कल्पाय छे.

जेम कल्पित सर्प प्रकाशवते रज्जुरूपेकरी निरूप्यमाण थाय छे त्यारे कल्पित सर्प रहेतो नथी, तेम आ जगत् (तत्त्वज्ञानवते) परमार्थस्वरूपेकरी निरूप्यमाण थये, रहेतुं नथी. सर्व अनर्थना प्रशमनरूप अद्वय ज शिव अने अभय छे. एथी अद्वैतमां ज स्मृति योजवी.

"तत्त्वमाध्यात्मिकं दृष्ट्वा तत्त्वं दृष्ट्वा तु बाह्यतः ।
तत्त्वीभूतस्तदारामस्तत्त्वादप्रच्युतो भवेत् ॥ ३८ ॥"

माण्डूक्योपनिषद्–वैतथ्यप्रकरण.

विद्वान् आम वर्ते छेः–पृथ्वीआदि बाह्यतत्त्व अने देहादिलक्षण आध्यात्मिकतत्त्व, रज्जुसर्पवत् अने स्वप्नमायादिवत्, असत् छे; अने बाह्याभ्यंतर आकाशवत् सर्वगत.........आत्मा ज सत्य छे, अने 'ते आत्मा तुं छुं' एम तत्त्वने देखीने (ते तत्त्वदर्शी) तत्त्वीभूत थाय, अने तदाराम थाय–बाह्यरमण न थाय, अने तत्त्वथी अप्रच्युत थाय.

जेम कोई अतत्त्वदर्शी चित्तने ज आत्मत्वरूपे जाणी चित्तना चलनथी आत्माने अनुचलित मानतो, 'अहुणा हुं आत्मतत्त्वथी प्रच्युत छुं' एम तत्त्वथी चलित देहादिभूत आत्माने कदाचित् माने छे. तेनुं मन समाहित थये प्रसन्न आत्माने 'अहुणा हुं तत्त्वीभूत छुं' एम कदाचित् तत्त्वभूत माने छे.

तेम आत्मवित् थता छे नहि. कारण के आत्मानुं एकरूपत्व छे, अने स्वरूपप्रच्यवननो असंभव छे. 'हुं सदा ज ब्रह्म छुं' एम तत्त्वथी अप्रच्युत थाय; आत्मतत्त्वदर्शन सदा अप्रच्युत छे जेने एवो थाय. (३८)

(अपूर्ण)

ॐ

प्रस्तावना.

(विचारसागर–प्रथमावृत्तिनी)

"तावद्गर्जन्ति शास्त्राणि जम्बुका विपिने यथा ।
न गर्जति महाशक्तिर्यावद्वेदान्तकेसरी ॥"

सर्व विद्यानुं शिखर तत्त्वज्ञान छे. अनेक शास्त्रोथी अने कलाओथी मनुष्यनुं मन अधिकृत थये ते उत्तमोत्तम तत्त्वज्ञानने ग्रहण करवा पात्र थाय छे; तेथी शास्त्रो अने कलाओ ए साधन छे अने तत्त्वज्ञान ए साध्य छे, अने ज्ञान ज सुखदाता छे.

आपणा भरतखंडनुं ए उत्तम तत्त्वज्ञान,–आ जगत्‌ना अन्य युरोपादिखंडो, जे आज केटलांक शास्त्रो अने कलाओमां आपणाथी अग्रेसर गणाय छे अने आपणा उपर संसारनी समृद्धिमां श्रेष्ठता भोगवे छे, ते ज्यारे छेक अज्ञानमां हता त्यारथी ते आज सुधी–पश्चात् पडयुं नथी. आपणा लोकना तत्त्वज्ञानसंबंधना उज्ज्वल, उत्तम, अने अमर यश आपणा महाज्ञानी पूर्वजोए एवा तो शिखर उपर लावी मूकी स्थाप्या छे के तेनी तुलना,–आज देशकाल अने अधिकारिणी प्रजा विषे बहु प्रकारे भेद थतां, अने संसारव्यवहारसंबंधिनी विद्यावृद्धिनां अनेक असाधारण अद्भुत साधनो वधतां पण,–हजी कोइ देशना लोक करी शकता

---

१ भावार्थ–वनमां ज्यांसुधी सर्वशक्तिमान् वनराज सिंह गर्जे नहि त्यांसुधी शियाळो गर्जे छे. तेम मानवीना अज्ञानरूप अरण्यमां ज्यांसुधी सर्वशक्तिमती परमार्थतत्त्वोपदेशपर परविद्यासंबंधि वेदान्तशास्त्ररूप सर्वशास्त्रराज सिंह गर्जे नहि त्यांसुधी अल्पशक्तिमती अपरविद्यासंबंधि तर्कवितर्कभरित व्यावहारिक अप्रतिष्ठित शास्त्रो गर्जे छे.

नथी. ए देशीय विदेशीय विद्वानोनुं सर्वत्र मत छे. युरोपना केटलाक अग्रेसर गुणज्ञ पण्डितो भरतखंडना तत्त्वज्ञानीओना अलौकिक उत्तमोत्तम विचार आगळ अजी मानपूर्वक नमे छे. ए सत्य कई थोडुं अभिमानप्रद अने संतोषकारक नथी.

परंतु आपणा अप्रतिम पूर्वजोना अमर यश पीने दृष्टि संतोष सहित पाछी वळतां आपणी अवस्था सामुं जुवे छे त्यां शुं परिणाम थाय छे ? जेना संमुख अभिमान अने संतोषनां कारणो क्षणवार हतां, त्यां, अपमान, भ्रष्टता, पतितता, अने तज्जन्य खेद सर्व छायी वसेलां देखाय छे. समजुओ जेओ परापर विचार करी शके छे तेओ तो मूर्छित ज थई जाय छे. ए ते केवी विषमा अवस्था !

* * *

परंतु साक्षी विना सिद्ध थाय एवा स्वप्रकाशी पदार्थो बहु वार छवाई रहेता नथी. आपणे विमुख थये अंधवत् थया. पण देखता लोकोए तो दूरथी पण प्रकाश धरत्यो अने, दूरदर्शक यंत्रवडे जोता न होय तेम, आपणा पूर्वजोनां महिमा जोयो अने तेना गुण गाई, आपण पतित पुत्रोने सचेत कर्या. कां तो आम थयुं अथवा तो सृष्टिना आघात-प्रत्याघातनो नियम लागु पड्यो. गमे तेम थयुं पण आपणा देशनो उत्थानकाल समीप आव्यो छे एम स्पष्ट जणाय छे, अने यथेच्छ उन्नति थवी ए अवे आपणा अने आपणी प्रजाना हस्तमां छे एम प्रत्यक्ष छे. विद्या, विचार, अने विवेकमां वधीशुं तेम तेम सर्वप्रकारनी उन्नतिमां–मानसिकमां, सांसारिकमां, राजकीयमां, अने धार्मिकमां–वधीशुं ए ज साधनथी आपणो देश एकवार सर्वोपरि हतो अने ए ज

१. गतिनो एक नियम छे के आघात अने प्रत्याघात समान अने सामसामे होय छे. जेम पडवुं तेम पाछुं उंचुं उछळवुं.

साधनथी अने पाछो नवा देशकालने अनुसरी तेवा प्रकारनी वर्धमाना उन्नति ते पामशे. पण ए सर्व आपणा योग्य पूर्वजोना आपणे सुपात्र पुत्र निवडीए तो ज छे.

आपणा महात्मा पूर्वजोए अनेक विषयो उपर विचार करी तेओनुं निरूपण कर्युं छे. अनेक मार्गो अने अनेक साधनो होय छे पण साध्य करवानां वस्तुओ गणित ज होय छे. साध्यनुं पण साध्य तत्त्वज्ञान छे. देशकाल फरवेथी मार्ग अने साधनमां पण भेद थई सुधारावधारो थवो जोईये, तेम थाओ. आपणां पूर्वजोए जे साधनो अने जे मार्गोनो उपयोग करेलो, तेमां, मध्यकालमां अनेक विपत्तिओने लीधे आ वर्तमान पृथ्वी उपर आपण स्थिर रहवाथी पश्चात्-गामी थया तेथी, परदेशीयलोकोए सुधारो वधारो घणो कर्यो छे. ते साधनोने समजी तेमानां सारां साधनोनो उपयोग करवो ए आवश्यक छे. परंतु साध्य जे शिखर अध्यात्मज्ञान किंवा तत्त्वज्ञान छे, ते सत्य होवाथी सदाकाल अविकारि अने सर्वोपरि रह्युं छे, अने रहेशे.

आपणा देशमां सर्वोपरि ज्ञान संपादन करवा बहु मार्गो हता एम जणाय छे. पण मुख्य षट्शास्त्रना अंतर्मां सर्व आवी जाय छे. ते षट्शास्त्रना पण, संक्षेप करतां, मुख्य त्रण वर्ग थाय छे—१ सांख्य-योग, २ न्याय-वैशेषिक, ३ पूर्व उत्तर-मीमांसा. ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शक्ति, आदिनां सहस्रावधि नामरूपनी अनेक कल्पनाओ विचित्र रचि अर्थ मूळमां थयेल प्रतीत थाय छे पछी तेमांथी विविध पंथो चाले छे, ते तो मतभेद थवाथी अने बहु वर्षोने अज्ञान वध्याथी लोकोए, वाडा बांधी तेमां बकरां पकडा कर्या जेवुं थयुं छे. तेनी संख्या वधी गई अने मूळवार्ता लोको विसरी गया

छे, ए खरूं छे. पण विद्यानो प्रकाश थयेथी ए अंधकारनो अनायासे नाश थवानो छे, अने भरतखंडी आर्य लोकनो वेदोक्त एक ज वर्णाश्रमधर्म छे, ते दीपी नीकळवानो छे. तेनो शिरोभाग उपनिषदो छे, जेमां जे पुरुषार्थ कह्यो छे, ते सर्वोपरी उच्च होवाथी तेने पामवा; महाशय पुरुषोए विविध मार्गो शोध्या छे. आजसुधीमां अधिक भागना पण्डित महात्माओए स्वीकार कर्या उपरथी तथा निर्भयपणे प्रसिद्ध थई देशपरदेशना पण्डितोनी कसोटीए चड्येथी पण जे सुखप्रद जणायो छे ए उपरथी, अनुमान करी जोता **उत्तरमीमांसा**नो मार्ग, परमधाम, परमपद, अथवा उत्तम स्थान पर्यन्तनो जणाय छे.

मूल्य आप्या विना पदार्थ मळतो नथी. जेम पदार्थ उच्च अने गुणप्रद होय तेम मूल्य अधिक. प्राणी मात्र जन्मथी ते मरणपर्यन्त जे जे सहे छे, करे छे, अने इच्छे छे, अने संक्षेपमां जेनी प्राप्तिसारु प्राणी पोतानुं जीवन, दुःखथी विंधाई गये सते पण, धारण करी रहे छे, ते पदार्थ सुख छे, एम सर्व विचारक तत्काल कही शकशे. सुख जीवननुं पण जीवन छे. सुखनी आशानो परिपूर्ण नाश थये, मनुष्यने, जीववुं झेर जेवुं लागे छे, अने देहनो त्याग करे छे.

एवुं जे सुख तेने संपादन करवा प्राणीमात्र सर्व प्रकारे श्रम करे छे. पण ए विश्वाकर्षक वस्तु एवुं तो उच्च छे के तेनी झांखी पण थोडाने ज थाय छे. मात्र तेनी छायाना आ जगत्नां मनुष्य प्राणी याचका भरे छे, पण पाछा हाथ खाली ने खाली देखे छे. कोई विरल भाग्यशाली जिज्ञासु मनुष्यो महाप्रयत्नथी एनी प्राप्तिने योग्य थाय छे. तेनां मुख्य साधन, विद्या, विचार, विवेक, विराग, षट्संपत्ति

अने मुमुक्षुता छे. विद्या आव्येथी ज आपणुं अंधत्व जाय छे. एटले विचार करी सन्मार्ग प्रति वळवानुं बनी शके छे, मार्गना मुख आगळ आवतां ज विवेकादि चार साधनो संपादित करवां अवश्यक छे. कारण सुखने किंवा मुक्तिने मार्गे जवानी योग्यता ए साधनना प्रतापथी ज छे. ए प्रकारे पात्र थई जे मुमुक्षु उत्तरमीमांसाने मार्गे चढे छे, अने हस्तपादरूप साधनचतुष्टय सहित थई आत्यंतिक ब्रह्मसुख पामवा जाय छे, तेने पराविद्या द्वारा, ए शास्त्रना आचार्य **वेदव्यास शंकरादिके** जे परमार्थनी किंवा उत्तम फल-नी-निःश्रेयसनी-प्राप्ति कही छे ते अलौकिका अने अनिरूपणीया छे. ए पराविद्या, सुखेच्छकने सुखस्वरूप सिद्ध करी आपे छे. तेनो आभास संक्षेपथी आ छेः-**यथार्थ ज्ञान, दुःखनी आत्यंतिकी निवृत्ति, अने केवल सुखनी अथा परमानंदनी प्राप्ति.**

परंतु ए उत्तमोत्तम सुखनी प्राप्तिने मार्गे जवाने प्रथम योग्य थवुं ज महाकठिन छे, तो ते उपर चढवुं तो तेथी पण कठिनतर होय ज. ए महत् अमूल्य वस्तु संपादित करवा अथाक श्रम, सहनता, अने विषयसुखना बलिदानरूपि मूल्य आपवुं पडे छे.

ए मार्गे नथी वळ्या एवा बहु प्राणीओनी केवी अवस्था छे? तेओ जन्मे छे त्यारथी सुखनी इच्छा तो करे छे, कारण के ते प्रकृतिजनिता छे. प्रथम बाल्यावस्थामां खावापीवाना अने रसवाला पदार्थोमां सुख जाणी ते प्रति प्राणी दोडे छे, पण तेमांथी सुख मळतुं नथी तेटलामां युवावस्था आवे छे, ते अवस्थामां स्त्रीधनादिकमां सुख जाणी ते प्रति मनुष्यो धाय छे, अने तेना भ्रमणमां एवा तो भ्रमो जाय छे के तेनो मोह

तेओने चढी जई, तेथी मरणपर्यन्त दीन अने दुःखी रही नाश पामे छे. संसारमां सदा रचीपची रहेवुं ए अज्ञाननुं बंधन न छूट्यानुं चिह्न, अने केवल दुःखनुं मूल छे.

जेओने सत्समागम थई विद्यानो लाभ थाय छे, तेओने दुःख ओछुं थवा मांडे छे. प्रथम सकाम अने पछी निष्काम सुकर्मो करे छे, तेम तेम तेओ सुखपात्र थवा मांडे छे. पछी पुरुषकार प्रमाणे आ जन्ममां के जन्मान्तरे तेओ कृतकृत्य थाय छे. आ योग्यताजनक साधक दशामां बहु विद्याओ जाणवानी होय छे अने बहु कर्मो करवानां होय छे. जेम भोजननी सिद्धिसारु अन्न, जल, अग्नि आदि अनेक साहित्योनी अपेक्षा छे, तेम तत्त्वज्ञानथी सुख मेळवतां पूर्वे बहु साहित्योनी अपेक्षा छे. ईश्वर ब्रह्माण्ड अने जीव, संबंधी विद्याओ तथा शुद्ध-स्थिर-मन अने सत्कर्मादि साहित्योनी आवश्यकता छे. विद्याथी अने सत्कर्मोथी अंतःकरण निर्मल थाय छे त्यारे ज ते उत्तम ज्ञानने ग्रहण करवा पात्र थाय छे. मोक्षसुखनी इच्छावान्‌ने शा शा विधि अने निषेध छे, अने उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ अधिकारी पूर्वसंस्कारप्रमाणे केवे केवे प्रकारे चिरकाळे वा अल्पतर काळे मुक्ति पामे छे; तेओने केवी शंकाओना अंतराय आवे छे; ते केवां समाधानेकरी निवाराय छे; यथार्थ आत्मज्ञान अने तत्त्वज्ञान थये तेओना केवा सिद्धान्त थाय छे; अने सर्व प्रकारे केवा सुखी थाय छे; ए आदि सर्व **विचारसागर**मां विस्तरथी आवशे, एटले ते विषये अत्र विस्तरनी अपेक्षा नथी.

उत्तरमीमांसाशास्त्र, जे वेदान्त नाम ज्ञाननुं शिखर कहेवाय छेः–' वेद ' नाम ज्ञान अने ' अन्त ' नाम शिरोभाग अथवा अन्तभाग छे, तेविषे आ देशनी अज्ञानदशामां ते

शास्त्रना यथार्थ ज्ञानथी अज्ञानी छे तेवा लोकोमां केटलाक कुतर्को चाले छे.

महान् उत्तम विचारो मंदबुद्धि समजी शकती नथी, तेवे समये पोतानी शक्ति मंद छे एम मान्या करतां, ते विचारोनी उत्तमतामां दोषारोपण करवुं तेने सुलभ लागे छे. एक सुगंधी पुष्पमांथी एकाधेपत्रिकानो पण कटको तोडेलो चोळेलो लई पछी तेमां कई सुवास नथी एम कहे अने बीजाने मनावया वाद करे, तेम अखिल ग्रंथमांथी एक बे त्रुटितमर्दित वाक्योने लई छिन्न भिन्न करी ते उपर वादविवाद करवानो चाल एक पास बहुजनोने पडी गयो छेः तेथी तेओ सदा दुर्भागी रहे छे. तेम बीजी पास ए सर्वोपरी शास्त्रने जाणनार माननार कहेवरावनारा अज्ञान, काचा, अने केटलाक तो कुपात्र लोको, पोताना दुष्ट स्वार्थने फावतां वाक्योने पकडीने तेनो दुरुपयोग करी, आखा शास्त्रने डहोळी नांखी तेना उपर कलंक लावे छे; तेथी जेम माटीना काचा घडामां दुर्गंधी पदार्थ भर्या पछी सर्वनुं जीवन निर्मल जल तेमां भर्येथी, ते अपात्र घडो भागी जाय अने जलने मलिन करी नाखी, तेमां बीजा लोकनी अनास्था उत्पन्न करे, तेम थयुं छे.

* * *

महासिद्धान्तो अने विचारो सामान्य बुद्धिमां विपरीत भासे छे, एटलुं ज नहि पण सारा बुद्धिमानोने पण, तेसंबंधि लक्षपूर्वक यथार्थ ज्ञान मेळवतां सुधी, तेमां विलक्षणता लागे छे. शास्त्र अज्ञातज्ञापक तथा अपूर्वबोधक होय छे. चंद्रमाथी ग्रहो अने तारा विशाल छे, ए वातो अमण मनुष्यना मनमां उतरती नथी, पण खगोलवेत्ताओने ए प्रमाणसिद्ध छे.

* * *

केटलाकोनुं एम समजवुं अने कहेवुं छे के,-वेदान्तशास्त्रना

मत अने विचारो प्रमाणे लोको चाले तो आ जगत्नो व्यवहार अटकी पडे, तथा तेमांना विचारो एवा छे के मनुष्य प्राणी ते प्रमाणे वर्त्ती शके ए अशक्य छे, इत्यादि.

खरु छे के वेदान्तना विचारो सर्वोपरी छे, अने ते स्वीकार करनार यथार्थवेदान्ती होय तो ते नीच कर्म करे नहि. परतु तेनी साथे ए पण खरु छे के, ए दशा सर्वने दुर्लभा छे, कारण उच्चगति करतां नीचगतिनु बल आ जगतमा अत्यत छे, तेनो सर्वने अनुभव होवो ज जोइए पण घादसारू कदापि एम मानिये के वेदान्तमार्गे बहु मनुष्यो वळी शके, तो पण तेम थयेथी जगत्ना व्यवहार अटकी पडे एवु अनुमान करवु ते खाटु छे जर्मनीमा प्रथम ज्यारे सर्व बालकोने विद्याभ्यास करावयानी, धाराथी अगत्य पाडी, त्यारे बहुजनानु एवु मत हतु के विद्या वध्येथी लोको युद्धना काममा अनुपयोगी थई जशे पण विद्याथी तेओ युद्ध करवा वधारे योग्य थया, ए, तेओ पाछळथी आस्ट्रिया अने फ्रान्स साथे लड्या ते काले सिद्ध थयु वेदान्ती विषयेनी शका पण उपरना जेवी छे बीजी कल्पना पण तेवी ज निर्मूला छे

* * *

मनुष्य जन्मे त्यार पछी आछामा ओछा पाचथी ते अगियार वर्ष सुधीमा विद्याभ्यासनो आरभ करवा, ते आछामा आछो नवथी ते वधता छत्रीश वर्ष सुधी ब्रह्मचर्य पाळी, चालु राखवो ए प्रमाणे विद्याभ्यास परिपूण कर्या पछी गृहस्थाश्रम करवा. तेमा सन्मार्गे धन, अधिकार, मान, प्रतिष्ठा मेळवी तेआनु सद्व्यय अने सदुपयोग करवा अने लाय हिताय गृहस्थाश्रम गाळवा, ते छेश पातानाः पुत्रने त्यां पुत्र

थई ते, पोतानो पुत्र कुटुंबनो भार वहे एवो थाय त्यांसुधी चालु राखवानी छूटी छे. पछी वानप्रस्थ थवुं. (आ अवस्थाए पाहोंचतां ओछामां ओछा आशरे पचास अने वधारे ८०-९० सुधी वर्षना वयनी गणना थाय छे.) ए अवसरे विद्या, प्रयोग अने अनुभवथी परिपक्व थई, फल आपवा योग्य थाय छे. त्यारे मनुष्य अधिकारी थई तत्त्वज्ञानने पात्र थाय छे. बीजा पक्षे कोइक विरल पूर्वसंस्कारी उत्तम अधिकारी होय तो ते वहेला पण विज्ञाननु पात्र थाय छे, पण ते विरल एप्रमाणे जगतना प्राणीओना अभ्युदयसारू प्रवृत्तिलक्षणवाळो, अने निःश्रेयससारु निवृत्तिलक्षणवाळो, एम उभयलक्षणवाळो वेदधर्म छे प्रवृत्ति स्वाभाविकी होवाथी तथा तेनु वर्णन उतरती पंक्तिना ग्रंथामा सारी रीतिए करेलु होय छे ते मुमुक्षुए प्रथम जाणेलु होवु ज जोइये एम मानी, प्रवृत्तिविषे मात्र संक्षेपमा लखी, उच्चपंक्तिना ग्रंथोमा अपूर्वविचारो उपर वधारे विस्तर करवामा आवे छे कारण जाणेली सामान्यवार्ता जणाववामा नहि, पण उत्तम विचार ज जणाववामा अपूर्वता छे

तत्त्वज्ञानना पात्र थवा बहुविद्याओ भणवानी अने असंख्य सत्कर्मो करवानी अपेक्षा छे कारण अंतःकरणनी शुद्धि, विद्या अने सत्कर्म विना, थती नथी, एवा वेदान्तनो सिद्धान्त छे अंतःकरण शुद्ध अने निश्चल थाय छे, त्यारे ज परमानंदनी प्राप्ति, जे वेदान्तनु फल छे, ते थाय छे वेदान्तमां कहेलु परमपुरुषार्थ पाम्या पछी एण कइ ज करवु नहि, एम नथी, तो तेनी पूर्वे साधनदशामा तो एम होय ज केम ? तेमा तो ए परम उत्तम ज्ञानने पात्र थवा, अंतःकरणनी शुद्धिसारु सर्व प्रकारे सत्कार्य करवा अवश्य आज्ञा करेली छे

ए विचार पूर्वे थई गयेला महात्माओनां प्रमाण अने दृष्टान्तथी सिद्ध थाय छे.

श्रीसद्गुणमूर्ति रामचंद्रजीए प्रथम मुमुक्षु थई ज्ञान प्राप्त करी, पछीथी लोकसंग्रह सारु गृहस्थाश्रम लई, अनेक पराक्रमो करी, राज्यभार वह्यो छे. तेम ज जनकविदेहीए पण राज्यभार सारी रीतिए वह्यो छे. तथा तेओना गुरु वसिष्ठादिए पण अनेक सत्कर्म कर्यां छे.

वेदान्तप्रस्थानत्रयमांनो ब्रह्मसूत्र नामे ग्रंथ श्री वेदव्यासे रच्यो ए पूर्णज्ञानदशामां रच्यो छे, अने तेओए ज 'महाभारतादि' विशाल ग्रंथो रच्या छे. तेम ज श्रीशंकराचार्ये उपनिषदादि प्रस्थानत्रयनां भाष्यो अने उपदेशसाहस्री आदि ग्रंथो गुंथ्या, तथा दिग्विजय महाश्रम लई कर्यो, ए सर्व, ज्ञान प्रकटित थया पछी लोकसंग्रहसारु कर्युं छे.

तेम ज वेदान्तप्रस्थानत्रयमांनो त्रीजो ग्रंथ "भगवद्गीता तेमां श्रीकृष्णे अर्जुनने यथार्थ ज्ञान समजाव्या पछी अर्जुने स्वधर्म समजी महाभारतनुं युद्ध कर्युं ए एक ज दृष्टान्त निःसंशय निर्विवाद रीतिए सिद्ध करे छे के, वेदान्तज्ञान मनुष्यने स्वधर्मनां सत्कार्य करवामां लेशमात्र पण बाधकारक नथी. ते कुकर्मथी टाळे छे अने सत्कर्ममां प्रेरी उत्तेजन आपे छे.

निष्काम कर्म करवा वेदान्तनो आशय जणाय छे, अने ते उत्तम छे. कारण तेथी परोपकारनां अधिक कर्म करवा उत्साह थाय छे. अवश मूर्ख अने पंडित सर्वनो, एक क्षण पण, कर्म करवां ए-प्रकृतिज गुण होवाथी, कर्म कर्या विना जतो नथी; पण तेमां अंतर ए छे के बहु लोक सक्त थई कर्म करे छे, अने पण्डित वेदान्तीओ असक्त रही लोकसंग्रहना उत्तम हेतुथी करे छे.

सर्व समजुओ मान्य करशे के सकाम नाम स्वार्थ अने फळनी आशाए काम करनार करतां, निष्काम नाम स्वधर्म समजी कर्मना फळनी स्पृहा विना जे काम करनार मनुष्य छे ए अधिक जनोनुं कल्याण करी शके छे, एटलुं ज नहि, पण तेवां निष्काम कर्म करनार उत्तम छे. सकाम कर्म करनारनी कामना पूरी थतां अथवा वच्चे कंई अंतराय आवी निराश थतां ते कर्म मूकी दे छे. एवी रीतिए काम करनारथी महत् कर्मो थतां नथी. तेवानो स्वार्थथी संकोचायली मर्यादा अति अल्प होय छे. निष्काम कर्म करनारना कर्मनी सीमा विस्तारवती अने उन्नता साथे सदाग्रहिणी होय छे. सकाम कर्मकर्त्ता परप्रकाश पदार्थ जेवा अने निष्काम कर्मकर्त्ता स्वप्रकाश पदार्थ जेवा छे. कामना कोई प्रकारे शिथिला थयेथी सकामकर्मकर्त्ता निर्माल्य थई जाय छे. निष्कामकर्मकर्त्ता सदा उत्तेजित रहे छे. ए उपरथी एम सिद्ध थाय छे के, अन्य करतां वेदान्ती सारां कर्म करवा अधिक योग्य छे. कोइएक पक्षीने बंधन बांध्युं होय ते थोडाकमां उडी तरफडी पेला बंधनने लीधे पाछुं ज्यां हतुं त्यां ने त्यां आवी बेसे छे, तेवो सकाम कर्मकर्त्ता छे. निष्काम कर्मकर्त्ता छूटा अने स्वतंत्र उच्चगामी छे.

ईश्वरमां अने सर्व जीवोमां सर्वगत चेतन एक छे, एथी अद्वैतस्थापन थाय छे. अंतःकरण शुद्ध थई यथार्थ ज्ञान थये जीवनो जीवभाव जई सर्वात्मभाव थाय छे, अने बंधना नाशेकरी स्वतंत्र विदेहकेवळ थई सच्चिदानन्द ब्रह्ममां एकता पामे छे. ए वार्ता बहुजनोने बुद्धिमां बेसती नथी. अने तेमां तेओनो दोष पण नथी. ए सर्वोपरी परम रहस्य सिद्धान्त अति सूक्ष्म छे, अने संस्कारीओथी ज समजाय छे. कोई प्रजापीडक निर्दय राजानी रंक दासजेवी प्रजाने,

प्रजातंत्र राज्यनी प्रजानी स्वतंत्रताविषे अने सुखविषे समज पडवी कठिन छे, तेना करतां पण उपरनो सिद्धान्त कठिनतम छे, ते संस्कारी मनुष्यो संप्रदायपूर्वक समजवा महाप्रयत्न करे छे त्यारे ज समजाय छे.

महान् सिद्धान्तो संप्रदायपूर्वक अनुभवी ज्ञानीओ पासे शीखवानी अपेक्षा छे. नहि तो अर्थना अनर्थ समजाय अने कुमार्गे चढी दुःखी थवाय. आगगाडी अने आगबोट दूरदेश पहोंचाडवाने बहु उपयोगिनी छे, पण तेने योग्य मार्गे चलावबानी कला जाणनारा नायक विना आपणे तेमां बेशी गमे ए मार्गे चलावी इष्ट स्थले जवा नीकळिये तो नाश पामिये. पारमार्थिक शास्त्रो पण तेना ज्ञाताद्वाराए अत्युपयोगी अने परमपुरुषार्थ प्रति पहोंचाडे छे. समुद्रनुं जल, पीनारने खारुं लागे छे, पण ते वर्षाद्वारे आपणने मेघ आपे छे, त्यारे मिष्ट होय छे, तेम विवेकी ज्ञानीद्वारा आपणां ज शास्त्रो मिष्ट लागे छे.

सत्शास्त्र, गुरु, अने शिष्य एओनी त्रिपुटी, पदार्थ, प्रकाश, अने नेत्र आदि इन्द्रियोनी त्रिपुटीने मळती छे. पदार्थ उपर प्रकाश पडे अने आपणे नेत्रे देखता हइये तो यथार्थ ज्ञान थाय छे. ए त्रणमांथी एकनी पण खामी होय तो यथार्थ ज्ञान थतुं नथी.

निःसारसंसारसागरमां गुरु त्रण प्रकारना कह्या छे. एक पथरा जेवा, जे पोते बूडे अने पोतानो आश्रय लेनारने बूडाडे; बीजा पत्र जेवा, जे पोते तरी शके पण बीजाने तारी शके नहि, त्रीजा नौका जेवा, जे पोते तरे अने बीजाने पण तारी शके. एम कनिष्ट, मध्यम, अने उत्तम गुरु होय छे; ते उत्तम गुरुद्वारा ज्ञान यथार्थ मळी शके छे.

शिष्य पण त्रण प्रकारना होय छे. एक पामर ते धगधगता लोढा जेवा होय छे; जेना उपर उपदेशरूप जलना छांटा आवतां ते बळी जाय छे. बीजा विषयी ते पत्र जेवा होय छे; जेना उपर उपदेशरूप जलना छांटा आवतां ते मोती जेवा देखाय छे. शुक्तिमां (जेमां मोती थाय छे ते शीपमां) स्वातिजलनां बिंदु पडे छे तेनां मोती थाय छे एम मानी, त्रीजा मुमुक्षुओ शुक्ति जेवा गणाय छे, तेओ प्रति उपदेश सफल थाय छे.

जेम किरणालेख्यकलामां (फोटोग्राफीमां) सूर्यनां किरण, शुद्ध थई संस्कार पामेला निश्चल काच उपर, क्षणवारमां यथार्थ परिपूर्ण चित्र पाडे छे, तेम ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रिय उत्तम गुरु, शुद्ध थई संस्कार पामेला निश्चल अंतःकरण उपर यथार्थ ज्ञाननी प्रतिमा पाडे छे.

हाल जे शास्त्रोनी दशा थई छे तेमां शास्त्रोनो दोष नथी पण तेना अयोग्य दुरुपयोग करनारानो दोष छे. दूध जेवो पुष्टिदाता पदार्थ छे, ते एक जातना तावबाळुं मनुष्य पिये छे, तो तेने हानि करे छे, अने झेरी प्राणी पिये छे तो ते दूधनुं विष थाय छे, ए खरूं; पण तेमां दूधनो दोष नथी. पेला अपात्र पीनारनो दोष छे. एवा प्रसंगे जे दूधनो दोष कहाडे छे ते अज्ञानी गणाय छे. ते ज रीतिए कुपात्र मनुष्योना संगथी सत्शास्त्रना सिद्धान्तो विकारी देखाय तेमां ते सत्शास्त्रने दूषित गणनार, समजुओनी दृष्टिमां अज्ञानी गणाय छे. दुरुपयोग करनार कुपात्रोना दोषथी सत्शास्त्र, छे तेथी कदापि विपरीत देखाय, पण तेसारू विवेकीओए भमावुं जोइये नहि.

आ समयमां श्रेष्ठ विद्वानोना तरी आवता विचारोमां आम

गणाय छेः–मनुष्योमां स्वतंत्रता, समता अने बंधुता, एओनुं स्थापन थये बहु सुख मळशे; अने जगत्नुं कल्याण, संवृद्धिमां अने सफलता किंवा सार्थकतामां रह्युं छे. आ कालना सर्व पंडितोना प्रयत्न ए मार्ग प्रति वळी एकाग्र थता जाय छे. आजनी कसोटीए कसतां पण आपणां शास्त्रोना विचारो केवा कुंदन जेवा छे, ए विवेकथी वाचनारने तत्काल जणाई आवशे.

स्वतंत्रता संबंधमां आपणा भरतखण्डीय जनोना एवा उत्कृष्ट विचार छे के अवधि. प्राचीन अष्टावक्रगीतामां वदे छे केः—

"स्वातंत्र्यात्सुखमाप्नोति स्वातंत्र्याल्लभते परम् ।
स्वातंत्र्यान्निर्वृतिं गच्छेत्स्वातंत्र्यात्परमं पदम् ॥"

अ० १८ । ५०.

स्वातंत्र्य किंवा स्वतंत्रतानुं एवुं लोकोत्तर सर्वोपरि मूल्य आंक्युं छे. समता तथा बंधुता संबंधमां पण तेवा ज आत्यंतिक श्रेष्ठ विचारो छे.

वेदान्तना भगवद्गीता नामे विश्वमान्य ग्रंथमां वाक्य छे के—

"सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥

अ० ६ । २९

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः" ॥

अ० ६ । ३२

ए केटला श्रेष्ठ विचार छे. मनुष्यने मात्र भ्राता जेवा ज गणीने अटकवानुं नथी पण तेओने पोताना जेवा ज मानवा. हालना उपरि गणाता विचारथी पण ए वात केटली गुणीत

1 Liberty, Equality & Fraternity. 2 Progress and Fruit or Utility.

सर्वोपरि छे. बहुकरीने मनुष्यने (पोते परम प्रेमास्पद होवाथी) पोताना उपर जेटली प्रीति छे एटली कोइना उपर नथी. जेम शर्करा अने लोटआदिथी पकान्न थई ते मिष्ट लागे छे, ते शर्कराना संबंधथी छे, तेम अन्य प्रिय लागे छे ते पोताना संबंधने लीधे ज,–ते पदार्थ अनुकूल होय तो,–प्रिय लागे छे. ए सत्यताने मानसिक शास्त्र समजनार अने गंभीर विचार करनार समजशे. श्लोकमां सूचवेली रीतिए पोताना समान सर्व लोकने गण्येथी उपयोगी थई जे लोकहित थाय, एवुं बीजा कया विचारथी थाय एम छे? 'आत्मवत् अथवा स्वसमान सर्वने गणी समदर्शी थवानो, अने सर्वने सुखदुःख पोतानां समान थाय छे एम गणवानो,' ए वेदान्तनो सर्वोत्कृष्ट हेतुगर्भित अतिअर्थवान् पण अतिसूक्ष्माकार करेलो सिद्धान्त, ते समजी, ते प्रमाणे जो मनुष्यो वर्ते तो जगत्नुं केटलुं कल्याण थई सर्वत्र सुख वर्ते, ए समजवुं बहु कठिन नथी. एवा वेदान्तना विचारो प्रमाणे वर्त्ततां मनुष्य मटीने देव थवाय अने आ दुःखि जगत् सुखि स्वर्ग जेवुं प्रतीत थाय एम कहेतां कोण अटकावी शके एम छे?

संवृद्धि अने फल एनी तो वेदान्तमां सीमा ज नथी. वेदान्तनी संवृद्धि अने वेदान्तनुं फल ए तो 'न भूतं न भविष्यति.' आ जगत्मांना अन्य कोई देशना महान् पण्डितो एटली सीमा सुधी जई शकवा समर्थ थया नथी.

हाल एक डार्विन नामे पंडिते यूरोपखंडमां अनेक शास्त्रोनां साधनथी आवा विचार सिद्ध करावा मांड्या छे के, पूर्वे मात्र नीच योनिनां पशु प्राणी हतां तेनुं परिणाम अथवा संवृद्धि थतां ते वानर थयां अने वानर सुधरीने अथवा संवृद्धि पाम्येथी मनुष्य थयां छे; इहां आगळ आवी वातो अटकी छे.

आपणां शास्त्रोमां अनेक योनिओ कही छे. तेमां अनुक्रमे चढतां मनुष्ययोनिमां अवतार थाय छे. अने ते मनुष्ययोनिमां उत्तमोत्तम संवृद्धि अने फल केवां कह्यां छे ते जुवो. ते मनुष्ययोनिमां आवी जे मनुष्य विद्याभ्यास पूरो करी, सत्कर्मो करे, अने तेथी अंतःकरण शुद्ध थये ज्ञानमां पण उत्तम जे अध्यात्मज्ञान ते मेळवे तो, भगवद्गीताना १४ मा अध्यायमां कहे छे तेम तेनी पछली वधी उत्तम संवृद्धि थाय के 'ते भगवान् साधर्म्यने प्राप्त थई' नाम शुद्ध सत्त्वगुणी थई, परमेश्वरमां एकता पामीने सर्वोपरि सिद्धि अथवा मोक्ष पामे छे.

एथी केई संवृद्धि के फल वधारे होवा संभव छे? कोई नहि. स्थलसंकोचने लीधे अधिक विचार अने समाधानो अत्र न लखतां मात्र वानगी बतावी विरमवा अगत्य पडे छे. परमेश्वरमां एकता पामवानी वार्ता, भागत्यागलक्षणाथी यथार्थ न समजनारने, भडकावे एवी छे खरी, पण तेनी समज बहु सारी रीतिए 'विचारसागरमां' आपी छे, तेथी शंकाओनुं समाधान थशे. ए विचार परा भक्तिनुं शिखर छे. नवी रीतिए एनुं पृथक्करण अने एकीकरण करतां संक्षेपमां आम छेः—आपणामां उत्तमोत्तम जे भाग छे, ते सर्वव्यात परमेश्वरनो छे; अने आपणो मोक्ष थयेथी- ते भाग उपरनो आरोप दूर थई ते पाछो पोताना मूलमां एकता पामेलो प्रतीत थाय छे. हालमां ज एक (adiametre) सूर्यकलामापक अथवा सूर्यकलाधीन नामे एक यंत्र बनाव्युं छे. तेने सत्ता अने स्फुरण सूर्य आपे छे. तेमां सूर्यनुं तेज पछले प्रताप आवी तेने गतिमां राखे छे. ते यंत्र छूटी गयेथी तेमां आयेलां किरणो अथवा सूर्यनो प्रताप, सूर्यना महत् व्यापक

तेजमां एकता पाम्यो एम प्रतीत थाय छे. कइंक अंशे विदेह-मुक्ति पाम्येथी एने मळती. मुख ज्ञानीनो जीवभावनो वाध थई, आनंदघनब्रह्म सह एकता थाय छे. ए सर्वोत्कृष्ट परम एकता महापुरुषोना महाभिलापने योग्य छे.

एक बीजी वार्ता पण लक्षमां राखवानी छे के, कोई एक फल प्राप्त करवा, पूर्वे सूचव्या प्रमाणे अनेक साधनोनो उप-योग करवो पडे छे. कोई कइंक साधनथी अने कोई कइंक साधनथी फलनी प्राप्ति करी ले छे कोई स्थले जवुं होय त्यां, कोई पगे, कोई गाडामां, कोई गाडीमां, कोई वरुणाग्नि-रथमां, अने कोई विमानमां जाय छे. देशकाल वदलाए ते साधनोमां फेरफार पडी जाय छे. ते रीतिए परमधामे पहो-चवा सारु जे साधनरूप विचारो आपणां शास्त्रोमां कहेला छे तेमां देशकाल वदलातां फेरफार थया छे अने थशे. केटलांक साधन निर्बल के अयोग्य प्रतीत थशे. परंतु सर्व विवेकी वाचनाराओए वेदान्तशास्त्रना ग्रंथ वाचतां एक वार्ता लक्षमां राखवी के, ते समये प्रचलित विचारोमांना बाधक विचारोने खंडवा अने सारोने पुष्टि आपवा केटलुंक खंडनमंडन होय छे. केटलोक लेख मात्र शिष्योनां मनमां जे शंकाओ होय छे तेना समाधानार्थे शिष्यदृष्टिए ज लखायो होय छे, इत्यादि. तेमां आवता विचारोने साधन अने साध्य एवा वे भागमां वहेंची नांखवा; तथा तात्पर्यज्ञानसारु उपक्रमोपसंहारादि षड्लिंग कह्यां छे ते लक्षमां राखी विवेकथी वाचवुं एटले विरोधाभास दूर थशे.

वेदान्तशास्त्रना ग्रंथो वाचतां वळी एका वार्ता सर्वे सज्ज-नोए अवश्य ध्यानमां राखवानी छे के:-तेमां त्रणे कालना-भूत, वर्तमान अने भविष्यत्‌ना-विषयोविषे लखेलुं होय छे.

तेमां मायानी अनर्गला अने अनिर्वचनीया शक्तिनां विचित्र कार्यो छे, ते विषे जे जे लखेलुं छे ते ते, वादविवाद अने चर्चा थतां जे ओछुं बाधकारक लाग्युं छे ते लख्युं छे. कारणना गुण कार्यमां आवे छे ए न्यायप्रमाणे अचिन्त्या अने अनिर्वचनीया मायाशक्तिनां कार्यो पण अतर्क्य अने विचित्र छे. अर्थात् बहुरूपिणी मायानां अनंत कार्यविषे निर्णय थई शकवो स्वभावथी ज अशक्य छे. ए आदि वेदान्तनो सिद्धांत छे. एथी वेदान्तना ग्रंथ वाचतां महामायानां कार्यो विषे जे जे वार्ता आवे ते ते वार्ता सिद्धान्तनी छे, एम न समजतां अनिर्वचनीया समजवी. ए विवेक न जाणवाथी ज बहु शंकाओ अने चर्चा उत्पन्न थाय छे. पण वेदान्तनुं मर्म यथार्थ समज्येथी घणा विरोधाभास दूर थई जाय छे. वेदान्तनुं लक्ष्य, जगत् केम थयुं अने कया नियमोथी चाले छे, ए आदि अनिर्णेय वादमां उतरी निष्फल चर्चा करवानुं नथी, किन्तु मनुष्य कये प्रकारे नीच मटी उच्च थई शके छे; विद्या, सद्गुण, सत्कर्मथी, अंतःकरण शुद्ध थये, ज्ञानी थई, मनुष्य केवे प्रकारे पापथी मुक्त थई परमश्रेयः पामे छे, ए अनुभवसिद्ध करावी आपवानुं वेदान्तनुं मुख्य लक्ष्य छे; अने ते एवी निर्विवादरीतिए प्रतिपादित करे छे के, यथाविधि यथार्थ समजनार संस्कारी अधिकारीओने ते अनुभवमां आवी रहे छे. पाणीमां पडेला बुडता मनुष्यने, पाणीनो अने तेनो पाछळनो इतिहास जाणी कहेवो तेना करतां, तरवानुं साधन बतावयुं, तेथी ते तरीने सुरभूमिमां जई पहोचे ए प्रकार अधिक सफल छे. एवो वेदान्तशास्त्रनो विचार जणाय छे. एथी वेदान्तना ग्रंथो वाचतां मुख्य लक्ष्य शा शा छे ते सदा ध्यानमां राखवानी अगत्य छ

स्वाभाविक उच्च अने सर्वोपयोगी सर्व पदार्थ, जेवा के-सूर्यवर्षादि सर्वने समान होय छे परंतु योग्य पात्र होय छे तेमां तेओना वधारे अंश रहे छे, तेम वेदान्तशास्त्र पण सर्वने समान छे. तेना आचार्यनुं एवुं मत छे के,-साधनसंपन्न होय ते तेना अधिकारी छे, पछी ते गमे ते हो. अर्थात् जाति उपर आधार नथी पण योग्य गुण उपर आधार छे. एवो सिद्धान्त होवाथी वेदान्तनी छायामां आ जगत्नां योग्य मनुष्यप्राणी सर्व आवी शके छे. ते गमे ते पंथ पालतां हो पण जो तेओ सन्मार्गमां होय तो तेओ वेदान्तना मार्गमां छे एम गणी शकाय छे. जे जे शास्त्रो, जे जे विद्याओ, अने जे जे कलाओ अंतःकरणने शुद्ध करवामां उपयोगि होय, ए सर्व वेदान्तना आचार्ये पोताने उपयोगि गण्यां छे. जूदा जूदा प्रकारनां वासण मांजवा दरवा, माटी आदि जूदा जूदा प्रकारना पदार्थो काममां आवे छे, पक्वान्न तेथी उंचुं छे पण वासण मांजवाना काममां ते निरर्थक छे, तेम ज जे जे कोई अपर शास्त्रादि अतःकरणशुद्धि करी शके छे, अने ज्ञान आपी शके छे ते ते, परोक्ष अपरोक्ष, वेदान्तनां साधक छे. मनोहर, सुखद उच्चस्थानमां कोई परमधाम होय, एम वेदान्तमीमांसा शिखर उपर छे. ते उच्चस्थाने चडवा अनेक मार्गे अनेक पगथियां होय छे. उपर कह्या प्रमाणे जगत्ना गमे ते पंथना लोको, जो तेओ सन्मार्गे चडेला अने सद्गुणी होय तो तेओ, अने ईश्वर माननार सर्व आस्तिक भक्तो, वेदान्तमार्गीय ज छे. संक्षेपमां परम विज्ञान अने समस्तपुरुषार्थसिद्धिसाध ज्ञानोत्पत्तिकर जे जे छे ते ते वेदान्तसहायक छे.

नवी रीतिए कहिये तो आ देशमां आ राज्यमां कोइने 'एडवोकेट' थवुं होय, तेणे इंग्लिश भणी 'म्याट्रीक्युलेशन; एफ. इ.

ए. बी. ए; एल. एल. बी.' नी परीक्षाओने उत्तरवी जोइये; एटलुं थये 'एडवोकेट' नी परीक्षा आपवा ते योग्य थाय छे; पछी तेणे वरिष्ठ न्यायस्थानमां 'हाइ कोर्टमां' समागम सारु केटलांक वर्ष गाळवां जोइये. त्यार पछी तेनी परीक्षा थाय छे. तेमां पार उतर्येथी ते 'बारिस्टर' तुल्य 'एडवोकेट'नुं पद पामे छे. अने अन्ते न्यायाधीश थवा योग्य थाय छे. प्रथमथी ते अन्त सुधी तेणे दोषरहित रहेवुं जोइये, अने प्रत्येक पदवीए चडतां उत्तरोत्तर अधिक ज्ञान संपादन करवुं अने वतावबुं जोइये. ए प्रकारे करी योग्य थया पछी पण ते ज स्थिति राखवी जोइये. कोइ वेळा पण ते भ्रष्ट थाय एटले ते अपात्र ठरे छे. पण जो निष्कलंक रही पूरी निपुणता दर्शावे छे तो, न्यायाधीश थवा, अने प्रजातन्त्र राज्य होय तो तेना प्रमुख नाम सर्वोपरि थवानो पण, तेने संभव छे. एथी पण धधारे, वेदान्ती अर्थात् शिरोमणि ज्ञानी थवानी पात्रता अर्थे, मनुष्ये प्रथम अनेक योग्यता पामवानी आवश्यकता छेः कारण शिरोमणिज्ञान सर्वोत्कृष्ट छे, तेम तेने योग्य थवा पण सर्वोत्कृष्ट प्रयास करवो जोइये. संक्षेपमां वेदान्ती थवा प्रथम विद्वान्, सद्गुणी, साधनचतुष्टयसंपन्न थई सात्विकअंतःकरणवान्, थवुं जोइये एटली संवृद्धि जेनी थाय ते वेदान्ती थई अपरोक्ष विज्ञान पाम्येथी परब्रह्ममां एकता पामवा समर्थ थाय छे, अने जेना ज महात्माओ विदेहमुक्त थये सच्चिदानंदघनमां एकरसरूप थाय छे.

निश्चलकृत विचारसागर, वेदान्तशास्त्रनो प्रवेशक ग्रंथ छे. तेमां बहु उपयोगी, अद्भुत, स्वतंत्र, युक्तिप्रधान, अपूर्व सिद्धान्तो अने विचारोनो संग्रह कर्यो छे. ते प्रमेय ग्रंथ गणाय छे. तेमां घणी प्रक्रियाओ आणी

छे. ए ग्रंथ यथार्थ समजायो होय तो पछी अन्य उत्तम ग्रंथो समजावा सुलभ पडे छे. अने कथावार्त्ताओमां अनेक विचारो आवे छे तेने केम समज्येथी यथार्थ समज्या गणाय छे, ए जणाय छे. हाल स्मृतिपुराणो आदिनी कथाओना छिन्नभिन्न भागो सांभळी सामान्यबुद्धि बहु भ्रमी जाय छे. सर्व संस्कृत ग्रंथने बहुजन समानप्रभावना समजे छे. तथा परस्पर विरुद्धता जोई तेओने कंई सुझ पडती नथी. तेथी कंटाळी भोळा लोक होय छे ते बकरां पेठे कोई नवीन पंथना वाडामां पेशी जाय छे; अने पोताने वधारे पाका समजनाराओ, तेथी पछी सदा अभागी रहे छे. अग्नि, देशकाल प्रमाणे, लाभकारक अने हानिकारक बने छे. पाक करवामां, यंत्रादिनां कार्योमां, शीत ऋतुमां, अग्नि बहु उपयोगी छे. ते ज अग्नि रूमां के एवा ज शीघ्रदाह्य पदार्थोमां, आग थई वधे त्यारे अने एवा बीजा प्रसंगे, हानिकारक छे. एक ज अग्निविषे जूदा जूदा एवा प्रसंगोपात्त विरुद्ध विचारो थावो, तेनो उपयोग न करवा निश्चय करनारनी बुद्धि जेवी, शास्त्रोविषे लोकोनी बुद्धि थई जणाय छे. पण अवे विद्यावृद्धि थवा मांडी छे तेथो यथार्थदर्शी विवेकीओ निःसरसे एवी आशा छे.

'विचारसागरनुं' भाषान्तर बहु करी शब्दशः कर्युं छे, तेनां अनेक कारण छे. मुख्य ए पण छे के, तेमांना शब्दो जाणवानी बहु अपेक्षा छे. घणा शब्दो पारिभाषिक होवाथी बहु अर्थवाळा छे. तेवा शब्दो लक्ष्मां होय तो श्रोताओने, अने अभ्यासीओने आगळ वधतां बहु सुलभ पडे छे. उत्तम विचारवाहक शब्द पण सबल होय तो ज अर्थ सरे छे, राजटंकशालामां छपायलुं नाणु सर्व स्थले चाले छे.

अने तेथी वाञ्छित फल मळे छे. तेम ते उच्च विचारो उत्पन्न करनारे जे शब्दो चलणी करेला ते ज शब्दो रहेवाथी सर्वने बहु प्रकारना लाभ छे. ए आदि कारणोथी मूलने अनुसरतां, कोई कोई प्रसंगे वाक्ययोजना कदापि क्लिष्ट जेवी लागे, परंतु आद्यंत अविरुद्ध रहेवा सारु, छे तेम ज रहेवा देवुं सुतर लाग्युं छे. विचार नवीन अने उत्तम होवाथी, शब्द करतां, विचारनी कठिनता वधारे छे. परंतु तेमांना उत्तम बोध उपर जेटलो परिश्रम लेवाशे तेटलो सफल थशे अने बहु सुखदाता निवडशे, एम अनुभवथी परमश्रेयःसाधकोनुं कहेवुं छे, ते, विचारसागरमां प्रवेश करनार अभ्यासकोना हाथमां, तेमांनां रत्नो आवतां जशे तेम तेम, तेओने साक्षात् थशे.

अनेक जातिना रोग उपर अनेक ओषधो होय छे. रोगनुं निदान जाणी चिकित्सा करे-रोगने परीक्षी योग्य औषध आपे तो ते रोगनुं निवारण थाय. रोगी रोगनां कारणादि जाण्या विना पोतानी मेळे गमे ते औषध लई गमे तेम खाय तो विपरीत परिणामनो बहु संभव. तेम प्रवेशकोने संसारदुःखरूप रोगथी मुक्त थवा गुरुरूप निदानचिकित्सक वैद्यनी अगत्य छे. एथी शास्त्रमां प्रवेश करनारे योग्य पाठको पासे शिखवानुं पूर्व कह्या प्रमाणे लक्ष राखवुं. आ भाषान्तर करनारे ब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्री आनंदगिरि पासे विचारसागर विचार्यो हतो. तेओए कोइक कोइक कठिन स्थले बहु सारी रीतिए समज आपी समाधान कर्यां हतां, तेओनो भाषांतरकर्ता उपर बहु आभार छे.

अन्ते ईश्वरने प्रार्थना छे, केः-

(शार्दूलविक्रीडित.)

दे विद्यानी विभूति ईश्वर करो, सर्वा अविद्या परी,
सत्कर्मे फलनो सुयोग करतां, देजो मति पांशरी;
थै अभ्युदित आ जगत सुविचरे वेदान्तमार्गे सदा,
पामे मुक्ति, स्वधर्म सिद्ध करी, सौ, अत्यंत जे सुखदा.

( ) एवा चिह्न वच्चे जे जे विचारसागरमां लखवामां आव्युं छे, ते भाषान्तरकर्त्ताने अपेक्षित लागेल भाग अथवा पर्याय शब्द उमेरेला छे, एम समजवुं. पण [ ] एवा चिन्ह वच्चेनुं जे छे ते व्याख्यानरूपे लखेलुं निश्चलदासनुं ज छे. वाक्यमां जे शब्द अवधारणीय छे,- जे शब्द उपरि अधिक लक्ष आपवानुं छे-ते शब्दना प्रति-अक्षर विभिन्न छे जेम प र मा त्मा.

मुंबइमां प्रख्यात व्यास जयकृष्ण,-जेओ एक उत्तम वक्ता छे अने वेदान्तनी कथा बहु सारी करी शके छे तेथी बहु गृहस्थो वेदान्तना श्रोता थया छे, तेओ-तथा बीजा पंडित श्री पीताम्बरजी नामे छे. तेओ पण विचारसागर सारी रीतिए समजाववा समर्थ छे. जिज्ञासुओए तेओना जेवा पासे प्रवेश करवो उचित छे.

रा० हरिवल्लभदासे आ ग्रंथ मुद्रायंत्रमां मुद्रांकित थतो हतो ते संबंधमां श्रम लीधो, छे तेसारु अत्र आभार मानवामां आवे छे.

मुंबई, सं० १९३२. श्रावण वदि ८.

श्रीभगवत्पादाचार्यविरचितं

प्रातःस्मरणम् ।

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वं
सच्चित्सुखं परमहंसगतिं तुरीयम् ।
यत्स्वप्नजागरसुषुप्तमवैति नित्यं
तद्ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसंघः ॥ १ ॥
प्रातर्भजामि मनसो वचसामगम्यं
वाचो विभान्ति निखिला यदनुग्रहेण ।
यन्नेतिनेतिवचनैर्निगमा अवोचु-
स्तं देवदेवमजमच्युतमाहुरग्र्यम् ॥ २ ॥
प्रातर्नमामि तमसः परमर्कवर्णं
पूर्णं सनातनपदं पुरुषोत्तमाख्यम् ।
यस्मिन्निदं जगदशेषमशेषमूर्तौ
रज्ज्वां भुजंगम इव प्रतिभासितं वै ॥ ३ ॥
श्लोकत्रयमिदं पुण्यं लोकत्रयविभूषणम् ।
प्रातःकाले पठेद्यस्तु स गच्छेत्परमं पदम् ॥



श्री

निश्चलदासनुं जीवनचरित.

दुहरो.

गृह-कुलॅ-ग्रामॅ-स्वदेश दीप विविध अधिक गुणवान्।
विरल जगद्दीप वन्द्य ते परमतत्त्वविद्वानॅ.

महापुरुषोनां जीवनचरित प्रकाशवत् छे. ते साधने करी बहु पदार्थो स्पष्ट थाय छे, एटलुं ज नहि किन्तु प्रकाशतुल्य पुनः ते जीवनप्रद अने पुष्टिकर तथा वृद्धिकर छे. सर्व मनुष्योनो स्वभाव अनुसरण तथा अनुकरण करवानो होवाथी तेओ ज्ञात-अज्ञात कोइकोइना अनुयायी थया विना रही शकता ज नथी. पछी ते अनुसरणीय मूर्ति विद्यमाना हो किंवा नामशेषा हो. पुराणोमां तथा इतिहासोमां महात्माओनां चरित आवे छे, ते पूर्वेना देशकालने अने अधिकारीओनी रुचिने अनुकूल हतां. जीवनचरितनो मुख्य हेतु आ छे के,-निरूपित महात्मानी प्रतिमा जोई तदनुरूप थवा भवित्री प्रजा प्रयत्नवती थाय. तेवी गुणदोषवती उपयोगिनी अनेकाकारिणी प्रतिमाओ पुराणादिमां गुणज्ञोने प्रत्यक्ष प्रतीता थाय छे. परंतु कालमां अने अधिकारीओमां भिन्नता आवतां, तथा केटलाक नवा संस्कार थतां, तेवी प्रतिमाओमां अनेक कारणोथी सामान्य लोकनी दोषदृष्टि थवा मांडी, पथी तेनो यथेच्छ उपयोग थाय नहि ए स्वाभाविक छे.

प्रस्तुत देशकाल-अधिकारी सारू कइंक अन्यरूपरंगवती

प्रतिमाओ अपेक्षिता छे, अने तदनुसार संपूर्ति थवा मांडी छे अने थशे एम आशा छे.

आ **विचारसागर** अने **वृत्तिप्रभाकर** रूप बहु उपकारक, बहु प्रसिद्ध, अने शास्त्रसंमत ग्रंथोना कर्ता श्री **निश्चलदास** छे. तेओ पंजाब देशमां विक्रम संवत १८४९ ना श्रावण वदि ८ कृष्णजन्माष्टमी जेवी पुण्यतिथिमां धणाना नामे ग्राममां जाटज्ञातिमां अवतर्या हता. तेना पितानी रंकस्थिति हती. ते पितानुं नाम 'मुक्तो' हतुं. **मुक्तानो** स्वग्राममां निर्वाह न थयो तेथी विद्वत्प्रसूतिनी स्त्रीना मरण पछी त्रिवर्षना निश्चलने स्कंधउपर लई निर्वाहार्थ भटकता ते दिल्लीमां आव्या. त्यां दादुपंथवाळानुं स्थान छे. तेमां अमरदासजी नामे साधु ते वेळा अधिकारी हता, तेओना चरणने शरण गया निश्चलदासने पण ए ज स्थानमां राखी साधुनी दीक्षा अपावी. निश्चलदासनो विद्याभ्यास पण ए ज स्थानमां आरंभायो. चतुर्दश वर्षना वय सुधी ए ज गुरुस्थानमां निश्चलदास सेवा अने विद्याभ्यास करता रह्या.

---

१. गूर्जरात पाटणना गोसाई नारायणभारती, निश्चलदासना समकालीन स्वामी स्वरूपानन्द नामे साधुने मळी पूछी लखे छे के, 'ते गाम दिल्लीथी छत्रीश गाउ पश्चिम दिशामां बागर देश विषे छे, तेमां मुख्य वस्ती जाट लोकोनी छे. 'मुक्तो' नामना जाटने त्यां 'नेचल' जन्म्यो हतो. तेनी माता पछी त्रण वर्षे सद्गता थयां हतां; अने पिता मुक्ताराम एवुं नाम धारण करी दादुपंथी साधु थया हता.

२. कोई कहे छे के, पूर्वाश्रममां ए दादुजी अमदावादना नागरब्राह्मण हता. कोई कहे छे के, ए दादुजी पूर्वे लोधीराम नामे एक नागरगृहस्थने साभ्रमतीनदीमां तरती पेटिकामांथी प्राप्त थया हता. तेओना नैसर्गिक उच्च संस्कारोथी तेओनामां असाधारणी शक्ति अभिव्यक्त थई हती. तेओ एक सरस कवि अने भक्त गणाय छे, अने तेओनो प्रभाव एवो हतो के तेओना नामनो पंथ चाल्यो छे.

निश्चलदासमां विद्यासंपादन करवानी अभिरुचि असाधारण प्रकटिता थई. ते विद्याभ्यासनी स्वाभाविकवृत्तिना वेगनो प्रवाह एवो प्रबल हतो के, तेने जोई कोई पण दुर्दर्शी पुरुष त्वरित अनुमाने के, ए वृत्तिनो वेग तेने रत्नाकर सागरनो संगम अवश्य करावशे. अने तेम ज थयुं हतुं.

ए सन्धिमां स्वप्रामना स्वरूपानन्द नामे एक परमहंसनो समागम निश्चलदासने दिल्लीमां ज थयो. तेओमां परस्पर ममता थई. दिल्लीमां अधिक अभ्यासनी अनुकूलता न दीठी तेथी तेओ बंनेए संकल्प कर्यो के, विद्याना मुख्य स्थानमां गया विना विद्यानी यथेच्छप्राप्ति दुर्लभा छे. अन्य स्थानमां अधिक प्रयासे न्यूनफल मलवुं पण कठिन छे. तेओनी दृष्टि सहसा विश्वनाथनी काशीपुरी प्रति थई. जे भागीरथी पतितपावनी गंगाना तीर उपर शोभा पामी रही छे, अने ज्हां एक समये विद्याधीश हरि अने हर स्वतः परमतत्त्वज्ञानना संवाद करता, अने लोकोने मुक्ति आपता तेथी ते मुक्तिपुरी नामे पण प्रसिद्धा छे. एम एक कवि कवे छे.—अने ज्हां अजी पण विद्याना उपासको-विद्यादाता अने विद्याग्रहीता-विरल पण विद्यमान होय छे. कोई कोई मठमां शान्त महान्त अहेतुक दयासिंधु ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रिय जीवन्मुक्त सन्तो, परार्थे शरीरने प्रारब्धशेष भोगवावता, मनने सदानन्दमां मग्न राखता, अने लोकोने सन्मार्गे प्रेरता, वसे छे. तेओ मुमुक्षुओने सन्तापमांथी तारवा तत्पर होय छे. इत्यादि सांभळेलुं ते. स्मरणमां लावी स्वरूपानन्दना संगतिमां निश्चलदासे मुक्तिपुरी काशी प्रति प्रयाण कर्युं.

निश्चलदासने काशीमां आवतां जणायुं के-अन्य स्थलना जे पण्डितंमन्यो ते काशीवासी मूर्खमन्यो समान

पण नथी होता, पण लोकोक्ति छे ए सत्यमूलक छे. निश्चलदासना वयादिना प्रमाणमां तेओ दिल्लीमांना साधुओना पठितवर्गमां गणाय एटलुं जाणता हता; परंतु ते कंई ज न हतुं, एवुं निश्चलदासने प्रतीत थयुं. सद्बुद्धिमानोने पोतानी न्यूनतानुं भान ए अभ्युदयनुं सोपान थाय छे, ए यथार्थ छे. निश्चलदासे प्रथम महात्मा विशुद्धानन्दजीना स्थानमां जवा मांड्युं. त्यां सत्समागमीओना परिचयथी निश्चलदासने स्पष्ट थयुं के, पोतामां अजी शास्त्रनुं श्रवण करवा जेटलो पण अधिकार नथी, तो अध्ययन तो दूर ज रहे. एवो सद्बुद्धि थतां आरंभथी ज अभ्यास करवानो निर्णय करी ते सारू यथाशक्य व्यवस्थानो प्रयत्न करवा मांड्यो. अन्ते धुरंधर पण्डित काकारामजीना अनुचर थई रही अवकाशसमयमां विद्याभ्यास करवा निश्चलदासे निश्चय कर्यो. जे काकाराम पण्डित, श्रीशंकरानन्दकृत आत्मपुराण नामे ग्रंथ उपर उत्तम टीका रची छे ए आदिथी अजी पण बहु प्रख्यात छे. ए पण्डित पासे बहु विद्यार्थीओ विद्याभ्यास करता. निश्चलदासनो उत्साह अने स्वाश्रय अने निश्चय कंईक विलक्षण हतां. प्रथम काकारामजीना शिष्यो पासेथी कोशव्याकरणादि साधनग्रंथोनो अभ्यास आरंभ्यो. निश्चलदासमां असाधारण शक्ति जोई शिक्षक प्रसन्न थाय ए स्वाभाविक हतुं. यथाविधि साधनशास्त्रो संपादन करी, पछी साध्यशास्त्रोमां प्रवेश कर्यो. विद्या सफला थाय एवा आशाजनक शिष्यो प्रति विद्यागुरु प्रसन्न थाय छे ए तो प्रसिद्ध ज छे. काकारामे पण निश्चलदासने उत्तेजन आप्युं. काकारामजी पासे बहु शिष्यो हता. त्यां षड्शास्त्रोनो अभ्यास प्रचलित हतो. काकारामना अन्वर्थ अनुचररूपे निश्चल-

दास रहेता. पछी शिष्यो पृथक् पृथक् शास्त्रोनुं अध्ययन करता होय त्यारे अध्यापक काकारामनी छायामां अनुचर निश्चलदास पण होय ज. निश्चलदासनी धारणाशक्ति उत्कृष्ट होवाथी यथाविधि शास्त्रधारणा करवा लागी. गुरुना प्रसादथी शिष्यना सामर्थ्यमां विद्यानो विस्तर यथेच्छ थयो. न्यायशास्त्रनो अभ्यास दामोदरशास्त्रीसमीप निश्चलदासे कर्यो हतो.

पछी वार्ता चाले छे के, एक समये केटलाक पंडितोनी सभा मली हती. त्यां नाना प्रकारना संवाद थता हता. तेमां एक कठिन प्रसंग उपर कोई समाधान करी शक्युं नहि. निश्चलदास पण त्यां एक श्रोतारूपे गया हता. तेओए नम्रतापूर्वक आज्ञा मागी ते प्रसंग संबंधना शास्त्रसंमत विचार ए सभाने समर्पण कर्या; तेथी सर्वना मननुं समाधान थयुं. पछी तत्रस्थ पण्डितो सानन्दाश्चर्य पाम्या; अने काकाराम पण्डितनी कीर्ति अधिक विस्तरी. लोको कहेवा लाग्या के, जे वेदशास्त्रसंपन्न स्वामीना अनुचरनी स्थितिमां रही निश्चलदास जेवा शक्तिमान् थवाय, ते स्वामीनी स्वीया शक्तिनी सीमा कोण कली शके.

ते समये प्रख्यात तुलसीदासजी काशीपुरीमां मुमुक्षुओने वेदान्तशास्त्रनुं श्रवण करावता, एक दिवसे मायानी–अविद्यानी–अज्ञाननी–'आवरण' 'विक्षेप' शक्ति संबंधी प्रसंग आव्यो. ते प्रसंग चर्चतां एवो प्रश्न थयो के, ईश्वरमां ए आवरणविक्षेपशक्तिओ छे के नहि. कोई कहे के ईश्वरमां आवरणशक्ति तो नथी परंतु विक्षेपशक्ति छे. ए अवसरे निश्चलदास पण श्रोतामंडलमां हता. तेओए तुलसीदासनी

अनुज्ञा मागी, पछी सारो शास्त्रार्थ कर्यो के सर्वने समाधान अने प्रसन्नता थयां.

अज्ञाननी आवरण अने विक्षेप नामे बे शक्तिओ छे. कार्यजननअनुकूल-कारणनिष्ठ सामर्थ्यने 'शक्ति' कहे छे. अज्ञान ए आवरणशक्तिपकरी अन्तरूना द्रष्टा अने दृश्यना भेदने आवरे छे तथा बहिरूना ब्रह्म अने सर्गना भेदने आच्छादे छे, अने विक्षेपशक्तिपकरी ए ज अज्ञान, लिंगादि ब्रह्माण्डान्त विविधस्वरूपे करी विक्षिप्त थई परिणामने पामे छे. विक्षेपशक्तिने 'भ्रान्ति' पण कहे छे. ए विषये विचारसागरना अंक २०७ मां पण निश्चलदासे विचार करेल छे.

निश्चलदास बहु भाग्यशाली जणाय छे. तेओने विद्या संपादन करवानी जेवी तीव्रइच्छा हती तेवी अनुकूलतानो योग पण ईश्वरानुग्रहथी थयो हतो. सद्भाग्य विना सद्गुरुओनो समागम दुर्लभ छे. सद्बुद्धि थाय ए ज सद्भाग्यनुं प्रत्यक्ष चिह्न छे.

काशीवास करी शास्त्रनी संपत्तिथी तेओ विभूषित थया. विद्यासंबंधमां कईक आवो प्रकार छे. जे विद्यार्थी बहु प्रयास वते विद्यानी खानिनो (खाणनो) तलस्पर्श करवा, जे प्रमाणमां ते खानि खोदी नीचे संचरे छे, ते प्रमाणमां ते खानिमांना पदार्थनो उत्तम संचय करी शके छे. निश्चलदासजीए शास्त्रना तलस्पर्श माटे प्रशंसनीय श्रम कर्यो हतो, तेथी तेओनो संचय अति उच्च अने आकर्षक थयो हतो पछी असाधारणयोग्यतायुक्त थई, तेनो बहु जनोने लाभ आपवा स्वामी थई, निश्चलदासे विचरवानो विचार कर्यो. काशीस्थ महात्माओना आशीर्वाद सहित तेओ त्यांथी विदाय थया. अने यथायोग्य साधु थई उपदेश करवानो आरंभ कर्यो.

"आत्मानं पीडयित्वाऽपि साधुः सुखयते परं ।
आह्लादयन्नाश्रितान् वृक्षो दुःखं च सहते स्वयं ॥
परदुःखातुरा नित्यं स्वसुखानि महान्त्यपि ।
नापेक्षन्ते महात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥"

'जेम वृक्ष, आश्रितजनोने सुख आपतो पोते दुःख सहे छे, तेम साधु, पोताने पीडीने पण परने सुख आपे छे.

नित्य सर्वभूतोना हितमां रत, अने परना दुःखथी आतुर, एवा महात्मा साधुओ, पोतानां महत्सुखोने पण अपेक्षता नथी."

एवा गुणी साधु समीप अनेक शिष्यो आकर्षाई आवे ए स्वाभाविक छे. तेओनी कीर्ति बहु प्रसरवा लागी अने बहु विद्यार्थीओ आववा मांड्या.

तेओनामां ज्ञानग्रहण करवानी शक्ति जेवी असाधारणी हती तेवी ज ज्ञानदान करवानी शक्ति पण असाधारणी हती. तेओए षट्शास्त्रनो यथाविधि अभ्यास कर्यो हतो. परंतु परमपुरुषार्थप्रापक सर्वोपरी वेदान्तशास्त्र ज छे एवो तेओने निश्चय थयाथी, ते शास्त्र प्रति तेओनी अप्रतिमप्रीति हती. अन्य शास्त्रोनो अभ्यास दिवसमां अनुकूलतानुसार गमे ते समये शिष्योने करावता. परंतु वेदान्तशास्त्रनुं अध्ययन तो प्रातःकालमां ज चलवता. कारण जे वेला अन्तःकरण शान्त होय ते समये ज तत्त्वज्ञानना अलौकिक विचारोना संस्कार सारा थई शके छे. ए अनुभवसिद्ध संप्रदाय छे.

निश्चलदास विचरता विचरता दिल्लीमां गुरुस्थानमां आव्या. अने त्यां वेदान्तश्रवण कराववा लाग्या. तत्रत्य सामान्य साधुओने तेवा उत्कृष्ट विचारो समजवा जेटलो अधिकार न होवाथी, तेओनी रुचि यथेच्छ जोवामां न आवती. परंतु गुरुनाम अने गुरुस्थान उपर निश्चलदासनो भक्ति-

भाव अने ममता प्रशंसनीय अने अचल हतां; तेथी दादुपंथी साधुओनो उत्कर्ष इच्छी तेओमां ज्ञाननी वृद्धि करवा प्रयत्नशील हता. पोताना ग्रंथमां पण गुरुस्मरण दादुजीना नामथी ज करे छे. निश्चलदास, अने सुंदरविलास ग्रंथना कर्ता सुंदरदास, एओथी दादुजीना नामना अने पंथना महिमामां बहुवृद्धि थई छे.

एक दिवस निश्चलदासना विद्यार्थिशिष्यवर्गमां कलह थयो, तेमां अनेक पंथना साधुओ हता. एक विद्यार्थीए, बीजा दादुपंथी विद्यार्थीने कह्युं के, तारा गुरु तो कुकडा जेवा हता. एथी दादुपंथीने बहु विषम लाग्युं, अने ते प्रसंग निश्चलदास पासे न्याय थवा आव्यो. तेओनी गुणग्राहिणी बुद्धिए तेमांथी पण सार ज निःसार्यो; अने स्मितपूर्वक बद्या केः–'भाइ ! ए सत्य कहे छे. श्री दादुजीए बहुजनोने मोहनिद्रामांथी जगाड्या छे, तेथी ते पद पण अनुचित नथी.'

निश्चलदासजीनी विद्वत्ता तथा बोधशक्ति असाधारणी छे ए बहु प्रसिद्ध थयुं. ते उपरथी बुंदीना गुणज्ञ राजा रामसिंहे, निश्चलदासजीना सत्समागमनो अभिलाष कर्यो; अने यथोचित आमन्त्रण मोकल्युं. निश्चलदासजी श्रद्धालु राजानो भक्तिभाव जोई बुंदीमां पधार्या. निश्चलदासनो सत्संग राजा रामसिंहे श्रद्धापूर्वक करवा मांड्यो. तेओनी बहु प्रकारनी योग्यता अने साधुता अनुभवी राजानो भक्तिभाव उत्तरोत्तर वृद्धिगत थयो. राजा पोते उत्तम ग्रंथोनो अभ्यास करवा लाग्या, अने अखिल राजकुटुंब निश्चलदासमां गुरुभाव करी तेओना सद्बोध अनुसार प्रवर्तवा लाग्युं. निश्चलदासनी सूचनानुसार रामसिंहे अनेक सत्कार्यो अने सद्व्यय करवा मांड्या.

महाभारतना वनपर्वमां व्यासनारायण वदे छे केः—

"मोहजालस्य योनिर्हि मूढैरेव समागमः ।
अहन्यहनि धर्मस्य योनिः साधुसमागमः" ॥

'मूढो साथे समागम ए मोह दुःखना जालनुं कारण छे अने साधुनो समागम ए दिवसे दिवसे धर्मनुं कारण छे.' ए यथार्थ छे.

विद्वानोना दर्शन-श्रवणथी अने समागमथी बहु शुभ थाय छे. ए रामसिंह जेवा राजाने तो प्रत्यक्ष जेवुं ज होय. निश्चलदासना प्रसंगोपात्त केवल सूचन उपरथी ते राजाए देशदेशान्तरना पण्डितोनो समाज पण बुंदीमां भर्यो हतो; अने विद्वानोनो बहु आदरसत्कार करी प्रोत्साहन अने अभिनंदन समर्प्युं हतुं. सत्संगथी ए राजामां पण एवी उत्तम विद्या अने उच्चा योग्यता आवी हती के, पण्डितोए सभामां ए राजानी विद्यासंपत्ति परीक्षी, एकमते तेने विद्वाननुं पद समर्प्युं हतुं.

रामसिंह राजानी प्रार्थनाने तथा केटलाक अन्य शिष्योनी प्रार्थनाने स्वीकारी ग्रंथ रचवानुं सर्वोत्कृष्ट कार्य निश्चलदासे आरंभ्युं. पठनपाठनथी निश्चलदासनी विद्यानो एवो सुरस परिपाक थयो हतो के अवधि; एथी तेओना लेख पण उत्तम थाय ए स्वाभाविक छे.

निश्चलदासना मुख्य प्रसिद्ध ग्रंथ बे छे. विचारसागर तथा वृत्तिप्रभाकर. तेओए 'कठवल्ली' उपनिषद् उपरि संस्कृत भाषामां एक व्याख्यान लख्युं छे, अने वैद्यशास्त्रनो पण एक ग्रंथ रच्यो छे, एम कहेवाय छे. तेओए (२७) सत्तविंश लक्ष संस्कृत श्लोकोनो संग्रह करेल छे, अने ते संग्रह

१. निश्चलदासना समकालीन केवलाश्रम नामे साधुए एम कह्युं हतुं के निश्चलदासे ईशावास्य उपनिषद् उपर संस्कृत टीका करी छे.

कीहडोली ग्राममां निश्चलदास 'गुरुद्वार' छे तेमां विद्यमान छे एम जणाय छे.

विचारसागर ए प्रमेय ग्रंथ गणाय छे. ए ग्रंथ विक्रम संवत् १९०५ ना चातुर्मासमां रचायो हतो. तेमां वेदान्तनी मुख्यमुख्यप्रक्रियाओ बहु सरलतापूर्वक दर्शावी छे. तेनुं नाम 'विचार' नो 'सागर' एम छे तेथी तेमांनां सप्त प्रकरणोनुं नाम मुख्यनामानुसार 'तरंग' राख्युं छे.

प्रथमतरंगमां अनुबंधसामान्यनिरूपण नाम ग्रंथना अनुबंधचतुष्टय-(१) अधिकारी, (२) संबंध, (३) विषय, अने (४) प्रयोजन-एनुं वर्णन छे.

द्वितीयतरंगमां अनुबंधविशेषनिरूपण नाम ए अनुबंधचतुष्टयना निमित्तेकरी शास्त्राधार एकार्थप्रतिपादक अधिकरणना पंच अवयव-(१) विषय, (२) सन्देह, (३) संगति, (४) पूर्वपक्ष, अने (५) सिद्धान्त-दर्शाववा यत्न कर्यो होय एम प्रतीत थाय छे. तेमां विषय, पूर्वपक्ष, अने सिद्धान्त तो स्पष्ट कर्या छे.

तृतीयतरंगमां गुरुशिष्यनां लक्षण तथा गुरुभक्तिफलना प्रकारनुं निरुपण छे.

चतुर्थतरंगमां उत्तमअधिकारिउपदेशनिरूपण छे, अर्थात् उत्तमअधिकारि प्रति केवल ज्ञानना उपदेशेकरी, अज्ञान अने अज्ञाननां कार्योना उपाधिना संबंधना थएथी जीवत्वने पामेला साधनचतुष्टयसंपन्न उत्तम शुद्ध बुद्धिमान् मुमुक्षु अधिकारीने, महावाक्ये करी प्रत्यक्चैतन्यना ब्रह्मवेदनमात्रथी, अविद्यानी निवृत्तिद्वारा निरतिशयानन्द अद्वितीय ब्रह्मनी प्राप्ति थाय छे, ते प्रकार छे.

पंचमतरंगमां मध्यम अधिकारीनां साधननुं वर्णन उपा-

सनाना उपदेशनो प्रकार छे. मध्यम अधिकारीनो विहित-कर्मोना करणपूर्वक सोपाधि ब्रह्मना उपासनमां अधिकार गणाय छे. ते सारु गुरुवेदादि व्यावहारिक प्रतिपादनपूर्वक मध्यम अधिकारी अर्थे 'अहंग्रह' उपासनानो विधि कह्यो छे.

षष्ठतरंगमां मिथ्या गुरु वेदादि साधने मिथ्या जगत्नी निवृत्तिनुं वर्णन करी कुतर्कबुद्धि कनिष्ठ अधिकारी प्रति कर्म-उपासनानो प्रकार छे. तेमां अनेक शंकाओ अने तेओनां युक्तिपूर्वक समाधानो आप्यां छे.

सप्तमतरंगमां जीवन्मुक्तिनुं अने विदेहमुक्तिनुं वर्णन छे. अने ग्रंथनी समाप्ति थाय छे.

विचारसागरना चतुर्थतरंगथी गुरुशिष्यना संवादनी गाथा लखी छे. ए रूपकमां शुभसंतति नामे पिता कल्प्यो छे. तेने तत्त्वदृष्टि, अदृष्टि अने तर्कदृष्टि ए नामे पुत्रत्रयनी सारी सन्तति कल्पी छे. तेमां उत्तम अधिकारी तत्त्वदृष्टि छे. तेनी बुद्धि शुद्धसंस्कारवती अने महती छे. तेने सकृत् उपदेशे करी ब्रह्मभाव–ब्रह्मबुद्धि–थाय छे मध्यम अधिकारी अदृष्टि छे तेनी बुद्धिमां प्रथम कंइ संस्कार नथी तेम तेनी बुद्धिमां मलिनता पण नथी. तेने कालेकरी अधिकार प्राप्त थये ब्रह्मबुद्धि थाय छे. कनिष्ट अधिकारी तर्कदृष्टि छे. तेनी बुद्धिमां अनेक खोटा तर्कवितर्कोना विकारो थइ ते बुद्धि मलिना तथा अति चंचला थइ छे. तेमां विपरीतभावना थयां जाय छे. तेथी बहु प्रयासपूर्वक अनेक शास्त्र गुरुओए करी तेनुं समाधान थये निर्णय करे छे के, सकल शास्त्रनुं परम प्रयोजन मोक्ष छे, अने तेनुं साधन ब्रह्मबुद्धि या तत्त्व-ज्ञान छे. सर्व शास्त्रो साक्षात् अथवा परंपराथी ब्रह्मज्ञानना हेतु छे. ए शुभसन्तति राजानुं रूपक लखतां बुंदीना तत्रभवान्

महाराज रामसिंहजी लक्ष्मां होय एम अनुमान थाय छे.

विचारसागरमां जे जे प्रसंगो लख्या छे, ते ते सर्व शास्त्रसंमत अने प्रामाणिक छे. पूर्व महात्माओए जे जे उत्तम प्रसंगो संस्कृत ग्रंथोमां गुंथ्या छे, तेमांथी बहु विवेकथी सार तारवी अधिकारीओने अति उपयोगी थाय एवा प्रसंगो एकत्र करी संग्रहवामां आव्या छे. अने ते पण प्रायशः मूलना पारिभाषिक पद-पदार्थोमां ज लख्या छे. तेनी शैली-लेखनपद्धति-उत्तमप्रकारनी-गंभीरा, सरला अने शुद्धा छे. एटले अधिकारीनो अभ्यास वधतां तेने अन्यस्थ उत्तम विचारो पण बहु सुलभ थाय छे.

उच्च पंक्तिना संस्कृत ग्रंथ समजवामां विचारसागरने प्रवेशक ग्रंथ गण्यो होय तो योग्य गणाय एम छे. ए ग्रंथनां बंग भाषामां, महाराष्ट्र भाषामां, इंग्लिश भाषामां भाषांतर थयां छे. अने सर्वत्र एकमते तेनी प्रशंसा थाय छे. ते बहु स्थले शिलांकित अने मुद्रांकित थयो छे. अने तेनी बहु आवृत्तिओ थयां जाय छे. तेमां पण्डित पीताम्बरजीकृत टिप्पणी अने वृत्तिरत्नावली समेता मूलग्रंथनी आवृत्ति श्रीमत् शरीफ सालेमहंमदे मुद्रांकिता करावी छे ए उत्तमा छे.

आ देशमां तत्त्वज्ञान विषयना ग्रंथसह जे क्रियापद योजाय छे ते ग्रंथ 'वाचवो' एम नहि किन्तु ग्रंथ 'विचारवो' एम कहेवाय छे. ए यथार्थ छे. एवा उत्तम ग्रंथो विचार्येथी ज तेमांनुं सौंदर्य बुद्धिगोचर थाय छे.

वृत्तिप्रभाकर ए प्रमाणादिनो ग्रंथ छे. तेमां वृत्तिनां प्रमाणादि कारण, वृत्तिनुं प्रमा अप्रमादि भेदयुक्त स्वरूप, अने वृत्तिनुं व्यवहारसिद्धि तथा मोक्षसिद्धिरूप फल, ए त्रिविध पदार्थनुं निरूपण छे. एवो एक सिद्धान्त छे के, महावाक्यना

वृत्तिरूप प्रमाज्ञानथी विषयसहित अप्रमाज्ञानरूप बंधनी निवृत्ति अने परमानन्दनी प्राप्ति ए ज मोक्ष छे.

ए ग्रंथनुं नाम प्रथम वृत्तिदीपिका हतु. निश्चलदास बुंदीमां विराजता हता ते समये ए ग्रंथ तत्रभवान् महाराज श्रीरामसिंहजीनी वृत्ति अनुसार तेओनी ज प्रार्थनाथी रच्यो हतो अने त्यां ज छपायो हतो तेमा प्रथम सत प्रकाश हता.– (१) प्रत्यक्षप्रमाणनिरूपण, (२) अनुमानप्रमाणनिरूपण, (३) शब्दप्रमाणनिरूपण, (४) उपमानप्रमाणनिरूपण, (५) अर्थापत्तिप्रमाणनिरूपण, (६) अनुपलब्धिप्रमाणनिरूपण, (७) वृत्तिभेदनिरूपण, प्रसंगप्राप्त सत्ख्यात्यादि निराकरण प्रयोजक स्वत प्रमात्वप्रमाणनिरूपण. तेमां पश्चात् जीवईश्वरस्वरूप निरूपणपूर्वक वृत्तिप्रयोजननिरूपणसहित कल्पितस्वरूपनिरूपणनाम (८) अष्टम प्रकाश उमेर्यो अने ते ग्रंथने श्री **वृत्तिप्रभाकर** नाम आप्यु.

मीमांसा, न्यायवैशेषिक, साख्ययोगादि शास्त्रोना अनेक सिद्धान्त ग्रंथोमांथी उपयोगी प्रकाश लई विचारोपयोगी अनेक पदपदार्थ तथा प्रसंगोनो उत्तम सग्रह ए ग्रथमा सग्रह्यो छे, एवो एकत्र सग्रह बहु दुर्लभ छे निश्चलदासनी महती विद्वत्तानो ए प्रदर्शक छे.

ए ग्रथ सवत् १९१६ मां बुंदीकोटामां ग्रथित थयो हतो. ए वृत्तिप्रभाकर ग्रथनु गूर्जरातीमा प्रत्ययान्तर रा० साक्षर मणिलाल न० द्विवेदीए कर्यु छे.

निश्चलदासनु वक्तृत्व अपि तेवु ज उत्कृष्ट हतु तेओ योगवासिष्ठादि वेदान्तग्रंथोमांथी श्रवण करावता त्यां अनेक श्रोताओनो समर्द थतो, अने ससारना सतापथी सतत

ते श्रोताओ निश्चलदासना वचनामृतथी शान्ति अने संतोष पामी जता. अनेक शिष्यो विचारसागरनो अभ्यास निश्चलदास पासे ज करता. तेओ पण सिद्ध जेवा थता.

निश्चलदासनां दर्शन करनार मनुष्यो कहे छे के, तेओनुं शरीर कृश हतुं; पंचकेश धारण करता, मुख लंबगोल हतुं, शरीरमां ज्वरनी पीडा रहेती; रंक वा धनी, राजा वा प्रजा, पण्डित वा अज्ञ, सर्व उपर समभाव राखता; शिष्यवर्ग समीप सते पण देहोपयोगिक्रियाओ, स्वतंत्रतार्थे, स्वहस्ते ज करता; कटिप्रदेश उपर एक वस्त्र लपेटी राखता अने निरंतर स्वसंग्रहमांथी ग्रंथो विचारता.

एम कई काल भ्रमण करी प्रारब्ध भोगवी शुद्ध निश्चलदासना प्राण, दिल्लीमां गुरुस्थान विषे, विक्रम संवत् १९॰॥ ना श्रावण वदि ३० ने दिने मध्याह्नोत्तर, ७० वर्षना वये, लीन थतां उपाधिविनिर्मुक्त थई शुद्ध निश्चलदास विदेहकैवल्य थया.

दुहरो.

ज्ञानवीर, ऽने शूरवीर, दानवीर, धीरवीर
अनेक गुणवीर, ईश ! अहिं थाय मागिये चिर.



ॐ

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ श्रीविचारसागरप्रारंभः ।

प्रथमतरंगः ।

अथ अनुबंध-सामान्य-निरूपण.

१. (वस्तुनिर्देशरूप मंगल.)

दुहो

जे सुख नित्य प्रकाश विभु, नामरूपआधार;
जेने मति न लखे लखे, ते हुं शुद्ध अपार. १.

---

१. आ मंगलाचरणना दुहामां बहु गंभीर विचार अने अर्थ छे. समग्र ग्रंथ वांची प्रत्येक व्यावर्तक, विधेय, वा हेतुगर्भ शब्दना यथार्थ अर्थ जाण्या पछी एनां सौंदर्य, गंभीरता अने कारण विशेष जणाई आवशे. अहिंयां शब्दार्थ मात्र लख्यो छे.

जे (ब्रह्म) सुख (आनंद) छे, नित्य (सत्) छे, प्रकाश (चित्) छे. अर्थात् सच्चिदानन्द छे, विभु (व्यापक) छे, नामरूपनुं आधार (अधिष्ठान) छे, अने जे ब्रह्मने बुद्धि प्रकाशी शकती नथी, पण जे बुद्धिने प्रकाशे छे, अथवा जे ब्रह्मने (मलविक्षेपदोषवती) मति जाणी शकती नथी, (परंतु मलविक्षेप-दोषरहिता साधनचतुष्टयसंपन्ना शुद्धा) मति जे (स्वयंप्रकाश) ब्रह्मने (वृत्ति-व्याप्तिए) जाणे छे, एवुं जे शुद्धनाम, माया अने तेना कार्यरूप मलथी रहित अने अपार जे परब्रह्म, ते (प्रत्यगभिन्न ब्रह्म) हुं छुं. १.

मारुं (प्रत्यक् आत्मानुं ?) स्वरूप सागर जेवुं अपार छे, ते मारा प्रत्यक् आत्मस्वरूपभूत समुद्रनी, विष्णु, शिव, ब्रह्मा, सूर्य, चंद्र, वरुण, यम, शक्ति, कुबेर, अने गणपति ए सर्व लहरिओ (मोजां छे.) २.

जे कृपालु सर्वज्ञ ईश्वरनुं योगिलोक मनमां ध्यान धरे छे, ते ईश्वरनुं (माया) उपाधिए करी मारा (शुद्ध प्रत्यक् तत्त्व) स्वरूपविषे मिथ्या भान थाय छे. ३

मम अपार रूप अब्धिवत्, लहरी-विष्णु, महेश,
विधि, रवि, चंद्र, वरुण, यम, शक्ति, धनेश, गणेश. २.
जे कृपालु सर्वज्ञनुं, हृदय धरे मुनि ध्यान;
तेनुं थाय उपाधिथी मजमां मिथ्या भान. ३.
जे जाण्या विण थाय जगत्, जेम रज्जुमां साप;
नाशे अहि जग जे लहे, सोऽहं आपो आप. ४.
जेनो बोध चाही सुकृती, भजे राम निष्काम;
ते छे मम आत्मा सहि, कोने करूं प्रणाम. ५

२. (ग्रंथमहिमा.)

भर्युं वेदसिद्धान्तजल, जेमां अतिगंभीर,
ए **विचारसागर** कहुं, पेखी थाय सुखी धीर. ६.

जेम रज्जु (दोरी) जाणी ना होय त्यांसुधी ते रज्जुमां सर्प प्रतीत थाय छे, तेम जे ब्रह्मने जाण्या विना जगत् प्रतीत थाय छे, परंतु एम भ्रमथी देखाता सर्पनुं अने जगत्नुं अधिष्ठान जे रज्जु अने ब्रह्म, ते रज्जु जाण्येथी सर्पनी, अने ते ब्रह्म जाण्येथी जगत्नी भ्रान्ति नाश पामे छे, ते (अधिष्ठान परब्रह्म) हुं (प्रत्यगभिन्न ब्रह्म) स्वयं आत्मा छुं. ४.

जेनो बोध इच्छी पुण्यशील मनुष्य परमात्मारूप श्रीरामने निष्काम थइने भजे छे, ते श्रीराम ज मारो आत्मा (स्वरूप) छे. (माराथी भिन्न अन्य कोई वस्तु छे ज नहि तो) हुं कोने प्रणाम करूं? ५.

२. स्वआत्मानुं ज्ञान इच्छनार साधनसपन्न अधिकारीए ज्ञाननी सिद्धिअर्थ जे विचार कर्तव्य छे ते आ छे:—

कोऽहं कथमिदं जातं को वै कर्तास्य विद्यते।
उपादानं किमस्तीह विचारः सोऽयमीदृशः ॥

अपरोक्षानुभूतिः ॥ १२ ॥

हुं (जीव) कोण छुं (१), आ (जगत्) केम उपज्युं छे (२), एनो कर्ता कोण छे (३), अने एनुं उपादान कारण) कोण छे (४), एवो (सद्विचार) ते ज विचार छे. अर्थात् जीव, जगत्, ईश्वर, अने ब्रह्मविषयक परमपुरुषार्थप्रद ज्ञानना साधनरूप 'विचार' तेनो 'सागर,' जेमां वेदना सिद्धान्तरूप अमृत जल भर्युं छे—ते 'विचारसागर' नामक ग्रंथ.

सूत्र, भाष्य वार्तिक प्रभृति, ग्रंथ बहु सुरवाणी;
तथापि हुं भाषा करूं, लखी मतिमंद अजाणी. ७.

टीकाः यद्यपि सूत्र, भाष्य, वार्त्तिक प्रभृति नाम ते आदि लई, सुरवाणी नाम संस्कृत (भाषामां) ग्रंथ बहु छे, तथापि संस्कृत ग्रंथोथी मंदबुद्धि पुरुषोने बोध थाय नहि, अने भाषाना ग्रंथोथी मंदबुद्धि पुरुषोने पण बोध थाय छे; एथी भाषाग्रंथनो आरंभ निष्फल (छे) नहि. किन्तु संस्कृत ग्रंथोना विचारवाविषे जेओनी बुद्धि समर्थ छे नहि, तेओना निमित्त ग्रंथनो आरंभ सफल छे. ७.

---

३. उत्तरमीमांसानां बादरायणव्यासप्रणीत ब्रह्मसूत्र.

'स्वल्पाक्षरमसंदिग्धं सारवद् विश्वतोमुखं ।
अस्तोभमनवद्यञ्च सूत्रं सूत्रविदो विदुः' ॥

स्वल्प अक्षरोवाळुं, असंदिग्ध (संदेहविनानुं) सारवाळु, (यथाधिकार)सकल दिशामां मुखवाळुं, अस्तोभ (जेमां निरर्थक शब्द नथी,) अने निर्दोष शास्त्रवाक्य ते सूत्र, एम सूत्रविद् पुरुषो जाणे छे. एवां ५५६ ब्रह्मसूत्र छे.

४. श्रीशंकरभगवत्प्रणीत ब्रह्मसूत्रउपर शारीरकभाष्य.

'सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र पदैः सूत्रानुसारिभिः ।
स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः' ॥

जेमां सूत्रने अनुसार पदोए सूत्रनो, अर्थ वर्णाय छे, अने (सूत्रअनुसार पदना पर्यायरूप जे) स्वपदो ते पण जमां वर्णायां छे (एवो सूत्रना व्याख्याननो ग्रंथ तेने) भाष्यविद् महाजनो 'भाष्य' जाणे छे.

५. शंकरशिष्य श्रीसुरेश्वराचार्य(मण्डनमिश्र)कृत वार्त्तिकग्रंथ.

उक्तानुक्तद्विरुक्तादिचिन्ता यत्र प्रवर्तते ।
तं ग्रंथं वार्त्तिकं प्राहुर्वार्त्तिकज्ञा मनीषिणः ॥

(सूत्र–भाष्यमां) कथित, अकथित, पुनः कथित आदिना विचार जेमां करवामां आवे छे ते ग्रंथने, वार्तिक जाणनार बुद्धिमानो, वार्तिक कहे छे.
ग्रंथान्तरमां आवो पाठ पण छेः—

'उक्तानुक्तदुरुक्तार्थव्यक्तकारि तु वार्त्तिकं' ।

कथित, अकथित, दुःकथित अर्थोने स्पष्ट करनार ते वार्तिक.

३. दुहो.

कविकृत भाषाग्रंथ बहु, ख्यात जगत्‌विषे ज;
पण विचारसागर विना, न संदेह नाशे ज.

टीकाः-यद्यपि भाषाग्रंथ बहु छे, तथापि **विचारसागर** विना अन्य भाषाना ग्रंथोवडे आत्मवस्तुविषे संदेह दूर थाय नहि; एनाविषे आ हेतु छेः-केटलाक भाषाग्रंथ तो श्रवण करीने रचेला छे, जेमके, **पंचभाषा**[६] छे. तेमनी प्रक्रिया कोई अंशमां तो शास्त्रने अनुसार छे, अने श्रवण करेलो जे अर्थ यथार्थ ग्रहण नहि थयो, ते अंशमां शास्त्रथी विरुद्ध छे; एथी श्रोताकृत ग्रंथवडे संदेहरहित बोध थाय नहि. अने कोई भाषाग्रंथ किंचित् शास्त्र भणीने रचेला छे, जेम **आत्मबोध**[७] छे. तेमनावडे पण संदेहरहित बोध थाय नहि, केमके तेओमां वेदान्तनी प्रक्रिया संपूर्ण छे नहि. अने **विचारसागर**ग्रंथमां संपूर्ण प्रक्रिया छे, अने वेदान्तशास्त्रना अनुसार छे; कोई स्थानमां पण विरुद्ध छे नहि. अने आत्मज्ञानमां उपयोगी जे पदार्थ छे, तेमनुं निरूपण विस्तारवडे कर्युं छे; एथी अन्य भाषाग्रंथो जेवो आ ग्रंथ नथी. किन्तु सर्व भाषाग्रंथोथी आ ग्रंथ उत्तम छे. ८.

४. (ग्रंथनो अनुबन्ध.)

चोपाई (हिंदुस्थानी.)

नहि अनुबन्ध पिछाण्या ज्यांलगों प्रवृत्तसुघड नर थाय न त्यांलगों,
जाणों जेह आ शुणे प्रबंध, एथों हुवे कहुं ते अनुबंध. ९.

---

६. पंजाबना मनोहरदास निरंजनीकृत षट्‌प्रश्नी, शतप्रश्नी, ज्ञानमंजरी, ज्ञानचूर्ण अने वेदान्तसार ए नामे भाषामां पंच ग्रंथ छे ते 'पंचभाषा' कहेवाय छे.

७. साधु माणिक्यदासजीकृत 'माणिक्यबोध' जेने 'आत्मविचार' पण कहे छे जे उपर मूलचंद्र ज्ञानीए 'सारोद्धार' नामक व्याख्यान कर्युं छे.

टीकाः-अधिकारी, संबंध, विषय, अने प्रयोजन (ए चार)नुं नाम अनुबंध छे. अधिकारी आदिक ग्रंथना अनुबंध जाण्या विना 'सुघड' नाम विवेकी पुरुषनी ग्रंथोमां प्रवृत्ति थाय नहि. एथी जे अनुबंधोने जाणीने प्रबंध नाम ग्रंथने सांमळे, ते अनुबंधोने हवे कहुं छुं. ९.

सोरठो.

अधिकारी, संबंध, विषय, प्रयोजन, जार मिलै,
कहे सुकवि अनुबंध, तेमां अधिकारी सुणो.　　१०

५. (अधिकारिवर्णन.)

दुहो.

जेने मल विक्षेप नहि, किन्तु एक अज्ञान;
साधन चार सहित नर, ते अधिकृत मतिमान.　　११

टीकाः-(प्राणीमात्रना) अंतःकरणविषे त्रण दोष होय छे. एक तो **मल** होय छे, बीजो **विक्षेप** होय छे, अने त्रीजो **आवरण** (अज्ञान) होय छे. (ए त्रणे दोषनो नाश क्रमे करी कर्म, उपासना अने ज्ञानथी थाय छे.) **निष्कामकर्मे** अंतःकरणनो मलदोष दूर थाय छे; **उपासनाए** विक्षेपदोष दूर थाय छे; अने **ज्ञाने** आवरणदोष दूर थाय छे. जे पुरुषे निष्कामकर्म-अने-उपासना करीने मल-अने विक्षेपदोष दूर कर्या छे, अने एक अज्ञान नाम स्वरूपनुं आवरण जेना चित्तमां होय, अने चार साधनसंयुक्त होय ते पुरुष **'अधिकृत'** नाम अधिकारी छे. ११.

---

८. 'पुरुष'='पुर्' नाम मनुष्यशरीर तेमां 'उषति' नाम अहम् आकारे वसे छे; एथी पुरुष ए शब्दमां नरनारी आदि सर्व जीव गणाय छे. साधनचतुष्टयसंपन्न प्रमाता वेदान्तमां अधिकारी छे. पछी ते गमे ते होय तो पण तेने पुरुष कहे छे.

६. अथ चार साधननामवर्णन.

दुहो.

प्रथम विवेक, विराग पछि शमादि षट्संपत्ति,
चोथी मुमुक्षुता ज ए चारे साधन सत्ति १२.

७. अथ विवेकलक्षण.

दुहो.

आत्मा अविनाशी अचल, तेथी जगत् प्रतिकूल;
एवुं ज्ञान विवेक छे, सौ साधननुं मूल. १३.

टीकाः–आत्मा अविनाशी नाम नाशरहित छे, अने अचल नाम क्रियारहित छे, अने जगत् आत्माथी प्रतिकूल नाम विपरीत स्वभाववाळु छे, (अर्थात् जगत्) विनाशि छे अने चल छे, ए ज्ञाननुं नाम विवेक छे ए विवेक ज सर्व साधननुं मूल (कारण) छे, केमके, प्रथम विवेक थाय तो वैराग्यथी आदि लईने उत्तर साधन (षट्संपत्ति अने मुमुक्षुता) थाय छेः अने विवेक नहि थाय तो उत्तर साधन थाय नहि. एथी वैराग्य शमादि षट्संपत्ति, अने) मुमुक्षुता, एमनो विवेक हेतु (मूल) छे. १३.

८. अथ वैराग्यलक्षण.

दुहो.

ब्रह्मलोकलगी भोग जे चहे सर्वनो त्याग,
वेद–अर्थ–ज्ञाता मुनि, तेने कहे विराग. १४.

९. अथ शमादिषट् (संपत्ति) नाम.

दुहो

शम, दम, श्रद्धा त्रिजी ने, समाधान, उपराम,
छठ्ठी तितिक्षा, जाणिये, भिन्न भिन्न ए नाम १५.

१०. अथ शमदमलक्षण.

दुहो.

विषयोथी मन रोकवुं, तेने शम कहे धीर,
इंद्रियगणनुं रोकवुं, दम भाखे गुरुवीर. १६.

११. अथ श्रद्धा अने समाधानलक्षण.

दुहो.

सत्य वेद गुरुवाक्य छे श्रद्धा इम विश्वास,
समाधान तेने कहे, मनविक्षेप-विनाश. १७.

१२. अथ उपरामलक्षण.

चोपाई.

साधन सहित कर्म सहु त्यागे, विषसम लखी विषयोथी भागे,
इए लखी नारी थाय जीव म्लान ज, ए लक्षण उपराम
पछाण ज. १८.

१३. अथ तितिक्षालक्षण.

दुहो.

आतप, शीत, क्षुधा, तृषा, एनो सहन स्वभाव,
कहे तितिक्षा तेहने, कोविद मुनिवर राव. १९.
शमादि षट्संपत्तिने, भाखत साधन एक,
एम न नव साधन भणे, किंतु चार सविवेक. २०.

टीकाः-शमादि छनी जे संपत्ति नाम प्राप्ति, ते एक साधन करी गणाय छे; एथी (विवेक, विराग, षट्संपत्ति=शम, दम, श्रद्धा, समाधान, उपराम तथा तितिक्षा, अने मुमुक्षुता ए सर्व मली,)नव साधन नहि, किंतु चार ज साधन (छे, एम) सविवेक नाम विवेकी जनो कहे छे. २०.

---

९. उपरति. वृत्तिने बाह्य(विषय)नुं अनालंबन.
१०. अप्रतीकारपूर्वक अने चिन्ताविलापरहित सुखदुःखोनुं सहन.

१४. मुमुक्षुतालक्षण.

दुहो

ब्रह्मप्राप्ति, ने बंधनी हानि मोक्षनुं रूप;
इच्छा तेनी **मुमुक्षुता**, भाषे मुनिवर भूप. २१.

टीकाः–ब्रह्मनी प्राप्ति अने अनर्थनी निवृत्ति मोक्षनुं स्वरूप छे. ते(मोक्ष)नी इच्छानुं नाम **मुमुक्षुता** छे. मुमुक्षुता अने मुमुक्षुत्व ए पर्याय (समानार्थबोधक) शब्द छे. २१.

ज्ञाननां आठ साधन.

ए चो साधन ज्ञाननां श्रवणादि त्रण मेली,
तत्पद त्वंपद-अर्थनुं, शोधन, अष्टम भेळी. २२.

टीकाः–**विवेकादि** (**विराग, षट्संपत्ति,** अने **मुमुक्षुता** ए) चार; **श्रवण, मनन, निदिध्यासन** ए त्रण; (एम सात, तथा) **तत्पदनो अर्थनुं अने त्वंपदनो अर्थनुं शोधने** ए अष्ट साधन ज्ञाननां छे २२.

१५. अंतरंग अने वहिरंग साधन.

दुहो.

अंतरंग ए आठ छे, यज्ञादिक वहिरंग;
अंतरंग धारे, त्यजे वहिरंगोनो संग. २३.

टीकाः–पूर्व दुहामां कहेलां विवेकादिक आठ ते (ज्ञाननां)

---

११. अज्ञानकल्पित अहंकारादियी देहान्त मथोने, स्वस्वरूपना बोधेकरी, मूकवानी इच्छावान् पुरुष तेनो धर्म.

१२. 'ते' (ईश्वर) पदनुं.

१३. 'तुं' (जीव) पदनुं.

१४. जडचेतननु तादात्म्य–(संयोग–मिश्रण)–प्रतीत थाय छे तेमांथी विवेकेकरी मलरूप जडभागने दूर करी शुद्धि करवी.

अंतरंगसाधन कहेवाय छे अने यज्ञादिक कर्म **बहिरंग-साधन** कहेवाय छे, तेओमांथी जिज्ञासु बहिरग(साधनो)ने त्यागे, अने अतरंग(साधनो)ने धारे जेमनु श्रवणमां अथवा ज्ञानमां प्रत्यक्ष फल होय, ते अतरग साधन कहेवाय छे विवेकादिक चार(साधन)नो **श्रवणमां** उपयोग छे, केमके विवेकादिक विना बहिर्मुखने श्रवण बने नहि. तेम **श्रवण, मनन** (अने) **निदिध्यासनना ज्ञानमां** उपयाग छे. श्रवणादिक विना ज्ञान थाय नहि तेम **तत्पदना** अर्थ अने **त्वंपदनो** अर्थ जाण्या विना पण, **अभेदज्ञान** थाय नहि, ए रीतिए विवेकादि चार साधनाना श्रवणमां उपयोग छे, अने श्रवणादि चारे साधनोनो ज्ञानमां उपयोग छे एथी आठ अंतरग साधन छे.

१६ जेनु ज्ञानमां अथवा श्रवणमां प्रत्यक्ष फल होय नहि, किंतु अत करणनी शुद्धि जेनु फल होय, ते ज्ञाननु **बहिरंग साधन** कहेवाय छे. एवा यज्ञादिक कर्म छे यद्यपि यज्ञादिक कर्म ससारनां साधन छे, तेमनाथी अत करणनी शुद्धि पण कहेवी सभवे नहि; तथापि (ते यज्ञादिक कर्म) सकाम-पुरुषने ससारना हेतु छे, अने निष्कामपुरुषने अत करणनी शुद्धिना हेतु छे ए रीतिए निष्कामपुरुषने अत करणनी शुद्धिद्वारा (यज्ञादिक कम) ज्ञानना हेतु छे, एथी (ते यज्ञादिक) बहिरगसाधन कहेवाय छे अने विवेकादिक अतरगसाधन कहेवाय छे. [बहिरग नाम दूरनु छे, अने अतरंग नाम समीप नु छे] यज्ञादिक कर्म अने तेमनां साधन-स्त्रीधनपुत्रादि-

---

१५ अन्तर (समीपवर्ति) अग, साक्षात् उपकारक हेतु—करण—उपाय

१६ बहिर् (दूरवर्ति) अग, परपराथी उपकारक हेतु-करण उपाय

१७, जेने (ब्रह्म) जाणवानी इच्छा छे ते

को–ने, (जे) त्यागे, ते ज्ञाननो अधिकारी छे. ज्ञानना अधिकारीमां यज्ञादिक संभवे नहि एथी दूर छे.

१७. विवेकादिकोनी अंतरंगसाधनता.

विवेकादिक ज्ञानना अधिकारीमां संभवे छे एथी छे. समीप तेमां पण आटलो भेद छे–विवेकादिकोनो श्रवणमां उपयोग छे, अने श्रवणादिकोनो ज्ञानमां उपयोग छे. एथी विवेकादिकोनी अपेक्षाथी श्रवणादिक अंतरंग छे, तेमनी (श्रवणादिकनी अपेक्षाथी विवेकादिक बहिरंग छे. यद्यपि विवेकादिक पण ज्ञाननां अंतरंग साधन ज सर्व ग्रंथोमां कह्यां छे, बहिरंग नथी कह्यां, तथापि विवेकादिकोनुं, ज्ञानना साधन श्रवणमां प्रत्यक्ष फल छे. अने श्रवणादिकोनी पेठे विवेकादिक, जिज्ञासुने उपादेय (ग्रहण-योग्य) छे; यज्ञादिकोनी पेठे (श्रवणादिक,) जिज्ञासुने हेय(त्याग-योग्य) नथी एथी अंतरंग (साधन) कह्यां छे अने यज्ञादिकोनी अपेक्षाथी पण (विवेकादिक) अंतरंग छे, एथी पण अंतरंग साधनोमां कह्यां छे.

१८. ज्ञाननां मुख्य अंतरंग साधन (महावाक्य छे.)

श्रवण-मनन-निदिध्यासननां लक्षण.

अने विचारथी जोइये तो ज्ञाननां मुख्य अंतरंग साधन **तत्त्वमसि** (ते तुं छे.) आदि महावाक्य छे, श्रवणादिक पण नहि. केम के युक्तिए वेदान्तवाक्योना तात्पर्यनो निश्चय (ए)

---

१८. तात्पर्यनिर्णयार्थ षड्लिंग.

प्रतिवान प्रकरणना तात्पर्य अर्थनो निर्णायक षड्लिंगरूप युक्ति होय छे. अशेष वेदान्तनुं, आदि मध्य अने अन्तथी, सच्चिदानन्द ब्रह्ममां ज तात्पर्य छे. ते यथार्थ समजवा श्रुतिना षड्लिंगनी व्यवस्था छे.

उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलं ।
अर्थवादोपपत्ती च लिङ्गं तात्पर्यनिर्णये ॥

(१) उपक्रम अने उपसंहार ए बेनी एकरूपता, (२) अभ्यास, (३) अपूर्वता, (४) फल, (५) अर्थवाद, (६) उपपत्ति, ए (छ लिंग छे, ते प्रत्येक,) तात्पर्यनिर्णयविषे लिंग (गुप्तार्थज्ञापक अथवा अनुमानसाधनहेतु) छे.

(१) प्रकरणेकरी प्रतिपादन करवाने योग्य जे सच्चिदानन्द एक ज अद्वितीय ब्रह्म छे तेनु ज प्रकरणना आदिविषे तथा अन्तविषे जे प्रतिपादन ते, 'उपक्रम–उपसंहार ए बेनी एकतारूप' प्रथम लिंग छे. जेम छान्दोग्य-उपनिषद्‌ना षष्ठ प्रपाठकमां प्रकरणना आरंभे उद्दालक आरुणिमुनि श्वेतकेतुपुत्रने उपदेशे छे के–'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' (२–१)='हे सोम्य ! उत्पत्तिथी पूर्वे एक ज अद्वितीय सत् ज होतुं हतुं' एवो उपक्रम (=प्रथम आरंभ) करीने प्रकरणने अन्ते 'ऐतदात्म्यमिदं सर्वं' (१६–३)='आ सर्व जगत्) ए (सत्‌रूप) आत्मभाववालुं छे.' एवो उपसंहार (=समाप्ति) कर्यो छे. वक्तानी इच्छारूप तात्पर्यनुं निश्चायक एवुं उपक्रम उपसंहारनी एकतारूप ए प्रथम लिंग छे.

(२) प्रकरणेकरी प्रतिपादन करवा योग्य जे ब्रह्म, तेनु प्रकरणना मध्यमां पुनः पुनः पठन वा प्रतिपादन ते, 'अभ्यास' (=आवृत्ति) नामक द्वितीय लिंग छे. जेम छान्दोग्य उपनिषद्‌ना ते ज प्रपाठकमां अष्टम खंडथी आरंभी षोडशखंडपर्यन्त 'तत्त्वमसि' ='ते तुं छु' एवो निरंकुश सदात्मभाव नव वार उपदेश्यो छे. इहां 'ते' नाम, ते पदनो जे लक्ष्यार्थ परमार्थ सत् जगत्‌नुं प्रत्यक् स्वरूप–छे, ते छे, (ते तारो पण आत्मा छे एथी) 'तुं' नाम, तुं पदनो लक्ष्यार्थ आ कार्यकरणसंघातरूप शरीरमां, (जलादिमां सूर्य प्रतिबिंबरूपे प्रवेशे छे तेम,) जे प्रविष्ट छे, ते छे. (असि) 'छु' ए क्रियापदेकरीने 'ते तुं' ए बे शब्दनी एकता ग्रहण थाय छे. तेथी विकार–अनृत–अधिकृतजीवात्मतत्त्वरूप जे विज्ञान तेनुं निवर्तक ए 'तत्त्वमसि' वाक्य, ते पुन. पुन. नव वार उपदेशी तत्‌पदना अने त्वंपदना लक्ष्यार्थ–ब्रह्म अने आत्मा–तेमना ऐक्यनुं जे प्रतिपादन ते 'अभ्यास' लिंग छे.

(३) प्रकरणेकरी प्रतिपाद्य जे ब्रह्म, तेनी ते प्रकरणथी भिन्न प्रमाणेकरी अविषयता ते, 'अपूर्वता' (=प्रमाणान्तरथी अप्राप्ति) नामक तृतीय लिंग छे. जेम छांदोग्य उपनिषद्‌ना ते ज प्रपाठकमां–'अत्र वाव किल सत सोम्य न निभालयसेऽत्रैव किलेति'(१३– २)='हे सोम्य ! अत्र ज एटले (तेज, जल अने पृथ्वीनुं कार्य जे देह, पूर्वे कह्यो छे, तेमां ज, यद्यपि आ जगत्‌नुं मूल–कारण) सत् (–ब्रह्म–विद्यमान छे पण इन्द्रियथी) तुं निभाली–जोई–शकतो नथी. (तथापि एमां ज (देहमां–जगत्‌मां)निश्चयथी ते छे'एम उपदेशी ब्रह्मप्राप्तिनो उपाय त्यां सूचव्यो छे. त्यां एवो प्रसंग छे के, एक घटमांना जलमां लवणनो पिंड रात्रे शिष्यपासे ज नखावी बीजे दिवसे प्रातःकालमां ते लवणपिंड कहाडी आपवा गुरुए कह्युं. ते लवणपिंड

चक्षुथी अने स्पर्शथी जाणवामां आव्यो नहि. गुरुए उपायान्तर दर्शाव्यो के जिह्वाथी जणाशे. एटले आचमन कर्येथी ते ज जलमां लवणपिंड लीन थयेलो विद्यमान छे, ए शिष्ये जाण्युं. एम प्रत्यक्षादि प्रमाणान्तरेकरी अगम्य सत् ब्रह्म तेनी प्राप्तिसारु तेना उपनिषदादिमां जे प्रमाणवाक्यो अने प्रकारान्तरनुं सूचन ते उपनिषदादिमां 'अपूर्वता लिंग' छे.

(४) प्रकरणेकरी प्रतिपाद्य जे सच्चिदानन्द ब्रह्म, तेना ज्ञानथी तेनी प्राप्तिरूप प्रकरणविषे जे श्रूयमाण (संभळातुं) प्रयोजन ते, 'फल' (=प्रधान लाभ) नामक चतुर्थ लिंग छे. जेम छांदोग्योपनिषद्ना ते ज प्रपाठकमां, 'अथ सम्पत्स्य इति' (१४–२)='त्यारे ज (सत्‌ब्रह्मने) पामशे', अर्थात् कोई सत् ब्रह्मात्मविद् ब्रह्मिष्ठे दर्शावेला मार्गेकरी विरक्त, अने अविद्यारूप मोहपटना बंधनथी मोक्षित, पुरुष, पोते सदात्माने पामीने सुखी–निर्वृत–थशे. ज्ञानप्राप्तिसमकाल ज शरीरादि दृश्यविषे आत्मभावना त्यजीने सदात्मैकत्वदर्शी ब्रह्मविद् मुक्तपुरुषने सदात्मस्वरूपावस्थानरूप संपत्तिनो तेटला कालसुधी ज विलंब छे, जेटला कालसुधी जे प्रारब्ध कर्मोथी शरीरनो आरंभ थयो छे, ते कर्मोनो भोगेकरी क्षय थाय छे; पछी ते आत्मवित् कृतार्थ पुरुषने विदेहकैवल्यनी प्राप्ति थाय छे. एम अद्वितीय सद्‌ब्रह्मना ज्ञानथी सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्मनी प्राप्तिरूप परम पुरुषार्थ उपनिषदादिमां श्रूयमाण छे ते तेमां 'फललिंग' छे.

(५) प्रकरण प्रतिपाद्य जे सत्–ब्रह्म–तेनुं प्रशंसन (गुणकीर्तन करी स्तुति, अथवा सत्‌थी विपरीत जे अनृत-जड तेनी निन्दा) प्रकरणविषे होय ते, 'अर्थवाद' (=गुणवाद) नामक पंचम लिंग छे. (ते अर्थवाद त्रिविध छे-(१) गुणवाद, (२) अनुवाद, (३) भूतार्थवाद.) जेम छान्दोग्यउपनिषद्ना ते ज प्रपाठकमां, 'तमादेशमप्राक्ष्यो येनाश्रुतं श्रुतं भवति अमतं मत-अविज्ञातं विज्ञातं-इति' (१–२)='(केवल शास्त्र अने आचार्यना उपदेशथी गम्य अने जेणेकरी परब्रह्म उपदेशाय छे एवो) ते आदेशने पूछ्यो छे, जे आदेशेकरीने अन्यत् अश्रुत (नहि सांमळेलुं) पण श्रुत (सांमळेलुं) थाय छे, अमत (अतर्कित होय ते) मत (तर्कित) थाय छे, अविज्ञात (अनिश्चित होय ते) विज्ञात (निश्चित) थाय छे.' ए प्रकारे जे सत् ब्रह्मना उपदेशनुं अद्भुत प्रशंसन ते उपनिषदादिमां 'अर्थवादलिंग' छे.

(६) प्रकरणप्रतिपाद्य सत्–ब्रह्म–तेनुं युक्तिओए अने दृष्टान्तोएकरी प्रतिपादन ते, 'उपपत्ति' (=निर्णायकयुक्ति) नामक षष्ठ लिंग छे. जेम छांदोग्यउपनिषद्ना ते ज षष्ठप्रपाठकमां,–'यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातं स्यात्, वाचारंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यं'

श्रवणं कहेवाय छे. जीवब्रह्मना अभेदनी साधिका अने भेदनी बाधिका युक्तिओए अद्वितीय ब्रह्मनुं चिंतन **मननं** कहेवाय छे. अनात्माकारवृत्तिना व्यवधानरहित ब्रह्माकारवृत्तिनी स्थिति **निदिध्यासनं** कहेवाय छे. निदिध्या-

(१–४)='हे सोम्य ! जेम (लोकमां) एक मृत्पिंडने जाण्यावडे ते मृत्पिण्ड छे कारण जेनुं, एवा घट रुचक (पात्रआदि) सर्व मृण्मय (मृद्विकार समूह) छे एम जाणेलुं थाय छे. (केम के कार्यनुं कारणसाथे अनन्यत्व छे. तेथी कारण जाण्याथी तेनां सर्व कार्य जाणेलां थाय छे.) (कारणना कार्यरूप जे विकार छे ते वाणीनुं अवलंबन मात्र–नाम ज केवल–छे. परमार्थथी (कारणरूप) मृत्तिका ए ज सत्य वस्तु छे.' ए प्रकारे नामरूपक्रियावाळुं विकृत जगतरूप कार्य प्रतीत थाय छे ते सर्वनुं कारण एक ज अद्वितीय सत्–ब्रह्म–छे ते सत् जाण्याथी–सर्व जाणवामां आवे छे; जेम मृत्तिकाना विकार घटपात्रादिनुं कारण मृत्तिका जाण्येथी तेनां सर्व कार्य जाणवामां आवे छे. ए आदि दृष्टान्तोएकरी जे सत्–ब्रह्म–नुं प्रतिपादन ते उपनिषदादिमां 'उपपत्ति लिंग' छे.

ए रीतिए सर्व उपनिषदोनां वाक्योनी कृतार्थता, सत् (ब्रह्म) परतारूप तात्पर्य छे, ए ज छे. छान्दोग्यउपनिषदनो षष्ठ अध्याय परमार्थ तत्त्व-उपदेश-प्रधानपर छे. तेनुं तात्पर्य, सत् ब्रह्म अने प्रत्यग आत्माना एकत्व निर्णयपर छे.ए प्रकारे गुह्यार्थज्ञापक षड्लिंगोएकरी शास्त्रोनां प्रकरणोनुं तात्पर्य विचारवुं अने निश्चय करवो.

१९. पंचदशीविषे तृप्तिदीपमां विद्यारण्यमुनि वदे छे के.—

वेदान्तानामशेषाणामादिमध्यावसानतः ।
ब्रह्मात्मन्येव तात्पर्यमिति धीः श्रवणं भवेत् ॥ १०१ ॥

(स्वतःसिद्ध ब्रह्म आत्माना एकत्वविषे) सकल वेदान्त(शास्त्रो)नुं आदि-मध्य अन्तथी ब्रह्मरूप प्रत्यगात्माविषे ज तात्पर्य छे (तेना अर्थनो गुरुमुखद्वारा) तेवो निर्णय थाय ए 'श्रवण' छे. तेने 'वेदान्तविचार' पण कहे छे.

२०. वेदान्तनो (ब्रह्मात्माना) एकत्वरूप जे तात्पर्यार्थ, तेनी संभावनासारु बुद्धिस्वास्थ्यकारी श्रुतिअविरोधिनी युक्तिओएकरी तेना अर्थनुं पुनः पुनः चिन्तन ते 'मनन' कहेवाय छे.

२१. पूर्वोक्त श्रवणमननवडे जे ज्ञात, अने एकतानताएकरी साध्य जे ब्रह्मात्मैकत्व, तेनुं निरन्तर चिन्तन ए 'निदिध्यासन' छे.

निरन्तरं विचारो यः श्रुतार्थस्य गुरोर्मुखात् ।
तन्निदिध्यासनं प्रोक्तं तच्चैकाग्र्येण लभ्यते ॥

सननी परिपक्‍व अवस्थाने ज समाधि कहे छे. एथी समाधिनो पण निदिध्यासनमां अंतर्भाव छे, पृथक् साधन नथी. ए श्रवण, मनन, अने निदिध्यासन, ज्ञाननां साक्षात् साधन नथी; किंतु बुद्धिना दोष जे असंभावना अने विपरीतभावना तेनां नाशक छे. [संशय (=संदेह)ने असंभावना कहे छे, अने विपर्ययने विपरीतभावना कहे छे.]

१२. (श्रवणादिने परंपराए ज्ञाननी हेतुता छे.) **श्रवणेकरी प्रमाणनो** संदेह (संशय) दूर थाय छे. अने **मननेकरी प्रमेयनो** संदेह दूर थाय छे. वेदान्तवाक्य

' ए निदिध्यासन साधनकोटिनुं छे. तेनो परिपाक थई फलभूत साध्य जे साक्षात्कार छे, जे सप्तभूमिकामांनी 'सत्त्वापत्ति' नामक चतुर्थभूमिका पण गणाय छे, तेनो पण 'निदिध्यासन' शब्दे व्यवहार कराय छे. तेनुं लक्षण आ छे:–देहादि विजातीयप्रत्यय(वृत्ति)ना तिरस्कारपूर्वक ब्रह्मात्मैकत्वाकार सजातीयप्रत्ययना प्रवाहेकरी ध्यानध्येयाकारवृत्तिरहित ब्रह्माकारमात्रताएकरी स्फुरण. एने 'समाधि' पण कहे छे.

वार्तिककार 'निदिध्यासन'नुं लक्षण आ प्रमाणे आपे छे.–

अपरायत्तबोधो हि निदिध्यासनमुच्यते ॥

अपराधीन बोध, या बोध्यविषयरहित स्वतंत्र बोध, या अनात्मवृत्ति निरसन ज निदिध्यासन कहेवाय छे.

२२. 'आ रज्जु छे या सर्प छे' ए प्रकारे कोटिद्वय(=पक्षद्वय)ने अवलंबन वा विषय करवावाळुं ज्ञान. वा एक धर्मीमां विरुद्धकोटिद्वय-अवगाहि ज्ञान. जेम के 'वेदान्तमां–आत्मा कर्तृत्वादिधर्मसहित छे वा कर्तृत्वादिधर्मरहित छे' इत्यादि ए संशय-ज्ञान कहेवाय छे.

२३. रज्जु होय त्यां 'आ सर्प छे' एवी अविद्यानी वृत्ति. जेमके:–'देहादिरूप ज आत्मा छे' इत्यादि ए विपरीतज्ञान कहेवाय छे. भ्रम, *मिथ्याज्ञान*, ज्ञानाध्यास, भ्रान्तिज्ञान, विपरीतज्ञान आदि पण तेने कहे छे. *अतत्मां* (जे ते नथी तेमां) ते बुद्धि. ए ज्ञानमां एककोटि(पक्ष)नुं अवलंबन होय छे. कोई जलाशयने तीरे वृक्ष होय तेनुं प्रतिबिंब जलमां ऊंधुं जणाय छे. त्यां बिंबादिने जोई योग्य विचार कर्या विना जलमां जेवो जणाय छे तेवो, ऊंधो वृक्ष छे, एम मानी लेवुं ए 'विपरीतभावना' छे.

अद्वितीय ब्रह्मनां प्रतिपादक छे, अथवा अन्य अर्थनां प्रतिपादक छे, एवो प्रमाणमां संदेह थाय, ते श्रवणवते दूर थाय छे. अने जीवब्रह्मनो अभेद सत्य छे, अथवा भेद सत्य छे, एवो प्रमेयमां संदेह थाय ते मननवते दूर थाय छे. देहादिक सत्य छे अने जीवब्रह्मनो भेद सत्य छे, एवा ज्ञानने **विपरीतभावना** कहे छे. [तेने ज **विपर्यय** कहे छे] ते(विपरीतभावना)ने **निदिध्यासन** दूर करे छे. ए रीतिए श्रवणादिकत्रय, असंभावना-विपरीतभावनानां नाशक छे; अने असंभावना अने विपरीतभावना ज्ञाननां प्रतिबंधक छे, एथी ज्ञानना जे प्रतिबंधक तेना नाशद्वारा श्रवणादिक ज्ञानना हेतु कहेवाय छे; साक्षात् हेतु नहि.

२०. (अवांतरवाक्य अने महावाक्यने ज्ञाननी हेतुता.)

ज्ञाननां साक्षात् साधन श्रोत्रसंबंधि वेदांतवाक्य छे. ते वेदांतवाक्य बे प्रकारनां छेः-एक **अवांतरवाक्य** छे अने एक **महावाक्य** छे. [परमात्माना अथवा जीवना स्वरूपनुं बोधक जे वाक्य, ते **अवांतरवाक्य** कहेवाय छे जीवपरमात्मानी एकतानुं बोधक वाक्य ते **महावाक्य** कहेवाय छे.] अवांतरवाक्ये परोक्ष ज्ञान थाय छे. महावाक्ये अपरोक्ष ज्ञान थाय छे. "ब्रह्म छे" ए ज्ञानने **परोक्षज्ञान** कहे छे. "हुं ब्रह्म छुं" ए ज्ञानने **अपरोक्षज्ञान** कहे छे.

"त्वं ब्रह्मासि" (नाम 'तुं ब्रह्म छुं,') एवुं आचार्ये उच्चारण कर्युं जे वाक्य, तेनो श्रोताना कर्णे संबध थतां ज ("अहं ब्रह्मास्मि") 'हुं ब्रह्म छुं' एवुं अपरोक्षज्ञान श्रोताने थाय छे. अने श्रोताना कर्णे वाक्यनो संबंध थया विना ज्ञान थाय नहि, एथी श्रोत्रसंबधि वाक्य ज ज्ञाननो हेतु छे. श्रोत्रसंबंधि अवांतर वाक्य परोक्ष ज्ञाननो हेतु छे, अने श्रोत्रसं-

वंधि महावाक्य अपरोक्ष ज्ञाननो हेतु छे. महावाक्ये करी सर्वने अपरोक्ष ज ज्ञान थाय छे, परोक्ष थतुं नथी.

२१. (वेदांतना एकदेशीनुं ज्ञाननी हेतुताविषे मत.)

अने एकदेशीनुं आ मत छे-श्रवण-मनन-निदिध्यासनसहित वाक्यथी अपरोक्ष ज्ञान थाय छे. केवल वाक्यथी परोक्ष ज्ञान थाय छे; अपरोक्ष नहि. जो केवल वाक्यथी ज अपरोक्ष ज्ञान थाय तो, श्रवण, मनन, निदिध्यासन व्यर्थ थवानां. यद्यपि सिद्धान्त मतमां-'केवल वाक्यथी अपरोक्ष ज्ञान थाय छे, अने श्रवणादिकोथी असंभावना विपरीतभावनानो नाश थाय छे.-एथी श्रवणादिक व्यर्थ नथी'.-तथापि जे वस्तुनुं अपरोक्ष ज्ञान थाय तेविषे असंभावना विपरीतभावना कांइने पण होय नहि। एथी केवल वाक्यथी अपरोक्षज्ञानवादी(जे सिद्धान्ती, ते)ना सिद्धान्तमां "तत्त्वमसि" (नाम 'ते तुं छुं') आदिक वाक्योए ब्रह्मनुं अपरोक्ष ज्ञान थयेथी, पछी असंभावना विपरीतभावना संभवे नहि. एथी श्रवणादिक साधन व्यर्थ थवानां. अने 'केवल वाक्यथी परोक्षज्ञान थाय छे, अने श्रवण, मनन अने निदिध्यासन कर्याथी अपरोक्ष ज्ञान थाय छे,' ए मतमां श्रवणादिक व्यर्थ नथी. ए बहु ग्रंथकारोनुं मत छे, तथापि ए मत समीचीन (यथार्थ सत्य) नथी, केमके :-

२२. (उक्त एकदेशीना मतनी असमीचीनता।)

शब्दनो आवो स्वभाव छेः-जे वस्तु व्यवहित[२४] होय ते-(वस्तु)नु शब्दथी परोक्ष ज ज्ञान थाय छे। कोई प्रकारथी व्यवहित वस्तुनुं शब्देकरी अपरोक्ष ज्ञान थाय नहि. जेम व्यवहित स्वर्गनुं अने इंद्रादिक देवोनुं शास्त्ररूपी शब्दथी परोक्ष

२४. देशकृत या कालकृत अन्तराय ते व्यवधान. व्यवधानवाळा वस्तुने व्यवहित कहे छे. जे वस्तु दूरदेशमां होय ते 'देशेकरी' व्यवहित छे. जे वस्तु भूत या भविष्यत् कालमां होय ते 'कालेकरी' व्यवहित छे.

ज ज्ञान थाय छे, अने जे वस्तु अव्यवहित[२५] होय, तेनुं शब्देकरी अपरोक्षज्ञान अने परोक्षज्ञान बन्ने थाय छे. ज्यां अव्यवहित वस्तुने शब्द, 'अस्ति' (=छे) रूपथी बोधन करे, त्यां अव्यवहितनुं पण परोक्ष ज्ञान थाय छेः-जेम 'दशमो पुरुष छे.' ए रीतिए 'अस्ति' (छे) रूपे बोधन कर्यो जे अव्यवहित दशम (पुरुष) तेनुं शब्देकरी परोक्ष ज ज्ञान थयुं छे, अने ज्यां अव्यवहित वस्तुने 'आ छे' ए रीतिए शब्द बोधन करे, त्यां अव्यवहितनुं शब्देकरी अपरोक्ष ज्ञान ज थाय छे, परोक्ष नहि.

२५. अन्तरायरहित. एक पदार्थवडे बीजा पदार्थनुं आच्छादन ते व्यवधान–तिरोधान–ते वाळुं ते 'व्यवहित' ने व्यवधान विनानुं ते 'अव्यवहित.'

२६. ए प्रसंगना दृष्टान्तनी आ आख्यायिका छेः–कोई एक ग्रामना दश बालक एकत्र थई परगाम जता हता. मार्गमां मृगजळनी नदी आवी तेने उतर्या. नदीमां कोई बुडी गयुं तो नथी एवी शंकाथी, तेमांना एक प्रमुख बालके गणना करी, तेमां पोतानी गणना न करी, एथी नव थया. एम प्रथम पोतानुं अग्रहण थतां अन्यथाग्रहण थई भय थयुं, अने भ्रान्तिथी कहेवा लाग्यो के–'दशमो मानवी नथी अने छे नहि.' एम अज्ञाननुं द्विविध आवरण थतां रोदनादि-रूप विक्षेप थयो, अने सर्व शोकमां पड्या. एवामां कोई यथार्थवक्ता आप्त पुरुष आव्यो. तेणे अज्ञानथी रोता बालकोनो वृत्तान्त सांभळी प्रथम अवान्तर वाक्यरूप 'दशम छे' एम कह्युं. तेने श्रुणीने ते बालकने 'दशम' छे, एवुं परोक्ष ज्ञान थयुं अने पछी तेणे पृछ्युं केः–'दशम क्यां छे?' आप्त पुरुषे उत्तर आप्युं केः–'ते (दशम) तुं छुं' एम बोध थतां ज ते बालकने–'ते (दशम) हुं छुं'–एवुं अपरोक्ष ज्ञान थयुं, अने तेथी अज्ञानकृत आवरणसहित रोदनादि विक्षेपनो नाश थयो अने हर्षनो आविर्भाव थयो. ए दृष्टान्त वा आख्यायिकानी संगति जीव प्रति आम छेः–मनुष्यजीवे, स्थूल, सूक्ष्म, कारण ए शरीरत्रय, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति ए अवस्थात्रय; अने विश्व, तैजस, प्राज्ञ ए तेना अभिमानित्रय, एम नवनी (अथवा पोता आत्मा) विना, शरीरसंघातनी कोई पण संख्यानी,) साथे मळीने, संसाररूप मृगजळनी नदीमां प्रवेश कर्यो छे. अने पछी अज्ञानथी आत्माने ज विसरी, शोकमोहेकरी दुःखी थयो छे. कोई ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रिय गुरुरूप आप्त पुरुषना समागमथी ते जीवने, आत्मा–साक्षी–नुं प्रत्यक्ष ज्ञान थई, हर्ष–तृप्ति–परमानन्दनो आविर्भाव थाय छे.

जेमः-'दशमो तुं छुं.' ए रीतिए शब्दे बोधन कर्यो जे 'दशमो' तेनुं अपरोक्ष ज्ञान ज थयुं छे; तेम ब्रह्म, सर्वज्ञो आत्मा होवाथी, अत्यंत अव्यवहित छे. तेने अवांतर वाक्य अस्तिरूपथी बोधन करे छे. एथी अव्यवहित ब्रह्मनुं पण अवान्तरवाक्यथी परोक्षज्ञान थाय छे. अने 'दशमो तुं छुं' ए वाक्यनी पेठे श्रोताना आत्मारूप करीने ब्रह्मने महावाक्य बोधन करे छे, एथी महावाक्यथी अव्यवहित ब्रह्मनुं परोक्षज्ञान संभवे नहि, किंतु अपरोक्ष ज्ञान ज थाय छे.

२३. अने (पूर्वपक्षीए) जे कह्युं.:-

'जे वस्तुनुं अपरोक्षज्ञान थाय, तेनाविषे असंभावना-विपरीतभावना थाय नहि, एथी श्रवणादि विफल थई जाय छे.' ते शंका बने नहि. केमकेः-

जेम राजाने भर्तुनुं नेत्रेकरी अपरोक्षज्ञान थये सते पण

२७ इहां आ रहस्य छे:- जेम दशम पुरुषने, प्रत्यक्ष करवानी सामग्री जे मन अने नेत्र, ते हतां, तो पण अपरोक्ष बोध थयो नहि, किन्तु 'दशम तु छु' ए वाक्यथी ज अपरोक्ष बोध थयो. एथी दशमने अपरोक्षबोधरूप प्रमाज्ञाननु 'दशम तु छु' ए वाक्य–करण छे, तेथी ते वाक्ये प्रमाण छे. तेनु मन अने नेत्र सहकारी छे. तेम ब्रह्मना अपरोक्षबोधरूप प्रमाज्ञाननु करण महावाक्य छे. एथी ते प्रमाण छ. तेनु (श्रवणादि) साधनेकरी संस्कृत जे मन ते सहकारी छे.

पंडित पीतांबरजी पुरुषोत्तमजी.

२८. भर्तुनी कथा पांचमा तरंगमां विस्तरथी आवे छे ते जोवी, एटले आ वातनो आशय समजाशे. संक्षेपमा आम छेः—एक राजापासे भर्तु नामे प्रधान हतो. तेनाउपर ते राजानो बहु प्रेम हतो, तेथी बीजा कारभारीआने बहु अदेखाई आवती. तेमणे कुभाड रच्यु. पछी एक भारे कार्य आवी पडतां ते करवा, बीजा कारभारियोए भर्तुने राजापासथी दूर मोकलाव्यो. ते कार्य तेणे कर्यु. पण ते बीजा कारभारियोए राजाने एम समजाव्यु के, ते भर्तु तो मरी गयो. अने पछी सर्वेए एकमते एवु प्रसिद्ध कर्यु के,–भर्तु तो मृत थयो छे. राजाए ए वात मानी. भर्तुए ए सर्व जाण्यु तेथी, अने पछी कंई विवेक उत्पन्न थयाथी, तेणे संसार मिथ्या मानी वनवास कर्यो. एक समये मृगया करतां

विपरीतभावना दूर थई नहि, तेम महावाक्यथी ब्रह्मनुं अपरोक्षज्ञान थाय छे; परंतु जेनी बुद्धिमां असंभावनाविपरीतभावनादोष होय, तेनुं दोषरूपकलंकसहित ज्ञान फलनुं हेतु नथी; (एथी ते) दोषनी निवृत्तिअर्थे श्रवणादिक करे. जेनी बुद्धिमां दोष नथी ते न करे. एवी रीतिए ज्ञाननां साधन महावाक्य छे, श्रवणादिक नहि, परंतु ज्ञानना प्रतिबंधक जे दोष छे, तेनां नाशक (श्रवणादिक) छे. एथी श्रवणादिक ज्ञानना हेतु कहेवाय छे. श्रवणादिकना हेतु विवेकादिक छे, एथी विवेकादिक ज्ञाननां साधन (हेतु) कहेवाय छे. विवेकादिक चारे साधनसंयुक्त जे पुरुष छे ते **अधिकारी** छे. २३.

२४. अथ संबंधवर्णन.

दुहो.

प्रतिपादकप्रतिपाद्यता, ग्रंथ ब्रह्म संबंध,
प्राप्यप्रापकता कहत, फल अधिकृतनो बंध. २४

टीकाः-ग्रंथनो अने विषयनो, **प्रतिपादकप्रतिपाद्यभावसंबंध** छे. ग्रंथ प्रतिपादक छे अने विषय प्रतिपाद्य छे. [जे प्रतिपादन करनार होय ते प्रतिपादक कहेवाय छे; जे प्रतिपादन करवाने योग्य होय ते प्रतिपाद्य कहेवाय छे.] **फलनो अने अधिकारीनो प्राप्यप्रापकभावसंबंध** छे. फल प्राप्य छे अने अधिकारी प्रापक छे. [जे वस्तु प्राप्त थाय ते प्राप्य कहेवाय छे; जेने प्राप्त थाय ते प्रापक कहेवाय छे.] **अधिकारीनो अने विचारनो कर्तृकर्तव्यभावसंबंध** छे. अधिकारी कर्त्ता छे अने विचार कर्तव्य छे. [जे करनार

ज्यां भट्टुं हतो ते स्थले राजा आवी पहोंच्यो. त्यां भट्टुंने प्रत्यक्ष पोते दीठो. पण बीजा कारभारीओए तेने जे असत्य समजावेलुं ते मूर्खनीपेठे मानी बेठेलो, तेथी भट्टुंने भूत मानी त्यांथी नासी गयो. अर्थात् ए रीतिए भट्टुंनुं अपरोक्ष ज्ञान राजाने थयुं, पण तेना मनमां विपरीतभावना थइ हती ते मटी नहि.

होय ते कर्त्ता कहेवाय छे; अने करवाने योग्य होय ते कर्त्तव्य कहेवाय छे.] ग्रंथनो अने ज्ञाननो **जनकजन्यभावसंबंध** छे. विचारद्वारा ग्रंथ ज्ञाननो जनक छे, अने ज्ञान जन्य छे. [जे उत्पत्ति करनार होय ते जनक कहेवाय छे. जेनी उत्पत्ति थाय छे ते जन्य कहेवाय छे.] ए आदिलईने बीजा संबंध पण जाणी लेवा. २४.

२५. अथ विषयवर्णन.

दुहो.

जीव ब्रह्मनी एकता कहे विषय जन बुध;
बेनो जे अंतर गणे, ते मतिमंद अबुध. २५

टीकाः—**जीवब्रह्मनी एकता** आ ग्रंथनो **विषय** छे. [जे प्रतिपादन कराय ते विषय कहेवाय छे.] आ ग्रंथविषे जीवब्रह्मनी एकता प्रतिपादन कराय छे, एथी ते एकता ग्रंथनो विषय छे. ते एकताने सर्व वेदनां वचन प्रतिपादन करे छे, एथी जीवब्रह्मनो भेद कहे छे ते पुरुष शठ छे, अने वेदना विरोधी छे. २५.

२६. अथ प्रयोजनवर्णन.

दुहो.

परमानंद स्वरूपनी प्राप्ति प्रयोजन जाण;
जगत् समूल अनर्थ वळी थाय तेनी अति हाण. २६.

टीकाः-प्रपच(संसार)नुं कारण जे अज्ञान, अने प्रपंच (पोते) जन्ममरणरूपी दुःखना हेतु छे, एथी अनर्थ कहेवाय छे. ते **अनर्थनी निवृत्ति** अने **परमानंदनी प्राप्ति मोक्ष** कहेवाय छे. ते ग्रंथनुं **परमप्रयोजन** छे; अने **अवान्तरप्रयोजन** ज्ञान छे. जेविषे पुरुषनी अभिलाषा होय ते परमप्रयोजन कहेवाय छे, अने ते पुरुषार्थ पण कहेवाय छे.

ते अभिलाषा दु खनी निवृत्तिविषे अने सुखनी प्राप्तिविषे सर्व पुरुषनी होय छे ते ज **मोक्षनुं स्वरूप** छे एथी परमप्रयोजन मोक्ष छे, अने ज्ञान नथी. केमके सुखनी प्राप्ति अने दु खनी निवृत्तिनु **साधन** तो ज्ञान छे, परंतु सुखनी प्राप्ति वा दु खनी निवृत्तिरूप ज्ञान नथी, एथी अवान्तरप्रयोजन ज्ञान छे जे वस्तुद्वारा परमप्रयोजननी प्राप्ति थाय, ते **अवान्तर-प्रयोजन** कहेवाय छे एवु ज्ञान छे, केमके यथेरुरीने ज्ञानद्वारा मुक्तिरूप परमप्रयोजननी प्राप्ति थाय छे, एथी **ज्ञान** अवान्तर-प्रयोजन छे २६

२७. शंकापूर्वक उत्तरनु कवित.

(प्रयोजनमा शका)

जीवनु स्वरूप अतिआनद कहे छे वेद,
तेने सुखप्राप्तिनो असंभव वखाणिये
पूर्वे जे अप्राप्त वस्तु, तेनी प्राप्ति सभवे छे,
नित्य प्राप्त वस्तुनी तो प्राप्ति केम मानिये?

(उपरनी शकानु समाधान)

एवी शका लेश आणी कीजे न विश्वासहानि,
गुरुना प्रसादथी कुतर्क भले भागिये
करनु कंकण खोयु एवो भ्रम थयो जेने,
ज्ञानथी मळे छे एम प्राप्तप्राप्ति जाणिये	२७

२८ टीका एवी कोई (पूर्वपक्षी) शका करे छे के, पूर्वे कह्यु हतु 'अनर्थनी निवृत्ति अने परमानदनी प्राप्ति ग्रथनु प्रयोजन छे,' ते बने नहि केमके सर्व वेद जीवने परमआनद स्वरूप वर्णन करे छे, अने तमे अगीकार पण करो छो अने जे वस्तु अप्राप्त होय तेनी प्राप्ति सभवे छे सदा-प्राप्त वस्तुनी प्राप्ति सर्वथा बने नहि एथी सदा परमानदस्वरूप आत्माने परमा

नंदनी प्राप्ति कहेवी सर्व प्रकारेकरीने असंभव छे. २७.

२९. (सिद्धान्ती समाधान कहे छे केः-)

ते शंका सांभळीने ग्रंथना प्रयोजनमांथी विश्वास दूर करवो नहि. किन्तु आत्मविद्यानो उपदेश करवावाळा जे गुरु छे, तेमनी कृपाथी शंकारूप जे कुतर्क छे ते दृष्टान्तवते दूर करी देवो. ते दृष्टांत कहेवाय छे. जेम कोईना हाथमां कंकण होय, तेने एवो भ्रम थई जाय जे 'मारा हाथनुं कंकण खोवाई गयुं.' त्यारे तेने कोईना कहेवाथी कंकणनुं एवुं ज्ञान थई जाय जे 'मारुं कंकण हाथमां छे.' त्यारे ते एम कहे छे केः- मारूं कंकण मळी गयुं छे.' ए रीतिए प्राप्त जे कंकण छे तेनी पण प्राप्ति कहेवाय छे. तेम परमानंदस्वरूप आत्माविषे अविद्याना बळेकरी आवी भ्रान्ति थाय छेः-'आत्मा परमानंदस्वरूप छे नहि, किन्तु परमानंदस्वरूप ब्रह्म छे. ते ब्रह्मनो अने मारो वियोग थई गयो छे. उपासना करीने ते ब्रह्मने हुं प्राप्त थईश.' एवी रीतिनी भ्रान्ति बहु मूर्ख प्राणीओने थई रही छे. यद्यपि बहु पंडित पण एम कहे छे, तथापि तेओ मूर्ख ज छे. केमके जीवब्रह्मनो वियोग जे अंगीकार करे छे, ते मूर्ख कहेवाय छे. ते पुरुषोने उत्तम संस्कारेकरी जो कदाचित् (श्रोत्रिय) ब्रह्मज्ञानी आचार्यथी वेदान्तग्रंथना श्रवणनी प्राप्ति थई जाय त्यारे, सांभळेला अर्थने, निश्चय करीने, कहे छे केः-'ग्रंथ अने आचार्यनी कृपाए परमानंद अमने प्राप्त थयो छे.' आ तेमना कहेवानो अभिप्राय छेः- आत्मा तो परमआनंदस्वरूप आगळ पण हतो, परंतु 'मारो

---

२९. जे अर्थमां वादी-प्रतिवादी-उभयनु बुद्धिसाम्य होय ते; या साध्यनी साथे समानधर्मतानेलीधे तत्धर्मभाव; अथवा सामान्य लोकने अने परीक्षकने जे अर्थमां बुद्धिनी समता थाय छे ते-'दृष्टान्त,'

आत्मा परमानंदरूप छे' एवी रीतिए भान नहोतुं थयुं, एथी अप्राप्तनी पेठे हतो. आचार्यद्वारा ग्रंथश्रवणेकरी परमानंदनुं बुद्धिविषे भान थाय छे, एथी परमानंदनी प्राप्ति कहे छे. एवी रीतिए प्राप्तनी पण प्राप्ति बनवाथी, परमानंदनी प्राप्तिरूप ग्रंथनुं प्रयोजन संभवे छे.

जेम प्राप्तनी प्राप्ति ग्रंथनुं प्रयोजन छे, तेमः-

३०. नित्यनिवृत्तनी निवृत्ति पण प्रयोजन संभवे छे. दृष्टान्त.-रज्जुविषे सर्प नित्यनिवृत्त छे, अने रज्जुना ज्ञानेकरी निवृत्त थाय छे. तेम आत्माविषे संसार नित्यनिवृत्त छे, तेनी निवृत्ति आत्माना ज्ञानेकरी थाय छे.

एथी नित्यनिवृत्तनी निवृत्ति अने नित्यप्राप्तनी प्राप्ति ग्रंथनुं प्रयोजन छे. (ए सिद्ध थयुं.) २७.

(शंकाः—एक ज पदार्थ-मोक्ष विषे भाव अने अभाव ए बेउ होय नहि.)

३१. (कोई आवी शंका करे छेः-) 'कारणसहित जगत्नी निवृत्ति अने परमानंदनी प्राप्ति, ग्रंथनुं प्रयोजन छे.' ए पूर्वे कह्युं, ए संभवे नहि. केमके, निवृत्ति नाम ध्वंसनुं छे, ध्वंस अने नाश ए बे पर्यायशब्द छे. ते नाश अभावरूप छे. एथी मोक्षविषे भावरूपता अने अभावरूपता बन्ने प्रतीत थाय छे; अनर्थनी निवृत्ति कहेवावते अभावरूपता प्रतीत थाय छे, अने परमानंदनी प्राप्ति कहेवावते भावरूपता प्रतीत थाय छे. ते बंने एक पदार्थविषे बने नहि. केमके, अभावरूपता अने भावरूपता बंने परस्पर विरोधिनी छे. जे विरोधी धर्म होय ते एक कालमां एक वस्तुविषे रहे नहि. 'एथी ग्रंथनुं प्रयोजन संभवे नहि.' एवी कोई शंका करे छे

३२. ते शंकाना उत्तरनो दुहो.

अधिष्ठानथी भिन्न नहि, जगत् निवृत्ति वखाण;
सर्पनिवृत्ति रज्जु ज्यम, थये रज्जुनुं ज्ञान. २८.

टीकाः—कारणसहित जगत्नी निवृत्ति (ते) अधिष्ठान ब्रह्मरूप ज छे, ते(ब्रह्म)थी पृथक् नथी; जेम (रज्जुमां जे सर्प भास्यो ते रज्जुनुं ज्ञान थये ते) सर्पनिवृत्ति, ते अधिष्ठानरज्जुरूप छे. (तेम) 'सर्वत्र कल्पितवस्तुनी निवृत्ति अधिष्ठानरूप होय छे, तेथी पृथक् नहि.' ए भाष्यकार(शंकराचार्य)नो सिद्धान्त छे. एथी आ स्थानविषे अनर्थनी निवृत्ति ब्रह्मरूप (भावरूप) छे; (अभावरूप नथी;) केमके सर्व अनर्थनुं अधिष्ठान जे ब्रह्म छे, ते ब्रह्म भावरूप छे. एथी अनर्थनी निवृत्ति भावरूप होवाथी ग्रंथनुं **प्रयोजन** बने छे. ए वार्त्ता सिद्ध थई. २८.

दुहो.

जे जन प्रथम तरंग आ, पढे तेनी तत्काल,
करो मुक्ति गुरुमूर्ति थई, दादू दीनदयाल. २९.

इति श्रीविचारसागरे अनुबंधसामान्यनिरूपणं नाम

प्रथमस्तरंगः

समाप्तः १.

ॐ

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ श्रीविचारसागरस्य

द्वितीयतरंगप्रारंभः.

अथ अनुबंधविशेषनिरूपणं.

दुहो.

आना प्रथम तरंगमां, कर्यो अनुबंध विचार,
कहुं हुं द्वितीय तरंगमां, तेओनो विस्तार.

३३. (पूर्वपक्षी अनुबंधचतुष्टयविषे शंकाओ करे छे)

टीकाः—चार साधनयुक्त अधिकारी कह्यो, ते चार साधनमां मुमुक्षुता गणी छे. [मोक्षनी इच्छानुं नाम मुमुक्षुता छे.] कारणसहित जगत्‌नी निवृत्ति (१) अने ब्रह्मनी प्राप्ति (२) मोक्ष कहेवाय छे. तेनेविषे 'कारणसहित जगत्‌नी निवृत्तिरूप मोक्षनो अंश, तेने कोई चहातुं नथी,' ए वार्त्ता (प्रथम) पूर्वपक्षी प्रतिपादन करे छे

३४. अथ अधिकारिखंडन.

पूर्वपक्ष प्रमाणे (३४ थी ३८ पर्यन्त)

(प्रथम अंश-कारणसहित जगत्‌नी निवृत्तिनी इच्छा (१) कोईने होय नहि.)

दुहो.

जगद्ध्वंसनी, मूलसहित कोई करे नहि आश,
किन्तु विवेकी चहाय छे, त्रिविधदु:खनो नाश. २.

---

३० सामा पक्षवाळो वादी. सिद्धान्तविरुद्ध कोटिकर्ता.

टीकाः—मूलाविद्यासहित जगत्नो जे 'ध्वंस' 'नाम निवृत्ति तेनी 'आशा' नाम इच्छा कोई पुरुष करतो नथी, 'किन्तु' नाम शुं करे छे ? (उत्तरः)-त्रण प्रकारनां जे दुःख छे, तेनो नाश विवेकी पुरुष इच्छे छे. (एवं उपरना दुहामां कह्युं.) एनो आ अभिप्राय छेः—

दुःख त्रण प्रकारनां छेः—

एक तो अध्यात्मदुःख छे, बीजुं अधिभूतदुःख छे अने त्रीजुं अधिदैव दुःख छे. [रोग-क्षुधादिकोए करी जे दुःख थाय ते 'अध्यात्मदुःख' कहेवाय छे. चोर-व्याघ्र-सर्पादिकोए-करी जे दुःख थाय ते 'अधिभूतदुःख' कहेवाय छे. यक्ष-राक्षस-प्रेत-ग्रहादिक अने शीत, वात अने आतपथी जे दुःख थाय ते 'अधिदैवदुःख' कहेवाय छे.]

एवी रीतिए त्रण भातिनां जे दुःख छे तेना नाशनी सर्व पुरुषोने इच्छा छे. दुःखथी भिन्न जे (कारण-अज्ञानसहित जगत्) पदार्थ छे तेना नाशनी विवेकी पुरुष इच्छा करे नहि. एथी अज्ञान (कारण) सहित सकल जगत्नी निवृत्तिनी कोईने इच्छा बने नहि. एवुं पूर्वपक्षीनुं कहेवुं छे.)

३५. (वळी पूर्वपक्षी कहे छे के,-) अने जो सिद्धान्ती आम कहे केः—'यद्यपि सकल पुरुष दुःखनी निवृत्तिनी इच्छा

---

३१. आत्माने आश्रय करीने वर्तनार जे स्थूल—सूक्ष्म—शरीर ते आध्यात्म कहेवाय छे. ने अध्यात्मथी जन्य दुःख ते 'अध्यात्मदुःख' छे.

स्वसंघात(शरीरादि)थी भिन्न होय अने चक्षुइन्द्रियनो विषय होय ते अधिभूत कहेवाय छे. ने अधिभूतथी जन्य जे दुःख ते 'अधिभूतदुःख' छे.

स्वसंघातथी भिन्न होय अने चक्षुइन्द्रियनो अविषय होय ते अधिदैव कहेवाय छे. ने अधिदैवनी प्रेरणाए जन्य जे दुःख ते 'अधिदैवदुःख' छे.

पंडित पीतांबरजी पुरुषोत्तमजी

'करे छे, तथापि (जगत्‌ना कारण) अज्ञानसहित सर्व जगत्‌नी 'निवृत्ति विना दुःखोनी निवृत्ति थाय नहि; एथी दुःखनिवृ-'त्तिना निमित्त, अज्ञानसहित जगत्‌नी निवृत्तिने पण (पुरुष) 'चहाय छे.' ते बने नहि; केम केः—

३६. आयुर्वेदमां जे औषध कह्यां छे, तेओएकरी रोग-जन्य दुःखनी निवृत्ति थाय छे; अने भोजनेकरी क्षुधाजन्य दुःखनी निवृत्ति थाय छे. ए रीतिए पोतपोताना उपायेकरी सर्व दुःखनी निवृत्ति थाय छे. एथी अज्ञानसहित जगत्‌नी निवृत्ति विना पण, दुःखोनी निवृत्ति बने छे, (एम छे तो,) दुःखोनी निवृत्तिना निमित्त, अज्ञानसहित जगत्‌नी निवृत्तिनी चाहना (इच्छा) बने नहि. 'कारणसहित जगतनी निवृत्ति (१) अने ब्रह्मनी प्राप्ति (२) मोक्ष कहेवाय छे.' (एवुं सिद्धान्तीनुं कहेवुं हतुं,) तेनाविषे (१) कारणसहित जगत्‌नी निवृत्तिरूप मोक्षना (प्रथम) अंशनी पण इच्छा कोईने बने नहि, ए वार्त्ता उपर दुहाविषे (पूर्वपक्षीए) कही. (हवे)

(द्वितीय अंश ब्रह्मनी प्राप्तिरूप इच्छा (२.) कोईने बने नहि.)

३७. ब्रह्मप्राप्तिरूप मोक्षना द्वितीय अंशनी पण इच्छा कोइने बने नहि, ए वार्त्ता

पूर्वपक्षी कहे छे.

दुहो.

कृत अनुभव जे वस्तुनो, तेनी इच्छा होय;
ब्रह्म न अनुभूत पहेथी, चहे न तेने कोय.　　　३.

टीकाः—जे वस्तुनो 'अनुभव' नाम ज्ञान होय, ते वस्तुनी प्राप्तिनी इच्छा थाय छे. जे वस्तुनुं ज्ञान होय नहि, तेनी प्राप्तिनी इच्छा पण थाय नहि. जेम अन्य देशना अनंत

पदार्थ अज्ञात छे, तेओनी प्राप्तिनी इच्छा कोई पुरुषने थाय नहि. अने अधिकारी पुरुषने ब्रह्मनु ज्ञान छे नहि. [अने जेने ब्रह्मनुं ज्ञान होय ते अधिकारी नहि किंतु मुक्त छे.] तेने ब्रह्मप्राप्तिनी इच्छा बने नहि. एथी वेदान्तश्रवणथी पूर्व अज्ञात जे ब्रह्म, तेनी प्राप्तिनी इच्छा बने नहि. एवी रीतिए 'अज्ञान सहित जगत्‌नी निवृत्ति अने ब्रह्मनी प्राप्तिरूप जे मोक्ष' तेनी इच्छा कोईने बने नहि. एथी मुमुक्षु कोई छे नहि. ३. (ए प्रमाणे शंका करी, एक रीतिए कांई मुमुक्षु अथवा अधिकारी नथी एवुं प्रतिवादीए उपर बताव्युं.)

अन्यरीतिए अधिकारीनो अभाव पूर्वपक्षी प्रतिपादन करे छे.

३८. दुहो

चहे विषयसुख सकल जन, नहि मोक्षनो पंथ;
अधिकारी एथी नहि, पढे सुणे जे ग्रंथ. ४

टीकाः—सर्व पुरुष विषयसुखने चहाय छे, अने जे कोई सकल विषयनो त्याग करीने तपविषे आरूढ छे, ते पण परलोकना उत्तम भोगोनी (विषयसुखनी) इच्छा करीने नाना क्लेश सहन करे छे. एवी आ लोकनां अथवा परलोकनां विषयसुखने सर्व चहाय छे, ते विषयसुख मोक्षविषे छे नहि एथी मोक्षनो 'पथ' नाम साधन तेने कोई पुरुष चाहे नहि. ए रीतिए मोक्षनी इच्छारूप मुमुक्षुता बने नहि. अने सकल पुरुषोने विषयसुखनी इच्छा होय छे, एथी वैराग्य, शम, दम, उपरति पण कोइविषे बने नहि. एथी साधनचतुष्टयसहित अधिकारीनो अभाव होवाथी, ग्रंथनो आरंभ निष्फल छे. (ए रीतिए पूर्वपक्षीए अधिकारीनुं खंडन करी देखाड्युं.) ४.

३९. अथ विषयखंडन.

पूर्वपक्षप्रमाणे. (३९ थी ४४ पर्यन्त.)

(जीव अने ब्रह्मनी एकतानो असंभव. नाना साक्षी.)

दुहो.

जीवब्रह्मनी एकता, कह्यो विषय ते भूल;
ब्रह्म एक अक्लेश विभु, जीव क्लेशनुं मूल. ५

टीकाः—(पूर्वपक्षी सिद्धान्तीने कहे छे केः—तमे [१] पूर्वे कह्युं जे 'जीवब्रह्मनी एकता आ ग्रंथनो विषय छे,' ए संभवे नहि. केमके, ब्रह्म तो 'अक्लेश' नाम अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अने अभिनिवेश ए पंचक्लेशथी, रहित छे. अने 'विभु' नाम व्यापक छे. 'एक' नाम सजातीयभेदरहित छे. केमके ब्रह्मनुं सजातीय बीजुं ब्रह्म छे नहि. अने जीवविषे सर्व क्लेश छे. अने (जीव) परिच्छिन्न छे अने जीव नाना छे, केमके जेटलां शरीर छे एटला

---

३२. यथार्थ ज्ञाननुं विरोधि विपरीतज्ञान, अथवा विचारकरीजेनो नाश थाय, अथवा प्रतीत थाय पण विचारने सहन न करे ए 'अविद्या.' ते अविद्या मूला अने तूला ए भेदथी बे प्रकारनी छे. जे शुद्ध चेतन्यने आवरे ते 'मूला' कहेवाय छे. जे घटादि उपाधिवाळा चैतन्यने ढांके ते 'तूला' कहेवाय छे.

३३. सामान्यअहंकाररूप अन्तःकरणविषे चेतननो जे तादात्म्याध्यास–अहं ए ज्ञाननो विषय; वा अन्तःकरणविषे अभेद अभिमान, ए 'अस्मिता.'

३४. सुख अने तेनां साधनोनी इच्छा; वा अनुकूलताना ज्ञानेकरी जन्या जे बुद्धिवृत्ति, ए 'राग'.

३५. दुःख अने तेनां साधनोमां क्रोध; वा प्रतिकूलताना ज्ञानेकरी जन्या जे बुद्धिवृत्ति, ए 'द्वेष.'

३६. आ अवश्य कर्तव्य छे एवा आग्रहयुक्त मननो संयोग; वा मरणनो सर्वदा जे त्रास; वा मरणना भयथी शरीरनी रक्षाविषे जे आग्रह; वा स्वीकृतना पुनः त्यागनी असहिष्णुता; वा लोकरंजनार्थ तदनुचित धर्म उद्योग अने तदनुसार प्रवृत्ति अने वेशादि धारण; ए 'अभिनिवेश.'

जीव छे. जो सर्व शरीरविषे जीव एक होय तो, एक शरीरमां सुख अथवा दुःख थवाथी सर्व शरीरविषे सुख अने दुःख थवुं जोइये.

४०. अने वेदान्ती कहे छे जेः—'सुखथी आदि लईने 'अंतःकरणना धर्म छे; ते अंतःकरण नाना छे, एथी एकने 'सुखी दुःखी थवाथी सर्व सुखी दुःखी थाय नहि अने साक्षी 'सुखदुःखथी रहित छे, एक छे, अने सर्व क्लेशथी रहित 'छे. अने ते(साक्षी)नी ब्रह्मनी साथे एकता बने छे.' (त्यां पूर्वपक्षी कहे छे.) पण ते वार्त्ता बने नहि. केमकेः—

४१. कर्त्ता भोक्ता जे जीव छे, तेनाथी भिन्न साक्षी वंध्यापुत्रना समान छे. अने जो साक्षी अंगीकार पण करे, तो ते पण एक बने नहि, नाना साक्षी मानवा पडशे, केम केः—वेदान्तनो सिद्धान्त आ छेः—'अंतःकरण अने सुखदुःखथी आदि 'लई अंतःकरणना धर्म ए इंद्रिय अने अंतःकरणना विषय 'नथी, (अर्थात् इन्द्रिय अने अंतःकरण तेमने जाणी 'शकतां नथी,) किन्तु साक्षीना विषय छे. (अर्थात् साक्षी 'तेमने प्रकाशे छे.) केमके, इंद्रिय तो पंचीकृत भूतोने 'विषय करे छे. एमां आटलो भेद छे.—नेत्रइंद्रिय तो 'रूपवाळुं जे वस्तु छे, तेना रूपने अने रूपना आश्रयने, 'बंनेने विषय करे छे. (अर्थात् देखे छे.) जेमके नील, पीत 'आदिक घटना रूपने अने ते रूपना आश्रय घटने नेत्रइंद्रिय 'विषय करे छ. अने त्वचाइंद्रिय पण स्पर्शने अने तेना 'आश्रयने, बंनेने विषय करे छे. (=जाणे छे.) अने रसना, घ्राण

३७. 'साक्षीना विषय' एम कहे, त्यारे 'साक्षी प्रकाशे छे' एम समजवु. अंतःकरणना विषय' एम कहे त्यारे 'अंतःकरणेकरी आवरण भंग थाय छे' एम. समजवुं. 'अज्ञानना विषय' एम कहे त्यारे 'अज्ञान ढाके छे' एम समजवुं.

'अने श्रवण ए घ्राण (इंद्रिय) तो रस, गंध अने शब्द-
'मात्रने ज विषय करे छे. (=जाणे छे.) तेओना आश्रयने विषय
'करे नहि. एथी ए घ्राणेकरी तो अंतःकरणनुं ज्ञान बने नहि
'अने नेत्रकरी अने त्वचाएकरी पण अंतःकरणनुं ज्ञान बने
'नहि. केमके, पंचीकृत भूत अथवा पंचीकृत भूतोनां कार्य
'जे रूपवान् अथवा स्पर्शवान् होय, ते नेत्रना अने त्वचाना
'विषय थाय छे. अंतःकरण अपंचीकृत भूतोनुं कार्य छे,
'(अने रूप अने स्पर्शरहित छे.) एथी नेत्र अने त्वचानो
'पण विषय नथी, ए ज कारणथी अपंचीकृत भूतोनुं कार्य नेत्र-
'इंद्रिय पण नेत्रनो विषय नथी. अने बाह्यवस्तु इंद्रियनो
'विषय होय छे अने अंतःकरण इंद्रियनी अपेक्षाथी अंतर
'छे. एथी पण इंद्रियनो विषय (अंतःकरण) नथी.'

४२. अने (पूर्वपक्षी कहे छे, वेदान्तनो ए पण सिद्धान्त छे. के.—) 'अंतःकरणनी वृत्तिनो पण अंतःकरण 'विषय नथी. केमके, अंतःकरण, वृत्तिनुं आश्रय (उपादान) 'छे, एथी अन्तःकरण पोतानी वृत्तिनो विषय बने नहि. जेम 'अग्नि, दाहनो आश्रय छे, ते (अग्नि) दाहनो विषय थाय 'नहि, 'किन्तु अग्निथी भिन्न जे काष्ठथी आदिलइने वस्तु छे,' 'ते दाहनो विषय थाय छे. तेम अंतःकरणथी भिन्न जे वस्तु 'छे ते अंतःकरणजन्य वृत्तिनो विषय छे, अने अंतःकरण नहि.'

४३. 'तेम (वेदान्तप्रमाणे) अंतःकरणना धर्म पण 'अंतःकरणनी वृत्तिना विषय नथी. केमके अंतः-'करणने विषय करवानेसारू जो अंतःकरणनी वृत्ति होय 'तो अंतःकरणना धर्म जे सुखादिक छे, तेओने पण '(अंतःकरणनी वृत्ति) विषय करे. ते अंतःकरणने विषय

---

३८. नेत्रनो विषय घडो ते घडाने नेत्र देखे तो ज घडानो धर्म जे रूप तेने पण नेत्र देखी शके छे तेम.

'करवावाळी वृत्ति तो अंतःकरणना सन्मुख थाय नहि, पथी 'अंतःकरणना धर्म पण अंतःकरणनी वृत्तिना विषय नथी, 'अने आ नियम छेः—वृत्तिना आश्रयथी किञ्चित् (पण) 'दूर जे वस्तु होय, ते (वस्तु) वृत्तिनो विषय थाय छे. 'जे वस्तु वृत्तिना आश्रयथी अत्यंत समीप होय, ते वृत्तिनो 'विषय थाय नहि. जेम नेत्रनी वृत्तिनो आश्रय जे नेत्र, तेनी 'अत्यंत समीप अंजन, (ते अंजन,) नेत्रनी वृत्तिनो विषय 'नथीः तेम अंतःकरणनी वृत्तिनो आश्रय जे अंतःकरण तेनी 'अत्यंत समीप जे सुखथी आदि लईने धर्म, ते (धर्म) अंतः-'करणनी वृत्तिना विषय बने नहि ए रीतिए धर्मसहित अं-'तःकरणनुं, इंद्रियथी अथवा पोताथी (अंतःकरणथी) भान 'बने नहि. किन्तु (अंतःकरण अने तेना धर्म ए) साक्षीना 'विषय छे'

४४. (पूर्वपक्षी उपर प्रमाणे सिद्धान्तना मतनो अनुवाद करी कहे छे केः—जे अंतःकरणने अने अंतःकरणना धर्मने प्रकाशे छे, तेने वेदान्तना सिद्धान्तमां साक्षी कहे छे.) ते साक्षी एक अंगीकार करिये तो, जेम एक अंतःकरणना सुखदुःखनुं साक्षीएकरी भान थाय छे, तेम सर्वना (अंतःकरणना) दुखदुःखनुं भान (ते एक साक्षीएकरी) थवुं जोइये. (परंतु तेम थतुं नथी.) पथी साक्षी नाना छे. ज्यारे नाना साक्षी अंगीकार कराय त्यारे दोष नहि. केमके जे साक्षीनां उपाधि (जे) अंतःकरण छे, ते साक्षीएकरी पोतपोताना उपाधि-(अंतःकरण)ना धर्मनुं भान थाय छे, पथी सर्वना (अंतःकरणना) सुखदुःखनुं भान थाय नहि. (एम नाना साक्षी सिद्ध थाय छे.) ए रीतिए नाना जे साक्षी तेमनी एक ब्रह्मनी साथे एकता बने नहि. (एम छे तो, आ ग्रंथनो विषय जे—'जीवब्रह्मनी एकता'–ते संभवतो नथी. इति विषयखंडन.)

४५. प्रयोजनखंडन.

पूर्वपक्षप्रमाणे. (४५ थी ५९ पर्यन्त.)

(मिथ्यावंधनी सामग्रीना अभावथी तेनी निवृत्तिरूप प्रयोजननो असंभव.)

दुहो.

वंधनिवृत्ति ज्ञानथी, बने न विन अध्यास;
सामग्री तेनी नहिँ, तजो ज्ञाननी आश. ६,

टीकाः—'अहंकारथी आदिलईने जे अनात्मवस्तु छे, ते वंध कहेवाय छे.' ते वंध जो अध्यासरूप होय तो ज्ञानेकरी निवृत्त थाय, अने अध्यासरूप न होय तो ज्ञानेकरी निवृत्त थाय नहि. केमके, ज्ञाननो आ स्वभाव छेः–जे वस्तुनुं ज्ञान थाय ते (वस्तु) विषे, अध्यास अने अज्ञान, तेमने दूर करे छे. जेम रज्जुनुं ज्ञान, रज्जुविषे सर्प(ना) अध्यासने, अने रज्जुना अज्ञानने, दूर करे छे. [भ्रांतिज्ञाननो विषय जे मिथ्यावस्तु, अने भ्रान्तिज्ञान,तेनुं नाम अध्यास छे.]

जेनेविषे जे वस्तु मिथ्या नथी किन्तु सत्य छे, तेनी ज्ञानेकरी निवृत्ति थती नथी. तेम आत्माविषे अहंकारथी आदि लईने वंध जो अध्यास (रूप) नाम मिथ्या होय तो ज्ञानेकरी (तेनी) निवृत्ति थाय. आत्माविषे मिथ्यावंधनी सामग्री छे नहि, अने वंधप्रतीति थाय छे पणी वंध सत्य छे. ते सत्य वंधनी ज्ञानेकरी निवृत्तिनी आशा निष्फल छे (ए प्रमाणे पूर्वपक्षी कहे छे.) ६.

३९. ए अध्यासनुं 'स्वरूप' वा 'आकार' छे. 'सिद्धान्त–लक्षण' नथी.

४६. अथ अध्याससामग्रीनिरूपण.

दुहो.

सत्यवस्तुना ज्ञानथी, जाण एक संस्कार,
त्रिविधदोष, अज्ञान वली सामग्री ए धार्य, ७.

टीकाः—सत्यवस्तुना ज्ञानजन्य संस्कार (१), त्रण प्रकारना दोष,—प्रमातानो दोष, प्रमाणनो दोष, अने प्रमेयनो दोष (२)—अने अधिष्ठानना विशेष रूपनुं अज्ञान (३), एटली **अध्यासनी सामग्री** छे. ए विना अध्यास थाय नहि.

(१) जेम शुक्तिमां रूपानो अने रज्जुमां सर्पनो अध्यास थाय छे ते, जे पुरुषे सत्यरूपुं अने सत्यसर्प दीठां छे तेने थाय

---

४०. मिथ्याज्ञान, अथवा भ्रान्तज्ञानन विपय जे मिथ्यावस्तु अन भ्रान्तज्ञान ए 'अध्यास' छे. अध्यासना अनेक अनियमित विलक्षण कारण होय छे तेथी अध्यास संबंधमां शास्त्रकारोना अनेकधा वाद छे. "स्मृतिरूप. परत्र पूर्वदृष्टा· वभासः" (१) 'स्मृतिरूपः=संस्कारना प्रभवत्वथी स्मृतिना रूप जेवुं रूप छे जेनु, 'परत्र'=स्वभिन्न अने स्वअभाववाला अन्यविपे, 'पूर्वदृष्टस्य'=पूर्वं अनु· भूत(सजा ीयपर)नो, 'अवभास'=ज्ञान, ते 'अध्यास.' 'अधिष्ठानथी विषम· सत्तावालो अवभास ते अध्यास.' ज्या शुक्तिमा रजतभ्रम थाय त्या शुक्ति· देशमा. रजत उपजे छे. तेनुं ज्ञान अने तात्कालिक रजत ए बेने सिद्धान्तमा अवभास अने अध्यास कहे छे. शारीरकभाष्यानुसार अध्यास द्विविध छेः (१) ज्ञानाध्यास—(२) अर्थाध्यास.

(१) 'अ-तत्मा तत् बुद्धि' ए ज्ञानाध्यास: जेम शुक्तिमा रजतबुद्धि अथवा आत्मामां अनात्मबुद्धि.

(२) प्रमाण अजन्य ज्ञाननुं विषयत्व सते पूर्वदृष्ट सजातीय होय ते अर्था· ध्यास: -जेम शुक्तिमा रजतनो अध्यास अथवा आत्मामां अनात्मानो अध्यास.

अथवा (१) मिथ्यावस्तुनु मिथ्या 'ज्ञान' ए ज्ञानाध्यास. (२) भ्रान्तिज्ञान- नो विषय जे रूपादिक मिथ्या 'वस्तु' ए अर्थाध्यास.

४१. कार्यथी नियत अवश्यंभाविनी पूर्वक्षणवृत्ति जेनी ते 'कारण' कहेवाय छे. ते कारणना समूहने सामग्री कहे छे. एवी अध्यासनी सामग्रीनुं निरूपण नाम लक्षणादि प्रकारेकरी ज्ञानने अनुकूल वचन. विचार.

छे. (अर्थात् सत्यवस्तुना ज्ञानजन्य संस्कार जेने प्रथम होय छे तेने अध्यास थाय छे.) अने जेने सत्यरूपानुं अने (सत्य)-सर्पनुं ज्ञान नहि, तेने (अध्यास) थाय नहि. एथी एम सिद्ध थाय छे केः—सत्यवस्तुना ज्ञानना संस्कार अध्यासना हेतु छे.

(२) अने शुक्तिमां सर्पनो (अने) रज्जुमां रूपानो अध्यास थाय नहि एथी (१) प्रमेय(अधिष्ठान)विषे सादृश्य दोष अध्यासनो हेतु छे. ए ज रीते (२) प्रमाताविषे लोभ, भयथी आदिलईने (जे दोष), अने (३) नेत्रादिक प्रमाण विषे पित्त कामलथी आदिलईने जे दोष, ते (त्रण दोष) अध्यासना हेतु छे.

(३) अने शुक्तिनुं 'इदं' रूपेकरीने सामान्यज्ञान होय अने 'आ शुक्ति छे' एम विशेषज्ञान न होय, त्यारे अध्यास थाय छे. 'शुक्ति छे' एवुं विशेषरूपेकरीने ज्ञान होय, त्यारे अध्यास थाय नहि; अने (आ कंईक छे एम) सामान्यरूपेकरीने ज्ञान न होय तो पण अध्यास थाय नहि. एथी अधिष्ठाननुं विशेषरूपेकरी अज्ञान अने (अधिष्ठाननुं) सामान्यरूपेकरी ज्ञान, अध्यासनां हेतु छे. एटली अध्यासनी सामग्री छे. एओमांथी कोई एक नहि होय, तो पण अध्यास थाय नहि. जेम कुलाल (कुंभार), चक्र, दंड, मृत्तिका (ए) घटनी सामग्री छे. (तेमांथी) कोई एक न होय तो घट थाय नहि. तेम अध्यास पण (उपर कहेली) सर्व सामग्रीएकरी थाय छे. ७.

---

४२. प्रमाज्ञाननो विषय. कल्पित सर्प रजत आदिकनु अधिष्ठान जे रज्जु शुक्ति आदिक ते प्रमाज्ञाननो 'विषय' छे,—एथी ते रज्जु शुक्ति आदि ए 'प्रमेय' छे. रज्जु शुक्ति आदिविषे सर्प रजतादिनी तुल्यता ते 'सादृश्य दोष' छे. 'प्रमेय—दोष' पण एने ज कहे छे

(बंधना अध्यासमां सत्यवस्तुना ज्ञानजन्यसंस्कार-
रूप पूर्वोक्त (१) सामग्रीनो अभाव.)

४७. अने 'बंधना अध्यासमां एक पण कारण छे नहि.' बंध क्यांक सत्य होय, तो तेना ज्ञानजन्य संस्कारथी आत्माविषे मिथ्याबंध प्रतीत थाय. जेथी सिद्धान्तमां आत्माथी भिन्न कोई सत्यवस्तु छे नहि; एथी सत्य-बंधना ज्ञानजन्यसंस्कारनो अभाव होवाथी, आत्माविषे बंधनो अध्यास बने नहि.

(बंधना अध्यासमां प्रमेयादिदोषरूप पूर्वोक्त (२) साम-
ग्रीनो अभाव.)

४८. तेम आत्मानुं अने बंधनुं सादृश्य पण छे नहि. उलटो तम-प्रकाशनी पेठे विपरीत स्वभाव छे. आत्मा **प्रत्यक्** छे, अने बंध **पराक्** छे. ['प्रत्यक्' नाम अन्तरनुं छे, अने 'पराक्' नाम बाह्यनुं छे.] आत्मा **विषयी** छे अने बंध **विषय** छे. [जे प्रकाश करवावाळो होय ते 'विषयी' कहेवाय छे. अने जेनो प्रकाश कराय ते 'विषय' कहेवाय छे.] प्रत्यक्विषे पराक्नो तथा पराक्विषे प्रत्यक्नो अध्यास थाय नहि. जेम पुत्रादिकोनी अपेक्षाथी देह प्रत्यक् छे, तेनेविषे पुत्रादिकोनो, अने पुत्रादिकविषे देहनो, अध्यास थाय नहि. अने विषयमां विषयीनो तथा विषयीमां विषयनो अध्यास थाय नहि. जेम विषय जे घटादिक तेमां विषयी दीपकनो, अने (विषयी) दीपकमां (विषय) घटादिकोनो, अध्यास थाय नहि. तेम सादृश्यनो अभाव होवाथी प्रत्यक् विषयी जे आत्मा, ते (आत्मा) विषे, पराक् विषयरूप बंधनो अध्यास बने नहि. प्रत्यक्नो अने पराक्नो विरोध छे.

विषयी अने विषयनो विरोध छे, सादृश्य नथी; एथी बंधनो अध्यास आत्माविषे बने नहि.

४९. तेम ज प्र मा ता ना दो ष नो अने प्र मा ण ना दो ष नो प ण अ भा व छे. केमके, 'प्रमाताथी आदिलईने सर्व प्रपंच अध्यासरूप छे, ते ज बंध छे,' ए वेदान्तनो सिद्धान्त छे. ए रीतिए बंधना अध्यासथी पूर्व प्रमाता-प्रमाणनुं स्वरूप असिद्ध छे; अने तेमनो दोष पण असिद्ध छे. एथी बंधनो अध्यास बने नहि. (एम पूर्वपक्षीनुं कहेवुं छे.)

(बंधना अध्यासमां अधिष्ठानना विशेषरूपनुं अज्ञान,
एरूप (३) सामग्रीनो अभाव.)

५० अने **अधिष्ठानना विशेषरूपे करीने अज्ञान पण बने नहि.** केमके, 'बंधनुं अधिष्ठान जे ब्रह्म छे ते 'स्वयंप्रकाश ज्ञानरूप छे.' ते स्वयंप्रकाश ज्ञानरूप ब्रह्मविषे सूर्यविषे तमनी पेठे, अज्ञान बने नहि. जेम प्रकाशमान सूर्यसाथे तमनो विरोध छे, तेम चेतनप्रकाश अने तमरूप अज्ञाननो परस्पर विरोध छे अने अधिष्ठाननुं अज्ञान अंगीकार करिये, तो पण बंधनो अध्यास बने नहि. केमके, अत्यंत अज्ञातविषे तथा अत्यंत ज्ञातविषे अध्यास थाय नहि. किन्तु विशेषरूपेकरी अज्ञात अने सामान्यरूपेकरी ज्ञातविषे (अध्यास) थाय छे. अने 'ब्रह्म सामान्यविशेषभावथी रहित छे,'– ['निर्विशेष छे'] ए सिद्धान्त छे. एथी विशेषरूपे अज्ञात अने सामान्यरूपे ज्ञात, ब्रह्म बने नहि. अने अध्यासना लोभे

---

४३ ब्रह्मचैतन्यथी भिन्न जे अज्ञान अने अज्ञाननां कार्य–स्थूल सूक्ष्म प्रपंच–ए सर्व चेतनविषे अध्यस्त छे एने ज अन्तर्गत, अन्तःकरणरूप प्रमाता अने इन्द्रियरूप प्रमाण छे, एथी ए पण अध्यस्त छे. तेथी प्रपंचना अध्यासथी पूर्वसिद्ध नथी. ए उपनिषद्नो निर्णीतअर्थरूप सिद्धान्त छे. पं पी. पु.

ब्रह्मविषे सामान्यविशेषभाव अंगीकार करशो, तो सिद्धान्तनो त्याग थशे. ए रीतिए निर्विशेषप्रकाशरूप जे ब्रह्म, ते(ब्रह्म)ना विशेषरूपे अज्ञाननो अने सामान्यरूपे ज्ञाननो अभाव होवाथी, तेनाविषे अध्यास बने नहि. एथी 'ब्रह्मविषे बंध 'अ-ध्यासरूप छे.'–ए कहेवुं बने नहि. किन्तु बंध सत्य छे' ते सत्य बंधनी ज्ञानेकरी निवृत्तिनो असंभव छे. एथी ग्रंथनुं **ज्ञानद्वारा मोक्षरूप प्रयोजन** बने नहि. अने ज्ञानेकरी मोक्षनो प्रतिपादक जे सिद्धान्त ते समीचीन नहि. किन्तु–

५१. (केवल कर्मेकरी मोक्षनी सिद्धि. एकभविकवाद.)

कर्मेकरी मोक्ष थाय छे ए वार्ता (पूर्वपक्षी) **एक-भविकवादिनी** रीतिए प्रतिपादन करे छे.

दुहो.

सत्यबंधनी ज्ञानथी नहि निवृत्ति सयुक्त;
नित्यकर्म संतत करे, चहे थवा जे मुक्त. ८.

टीकाः—सत्यबंधनी ज्ञाने निवृत्ति मानवी 'सयुक्त' नाम युक्तिसहित नथी; किन्तु अयुक्त छे. एथी जे पुरुष मुक्त थवा चाहे, ते 'संतत' नाम निरंतर **नित्यकर्म** करे ८

एनो आ अभिप्राय छेः–

५२. (कर्मना प्रकार–विहित निषिद्ध.)

कर्म बे प्रकारनुं छे.–एक **विहित** छे अने एक **निषिद्ध** छे. [पुरुषनी प्रवृत्तिना निमित्त जेनुं स्वरूप वेदे बोधन कर्युं छे, ते 'विहितकर्म' कहेवाय छे. अने पुरुषनी निवृत्ति जेणे बोधन करी छे, ते 'निषिद्धकर्म' कहेवाय छे.] अने स्वभावसिद्ध जे क्रिया छे ते कर्म नथी; केमके, वेदे, प्रवृत्ति

४४. पूर्वमीमांसानो एकदेशी एम कहे छे के,–कर्मोने मोक्षनी इच्छा पछी एक ज जन्म थाय छे, ए वाद.

अथवा निवृत्तिना निमित्त योधन जे कर्युं छे, ते कर्म कहेवाय छे. उँदासीनक्रिया कर्म नहि. एथी ये प्रकारनुं कर्म छे, त्रण प्रकारनुं नहि.

५३. (पंच प्रकारनां कर्म.)

विहितकर्म चार प्रकारनुं छे.—एक नित्य छे, अने (एक) नैमित्तिक छे, काम्य छे अने प्रायश्चित्त छे. पापनाशना निमित्त विधान कर्युं जे कर्म, ते प्रायश्चित्त कहेवाय छे. जेम प्रमादेकरी यतिने द्रव्यना ग्रहणजन्य जे पाप (लागे) तेना नाशना निमित्त द्रव्यनो त्याग अने त्रण उपवास छे. (ए प्रायश्चित्तकर्म छे.) फलना निमित्त विधान कर्युं जे कर्म ते काम्य कहेवाय छे. जेम वृष्टिकामने कारीरीयाग छे; अने स्वर्गकामने अग्निहोत्र (अने) सोमयागथी आदि लईने (यागो) छे. (ते काम्यकर्म छे.) जे कर्मने नहि कर्याथी पाप थाय, अने कर्याथी पुण्यपापरूप फल थाय नहि, अने सदा जेनुं विधान नहि, किन्तु कंई निमित्तने लईने (जेनुं) विधान कर्युं होय ते कर्म नैमित्तिक कहेवाय छे, जेम,-ग्रहणश्राद्ध छे; अने अवस्थावृद्ध, जातिवृद्ध, आश्रमवृद्ध, विद्यावृद्ध, धर्मवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, पुरुषना आगमनथी उत्थानरूप कर्म छे. [विद्याशब्दे शास्त्रज्ञाननुं ग्रहण छे; अने ज्ञानशब्दे अपरोक्ष विद्यानुं ग्रहण छे. पूर्वपूर्वथी उत्तर उत्तर उत्तम छे.] (ए नैमित्तिक कर्म छे.) जे(कर्म)-ना नहि करवाथी पाप थाय, करवाथी फल थाय नहि, अने सदा जेनुं विधान होय, ते नित्यकर्म कहेवाय छे. जेम

---

४५. विहित अने निषिद्धथी शेष रहेती सहज क्रिया: रागद्वेषथी रहित गमनागमन–शौचादि-क्रिया. ४६ 'वर्षकामेष्टिः कारीरी.'–वर्षानी इच्छावाळा पुरुषे करवानो यज्ञ. वर्षाना हेतुविषे इष्टि ते 'कारीरी'

स्नानसंध्यादिक (कर्म) छे (ते नित्यकर्म छे). ए रीतिए चार प्रकारनां विहित, अने (एक) निषिद्ध मळीने पंच प्रकारनुं कर्म छे.

५४. मोक्षनी इच्छावान् काम्य अने निषिद्ध कर्म करे नहि. केमके, काम्यकर्मेकरी उत्तमलोक प्रति जाय छे अने निषिद्ध(कर्मे)करी नीचलोक प्रति जाये छे. एथी बंनेने त्याग करे, अने नित्यकर्मने सदा करे, अने नैमित्तिक(कर्म)नुं ज्यारे निमित्त होय त्यारे, नैमित्तिक पण करे, केमके नित्य-नैमित्तिककर्मने नहि करे तो पाप थशे, अने ते पापेकरी नीच योनिने प्राप्त थशे; एथी पापने रोकवा अर्थे नित्यनैमित्तिककर्म करे. नित्यनैमित्तिककर्मनुं अन्य फल नथी, आ ज फल छे;—तेमने नहि कर्याथी जे पाप थाय छे ते तेमना करवाथी थाय नहि. एथी मुमुक्षु **नित्यनैमित्तिककर्म अवश्य करे.**

५५. अने जो कदाचित् प्रमादथी निषिद्ध कर्म थई जाय तो तेनो दोष दूर करवासारू प्रायश्चित्त करे. जो निषिद्ध कर्म न कर्युं होय, तो पण जन्मान्तरनां जे पाप छे, तेमने दूर करवासारू प्रायश्चित्तकर्म करे, परंतु एटलो भेद छे. **प्रायश्चित्त बे प्रकारनुं छे:**—एक तो **असाधारण** छे अने एक **साधारण** छे. कोई पापविशेषने दूर करवासारू शास्त्रे जे विधान कर्युं होय, ते असाधारण प्रायश्चित्त कहेवाय छे. जेम,—पूर्वे कह्या उपवास छे. अने सर्व पापने दूर करवासारू शास्त्रे विधान करेलुं जे कर्म ते साधारण प्रायश्चित्त कहेवाय छे. जेम,—गंगास्नान अने ईश्वरनुं नामउच्चारण छे. एथी आदिलईने अन्य पण जाणी लेवां. ए रीतिए बे प्रकारनुं प्रायश्चित्त छे. जो ज्ञात पाप होय, तो ते पापनुं नाशक

जे असाधारण प्रायश्चित्त शास्त्रे बोधन कर्युं छे, तेने करे; अने जन्मान्तरनां जे अज्ञात पाप छे, तेमने दूर करवासारु साधारण प्रायश्चित्त करे. केमके, असाधारण प्रायश्चित्तनो आ स्वभाव छे,–जे पापनो नाश करवासारु शास्त्रे जे प्रायश्चित्तविधान कर्युं छे, ते पाप (ते) प्रायश्चित्तेकरी दूर थाय छे; अन्य नहि. अने जन्मान्तरनां पापनुं आवुं ज्ञान छे नहि,– जे कयुं पाप छे; (अने) किया प्रायश्चित्तेकरी दूर थशे. एथी साधारण प्रायश्चित्त करे.

५६. साधारणप्रायश्चित्तेकरी सर्व पाप दूर थाय छे. यद्यपि गंगास्नानथी आदि लईने जे साधारण प्रायश्चित्त कह्यां, ते केवल प्रायश्चित्तरूप नथी; किन्तु काम्यरूप अने प्रायश्चित्तरूप छे. केमके, गंगास्नानेकरी उत्तमलोकनी प्राप्ति शास्त्रमां कही छे; तेम ईश्वरना नाम उच्चारणेकरी पण उत्तमलोकनी प्राप्ति कही छे, एथी काम्यरूप छे. अने पापनां नाशक छे एथी प्रायश्चित्तरूप छे. जेम अश्वमेध ब्रह्महत्यादिक पापनो नाशक छे, अने स्वर्गनी प्राप्तिरूप फलनो हेतु छे; तेम गंगास्नानादिक छे; केवल प्रायश्चित्त नथी. एथी गंगास्नानादिकोएकरी उत्तम लोकनी प्राप्ति थाय छे. ते (उत्तम लोक) मुमुक्षुने वांच्छित छे नहि; तथापि जेने उत्तमलोकनी वांच्छा छे, तेने तो गंगास्नानादिक, पापनो नाश करीने उत्तममलोकने प्राप्त करे छे. जेने (उत्तम) लोकनी कामना छे नहि, तेना केवल पापनां ज नाशक छे. एथी कामनासहित अनुष्ठान कर्यां 'काम्यरूप' प्रायश्चित्त छे, (अने) लोककामना विना अनुष्ठान कर्यां 'केवल' प्रायश्चित्तरूप छे. जेम वेदान्तमतमां 'संपूर्ण कर्म सकाम पुरुषने संसारनां हेतु छे, अने निष्काम(पुरुष)ने अंतःकरणनी शुद्धि करीने

मोक्षनां हेतु छे,' तेम एक ज गंगास्नान तथा ईश्वरनुं नामउच्चारण, सकाम(पुरुष)ने काम्यरूप प्रायश्चित्त छे, अने निष्काम(पुरुष)ने केवल प्रायश्चित्तरूप छे, एथी मुमुक्षु साधारण प्रायश्चित्त करे. ए रीतिए **जन्मान्तरनां संपूर्ण पापनो नाश, ज्ञान विना ज थाय छे.** (एम पूर्वपक्षी कहे छे.)

५७. तेम मुमुक्षुनां जन्मान्तरनां काम्यकर्म पण वंध्याना समान छे, फलनां हेतु नथी, केमके जेम कर्मना अनुष्ठानकालविषे पुरुषनी इच्छा, फलनो हेतु, वेदान्त मतमां, अंगीकार करी छे; इच्छासहित अनुष्ठान कर्यां कर्म स्वर्गादि फलनां हेतु छे, अने निष्काम अनुष्ठान कर्यां (कर्म) स्वर्गादिक फलनां हेतु नथी, ए वेदान्तनो सिद्धान्त छे; तेम (अमारा एकभविकवादना सिद्धान्तमां) कर्मनी सिद्धिथी अनंतर पण पुरुषनी इच्छा फलनो हेतु छे. पुरुषनी ते इच्छा जे कालमां पुरुष मुमुक्षु थयो त्यारे दूर थई गई, एथी जन्मान्तरनां काम्यकर्म पण फलनां हेतु नहि. जेम कोई पुरुषे धननी प्राप्तिनी इच्छाथी धनी पुरुषनुं आराधन कर्युं होय, ते धनीना आराधनथी अनन्तर पण जो धननी इच्छा दूर थई जाय, तो धननी प्राप्तिरूप फल थाय नहि; तेम जन्मान्तरना काम्यकर्मनुं फल पण, मुमुक्षुने इच्छाना अभावथी, थतुं नथी. ए रीतिए **केवल कर्मेकरी मोक्ष थाय छे.** (एम पूर्वपक्षी कहे छे; वळी कहे छे केः—)

५८. वर्त्तमानजन्मविषे काम्य अने निषिद्ध (कर्म) कर्यां नथी जेथी ऊर्ध्वलोक (स्वर्ग) के अधोलोक (नरक) प्रति जाय. जन्मान्तरनां प्रारब्ध—जे निषिद्ध अने काम्य (कर्म)—तेमनो भोगेकरी नाश थाय छे. नित्य अने नैमित्तिक (कर्म)

नहि करवाथी जे पाप थाय ते, ते(कर्म)ने करवाथी मुमुक्षुने थाय नहि. अने जन्मान्तरनां संचित जे निषिद्ध (कर्म) छे, तेमनो साधारण प्रायश्चित्तेकरी नाश थाय छे. जन्मान्तरनां संचित काम्यकर्म, मुमुक्षुने इच्छाना अभावथी, फल दे नहि. पछी मुमुक्षु नित्यनैमित्तिक (कर्म) अने साधारण प्रायश्चित्तरूप कर्म करे. अने वर्तमान जन्मनुं ज्ञातनिषिद्ध कर्म होय तो, असाधारण प्रायश्चित्त करे.

अथवा नित्य अने नैमित्तिक ज करे, प्रायश्चित्त न करे. केमके, जे संचित निषिद्धकर्म अने काम्यकर्म, ते मुमुक्षुनां नाश थई जाय छे. जेम ज्ञानवाननां संचितकर्मनो नाश वेदान्तमतमां अंगीकार कर्यो छे; तेम निषिद्ध (अने) काम्य(कर्म)नो त्याग करीने, नित्यनैमित्तिककर्मविषे वर्त्तमान जे मुमुक्षु तेनां संचितकर्मनो नाश थाय छे. अथवा संचित जे काम्य अने निषिद्ध, ते सर्व मळीने एक जन्मनो आरंभ करे छे, पछी मुमुक्षुने एक जन्म अन्य थाय छे. अथवा योगीना कार्यव्यूहनी पेठे, एक ज कालविषे सर्व संचित, अनंत शरीरोनो आरंभ करे छे; एवडे मुमुक्षु उत्तरजन्मविषे सर्वनुं फल भोगवी ले छे. अथवा नित्य अने नैमित्तिक कर्मना अनुष्ठानथी जे क्लेश थाय छे, ते जन्मान्तरना संचितनिषिद्धकर्मनुं फल छे; पछी जन्मान्तरनुं संचितनिषिद्ध अन्य जन्मनो आरंभ करे नहि. काम्य जे संचित छे, ते एक जन्ममां अथवा एक कालमां अनंत शरीरोनो आरंभ करे छे; पछी मुमुक्षुने उत्तरजन्मविषे दुःखनो लेश पण थाय नहि; केवल सुखनो भोग थाय छे. केम के, जन्मान्तरनां संचित जे विहितकर्म छे, तेओथी शरीर

४७. देहसमूह. एककाले हजारो शरीरेकरी भोग भोगवी लई कर्मनो क्षय करवो ते.

थयुं छे; अने संचित जे निषिद्ध (कर्म) छे, ते नित्यनैमित्तिकना अनुष्ठानना क्लेशेकरी पूर्वजन्मविषे भोगवी लीधां. ए रीतिए प्रायश्चित्त विना, केवल नित्य अने नैमित्तिक कर्मना अनुष्ठानथी मोक्ष थाय छे. एथी नैमित्तिक कर्मना समये नैमित्तिक (कर्मनुं) अनुष्ठान करे, अने नित्यकर्म(नुं) संवत अनुष्ठान करे. आ मतने शास्त्रमां **'एक-भविक-वाद'** कहे छे. (ए प्रकारे पूर्वपक्षीनुं कहेवुं छे.)

५९. (पुनः पूर्वपक्षी कहे छे केः-) एथी पण **बंधनी निवृत्ति ज्ञानद्वारा ग्रंथनुं प्रयोजन नहि.** केमके, जे वस्तु अन्यथते थाय नहि ते मुख्य प्रयोजन होय छे. जेम रूपनुं ज्ञान नेत्र विना अन्यथते थाय नहि, ते रूपज्ञान नेत्रनुं प्रयोजन छे. अने बंधनी निवृत्ति ग्रंथ विना कर्मेकरी थाय छे एथी, बंधनी निवृत्ति ग्रंथनुं प्रयोजन नथी. ए रीतिए **ग्रंथनां अधिकारी, विषय,** (अने) **प्रयोजन** बने नहि.

(अथ संबंधखंडन-पूर्वपक्षप्रमाणे.)

६०. अधिकारीआदिकोना अभावथी **संबंध** पण बने नहि. केमके, विषयना अभावथी, ग्रंथनो अने विषयनो प्रतिपादक-प्रतिपाद्य-भाव-संबंध बने नहि. अधिकारीना अने फलना अभावथी, तेमनो प्रापक-प्राप्य-भाव संबंध बने नहि. अधिकारीना अभावथी, तेनो अने विचारनो कर्तृ कर्तव्य-भाव-संबंध बने नहि. ज्ञाननी निष्फलता होवाथी, ग्रंथनो अने ज्ञाननो जनक-जन्य-भाव-संबंध बने नहि सफलवस्तु जन्य होय छे. पूर्व कही रीतिए ज्ञान सफल छे नहि; अने ज्ञानना स्वरूपनो पण अभाव छे, एथी पण ज्ञाननो अने ग्रंथनो संबंध बने नहि; केमके, सिद्धान्तमां जीवब्रह्मना अभेदनिश्चयनुं नाम ज्ञान छे. ते अभेदनिश्चय बने नहि; केमके, जीवब्रह्मनां

अभेद छे नहि; ए वार्त्ता विषयना निराकरणमां पूर्वे प्रतिपादन करी छे; पयी अभेदनिश्चयरूपज्ञान बने नहि. ए रीतिए अधिकारी आदिक अनुबंधना अभावथी ग्रंथनो आरंभ बने नहि.

(ए प्रमाणे आ द्वितीय तरंगना आरंभथी ते अहियां सुधी पूर्वपक्षीनी शंका छे.)

(पूर्वपक्षीना क्रमप्रमाणे)

६१. (सिद्धान्तीनां उत्तर.)

(अधिकारीसंबंधी पूर्वपक्षीनो अनुवाद.)

पूर्वपक्षीए (गत अंक ३३ थी ३६ सुधीविषे) प्रथम कह्युं जे– 'मोक्षनी इच्छा कोईने बने नहि, केमके, मोक्षविषे बे 'अंश छेः–एक तो कारणसहित जगत्नी निवृत्ति मोक्षनो अंश 'छे; अने बीजो अंश ब्रह्मनी प्राप्तिरूप छे. तेओविषे कारण- 'सहित जगत्नी निवृत्तिरूप मोक्षना प्रथम अंशनी इच्छा 'कोईने छे नहि; किन्तु त्रण प्रकारनां दुःखनी निवृत्तिनी 'इच्छा सर्व पुरुषोने छे. ते दुःखनी निवृत्ति पोतपोताना उपा- योथी थई जाय छे. पयी मूलसहित जगत्नी निवृत्तिनी 'इच्छावाळो मुमुक्षु अधिकारी बने नहि.' तेनुं

६२. समाधान (सिद्धान्ती) प्रथम कहे छे.

(अधिकारिमंडन ६२–७१.)

दुहो.

समूॅल जगत्-हानिँ विना, नहि त्रिविधदुःखध्वंस;
पयी चाहे सकल जन, प्रथम मोक्षनो अंश. ९.

टीकाः—'मूल' नाम जगत्नुं कारण जे अज्ञान, अने

जगत् तेना नाश विना, त्रण प्रकारनां दुःखनो, अन्य उपायोथी, 'ध्वंस' नाम नाश थाय नहि. अने मूल अविद्यांना नाशथी सर्व दुःख, अने दुःखनां कारण रोगादिक, अने रोगादिकनां आश्रय शरीरादिकोनो नाश थाय छे. एथी त्रिविध दुःखना नाशना निमित्तकारणसहित जगतनी निवृत्तिरूप मोक्षना प्रथम अंशने सकल पुरुष चहाय छे. ९.

तात्पर्य आ छेः—सर्व औषध आदि उपाय करवाविषे जे समर्थ छे, तेमनां पण दुःख नियमेकरी दूर थाय नहि. कोई पुरुषनां रोगादिजन्य दुःख औषधादिक उपायोथी नाश थाय छे; अने कोईनां दुःखनो औषधादिक उपायोथी नाश थाय नहि, एथी औषधादिक उपायोथी रोगादिजन्य दुःखनी नियमेकरीने निवृत्ति थाय नहि. अने औषधादिक उपायोथी जेना दुःखनी निवृत्ति थाय छे, तेना पण दुःखनी उत्पत्ति फरी थाय छे. एथी औषधादि उपायोथी दुःखनी **अत्यंतनिवृत्ति** थाय नहि. [जेनी निवृत्ति थई छे तेनी फरी उत्पत्ति थाय नहि, ते **अत्यंतनिवृत्ति** कहेवाय छे.] औषधादिक उपायोथी दुःखनी निवृत्ति नियमे करीने थाय नहि. अने निवृत्त जे दुःख तेनो फरी पण उत्पत्ति थाय छे; एथी अत्यंतनिवृत्ति पण ते उपायोथी थाय नहि. अने दुःखना सकल साधननो नाश थाय तो सकल दुःखनी नियमेकरीने निवृत्ति थाय, अने दुःखनां साधननो नाश थयेथी फरी दुःख थाय नहि. एथी **दुःखनी निवृत्तिना निमित्त दुःखनां साधननी निवृत्तिनी इच्छा सर्वने होय छे.**

ते दुःखनुं साधन,-अज्ञान अने तेनुं कार्य प्रपंच छे. ए वार्त्ता छान्दोग्य उपनिषद्मां (सप्तम प्रपाठकगत) भूमविद्याविषे प्रसिद्ध छे. त्यां आ प्रसंग छेः-एक समय सनत्कु-

मार पासे नारद प्राप्त थया. अने नारदे कह्युं,-'हे भगवन्! 'जे आत्मज्ञानी पुरुष छे, तेने शोक थतो नथी; अने हुं 'शोकसहित छुं, पथी हुं अज्ञानी छुं, मने एवो उपदेश करो 'के जेणे मारूं अज्ञान दुर थाय.' त्यारे सनत्कुमारे नारदने कह्युं:-'हे **नारद ! भूमा** शोकरहित छे. सुखरूप छे. '(भूमाथी अल्पमां सुख नथी. कारण ते अल्पमां अधिक तृष्णा 'छे अने तृष्णा छे ए दुःखनुं बीज छे. अने भूमाथी भिन्न स- 'कल तुच्छ छे; अने दुःखनुं साधन छे.) ' ['**भूमा**' नाम ब्रह्मनुं छे.] ए रीतिए ब्रह्मथी भिन्न जे वस्तु ते सकल दुःखनुं साधन कह्युं छे. **अज्ञान अने तेनुं कार्य, ब्रह्मथी भिन्न छे; एथी दुःखनुं साधन छे.** तेनी निवृत्ति थयेथी सर्व दुः- खनी नियमेकरीने अत्यंतनिवृत्ति बने छे; एथी **सकल दुः- खनी निवृत्तिना निमित्त, अज्ञानसहित प्रपंचनी निवृत्तिरूप मोक्षना प्रथम अंशनी इच्छा बने छे.**

६४. अने (गत अंक ३७-३८ विषे) पूर्वपक्षीए कह्युं केः- 'जे वस्तुनो अनुभव कर्यो होय, तेनी प्राप्तिनी इच्छा थाय 'छे. ब्रह्मनो अनुभव कोईए कर्यो छे नहि. एथी ब्रह्मनी 'प्राप्तिरूप मोक्षना द्वितीय अंशनी इच्छा कोईने थाय नहि' ते(बीजी शंका)नुं.

समाधान.

(सिद्धान्ती कहे छे.)

दुहो.

सुखअनुभव सर्वे कर्यो, ब्रह्म गुण्युं सुखरूप;
ब्रह्मप्राप्ति ए हेतुथी, चहे विवेकिभूप.

टीकाः—सर्व पुरुषोए सुखनो अनुभव कर्यो छे, एथी

सुखनी इच्छा सर्वने छे.' अने 'ब्रह्म नित्य सुखरूप छे.' एवुं सत्शास्त्रमां सांभळ्युं छे. एथी 'विवेकिभूप' नाम उत्तम विवेकी (पुरुष) सुखस्वरूप ब्रह्मनी प्राप्तिने इच्छे छे. १०.

६५. दुहो.

केवल सुख सहु जन चहे, न चहे विषय समाजः
एथी अधिकारी बने, जे छे विवेकिराज.

टीकाः—(पूर्वपक्षीए) पूर्वे कह्युं जे,– 'सर्व पुरुष विषय 'जन्य सुखने चाहे छे, ते विषयजन्य सुख मोक्षविषे प्राप्त 'थाय नहि, किन्तु जगत्मां प्राप्त थाय छे; एथी मोक्षनी इच्छावान् अधिकारीना अभावथी ग्रंथनो आरंभ निष्फल छे.' तेने आ पूछिये छिये जे,—(१) कोई मुमुक्षु छे नहि ? अथवा (२) मुमुक्षु तो छे परंतु तेमनी ग्रंथविषे प्रवृत्ति थाय नहि ? जो एम कहे के 'मुमुक्षु नथी,' (तो) ते बने नहि; केमके, सर्व पुरुष सर्व दुःखनो नाश अने नित्यसुखनी प्राप्ति चाहे छे. ते सर्व दुःखनो नाश अने (नित्य) सुखनी प्राप्ति-रूप-मोक्ष छे, एथी सर्व पुरुष मुमुक्षु छे.

अने (पूर्वपक्षीए) कह्युं जे, '(सर्व जन) विषयजन्य सुखने चाहे छे,' ते नहि. किन्तु सुखमात्र चाहे छे. ते सुख विषयेकरी थाय, अथवा विषय विना थाय. जो विषय-जन्य सुखने ज चाहे तो [48]सुषुप्तिना सुखनी इच्छा नहि थवी जोइये. सुषुप्तिनुं सुख विषयजन्य छे नहि, एथी केवल विषय-जन्य(सुख)ने ज नहि (किन्तु) सुखमात्रने चाहे छे, (एटलुं ज नहि पण) उलटुं आत्मसुखने चाहे छे; विषयजन्यने नथी

---

४८. जाग्रत्-स्वप्न उभयना उपभोगप्रद कर्मोनो उपरम थये सते स्थूलसूक्ष्म-देहना अभिमाननी निवृत्तिद्वारा विशेषविज्ञानोपरमात्मिकाबुद्धिनी कारणात्मा-एकरी अवस्थिति. स्वप्नथी भिन्न गाढनिद्राअवस्था जेमां दुःखमात्रनो अभाव होय छे.

चहाता. केमके सर्व पुरुषो(जीवो)ने न्यून अथवा अधिक विषयसुख प्राप्त पण छे; परंतु आवी इच्छा सदा रहे छे- 'अमने एवुं सुख प्राप्त थाय के जे सुखनो नाश कदि थाय नहि.' एवुं सुख (ते) आत्मस्वरूप-मोक्ष-छे एथी सर्व पुरुष (मोक्षनी इच्छावान्) मुमुक्षु छे. 'कोई मुमुक्षु नथी' एवुं कहेवुं बने नहि.

६६. अने (पूर्वपक्षी) जो आम कहे केः-'मुमुक्षु तो छे, 'परंतु ग्रंथमां प्रवृत्ति थाय नहि; एथी ग्रंथनो आरंभ निष्फल 'छे.' तेने आ पूछिये छिये के, (१) ग्रंथ मोक्षनुं साधन छे नहि एथी ग्रंथविषे प्रवृत्ति नहि थाय? (२) अथवा ग्रंथथी अन्य पण कोई साधन छे, जेनाविषे प्रवृत्ति होवाथी ग्रंथविषे प्रवृत्ति थाय नहि? (३) अथवा जे शमादिकेकरी ग्रंथमां अधिकार कह्यो, ते शमादिमान् ज्ञानने योग्य कोई अधिकारी छे नहि, एथी ग्रंथमां प्रवृत्ति थाय नहि?

जो एम कहे के (१) 'ग्रंथ मोक्षनुं साधन नहि.'-ते वार्त्ता बने नहि. केमके, मोक्ष, ज्ञानथी नियमेकरीने थाय छे, ए वेदनो सिद्धान्त छे. ते ज्ञान श्रवणेकरी थाय छे.

श्रवण बे प्रकारनुं छे.

एक तो वेदान्तवाक्यनुं अने श्रोत्रनुं संयोगरूप श्रवण छे. अने बीजुं वेदान्तवाक्यना विचाररूप (श्रवण) छे. ज्ञाननो हेतु प्रथम श्रवण छे; बीजुं नहि. केमके, शब्दजन्य ज्ञानविषे, इन्द्रियोनी साथे शब्दनो संयोग ज सर्वत्र हेतु छे, एथी वेदान्तवाक्यनुं अने श्रोत्रनुं संयोगरूप श्रवण ब्रह्मज्ञाननो हेतु छे. अवान्तरवाक्यनुं श्रवण परोक्षज्ञाननो हेतु छे; अने महा-

४९. प्रथम प्रकारनुं श्रवण 'अंगी' वा 'उपकार्य' पण कहेवाय छे अने द्वितीय प्रकारनुं श्रवण 'अंग' वा 'उपकारक' कहेवाय छे.

हावाक्यनुं श्रवण अपरोक्षज्ञाननो हेतु छे. ए वार्त्ता पूर्वे प्रतिपादन करी छे. जेने ज्ञान थयेथी पण असंभावना, अने विपरीतभावना होय, ते बीजुं (वेदान्तवाक्यना विचाररूप) श्रवण अने मनन-निदिध्यासन करे. वेदान्तवाक्यनुं विचाररूप जे श्रवण, तेणे वेदान्तवाक्यविषे असंभावना दूर थाय छे. वेदान्तवाक्य ब्रह्मनां प्रतिपादक छे, अथवा अन्य अर्थनां प्रतिपादक छे, एवो संशय **वेदान्तवाक्यनी असंभावना** छे ते(संशय) ते(वेदान्तवाक्य)ना विचारे दूर थाय छे. अने मननेकरी प्रमेयनी असंभावना दूर थाय छे. **जीवब्रह्मनी एकता वेदान्तनो प्रमेय कहेवाय छे.** ते (जीवब्रह्मनी) एकता सत्य छे, अथवा जीवब्रह्मनो भेद सत्य छे, एवो जे संशय ते **प्रमेयनी असंभावना** कहेवाय छे, ते मननवते दूर थाय छे. विपरीतभावना निदिध्यासनेकरी दूर थायछे. ए रीतिए **प्रथमश्रवण** तो ज्ञान द्वारा मोक्षनुं हेतु छे. अने विचाररूपश्रवण; अने मनन अने निदिध्यासन ए असंभावना अने विपरीतभावनानी निवृत्तिद्वारा मोक्षनां हेतु छे. **वेदान्त** नाम **उपनिषद्नुं** छे. ते (उपनिषद्) यद्यपि आ ग्रंथथी भिन्न छे, तथापि तेमना समान अर्थवाळां भाषावाक्य आ ग्रंथमां छे, तेमना श्रवणवते पण ज्ञान थाय छे; ए वार्त्ता आगळ (तृतीय तरंगविषे १० मा दुहामां) प्रतिपादन करीशुं. ए रीतिए ज्ञानद्वारा ग्रंथ मोक्षनो हेतु छे. अने विचाररूप अने मननरूप आ ग्रंथ छे; एथी असंभावनादोषनी निवृत्तिद्वारा मोक्षनो हेतु छे. एथी 'ग्रंथेकरी मोक्ष थाय नहि' ए (पूर्वपक्षीनुं कहेवुं) केवळ हठमात्र छे.

६७. अने जो एम कहे केः-'ग्रंथेकरी मोक्ष तो थाय छे,

'परंतु अन्य साधनेकरी पण मोक्ष थाय छे, पथी ग्रंथनो 'आरंभ निष्फल छे.' तेने आ पूछिये छिये के,–ते अन्य साधन शुं छे, जेथी मोक्ष थाय छे ? जो एम कहे के,–'उपनिषद्सूत्र-'भाष्यथी आदि लईने संस्कृत ग्रंथ जीव-ब्रह्मनी एकताना 'प्रतिपादक बहु छे. तेमणेकरी पण ज्ञानद्वारा मोक्ष थाय छे. 'आनो भिन्न अधिकारी नथी, पथी आ ग्रंथ निष्फल छे.' ते वार्त्ता यद्यपि सत्य छे, तथापि तेमनो (संस्कृत ग्रंथनो) अर्थ ग्रहण करवाविषे जेनी बुद्धि समर्थ छे नहि, एवो जे मुमुक्षु तेने तेओएकरी ज्ञान थाय नहि; पथी मंदबुद्धि (अर्थात् संस्कृत भाषाथी अजाण्या) मुमुक्षुनी तेमनाविषे प्रवृत्ति थाय नहि. (तेथाली) आ ग्रंथविषे ज प्रवृत्ति थशे.

६८. अने जो एम कहे केः–'ग्रंथेकरी मोक्ष पण थाय छे, 'अने संस्कृत ग्रंथेकरी मंदबुद्धिने बोध पण थाय नहि, अने 'मुमुक्षु पण छे, तो पण ग्रंथविषे प्रवृत्ति थाय नहि. केम के, 'विवेकवैराग्यशमादिमान् अधिकारी कह्यो ते दुर्लभ छे, पथी 'पोताविषे साधननो अभाव देखीने ग्रंथमां प्रवृत्ति थाय नहि.' तेने आ पूछिये छिये केः–'बहु अधिकारी नथी; अथवा कोई पण (अधिकारी) नथी ? जो एम कहे केः–'बहु अधिकारी 'नथी.' ते तो अमे पण अंगीकार करिये छिये. अने जो एम कहे केः–'कोई पण ज्ञानने योग्य अधिकारी नथी.' ते वार्त्ता बने नहि. केमके अंतःकरणविषे त्रण दोष छे.

(अंतःकरणना त्रण दोष.)

एक मल छे, अने विक्षेप छे. अने स्वरूपनुं आवरण छे. [मल नाम पापनुं छे; विक्षेप नाम चंचलतानुं छे; अने आवरण नाम अज्ञाननुं छे.] शुभ कर्मेकरी मल-दोष दूर थाय छे, उपासनाएकरी विक्षेपदोष दूर थाय छे.

(अने) ज्ञाने आवरणदोष दूर थाय छे. जेमना अंतःकरणविषे मल अने विक्षेप दोष छे, ते अधिकारी नथी पण खरा. परंतु आ जन्मविषे अथवा पूर्व जन्मविषे, शुभकर्म अने उपासनाना अनुष्ठानेकरी जेमना मल अने विक्षेपदोष नाश थया छे एवा, ज्ञानयोग्य अधिकारी छे. तेमनी ग्रंथमां प्रवृत्ति बने छे.

६९. अने जे एम पूर्वे कह्युं केः–'सर्वने विषयसुखमां अलंबुद्धि (पर्याप्तबुद्धि) छे, नित्यसुखने कोई चाहे नहि.' ते बने नहि. केमके, चार प्रकारना पुरुषो (जीवो) छेः–

(चार प्रकारना पुरुष.)

पामर, विषयी, जिज्ञासु, अने **मुक्त.** आ लोकना निषिद्ध अने विहित भोगोविषे आसक्त जे शास्त्रसंस्काररहित पुरुष, ते **पामर** कहेवाय छे. शास्त्रना अनुसार विषयोने भोगवतो सतो परलोकना अथवा आ लोकना भोगना निमित्त जे कर्म करे, ते **विषयी** कहेवाय छे. अने आवो पुरुष **जिज्ञासु** कहेवाय छे,–

जे पुरुषने उत्तम संस्कारेकरी सत्शास्त्रनुं श्रवण होय.

(जिज्ञासुनो सत्शास्त्रानुसार विवेक.)

७० ते उत्तम(पुरुष)ने आवो विवेक होय छेः–विषयसुख अनित्य छे. जेटलो काल विषयसुख होय छे, त्यारे पण कोई दुःख अवश्य रहे छे, अने परिणाममां विनाशि सुख, दुःखनो हेतु छे; अने वर्तमानकालमां पण नाशना भयथी दुःखनो हेतु छे. ए रीतिए विषयसुख, दुःखथी प्रसरायलुं छे. एथी दु:खरूप छे. अने दुःखनी निवृत्ति लौकिक उपायेकरी थाय नहि; केमके, जेओ उपाय करे छे, तेओनां पण सर्व

दुःख निवृत्त थाय नहि; अने निवृत्त थयां पण पुनः थाय छे. अने जेटला काल शरीर छे त्यांपर्यंत दुःखनी निवृत्ति संभवे पण नहि; केमके, जे शरीर छे ते सर्व, पुण्य अने पापेकरी थाय छे. मनुष्यशरीर तो मिश्रित (शुभ अने अशुभ) कर्मनुं फल (छे ए) प्रसिद्ध छे, अने देवशरीर पण मिश्रित कर्मनुं ज फल छे. जो केवल पुण्यनुं फल देवशरीर होय तो, पोतानाथी अधिक अन्य देवनी विभूति देखीने देवोने जे ताप थाय छे, ते न थवो जोइये. सर्व देवोमां प्रधान जे इंद्र तेने पण अनेक दैत्यदानवनां भयजन्य दुःख शास्त्रमां कह्यां छे. जो देवशरीर केवल पुण्यनुं ज फल होय तो, देवोने दुःख न थवुं जोइये. एथी देवशरीर पण पुण्यपाप बेनुं फल छे. अने श्रुतिमां जे कह्युं छे केः-'देवता पापरहित छे'-तेनो आ अभिप्राय छेः- कर्मनो अधिकार केवल मनुष्यशरीरमां छे, अन्यमां नथी, एथी देवशरीरमां कर्युं जे शुभ अथवा अशुभ तेमनुं फल देवोने थाय नहि. अने देवशरीरथी पूर्वशरीरमां करेलुं जे शुभ अने अशुभ, तेमनुं फल तो देवशरीरमां पण थाय छे. ए रीतिए देवशरीर (शुभाशुभ)मिश्रित कर्मनुं फल छे. अने तिर्यक् पशु-पक्षीनुं शरीर पण मिश्रित कर्मनुं फल छे. केमके, तेमने जे प्रसिद्ध दुःख छे, ते तो पापनुं फल छे. अने मैथुनादिकोनुं सुख छे, ते पुण्यनुं फल छे. [उदरेकरी जे गमन करे ते तिर्यक् कहेवाय छे. चारे पादेकरी गमन करे ते पशु कहेवाय छे. पक्षेकरी गमन करे ते पक्षी कहेवाय छे. कहिं पशु पक्षी पण तिर्यक् ज कहेवाय छे.] ए रीतिए सर्व शरीर पुण्य अने पापेकरी रचित छे. कोई शरीर तो न्यून पाप अने अधिक पुण्ये रचित छे; जेम देवशरीर छे. पोतपोतानां जे पुण्य छे तेओथी ज, सर्व देवोविषे, पाप

न्यून छे; एथी न्यून पाप (अने) अधिक पुण्यथी रचित देवशरीर कहेवाय छे. ए ज अभिप्रायथी शास्त्रमां केवल पुण्यनुं फल देवशरीर कह्युं छे, एथी विरोध नथी. जेम बहु (अधिक) ब्राह्मणोथी 'ब्राह्मणग्राम' कहेवाय छे, तेम अधिक पुण्यनुं फल होवाथी, देवशरीर केवल पुण्यनुं फल कहेवाय छे, परंतु केवल पुण्यनुं फल (ते) नथी.

तिर्यक्-पशु-पक्षीनुं शरीर अधिक पाप अने न्यून पुण्ये रचित छे. जे उत्तम मनुष्य छे तेमनी देवोना समान रीति छे, अने नीच (मनुष्यो) छे तेनी सर्पादिको(तिर्यगादिको)ना समान (रीति) छे. ए रीतिए सर्व शरीर पुण्यपापरचित छे. अने पापनुं फल दुःख छे, एथी शरीर रहे त्यांपर्यन्त दुःखनी निवृत्ति थाय नहि. ते शरीर धर्म अने अधर्मनुं फल छे ते(धर्म अने अधर्म)नी निवृत्ति विना शरीरनी निवृत्ति थाय नहि. केमके, वर्तमान शरीर दूर थयेथी पण पुण्यपापेकरी अन्य शरीर थशे; एथी पुण्यपापनी निवृत्ति विना शरीरनी निवृत्ति थाय नहि. ते पुण्यपाप रागद्वेषना नाश विना दूर थतां नथी. केमके वर्तमान पुण्यपापनी भोगेकरी निवृत्ति थयेथी पण रागद्वेषेकरी अन्य पुण्यपाप थशे. एथी रागद्वेषनी निवृत्ति विना पुण्यपाप दूर थाय नहि. ते रागद्वेष अनुकूलज्ञान अने प्रतिकूलज्ञानेकरी थाय छे. जेविषे अनुकूलज्ञान होय तेविषे राग थाय छे. अने जेविषे प्रतिकूलज्ञान होय तेविषे द्वेष थाय छे. एथी अनुकूलज्ञान अने प्रतिकूलज्ञाननी निवृत्ति विना रागद्वेषनी निवृत्ति थाय नहि. ते अनुकूलज्ञान अने प्रतिकूलज्ञान, भेदज्ञानेकरी, थाय छे. केमके, जे वस्तुने पोताना स्वरूपथी भिन्न जाणे, तेनेविषे अनुकूलज्ञान अथवा प्रतिकूलज्ञान थाय छे.

पोताना स्वरूपमां अनुकूलज्ञान अने प्रतिकूलज्ञान थतुं नथी. [सुखनां साधननुं नाम अनुकूल छे, अने दुःखनां साधननुं नाम प्रतिकूल छे.] पोतानुं स्वरूप सुखनुं अथवा दुःखनुं साधन नथी. यद्यपि (पोतानुं स्वरूप) सुखरूप छे, तथापि सुखनुं साधन नथी. पण्ी स्वरूपथी भिन्न जे वस्तु जाणी छे, तेविषे अनुकूलज्ञान अने प्रतिकूलज्ञान थाय छे. ए रीतिए पदार्थोविषे पोताथी जे भेदज्ञान, ते अनुकूलज्ञान अने प्रतिकूलज्ञाननो हेतु छे. ते भेदज्ञाननी निवृत्ति विना अनुकूलज्ञान अने प्रतिकूलज्ञाननी निवृत्ति थाय नहि. ते भेद-ज्ञान अविद्याजन्य छे. केमके, 'संपूर्ण 'प्रपंच अने तेनुं ज्ञान, स्वरूपना अज्ञानकालमां 'छे,' ए संपूर्ण वेद अने शास्त्रनो ढंढेरो छे. ए रीतिए संपूर्ण दुःखनो हेतु स्वरूपनुं अज्ञान छे. ते स्वरूपनुं अज्ञान, स्वरूपना ज्ञान विना दूर थाय नहि. केमके, जे वस्तुनुं अज्ञान होय, ते, तेना ज्ञानेकरी दूर थाय छे; जेम रज्जुनुं अज्ञान रज्जुना ज्ञानेकरी दूर थाय, अन्येकरी नहि. पण्ी स्वरूपनुं ज्ञान ज, अज्ञाननी निवृत्तिद्वारा, दुःखनी निवृत्तिनो हेतु छे. अने स्वरूपज्ञानेकरी ब्रह्मनी प्राप्ति थाय छे. ते ब्रह्म नित्य छे, अने आनंदस्वरूप छे,-दुःखसंबंधथी रहित छे; पण्ी स्वरूपज्ञानेकरी, नित्य अने दुःखना संबंधथी रहित जे ब्रह्मस्वरूपानंद, तेनी प्राप्ति पण थाय छे. ए रीतिए दुःखनी

---

५०. अविद्या-अज्ञान-रूप मूल निवृत्त थये ज्ञानीने, जीव ईश्वरनो भेद अने तेना अन्तर्गत जीव-जीवनो भेद, जीव जडनो भेद, जड जडनो भेद, अने जड-ईश्वरनो भेद, ए पंचभेद वास्तव प्रतीत थता नथी; किन्तु कल्पित उपाधिकृत होवाथी कल्पित प्रतीत थाय छे. तेथी बाधितानुवृत्तिएकरी दग्धधान्यसम (वा दर्पणगत स्थलप्रतिबिंबसम) अनुकूलप्रतिकूलज्ञान, रागद्वेषादिपचक्लेश, अने शुभाशुभक्रिया, प्रतीत थाय छे. परंतु तेनुं फल भाविजन्म अने सुखदुःख थाय नहि. पं. पी. पु.

निवृत्ति अने परमानंदनी प्राप्तिनो हेतु, स्वरूपज्ञान छे; एथी स्वरूप जाणवाने योग्य छे; एवो जेने विवेक होय, ते **जिज्ञासु** कहेवाय छे.

स्थूल-सूक्ष्म-कारणशरीरथी भिन्न जे पोतानुं स्वरूप, तेनुं ब्रह्मरूपेकरीने अपरोक्ष ज्ञान जेने होय ते **मुक्त** कहेवाय छे.

(जिज्ञासुनी ग्रंथमां प्रवृत्ति होय छे.)

७१. ए रीतिए चार प्रकारना पुरुष (जीव) छे. तेओविषे पामर अने विषयीने तो यद्यपि विषयसुखमां ज अलंबुद्धि छे, अने कोई विषयीने परमसुखनी इच्छा पण थाय, त्यारे पण तेना जे उपाय नथी तेओमां उपायबुद्धि करीने, प्रवृत्त थाय छे. केमके उपायनुं ज्ञान सत्संग अने सच्छास्त्रना श्रवणेकरी थाय छे, ते ते(विषयी)ने छे नहि; एथी पामर अने विषयीनी, सुखप्राप्तिना निमित्त, ग्रंथमां प्रवृत्ति थाय नहि. दुःखनी निवृत्तिना निमित्त पण (पामर अने विषयी) बंने अन्य उपायोमां प्रवृत्त थाय छे; (एथी) तेना निमित्त पण ग्रंथमां प्रवृत्ति थाय नहि. एथी **पामर** अने **विषयीनी** ग्रंथमां प्रवृत्ति थाय नहि. अने मुक्तनी प्रवृत्ति पण थाय नहि. केमके, ज्ञानवान् मुक्त कहेवाय छे, ते ज्ञानी कृतकृत्य छे. तेने कशुं कर्तव्य नथी, ए वार्त्ता आगल (पंचम तरंगविषे अंक २७१ मां) प्रतिपादन करीशुं. अने लीलाए करीने मुक्त प्रवृत्त थाय, तो पण मुक्तने ग्रंथमां प्रवृत्तियते कोई प्रयोजन सिद्ध थतुं नथी. एथी मुक्तना निमित्त पण ग्रंथ नथी. तथापि जिज्ञासु जे पुरुष छे, तेने विषयसुखमां अलंबुद्धि थाय नहि. किन्तु परमसुखनी तेने इच्छा छे, अने दुःखनी अत्यंतकरीने निवृत्तिनी इच्छा छे. ते-'परमसुखनी प्राप्ति अने दुःखनी अत्यंत निवृत्ति,' ज्ञान विना

थाय नहि, पयो जेने सत्संगेकरी विवेक थयो छे, तेनी ग्रंथमां प्रवृत्ति बने छे. ए रीतिय मोक्षनी इच्छावान् अधिकारी बने छे.

(विषयमंडन ७२-७६.)

दुहो.

७२. साक्षी ब्रह्मरूप एक छे, नहि भेदनो गंध;
    द्वेषराग मतिना धरम, तेमां माने अंध.

टीकाः—पूर्वे (अंक ३९ थी ४४ सुधीमां पूर्वपक्षीय) कह्युं जे,–'जीव रागादिक्लेशसहित छे. अने ब्रह्म क्लेशरहित छे; पयी जीवब्रह्मनी एकता ग्रंथनो विषय बने नहि.' ए वार्ता यद्यपि सत्य छे, तथापि रागद्वेषरहित जे साक्षी छे, तेनी ब्रह्मसाथे एकता बने छे. अने जे आगळ कह्युं के,–'कर्त्ताभोक्ताथी भिन्न साक्षी वंध्यापुत्रना समान असत् छे,' ते बने नहि. केमके, कर्त्ताभोक्ता जे **संसारी** तेना **विशेष्य भागनुं** नाम **साक्षी** छे. जो साक्षीनो निषेध करिये तो, (असत् गणिये तो,) संसारीना विशेष्यभागनो निषेध थयाथी, कर्त्ताभोक्ता जे संसारी तेनो ज निषेध थवानो.

एक ज चैतन्यविषे साक्षीभावनो अंतःकरण **उपाधि** छे; अने कर्त्ताभोक्तापणानुं (अंतःकरण) **विशेषण** छे. विशेषणसहित (विशेष्य) **विशिष्ट** कहेवाय छे. उपाधिवाळुं **उपहित** कहेवाय छे. जे वस्तु जेटला देशमां पोते होय, ते देशमां स्थित वस्तुने जणावे, अने पोते **पृथक्** रहे, ते **उपाधि** कहेवाय छे. जेम नैय्यायिकमतमां कर्णगोलक-

५१. जेने आश्रित थईने विशेषण रहे ते. धर्मी, अनुयोगी, आश्रय, आधार. इहां विशेषण नाम साभास अन्तःकरण, विशेष्य नाम साक्षी, ए उभय मळी जे विशिष्टचेतन ए जीव.

वर्ति आकाश **श्रोत्र** कहेवाय छे. ते कर्णगोलक, श्रोत्रनो, उपाधि छे. केमके ते कर्णगोलक जेटला देशमां पोते छे, तेटला देशमां स्थित आकाशने श्रोत्ररूप करीने जणावे छे, अने पोते पृथक् रहे छे. एथी कर्णगोलक, श्रोत्रनो उपाधि छे. तेम अंतःकरण पण जेटला देशमां पोते छे, एटला देशमां स्थित चेतनने साक्षी संज्ञा करीने जणावे छे, पोते पृथक् रहे छे, एथी **अंतःकरण साक्षीनो** उपाधि छे एथी आ अर्थ सिद्ध थयोः अं तः क र ण विषे व र्ति जे चे त न मा त्र ने 'सा क्षी' क हे वा य छे.

७३. पोतानासहित वस्तुने जे जणावे, ते **विशेषण** कहेवाय छे,=जेम 'कुंडलवाळो पुरुष आव्यो छे.' ए स्थानमां 'पुरुष'नुं 'कुंडल' विशेषण छे, केमके, पोतानासहित पुरुषना आगमनने कुंडल जणावे छे, एथी (कुंडल) विशेषण छे. (अने पुरुष विशेष्य छे.) 'नीलरूपवान् घटने हुं देखुं छुं.' ए स्थानमां पण 'नीलरूप' 'घट'नुं विशेषण छे. (अने घट विशेष्य छे). तेम अंतःकरण पण कर्ता भोक्ता जे जीव-चेतन, तेनुं विशेषण छे; केमके, अंतःकरणसहित चेतनने, कर्त्ताभोक्तारूपेकरीने, अंतःकरण जणावे छे. एथी संसारीनुं, अंतःकरण विशेषण छे. एथी आ सिद्ध थयुं केः-(१) अंतःकरणविषे वर्ति चेतन, अने (२) अंतःकरण, ए उभय मळी **संसारी** (अथवा जीव) कहेवाय छे. ए अर्थने विस्तारथी आगळ कहिशुं.

७४. रागद्वेषादिक क्लेश संसारीविषे छे. अने **साक्षीविषे**

---

५२. आ साक्षीना लक्षणनी पदकृत्य-परीक्षा छेः अन्तःकरण तो पोते पण छे; परंतु ते तेनेविषे 'वर्ति' नाम वर्तनारूं नथी. अने जे अन्तःकरणविषे वर्ति सुखदुःखादि अन्तःकरणना धर्म पण छे, ते चेतन नथी. चेतन तो चिदाभास पण छे ते चेतनमात्र नथी. चेतनमात्र तो ब्रह्म पण छे, ते अन्तःकरणविषे वर्तनारूं नथी. एथी उपर लखेलुं साक्षीनुं लक्षण निर्दोष छे. पं. पी. पु.

नहि. संसारीनुं पण जे विशेषण अंतःकरण छे, तेनेविषे (रागद्वेषादिक) छे; अने विशेष्य जे चैतन्य तेनेविषे नथी. केमके, संसारीविषे विशेष्य जे चैतन्यभाग, तेनो, साक्षीथी भेद नथी केमके, एक ज चैतन्य, अंतःकरणसहित **संसारी** छे, अंतःकरणमात्र त्यागीने **साक्षी** कहेवाय छे. एथी साक्षीनो अने संसारीना विशेष्यभागनो भेद नथी. जो विशेष्यभागमां क्लेश अंगीकार करिये तो साक्षीमां पण अंगीकार करवा पडशे. अने 'साक्षी सर्वक्लेशरहित छे,' ए वेदनो सिद्धान्त छे. एथी संसारीना विशेष्यभागमां क्लेश नथी; किन्तु विशेषणमात्र (केवल) अंतःकरणमां छे. ए अभिप्रायथी दुहाना तृतीय पादमां रागद्वेष ('मति' नाम) बुद्धिना धर्म कह्या, अने जीवना न कह्या. ए रीतिए अंतः-करणविशिष्टनी ब्रह्मसाथे एकता न पण बने, परंतु अंतःकरण-उपहित जे साक्षी तेनी ब्रह्मसाथे एकता बने छे.

७५. अने पूर्वे कह्युं जे.–'साक्षी नाना छे अने ब्रह्म एक 'छे, एथी नाना साक्षीनी एक ब्रह्मसाथे एकता बने नहि. अने 'जो व्यापक एक ब्रह्मसाथे साक्षीनो अभेद अंगीकार करशो 'तो साक्षी पण सर्व शरीरमां व्यापक एक ज थशे, एथी 'सर्व शरीरमां सुखदुःखनुं भान थवुं जोइये.' ते शंका बने नहि. केमके, यद्यपि ईश्वरसाक्षी एक छे, अने जीवसाक्षी नाना छे, अने परिच्छिन्न छे, तो पण व्यापक ब्रह्मथी भिन्न नथी. जेम घटाकाश नाना छे, अने परिछिन्न छे, तो पण महाकाशथी भिन्न नथी. किन्तु ते महाकाशरूप ज घटाकाश छे; तेम नाना अने परिच्छिन्न साक्षी ते पण ब्रह्मरूप ज छे.

७६. अने पूर्वे कह्युं जे,–'सुख दुःख अंतःकरणनी वृत्तिना विषय नथी,' ते असंगत छे. केमके, यद्यपि सुखदुख साक्षि-

भास्य छे; ते साक्षी नांना छे; तथापि ज्यारे अंतःकरणनुं परिणाम सुखरूप वा दुःखरूप थाय, ते ज समये अंतःकरणनी ज्ञानरूप वृत्ति, सुखदुःखने विषय करवावाळी थाय छे. ते वृत्तिमां आरूढ साक्षी तेओने (सुखदुःखने) प्रकाशे छे. ए रीतिए ग्रंथकारोए सुखदुःख साक्षीना विषय कह्या छे. (पण) वृत्ति विना, केवल साक्षीना विषय (सुखदुःख) नथी. आ स्थानमां आ रहस्य छेः-आकाशमां, 'घटाकाश' (ए) नाम अने जलना आनयनरूप जे कार्य प्रतीत थाय छे, ते घटरूप उपाधिनी दृष्टिए प्रतीत थाय छे. घटरूप उपाधिनी दृष्टि विना, घटाकाश (ए) नाम अने जलने आणवारूप कार्य प्रतीत थाय नहि, किन्तु आकाश मात्र ज प्रतीत थाय छे, एथी घटाकाश (ते) महाकाशरूप ज छे. तेम चेतनविषे, साक्षी (ए) नाम, अने धर्मसहित अंतःकरणनुं प्रकाशरूप कार्य, अंतःकरणरूप उपाधिनी दृष्टिए प्रतीत थाय छे. अने अंतःकरणरूप उपाधिनी दृष्टि विना, साक्षी नाम अने धर्मसहित अंतःकरणनुं प्रकाश रूप कार्य, प्रतीत थाय नहि; किन्तु चैतन्य मात्र ब्रह्म ज प्रतीत थाय. एथी साक्षी ब्रह्मरूप छे ए अभिप्रायथी दुहाना प्रथम पादमां साक्षी 'एक' कह्यो. केमके, उपाधिनी दृष्टि विना, साक्षीमां नानात्व अने परिच्छिन्नभाव प्रतीत थाय नहि. ते साक्षी जीवपदनो लक्ष्य छे. ए वार्त्ता आगळ. (चतुर्थ तरंगविषे अंक २०१–२०२ मां अने षष्ठ तरंग-

५३. कोई कोरा मदत्पत्रउपरना कोई एक अल्प भागपर शाहीनो गोळादि आकार करी, तेना मध्यभागमां कोई अक्षरनो आकार देखाय एटलो भाग शाहीविनानो राखे. ते अक्षर अने मूल्पत्र एक ज सते भेद व्यवहार थाय छे. तेम शुद्ध ब्रह्म अने उपहित साक्षी एक ज सते शाहीरूप उपाधिकरी नाममात्र भेदव्यवहार थाय. परंतु यथार्थ दृष्टिए जोतां ते बे एक ज स्वरूप छे. उपाधिथी ज भेद प्रतीत थाय छे.

गत अंक २४१ मां) कहीशुं. ए रीतिए जीवब्रह्मनी एकता ग्रंथनो विषय बनेछे. १२.

(प्रयोजनमंडन. ७७ थी ९२ पर्यन्त.)

७७. अथ कार्य-अध्यास-निरूपण.

कवित्त.

स जा ती य ज्ञा न संस्कारथी अध्यास थाय,
स त्य ज्ञा न जन्य संस्कारनो न नेम छे;
दोषने न हेतुता अध्यासविषे देखाय ज,
पटविषे हेतु जेम तुरी तंतु वेम छे.
आत्मा (सु) द्विजाति, शंख पीत, सिता कटु, भासे,
शुक्तिमां विरागी, रूपुं देखे, विना प्रेम छे;
नभ नीलरूपवान्, भासे छे कटाह तंबु,
जेने पित्त प्रभृति न कोइ अक्षेम छे. १३.

टीका—(पूर्वपक्षीए अंक ४५ थी ४८ पर्यन्त) पूर्वे कह्युं जेः-' बंध सत्य छे, तेनी ज्ञानेकरी निवृत्ति थाय नहि.' अने मिथ्यावस्तुनी ज्ञानेकरी निवृत्ति थाय छे. आत्मामां 'मिथ्याबंधनी सामग्री छे नहि. एथी बंध सत्य छे, तेनी ' ज्ञानेकरी निवृत्ति थाय नहि.' ते वार्त्ता बने नहि. केमके बंध मिथ्या छे. तेनी ज्ञानेकरी निवृत्ति बने छे.

७८. अने पूर्वे कह्युं जे.-' सत्यवस्तुनुं ज्ञान, (पोताना) 'संस्कारद्वारा, अध्यासनो हेतु छे. जेम सत्यसर्पनुं ज्ञान, '(पोताना) संस्कारद्वारा सर्पअध्यासनो हेतु छे; तेम सत्य- 'बंध होय, तो, सत्यबंधनुं ज्ञान होय. पण सिद्धान्तमां 'कोई अनात्मवस्तु सत्य छे नहि. एथी सत्यवस्तुनुं ज्ञान,

५४. अज्ञानकृत-स्थूल-सूक्ष्म प्रपंचनो जे भ्रम ते कार्याध्यास छे. पं.पी पु.

'जे, संस्कारद्वारा, अध्यासनी सामग्री (छे,) तेनो अभाव 'होवाथी, बंध अध्यास (रूप) नथी, किन्तु सत्य छे.' ते शंका बने नहि. केमके, अध्यासविषे संस्कारद्वारा सत्यवस्तुनुं ज्ञान हेतु नथी, किन्तु वस्तुनुं ज्ञान हेतु छे. ते वस्तु सत्य होय अथवा मिथ्या होय. जो सत्यवस्तुनुं ज्ञान ज अध्यास विषे हेतु होय, तो जे पुरुषे सत्य छुहारानो (खारकनो) वृक्ष न दीठो होय अने बाजीगरनो बनावेलो मिथ्या छुहारानो वृक्ष बहुवार दीठो होय, अने बाजीगरथी एवुं सांभळ्युं होय के,-'आ छुहारानो वृक्ष छे.' अने खजुरनो वृक्ष कदा दीठो सांभाळ्यो होय नहि, ते(मनुष्य)ने खजुरनो वृक्ष देखीने छुहारानो अध्यास थाय छे, ते नहि थवो जोइये केम के सत्य छुहारानुं तेने ज्ञान छे नहि.

अने अमारी (सिद्धान्ती) रीतिए तो, बाजीगरनो दीठेलो जे मिथ्या छुहारो, तेनुं ज्ञान छे एथी अध्यास बने छे. एथी स जा ती य वस्तुना ज्ञानजन्य संस्कार (सूक्ष्मअवस्था) ज अध्यासना हेतु छे,-ते संस्कारनुं जनक ज्ञान, अने तेनो विषय, मिथ्या होय अथवा सत्य होय. 'संस्कारद्वारा 'ज्ञान हेतु छे,' वा 'ज्ञानजन्य संस्कार हेतु छे,' ए कहेवामां अर्थनो भेद नथी; एक ज अर्थ छे. केमके, 'संस्कारद्वारा 'ज्ञान हेतु' छे एनो अर्थ आ छेः-ज्ञान, संस्कारनो हेतु छे, अने संस्कार, अध्यासनो हेतु छे, एथी संस्कारद्वारा ज्ञानने हेतुता कहेवाथी पण, ज्ञानजन्यसंस्कारने ज अध्यासविषे हेतुता सिद्ध थाय छे.

७९. अने केवल वस्तुना ज्ञानने ज अध्यासविषे हेतु कहे तो बने नहि. केमके आ नियम छेः-'जे हेतु होय 'ते कार्यथी अव्यवहित पूर्वकालमां होय छे.' [अंतरायरहित-

तुं नाम 'अव्यवहित' छे, अने अंतरायसहितनुं नाम 'व्यवहित' छे.] जेम घटनो हेतु दंड छे ते घटथी अव्यवहित पूर्वकालमां होय छे; तेम जो अध्यासथी हेतु ज्ञान अंगीकार करिये (तो,) ते पण अध्यासथी अव्यवहित पूर्वकालमां जोइये. ते बने नहि. केमके, जे पुरुषने सर्पनुं ज्ञान थाय तेने ज्ञानथी महिना पछी पण रज्जुविषे सर्पनो अध्यास थाय छे, ते नहि थवो जोइये. केमके, रज्जुमां सर्पना अध्यासनो हेतु सर्पनुं जे ज्ञान छे, तेनो नाश थई गयो (छे,) एथी अव्यवहित पूर्वकालमां (ते ज्ञान) छे नहि. यद्यपि पूर्वकालमां तो छे, तथापि अव्यवहित पूर्वकालमां छे नहि.

अने जो आम कहिये के:-कार्यथी पूर्वकालमां हेतु जोइये, (ते हेतु) व्यवहित पूर्वकालमां होय अथवा अव्यवहित पूर्वकालमां होय. अने 'कार्यथी अव्यवहित पूर्वकालमां ज हेतु होय छे' एवो नियम अंगीकार करिये तो, 'विहित कर्म स्वर्गप्राप्तिनो हेतु छे, अने निषिद्ध कर्म नरकप्राप्तिनो हेतु छे,' ए शास्त्रनी वार्ता अप्रमाण थई जशे. केमके, कायिक-वाचिक-मानसिक क्रियानुं नाम कर्म छे. ते क्रिया अनुष्ठानकालथी अनंतर ज नाश थई जाय छे, अने स्वर्ग नरक कालांतरमां थाय छे. एथी स्वर्गनरकप्राप्तिना अव्यवहित पूर्वकालमां, विहित कर्म अने निषिद्ध कर्म छे नहि. जेम व्यवहित पूर्वकालमां शुभ कर्म अने अशुभ कर्म, स्वर्गप्राप्ति अने नरकप्राप्तिना हेतु छे, तेम व्यवहित पूर्वकालमां जे सर्पनुं ज्ञान, ते पण रज्जुमां सर्पना अध्यासनो हेतु * छे.

ते वार्ता बने नहि. केमके जेम नष्ट ज्ञान अने नष्ट कर्मथी अध्यास अने स्वर्गनरकनी प्राप्ति अंगीकार करी; तेम मृत

* ए रीतिए ए खंडमां आक्षेप करी नीचेना खंडमां समाधान कहे छे

कुलाल अने नष्ट दंडथी पण घट थवो जोइये; केमके, जेम रज्जुमां सर्पना अध्यासथी व्यवहित पूर्वकालमां सर्पनुं ज्ञान छे अने (जेम) स्वर्गनरकनी प्राप्तिथी व्यवहित पूर्वकालमां शुभअशुभ कर्म छे, तेम घटथी व्यवहित पूर्वकालमां नष्ट दंड अने मृत कुलाल पण छे, तेमनाथी पण घट थवो जोइये. ते थाय नहि. एथी व्यवहित पूर्वकालमां जे वस्तु होय ते हेतु नहि, किन्तु अव्यवहित पूर्वकालमां जे वस्तु होय ते ज हेतु होय छे. अने शुभ अशुभ कर्म पण, कालांतरभाविनी जे स्वर्गनरकनी प्राप्ति तेना हेतु नथी. किन्तु शुभकर्म तो पोतायी अव्यवहित उत्तरकालमां धर्मनी उत्पत्ति करे छे; अने अशुभ कर्म अधर्मनी उत्पत्ति करे छे. ते धर्मअधर्म अंतःकरणविषे रहे छे, तेमनाथी कालांतरमां स्वर्ग अने नरकनी प्राप्ति थाय छे. तेथी अनन्तर धर्म अधर्मनो नाश थाय छे. ए अभिप्राये ज शास्त्रमां शुभकर्म अने अशुभकर्म अपूर्वद्वारा फलना हेतु कह्या छे, साक्षात् नहि. [अपूर्व नाम धर्म अधर्मनुं छे; अने अदृष्ट पण तेओने ज कहे छे; अने पुण्यपाप पण तेओने ज कहे छे.] अने धर्मअधर्मनी जनिका जे शुभअशुभक्रिया छे तेने पण कहिं धर्म-अधर्म कहे छे. जेम कोई शुभक्रिया करतो होय तेने लोक आम कहे छेः- 'आ धर्म करे छे;' अने अशुभक्रिया करवावाळाने आम कहे छेः-'आ अधर्म करे छे.' ते शुभअशुभक्रियानुं नाम धर्मअधर्म नथी; किन्तु शुभअशुभक्रिया धर्म-अधर्मनी जनिका छे. एथी क्रियाने धर्म-अधर्म कहे छे; जेम आयुनुं वर्धक जे घृत (घी) छे, तेने शास्त्रमां आयु कहे छे. ए रीतिए अव्यवहित पूर्वकालमां हेतु होय छे.

८०. अने रज्जुमां सर्पअध्यासथी अव्यवहित पूर्वकालमां

सर्पनुं ज्ञान छे नहि; एथी सर्पनुं ज्ञान, रज्जुमां सर्पअध्यासनो हेतु नथी, किन्तु सर्प-ज्ञान-जन्य-संस्कार ज रज्जुमां सर्पना अध्यासनो हेतु छे. तेम शुक्तिमां रूपाना अध्यासनो हेतु रूपाना ज्ञानजन्यसंस्कार छे. ए रीतिए सर्वत्र **संस्कार** ज अध्यासना हेतु छे, अने वस्तुनुं ज्ञान संस्कारनो हेतु छे. जेम शुभअशुभकर्मजन्य धर्मअधर्म, अंतःकरणमां रहेछे, तेम वस्तुना ज्ञानजन्यसंस्कार पण अंतःकरणमां रहे छे. जे पुरुषने पूर्वे सर्पनुं ज्ञान नथी थयुं तेने पण अन्य वस्तुना ज्ञानजन्य संस्कार तो छे, परंतु रज्जुमां सर्पनो अध्यास थाय नहि. जे वस्तुनो अध्यास थाय, तेना सजातीयवस्तुनां ज्ञानना संस्कार अध्यासना हेतु छे; विजातीय(वस्तु)ना ज्ञानना संस्कार (अध्यासना) हेतु नथी. सर्पनो सजातीय सर्प होय छे; अन्य नहि. सर्पनुं जेने पूर्व ज्ञान नथी, अन्य वस्तुनुं ज्ञान छे, तेने सजातीयवस्तुना ज्ञान-जन्य संस्कार नथी, एथी रज्जुमां सर्पनो अध्यास थाय नहि. [सूक्ष्म अवस्थानुं नाम **संस्कार** छे.] ए रीतिए अध्यासथी पूर्व सजातीयवस्तुनुं जे ज्ञान, तेना संस्कार अध्यासना हेतु छे. अने 'सत्यवस्तुना ज्ञानना संस्कार ज अध्यासना हेतु छे. 'मिथ्यावस्तुना ज्ञानना (संस्कार हेतु) नहि;' (एवुं पूर्वपक्षीनुं कहेवुं छे पण) ए नियम नथी; ए वार्त्ता लुहाराना (वृक्षना) दृष्टान्तेकरी प्रतिपादन करी छे. एथी मिथ्यावस्तुना ज्ञानजन्यसंस्कार पण अध्यासना हेतु छे.

८१. ते बंधना अध्यासविषे पण बने छे. केमके जे अहंकारथी आदि लईने अनात्मवस्तु अने तेनुं ज्ञान बंध कहेवाय छे, 'ते अनात्मवस्तु, रज्जुना सर्पनी पेठे, ज्यारे प्रतीत 'थाय, त्यारे ज छे, अने प्रतीत न थाय त्यारे, नथी.' ए

अमारो वेदसंमत सिद्धान्त छे. ए कारणथी ज सुषुप्तिविषे सर्व प्रपंचनो अभाव प्रतिपादन कर्यो छे. सुषुप्तिमां कोई पदार्थ प्रतीत थाय नहि. एथी सर्व प्रपंचनो सुषुप्तिमां लय थाय छे. एनुं नाम शास्त्रमां **दृष्टिसृष्टिवाद** (ज्ञान-समकालसृष्टि-कथन) कहे छे. ए अर्थने आगळ (षष्ठ-तरंग-गत अंक ३१७ थी ३२९ पर्यन्त) प्रतिपादन करीशुं. ए रीतिए अनंत अहंकारादि अने तेमनां ज्ञान उत्पन्न थाय छे, अने लय थाय छे. अहंकारादि अने तेमनां ज्ञाननी उत्पत्ति अने लय साथे ज थाय छेः-ज्यारे अहंकारादिकोनी प्रतीति(=ज्ञान)नी उत्पत्ति थाय, त्यारे अहंकारादिकोनी उत्पत्ति थाय छे; अने (ते) प्रतीतिनो लय थाय त्यारे अहंकारादिकोनो लय थाय छे. अहंकारादिक अने तेमना ज्ञान(ए बन्ने)नुं नाम **अध्यास** छे. ए वार्त्ता अनिर्वचनीयख्यातिना प्रतिपादनमां (चतुर्थ) तरंगगत अंक १३३ थी कहीशुं.

(कोई एम आक्षेप करे के) 'यद्यपि अहंकार साक्षिभास्य 'छे, ए वार्त्ता 'विषयप्रतिपादन'मां कही छे, एथी अहंकारनी 'प्रतीति साक्षीरूप छे, तेनां उत्पत्ति अने लय बने नहि.' तथापि (तेनुं समाधान आ छे के,-)अहंकारने पण वृत्तिए करीने ज साक्षी प्रकाश करे छे, साक्षात् नहि. ते वृत्तिनां उत्पत्ति लय थाय छे, एथी अहंकारनी प्रतीतिनां उत्पत्तिलय कहेवाय छे. ए रीतिए उत्तरउत्तर अहंकारादिक अने तेमना ज्ञाननी जे उत्पत्ति, तेना हेतु, पूर्वपूर्वमिथ्याअहंकारादिकोना ज्ञानजन्य संस्कार बने छे.

८२. अने जो आम कहे केः-'उत्तरउत्तरअहंकारादिकोना 'अध्यासविषे तो यद्यपि पूर्वपूर्वअध्यासना संस्कार हेतु बने

५५. वईक अंगीकार करी तेमां असंभव देखाड्यो.

'छे, तथापि प्रथम उत्पन्न (थयो) जे अहंकार अने तेनुं 'ज्ञान, तेना हेतु, संस्कार बने नहि. केमके जो तेनी पूर्वे 'अन्य अहंकार उत्पन्न थयो होय, तो तेना ज्ञानना संस्कार 'पण होय. ते प्रथम अहंकारथी पूर्वे अन्य अहंकार थयो नथी. 'तेम सर्व वस्तुना प्रथम अध्यासना हेतु, संस्कार बने नहि.' ए शंका पण सिद्धान्तना अज्ञानथी थाय छे. केमके वेदान्तनो सिद्धान्त आ छेः-(१) 'एक (शुद्ध) ब्रह्म; अने (२) ईश्वर; '(३) जीव; (४) अविद्या अने (५) अविद्यानो चै-'तन्यसह संबंध; अने (६) अनादिवस्तुनो भेद; ए 'षट्वस्तु स्वरूपे अनादि[५६] छे.' [जे वस्तुनी उत्पत्ति होय

५६. जीव, ईशो, विशुद्धा चित्, तथा जीवेशयोर्भिदा ।
अविद्या, तच्चितोर्योगः, षडस्माकमनादयः ॥

'विशुद्धा चित्' नाम शुद्ध ब्रह्म (१), 'अविद्या' नाम माया (२) 'ते' अविद्या, अने विशुद्ध 'चित्' नो 'योग' नाम कल्पितभेदसहित वास्तवअभेदरूप तादात्म्यसंबंध (३), ईश्वर (४), जीव (५), तथा जीव अने ईश्वरनो भेद (६), ए षट् अमारा (मतमां) 'अनादि' नाम उत्पत्तिरहित छे, तथापि ए षट् अनादिमांथी एक ज अद्वितीय ब्रह्म अनादि 'अनन्त' छे. शेष पंच अनादि 'सान्त' छे. ए प्रसंगमां प॰पीतांबरजी कहे छे-"ब्रह्म अविद्यानुं अधिष्ठान छे एथी ब्रह्मनी उत्पत्ति अविद्या किंवा मूलप्रकृतिथी संभवे नहि. अने ईश्वर जीव आदिकनी सिद्धि तो ब्रह्म विना संभवे नहि, एथी ते चारथी ब्रह्मनी उत्पत्ति संभवे नहि. एथी ब्रह्म अनादि छे. ब्रह्म निर्विकार छे, एथी ब्रह्मथी अविद्यानी उत्पत्ति छे नहि. अने ईश्वर आदिकनी सिद्धि तो अविद्यानी सिद्धिने अधीन छे, एथी ईश्वरादिथी अविद्यानी उत्पत्ति संभवे नहि. तेथी अविद्या अनादि छे. केवल ब्रह्मथी वा केवल मायाथी वा परस्परथी वा (तेओनी) स्वसिद्धिने अधीन जे भेद तेथी जीवईश्वरनी उत्पत्ति संभवे नहि. अने अविद्या तथा चेतनना संबंधनी सिद्धिथी ईश्वर-जीव नी सिद्धि छे, ते संबंध पोते पण अनादि छे, एथी संबंधनी उत्पत्ति नथी. तेथी ईश्वर जीव पण अनादि छे. ब्रह्म अने अविद्या अनादि छे. एथी तेओनो तादात्म्यसंबंध पण अनादि छे. तेथी ते संबंधनी उत्पत्ति नथी. अने ईश्वर जीव अविद्या ए त्रणनी सिद्धि तो संबंधनी सिद्धिने अधीन छे, एथी तेमनाथी ते संबंधनी उत्पत्ति नथी, तेथी अविद्या अने चेतननो संबंध अनादि छे. ए पांचे वस्तुनी पोतानी

नहि ते वस्तु 'स्वरूपे अनादि' कहेवाय छे.] ए पद्नी उत्पत्ति थाय नहि, एथी ते स्वरूपे अनादि छे. अने अहंकारादिकोनी तो श्रुतिमां उत्पत्ति कही छे, एथी स्वरूपे अनादि यद्यपि अहंकारादिक नथी, तथापि प्र वा ह रू पे स र्व व स्तु अ ना दि छे. सर्व वस्तुनो प्रवाह दूर थाय नहि अनादिकालमां एवो समय कोई पूर्वे थयो नथी के जे समये कोई (प्रकारनो पण) घट नहि होय. एथी घटनो प्रवाह अनादि छे. ए रीतिए सर्व वस्तुनो प्रवाह अनादि छे. प्रलयकालमां पण, सुषुप्तिनी पेठे सर्व वस्तु संस्काररूप थईने रहे छे. एथी प्रपंचनो प्रवाह अनादि होवाथी, प्रपंच अनादि कहेवाय छे. एवुं जेने ज्ञान छे नहि तेने आवी शंका थाय छे जे.- 'प्रथमअध्यासना हेतु संस्कार बने नहि.' अने सिद्धान्तमां अहंकारादिक कोई वस्तुनो अध्यास, सर्वथी प्रथम छे नहि। किन्तु (प्रवाहरूपमां) पोताथी पूर्वपूर्वे अध्यासथी संपूर्ण

पोताथी ज उत्पत्ति मानिये तो आत्माश्रय दोष थशे. एथी ए पांच वस्तुनी पोतपोताथी पण उत्पत्ति नथी. जेथी ए पंचवस्तुनी उत्पत्ति नथी तेथी ए पचवस्तुनो परस्पर भेद छे तेनी पण उत्पत्ति बने नहि. ए रीतिए ए षट्वस्तुनी उत्पत्ति नथी. एथी एओ स्वरूपे करी अनादि छे. तेओमां ब्रह्म त्रिकाल अबाध्य छे. एथी अनादि अनन्त छे, अने (अविद्या, ईश्वर, जीव अविद्यानो चैतन्यसह संबंध, अने अनादि वस्तुनो भेद,) ए पच ज्ञानेकरी बाधने पामे छे एथी तेओ अनादि सान्त छे."

५७. 'प्रपच (सर्व वस्तु, अनादि छे एथी बहुकालस्थायी होवाथी सत्य हशे,'- ए शंकानु आ समाधान छे. जेम रज्जुमां सर्पनो भ्रम थाय छे, अने जीवोने स्वप्न थाय छे, ते अमुक कालपर्यन्त, पूर्वसिद्ध अने अनादिसिद्ध प्रतीत थाय छे, तो पण रज्जुनुं अने जाग्रतनुं ज्ञान थये तेमना त्रिकाल अभाव निश्चयरूप बाध थाय छे, एथी मिथ्या छे. तेम प्रपंच पण आरोपदशामांये अनादिसिद्ध भासे छे, ते पण अधिष्ठाननुं ज्ञान थये ए प्रपचनो त्रिकाल-अभाव निश्चयरूप बाध थाय छे, एथी प्रपच मिथ्या छे. एथी ज प्रवाहरूपेकरी अनादि सान्त कहेवाय छे.

पं. पी. पु.

(=सर्व अध्यास) उत्तर छे. एथी शंका बने नहि. ए रीतिए सजातीयना पूर्व-ज्ञान जन्य-संस्कारेकरी अहंकारादिक वधना अध्यास बने छे. ए (कवितना) प्रथम पादनो अर्थ छे.

८३. अने जे (अंक ४९ मां) पूर्वे कह्यु, के –' त्रण प्रकार-'नो दोष, अध्यासनो हेतु छे. अने बधना अध्यासमां कोई ' पण दोष बने नहि एथी वध सत्य छे ' ते शंका बने नहि. केमके, जो दोष विना अध्यास थाय नहि, तो अध्यासनो हेतु दोष थाय जेम तुरी तंतु वेम पटना हेतु छे, तुरी तंतु (अने) वेम होय तो पट थाय, अने (ते त्रण) होय नहि तो पट थाय नहि, तेम (अन्वयव्यतिरेकेकरी) दोष अध्यासना हेतु नथी केमके, सादृश्यदोष विना आत्मामा जातिनो अध्यास थाय छे ब्राह्मणत्वथी आदि लईने जे जाति छे, ते स्थूलशरीरनो धर्म छे, आत्मानो अने सूक्ष्मशरीरनो धर्म नथी, केमके (ज्यारे) अन्य शरीरने प्राप्त थाय छे, त्यारे आत्मा अने सूक्ष्मशरीर ता जे पूर्वशरीरमा छे ते ज रहे छे, अने जाति अन्य पण थाय छे आ नियम नथी —पूर्वशरीरमा जे जाति होय, ते ज उत्तरशरीरमा होय छे आत्मानो अथवा सूक्ष्मशरीरनो धर्म जाति होय तो, उत्तरशरीरविषे अन्य जाति न थवी जोइये एथी आत्मानो अथवा सूक्ष्मशरीरनो धर्म जाति नथी किन्तु स्थूलशरीरना धर्म छे अने ' हु द्विजाति छु ' एवी रीतिए ब्राह्मणत्व क्षत्रियत्व वैश्यत्व-जातिनु आत्मामां भान थाय छे, एथी आत्मामा जातिनो अध्यास छे जेम रज्जुमा सर्प परमार्थेकरी नथी अने भान थाय छे, एथी रज्जुमा सर्पनो अध्यास छे तेम आत्मामा जाति छे नहि

५८ [द्विजाति नाम त्रिवर्णनु छ] जेने उपनयननो अधिकार छ एवा ब्राह्मण, क्षत्रिय अने वैश्य वर्ण

अने भान थाय छे, एथी आत्मामां जातिनो अध्यास छे. अने आत्मानी साथे जातिनुं सादृश्य छे नहि. केमके, आत्मा व्यापक छे, अने जाति परिछिन्न छे. आत्मा प्रत्यक् छे अने जाति पराक् छे. आत्मा विषयी (प्रकाशक) छे अने जाति विषय (प्रकाश्य) छे. ए रीतिए आत्मामां विरोधिनी जातिनो पण अध्यास थाय छे. जेम आत्माविषे सादृश्य विना जातिनो अध्यास थाय छे, तेम सादृश्य विना अहंकारादिक बंधनो अध्यास पण आत्मामां बने छे. सादृश्यदोष अध्यासनो हेतु नथी. जो सादृश्यदोष ज अध्यासनो हेतु होय तो, आत्मामां जातिनो अध्यास नहि थवो जोइये, अने शंखमां पीततानो अध्यास नहि थवो जोइये; अने शर्करामां कटुतानो अध्यास नहि थवो जोइये; केमके, श्वेतनो अने पीतनो विरोध छे, सादृश्य नथी. तेम मधुर अने कटुनो विरोध छे, सादृश्य नथी. एथी अधिष्ठानमां मिथ्यावस्तुनो सादृश्यदोष, अध्यासनो हेतु नथी.

८४ तेम प्र मा ता ना लोभभयआदि दोष पण अध्यासना हेतु नहि. केमके लोभरहित वैराग्यवान् जे पुरुष छे, तेने पण शुक्तिमां रूपानो अध्यास थाय छे, ते न थवो जोइये. एथी प्रमातानो दोष पण अध्यासनो हेतु नथी. अने प्र मा ण नो दोष पण अध्यासनो हेतु नथी. केमके, सर्व पुरुषने, रूपरहित जे आकाश छे, ते नीलरूपवाळुं प्रतीत थाय छे; अने कटाह(कढाई)ना तथा तंबुना आकारे प्रतीत थाय छे; एथी सर्वने आकाशमां, नीलरूपनो, कटाहनो, तथा तंबुनो, अध्यास छे अने सर्वना नेत्ररूप प्रमाणमां दोषनुं संभव बने नहि. एथी प्रमाणनो दोष अध्यासनो हेतु नथी. आकाशमां नीलादिकोनो जे अध्यास छे, तेनेविषे पण प्रमाणदोषनो ज

अभाव नथी, किन्तु सर्व दोषोनो अभाव छे. सादृश्य (दोष) पण नथी, अने प्रमातानो दोष पण नथी. जेम सर्वदोषना अभावथी पण आकाशमां नीलतादिकोनो अध्यास थाय छे; तेम आत्माविषे पण बंधनो अध्यास दोषविना ज बने छे. एथी 'दोषना अभावथी बंध अध्यासरूप नथी,' ए शंका बने नहि. केमके, सर्व दोषनो अभाव पण छे तो पण आकाशमां नीलादिकोनो अध्यास सर्व पुरुषोने थाय छे; एथी दोष अध्यासनो हेतु नथी. कवितना चतुर्थ पादनो आ अर्थ छे:- जेमने कोई 'पित्तप्रभृति' नाम पित्तथी आदि लईने 'अक्षेम' नाम दोष नथी, तेमने पण आकाश नीलरूपवान कटाह-आकार (गोळ), अने तंबुना आकार भासे छे, एथी प्रमाण-दोष अध्यासनो हेतु नथी. ['क्षेम' नाम कुशलनुं छे. तेनो विरोधी जे प्रमाणदोष ते अक्षेम कहेवाय छे ज्ञाननुं साधन जे इन्द्रिय ते 'प्रमाण' कहेवाय छे.] ए रीतिए दोष अध्यासना हेतु नथी; एथी बंधना अध्यासमां दोषनी अपेक्षा नथी. अने संक्षेपशारीरकमां, बंधना अध्यास समय, दोष पण प्रतिपादन कर्या छे. विस्तारना भयथी अमे(ते अत्र) नथी लख्या. अने अध्यासना हेतु जो दोष होय तो दोष निरूपण करत; ते दोष अध्यासना हेतु छे नहि एथी पण दोषनुं निरूपण नथी कर्युं. १३.

५९. आकाशमां नीलादिक वर्णनो जे अध्यास सर्वने छे तेमां 'प्रमाणदोष'नो अभाव छे, कारण सर्व पुरुषोना नेत्रमां तिमिरादि दोष छे नहि. अने नीलादि-कोनुं अने आकाशनुं सादृश्य नथी, एथी 'प्रमेयदोष'नो पण अभाव छे. अने कोईने आकाशना नील रंगनो, आकाश जेवा कटाहनो, अने आकाश जेवा तंबुनो लोभ पण नथी; एथी 'प्रमातृदोष'नो पण अभाव छे. पं. पी. पु.

६०. सर्वज्ञात्ममहामुनिए शंकरकृत शारीरकभाष्यउपर रचेलो पद्यात्मक ग्रंथ. तेना समयमां राजा मनुकुलादित्य नामे हतो.

८९. अथ ^{६१}कारणअध्यासनिरूपण.

दुहो.

चित् सामान्य-प्रकाशथी, नहि नाशे अज्ञान;
ले प्रकाश सुषुप्तिमां, चेतनथी अज्ञान. १४

टीकाः—पूर्वे कह्युं जेः–'विशेषरूपे अज्ञात वस्तुमां अ- 'ध्यास थाय छे. अने आत्मा स्वयंप्रकाश छे, तेनाविषे अज्ञान 'बने नहि; केमके तमनो अने प्रकाशनो परस्पर विरोध छे. 'एथी जेम अत्यंत प्रकाशमां स्थित रज्जुमां सर्पनो अध्यास 'थाय नहि; तेम स्वयंप्रकाश आत्मामां बंधनो अध्यास बने 'नहि.' ते शंका पण बने नहि. केमके, यद्यपि आत्मा प्रकाशरूप छे, तथापि आत्मानो स्वरूपप्रकाश अज्ञाननो विरोधी नथी. जो आत्म-स्वरूप-प्रकाश अज्ञाननो विरोधी होय, तो सुषुप्तिमां प्रकाशरूप आत्माविषे अज्ञान प्रतीत थाय छे, ते नहि थवुं जोइये. घोरनिद्राथी जाग्यो जे पुरुष छे तेने आवुं ज्ञान थाय छेः–'हुं सुखे सूतो हतो अने किञ्चित् पण न 'जाणतो हतो.' ए ज्ञानना सुख अने अज्ञान विषय छे. ते सुख अने अज्ञाननुं जे जाग्रतमां ज्ञान छे, ते प्रत्यक्षरूप नथी. केमके, जे ज्ञानना विषय सन्मुख होय, ते ज्ञान प्रत्यक्षरूप होय छे. अने जाग्रत् कालमां (ते सुषुप्तिनुं) सुख अने अज्ञान छे नहि; एथी जाग्रत्‌मां सुख अने अज्ञाननुं ज्ञान प्रत्यक्षरूप नथी, किन्तु स्मृतिरूप छे. ते स्मृति अज्ञातवस्तुनी

---

६१. प्रपंचनुं कारण जे अधिष्ठानना विशेषरूपनुं अज्ञान छे ते(अज्ञान)नो जे (आत्मामां) अध्यास ते 'कारणाध्यास' कहेवाय छे. यद्यपि प्रपंचना अध्यासनुं कारण अज्ञान छे, अने अज्ञानना अध्यासनुं कारण अन्य कोई छे नहि, एथी अज्ञाननो अध्यास बने नहि; तथापि दोरडाना सम, अने सांख्याभिमत स्वप्रकाश आत्माना सम, अने नैयायिकाभिमत भेदना सम, अज्ञान ११-९८नुं निर्वाहक छे. एथी तेनो अध्यास बने छे. पं. पी. पु.

थाय नहि, किन्तु ज्ञातवस्तुनी थाय छे; एथी सुषुप्तिमां सुख अने अज्ञाननुं ज्ञान छे. ते सुषुप्तिनुं ज्ञान अंतःकरण(जन्य) अने इंद्रियजन्य तो छे नहि. केमके सुषुप्तिमां अंतःकरण अने इंद्रियनो अभाव छे. एथी सुषुप्तिमां आत्मस्वरूप ज ज्ञान छे. [ज्ञान अने प्रकाशनो एक ज अर्थ छे.] ए रीतिए सुषुप्तिमां आत्मा प्रकाशरूप छे. ते प्रकाशरूप आत्माए स्वरूपसुख अने अज्ञाननी प्रतीति थाय छे. जो आत्म-स्वरूप-प्रकाश अज्ञाननो विरोधी होयँ. तो, सुषुप्तिमां अज्ञाननी प्रतीति न थवी जोइये. एथी आत्मा प्रकाशरूप तो छे; परंतु आत्मानो स्वरूप-प्रकाश अज्ञाननो विरोधी नथी. उलटो आत्मानो स्वरूपप्रकाश अज्ञाननो साधक छे. ए अभिप्रायथी ज वेदान्तशास्त्रमां कह्युं छेः 'सामान्य चैतन्य अज्ञान-'नुं विरोधि नथी. किन्तु विशेष चैतन्य जे अज्ञाननुं 'विरोधि छे.' [व्यापक जे चैतन्य छे ते सामान्य-चैतन्य कहेवाय छे. अने वृत्तिमां स्थित जे चैतन्य ते विशेष-चैतन्य कहेवाय छे.] जेम काष्ठमां स्थित जे सामान्य अग्नि छे, ते अंधकारनो विरोधी नथी; अने (ते ज काष्ठमांथी) मथनथते प्रकट कर्यो जे अग्नि छे, ते, वर्ति(वाट)मां स्थित थईने, अंधकारनो विरोधि छे; तेम व्यापक जे चैतन्य ते अज्ञाननुं विरोधि नथी पण खरूं, परंतु वेदान्तना विचारे अंतःकरणनी जे ब्रह्माकारवृत्ति थई छे, तेनाविषे स्थित चैतन्य अज्ञान-

६२. जेम अंधकार, चार भूतो(आकाश वायु-जल-पृथिवी) ना गुण शब्द, स्पर्श, रस, अने गंध तेमने आवरण करतो नथी, किन्तु तेजनो गुण जे 'रूप' तेने ज आवरण करे छे; एथी अंधकार, तेजना सामान्यस्वरूपने आश्रित थईने रहे छे, अने तेने ज विषय करे छे नाम ढांके छे एथी सामान्य तेज अंधकारनुं विरोधि नथी. तेम अज्ञान पण चेतनना सामान्य प्रकाशने आश्रित थईने रहे छे अने तेने ज विषय करे छे. एथी सामान्यचेतन अज्ञाननुं विरोधि नथी.

पं. पी. पु.

नुं विरोधि छे. ए रीतिए केवल चैतन्य अज्ञाननुं विरोधि नथी; किन्तु वृत्तिसहित चैतन्य अज्ञाननुं विरोधि छे, अथवा चैतन्यसहित वृत्ति अज्ञाननी विरोधिनी छे."

प्रथम पक्षमां तो 'अज्ञानना नाशनो हेतु चैतन्य छे, अने 'वृत्ति सहायक छे.' द्वितीय पक्षमां 'अज्ञानना नाशनो हेतु 'वृत्ति छे. चैतन्य सहायक छे.' ए अवच्छेदवादनी रीति छे. अने आभासवादमां तो 'सामान्य चैतन्यनी पेठे 'विशेष चैतन्य पण अज्ञाननुं विरोधि नथी; किन्तु वृत्तिसहित 'आभास (अज्ञाननो विरोधि छे); अथवा आभाससहित वृत्ति, 'अज्ञाननी विरोधिनी छे.' ए रीतिए प्रकाशरूप चैतन्य अज्ञाननुं विरोधि नथी, एथी चैतन्यने आश्रितें अज्ञान छे. ते अज्ञाने आवृत (विंटायलो) जे आत्मा तेना विषे बंधनो अध्यास बने छे.

८६. अने पूर्वे कह्युं जे,–'सामान्यरूपे ज्ञात अने विशेषरूपे 'अज्ञातवस्तुमां अध्यास थाय छे. अने आत्मामां सामान्य-'विशेष-भाव छे नहि, एथी निर्विशेष आत्मा, ज्ञात अने 'अज्ञात बने नहि, तेनाविषे अध्यासनो असंभव छे.' ते वार्ता पण बने नहि. केमके, 'आत्मा छे' ए प्रतीति सर्वने थाय

६३. एकलुं लाकडुं झाडीने कापी शकतुं नथी पण लोढाना फळ सहित लाकडानो हाथो झाडीने कापी शके छे; तेम अज्ञानरूप झाडीने चैतन्यसहित वृत्ति कापी शके छे.

६४. अने पूर्वे कह्युं हतुं जे सूर्यविषे अंधकारनी पेठे स्वप्रकाशरूप आत्मा विषे अज्ञान संभवे नहि, ए शंका बने नहि. केमके सूर्यादि ज्योति महातेजनुं विशेष रूप छे, सामान्य नहि, अने आत्मानुं रूप तो सामान्य प्रकाश छे. एथी ते अज्ञाननो विरोधि नथी. तेथी दृष्टान्त सूर्य अने सिद्धान्त चेतननी विषमताएकरी उक्त शंकानो अवकाश नथी. पं. पी. पु.

छे. [आत्मा नाम पोताना स्वरूपनुं छे] 'हुं हु नहि' ए प्रतीति कोईने थाय नहि, किन्तु 'हु छु' ए प्रतीति सर्वने थाय छे एथी **सत्‌रूपे** करीने आत्मा(नु) सर्वने भान थाय छे. अने 'चैतन्य, आनद, व्यापक, नित्यशुद्ध, नित्यमुक्तरूप आत्मा छे,' ए प्रतीति सर्वने थाय नहि एथी चैतन्य, आनद, व्यापक, नित्यशुद्ध, नित्यमुक्तरूपे आत्मा अज्ञात छे, अने सत्‌रूपे करीने ज्ञात छे ए वार्त्ता अनुभवसिद्ध छे. ते अनुभवसिद्ध वार्त्ता युक्तिए दूर थाय नहि. सर्वने प्रतीत जे थाय छे, आत्मानुं सत्‌रूप, ते तो (आत्मानु) सा मा न्य रूप छे, अने केवल ज्ञानीने प्रतीत थाय छे जे चेतन्य आनदादिक(रूप)ते (आत्मानु) वि शे ष रू प छे. [जे अधिक कालमां (अने) अधिक देशमा होय ते **सामान्यरूप** कहेवाय छे, अने न्यूनदेशमा (अने) न्यूनकालमा होय ते **विशेषरूप** कहेवाय छे.] यद्यपि आत्मानु स्वरूप ज चेतनआनन्दादिक छे, एथी सत्‌नी पेठे चेतनआनदादिक सर्वत्र व्यापक छे, सत्‌नी अपेक्षाथी चेतन आनदादिकने न्यूनदेशमा, अने चेतनआनन्दादिकनी अपेक्षाथी सत्‌रूपने अधिक देशमा कहेवु बने नहि एथी सत् रूप आत्मानो सामान्य अश छे, अने चेतनआनदादि विशेष अश छे, ए कहेवु पण बने नहि तथापि सत्‌नी प्रतीति सर्वने अविद्याकालमा पण होय छे, अने 'चेतन आनदरूप आत्मा छे,' ए प्रतीति सर्वने अविद्याकालमा होय नहि, केवल ज्ञानीने ज होय छे. अविद्याकालमा चेतन, आनद, मुक्तता, शुद्धता, पण छे, परंतु प्रतीति थाय नहि, एथी न होयाना समान छे ए अभिप्रायथी चैतन्यआनदादिक न्यूनकालवर्ति कहेवाय छे, अने सत्‌रूप अधिककालवर्ति कहेवाय छे ए रीतिए सत्‌रूपनो अने चेतनआनदादिकोनो सामान्यविशेष-

भाव नथी पण खरो, परंतु अल्प काल अने अधिक कालमां प्रतीति होवाथी सामान्यविशेषभावनी पेठे छे. ए कारणथी आत्मानुं सत्‌रूप सा मा न्य अं श कहेवाय छे, अने चे त न आ नं दा दि क वि शे ष अंश कहेवाय छे.

अने आत्मा नि र्वि शे ष छे, ए सिद्धान्तनी पण हानि नथी. जो आत्मामां सामान्यविशेषभाव अंगीकार करिये तो, 'निर्विशेष आत्मा छे' ए सिद्धान्तनी हानि थाय. ते सामान्यविशेषभाव अंगीकार कर्यो नहि, किन्तु अविद्याए सामान्यविशेषनी पेठे प्रतीति थाय छे, एथी सामान्यविशेषभाव कहे छे, (एम कह्युं छे.) ए रीतिए सत्‌रूपे करीने ज्ञात, अने चेतन, आनंद, नित्यशुद्ध, नित्यमुक्त, ब्रह्मरूपे करीने अज्ञात, (एवा) आत्माविषे बंधनो अध्यास बने छे. अध्यासरूप बंधनी ज्ञाने निवृत्ति पण बने छे. एथी ग्रं थ नुं प्र यो ज न संभवे छे.

८७. अने पूर्वे (अंक ५१–५८ एकभविकवाद प्रमाणे पूर्वपक्षीए) कह्युं जेः–'निषिद्धकाम्यकर्मनो त्याग करीने, नित्यनैमित्तिक अने प्रायश्चित्त कर्म करे, एथी निषिद्ध कर्मना 'अभावथी नीच लोकने प्राप्त थाय नहि; अने काम्यकर्मना 'अभावथी उत्तम लोकने प्राप्त थाय नहि. अने नित्यनैमित्तिक 'कर्म नहि करवाथी जे पाप थाय, ते तेमना करवाथी थाय 'नहि, अने आ जन्मविषे अथवा अन्य जन्मविषे पूर्वे कर्यां 'जे पाप छे, तेमनो साधारण अने असाधारण प्रायश्चित्ते 'नाश थाय छे. अने पूर्वे कर्यां जे काम्यकर्म छे, तेमना फलनी 'इच्छाना अभावथी, मुमुक्षुने, तेओनुं फल थाय नहि एथी 'मुमुक्षुने ज्ञान विना ज जन्मना अभावरूप मोक्ष थाय छे.' ते बने नहि. केमकेः—

नित्यनैमित्तिक कर्मनुं पण स्वर्गरूप फल छे, ए वात भाष्यकारे युक्ति अने प्रमाणेकरी प्रतिपादन करी छे; एथी नित्यनैमित्तिक कर्मथी उत्तम लोकने प्राप्त थशे; जन्मनो अभाव बने नहि, अने नित्यनैमित्तिक कर्मनुं फल जो अंगीकार नहि करिये तो नित्यनैमित्तिक कर्मनो बोधक जे वेद छे, ते निष्फल थशे. केमके, जो नित्यनैमित्तिक कर्मना नहि करवाथी पाप थाय, तो ते पापनी अनुत्पत्ति (ए) तेओनुं फल बने, ते नित्यनैमित्तिक कर्मना नहि करवाथी पाप थाय नहि. केमके, नित्यनैमित्तिक कर्मनुं जे नहि करवुं ते अभावरूप छे, अने पाप भावरूप छे. अभावथी भावनी उत्पत्ति थाय नहि; एथी 'नित्यनैमित्तिक कर्मना नहि करवाथी पाप 'थाय छे,' ए कहेवुं बने नहि. जो नित्यनैमित्तिक कर्मना नहि करवाथी पापनी उत्पत्ति अंगीकार करिये तो, 'अभावथी 'भावनी उत्पत्ति थाय नहि,' ए (गीताना) द्वितीय अध्यायमां भगवाने कह्युं छे, तेथी विरोध थशे. एथी नित्यनैमित्तिक कर्मना अभावथी, भावरूप पापनी उत्पत्ति बने नहि. ए रीतिए नित्यनैमित्तिक कर्मनुं पापनी अनुत्पत्ति फल नथी, किन्तु नित्यनैमित्तिक कर्म विना पण पापनी अनुत्पत्ति सिद्ध छे. एथी नित्यनैमित्तिक कर्मनुं जो स्वर्गरूप फल अंगीकार नहि करिये तो, कर्म निष्फल थवानां. अने निष्फल जे नित्य नैमित्तिक कर्म छे, तेओनो बोधक वेद पण निष्फल थशे. एथी नित्यनैमित्तिक कर्मे पण स्वर्ग फल थाय छे.

८८. अने (पूर्वपक्षीए कह्युं के:–) 'जन्मान्तरनां जे काम्य 'कर्म छे, तेओनुं, इच्छाना अभावथी, फल थाय नहि.' ते वार्त्ता पण बने नहि. केमके कर्मरूपी बीजथकी बे अंकुर थाय छे. एक तो **वासना** अने बीजुं **अदृष्ट.** [धर्म अधर्मनुं

नाम अदृष्ट छे.] शुभकर्मवते तो शुभवासना अने धर्मरूप अंकुर थाय छे; अने अशुभकर्मवते अशुभवासना अने अधर्मरूप अंकुर थाय छे. शुभवासनाए तो आगळ शुभकर्ममां प्रवृत्ति थाय छे, अने धर्मेकरी सुखनो भोग थाय छे. ए ज रीतिए अशुभवासनाए (आगळ) अशुभकर्ममां प्रवृत्ति थाय छे; अने अधर्मेकरी दुःखनो भोग थाय छे. ए रीतिए कर्मरूप बीजथी वासनारूप अने अदृष्टरूप अंकुर थाय छे. ते(बे अंकुर)-मांथी 'वासनारूप अंकुरनो तो उपायेकरी नाश थाय 'छे; अने अदृष्टरूप अंकुरनो तो फलनी उत्पत्ति विना कोई 'प्रकारे पण नाश थाय नहि.' ए शास्त्रनो निर्णय छे. अशुभकर्मेकरी उत्पन्न थयो जे अशुभवासनारूप अंकुर छे, तेनो तो सत्संग आदि उपायेकरी नाश थाय छे; अने शुभकर्मेकरी उत्पन्न थई जे शुभवासना तेनो कुसंगादिकोथी नाश थाय छे. शास्त्रमां जेटलो पुरुषार्थ कह्यो छे, तेणे(पुरुषार्थे)करी प्रवृत्तिनो हेतु जे वासना, ते(वासना)नो ज नाश थाय छे, एथी पुरुषार्थ पण सफल छे. अने भोगनो हेतु जे अदृष्ट तेनो नाश थाय नहि. एथी 'फल दीधा विना कर्मनी निवृत्ति 'थाय नहि,' ए वार्त्ता शास्त्रमां जे कही छे ते साथे पण विरोध नथी. ए रीतिए अज्ञानीने फलभोग विना कर्मनी निवृत्ति बने नहि; अने ज्ञानीने तो (फलना) भोग विना पण कर्मनी निवृत्ति बने छे. केमके, कर्म अने कर्त्ता तथा फल परमार्थथी तो छे नहि, किन्तु अविद्याएकरी कल्पित छे. ते अविद्यानुं ज्ञान विरोधि छे. एथी अविद्याकल्पित जे कर्मादिक छे तेमनो पण ज्ञानेकरी नाश थाय छे. जेम स्वप्नविषे निद्राएकरी जे पदार्थ प्रतीत थाय छे तेओनो, जाग्रत्‌मां, निद्रानी निवृत्तिएकरी, अभाव थाय छे. तेम अविद्यारूप निद्राएकरी

प्रतीत थाय छे जे कर्म, कर्त्ता, अने फल, तेओनो पण ज्ञान-दशारूप जाग्रत्‌विषे, अविद्यानी निवृत्तिएकरी, अभाव थाय छे, अने ज्ञान विना अभाव थाय नहि. अने इच्छाना अभावथी जो कर्मनो फलभोग थाय नहि, तो ईश्वरनो संकल्प मिथ्या थशे. केमके, 'फलभोग विना अज्ञानीना कर्मनी 'निवृत्ति थाय नहि,' ए ईश्वरनो संकल्प छे. जो इच्छाना अभावथी कर्‍यां कर्मनुं फल थाय नहि, तो ईश्वरनो संकल्प मिथ्या ज थशे. अने 'सत्यसंकल्प ईश्वर छे,' ए वार्त्ता शास्त्रमां प्रसिद्ध छे. एथी 'इच्छाना अभावथी पूर्वे करेला काम्य-'कर्मनुं फल थाय नहि,' ए वार्त्ता (जे पूर्वपक्षीए कही ते) विरुद्ध छे. जो इच्छाना अभावथी ज काम्यकर्मनुं फळ न थाय तो, अशुभ कर्मनुं फल कोईने पण न थवुं जोइये. केमके, अशुभ कर्मनुं फल दुःख छे, तेनी कोईने पण इच्छा छे नहि. एथी ज्ञा न वि ना क र्म ना फ ल नो अ भा व था य न हि.

८९. अने पूर्वे कह्युं जेः-'जेम कर्मना अनुष्ठानकालमां 'इच्छारहित जे पुरुष छे, तेणे कर्मनुं फल वेदान्तमां अंगी-'कार कर्‍युं नथी; तेम कर्मना अनुष्ठानथी अनन्तर पण जो पुरुषनी इच्छा दूर थई जाय, तो कर्मनुं फल थाय नहि,' ते वार्त्ता पण वेदान्तमतने नहि जाणीने कही छे. केमके, फलनी इच्छासहित जे कर्म करे छे, अथवा फलनी इच्छा-रहित जे कर्म करे छे, तेओने कर्मनो फलभोग तो निश्चय थाय छे. परंतु इच्छारहितकर्मेकरी अंतःकरण शुद्ध थाय छे; अने इच्छासहित जे कर्म करे छे, तेने केवल भोग तो थाय छे, परंतु अंतःकरण शुद्ध थाय नहि. इच्छारहितकर्म कर-वाथी (जेने) शुद्ध अंतःकरण थईने श्रवणथी जो ज्ञान थई

जाय तो तेने कर्मनुं फल थाय नहि. अने 'जेणे कर्म तो, 'फलनी इच्छारहित, कर्यां छे, परंतु, श्रवणना अभावेकरी 'अथवा कोई बीजा निमित्तेकरी, ज्ञान थाय नहि, तेने तो, 'इच्छारहितकर्मनां फलनो भोग, दूर थाय नहि,'-ए वेदान्तनो सिद्धान्त छे. एथी ज्ञान विना कर्मनो फलभोग दूर थाय नहि.

९०. अने पूर्वे कह्यु, जेः-'प्रायश्चित्तवते संपूर्ण अशुभ'कर्मनो नाश थाय छे,' ते वार्त्ता पण बने नहि. केमके, अनंत कल्पनां जे अशुभकर्म छे, तेओनुं एक जन्मनेविषे प्रायश्चित्त बने नहि. अने गंगास्नान अने ईश्वरनुं नामउच्चारण आदि लईने सर्व पापनां नाशक जे साधारण प्रायश्चित्त कह्यां छे, ते पण ज्ञाननां ज साधन छे; एथी सर्व पापनां नाशक कह्यां छे. एथी ज्ञानेकरी ज सर्व पापनो नाश थाय छे.

९१. अने पूर्वे कह्युं जेः-'नित्यनैमित्तिक कर्म करवाथी जे क्लेश थाय छे, ते पूर्वसंचित निषिद्धकर्मनुं फल छे; एथी 'संचित निषिद्धकर्मनुं फल बीजुं होय नहि.'-ते वार्त्ता पण बने नहि. केमके, अनेक प्रकारनां संचितनिषिद्ध जे कर्म छे, तेओनुं फल पण अनंत प्रकारनुं दुःख छे. केवल कर्मनां अनुष्ठाननो क्लेश ज तेमनुं फल बने नहि.

९२. अने पूर्वे कह्युं, जेः-'संपूर्ण संचितकाम्यकर्मथी एक ज शरीर थाय छे.' ते वार्त्ता पण बने नहि. केमके संचितकाम्यकर्म अनंत छे, तेओनो एक जन्मविषे भोग बने नहि. अने एक पुरुषने एक कालमां नाना शरीरेकरी जे भोग कह्यो, ते पण सिद्ध योगी विना अन्यने बने नहि. अने 'सिद्ध योगीने 'पण अन्य तो संपूर्ण सामर्थ्य होय छे, परंतु ज्ञान विना मोक्ष 'थाय नहि.' ए वेदान्तनो सिद्धान्त छे. ए रीतिए काम्यकर्म

अने निषिद्धकर्मने त्यागीने, जो केवल नित्यनैमित्तिक कर्म अज्ञानी करे, तेने नित्यनैमित्तिक कर्मना फलने भोगववासारु अने पूर्वे जे शुभ अशुभ कर्म कर्यां छे तेओना फलने भोगववासारु अनंतशरीर थशे, मोक्ष थाय नहि. एथी ज्ञानद्वारा बंधनी निवृत्ति ग्रंथनुं प्रयोजन बने छे. जेम स्वप्नविषे जे मिथ्यापदार्थ प्रतीत थाय छे, तेओनी जाग्रत्विना निवृत्ति थाय नहि; तेम बंध पण मिथ्या प्रतीत थाय छे, तेनी पण ज्ञानरूप जाग्रत् विना निवृत्ति थाय नहि.

९३. ए रीतिए ग्रंथना अधिकारी, विषय, (अने) प्रयोजन संभवे छे. अने अधिकारिआदिकोना संभवथी संबंध पण संभवे छे. एथी ग्रंथनो आरंभ बने छे.

दुहो.

दादु दीनदयाल छो, सत्-सुख-परमप्रकाश,
जेमां मतिनी गति नहि, ते छे निश्चलदास. १५.

इति श्रीविचारसागरे अनुबंधविशेषनिरूपणं नाम
द्वितीयस्तरंगः समाप्तः. २.



अथ श्रीविचारसागरस्य

तृतीयतरंगप्रारंभः.

अथ श्रीगुरुशिष्यलक्षण.

गुरुभक्तिफलप्रकारनिरूपण.

९४ दुहो.

पेखॉ चार-अनुबंधयुत, पढे गुणे आ ग्रंथ;
ज्ञानसहित गुरुथी ज नर, लहे मोक्षनो पंथ. १.

टीकाः—चारे अनुबंधसहित ग्रंथने जाणीने ज्ञानसहित गुरुथी जे पुरुष भणे अथवा एकाग्रचित्त करीने सांभळे, ते पुरुष, मोक्षनो पंथ जे ज्ञान छे, तेने प्राप्त थाय. १.

दुहो.

अनायास मति भूमिमां, ज्ञानवाडी आवाद
थाय, ए ज कारण कहुं, गुरुशिष्यसंवाद. २.

टीकाः—गुरुशिष्यना संवादवते अर्थ निरूपण करेथी श्रोताने बोध सुखेकरी थाय छे, ए कारणथी गुरुशिष्यना संवादे ग्रंथनो आरंभ कराय छे. २

९५. अथ श्रीगुरुलक्षण.

चोपाई.

वेद अर्थने भला पिछाणे, आतमा ब्रह्मरूप इक जाणे,
पंचभेदनी बुद्धि नसाडे, अद्वय अमल ब्रह्म देखाडे. ३.
भव मिथ्या मृगतृषा समान ज, अनुभव भाखे एम, न अन्य ज,
ते गुरु दे अद्भुत उपदेश ज, छेदक शिखा, न, लुंचितकेश ज. ४.

टीका—'वेदना अर्थने महाप्रकार पीछाणे' ए कहेवाथी अधीतवेद (श्रोत्रिय) आचार्य होय छे ए कह्युं. अने 'जीवब्रह्मनी एकता निश्चय करीने जाणे' एथी आत्मज्ञानविषे जेनी स्थिति होय ते (ब्रह्मनिष्ठ) आचार्य (गुरु) होय छे; ए कह्युं. जे वेद भण्यो होय, अने ज्ञानविषे जेनी निष्ठा न होय, ते आचार्य नथी. अने ज्ञानविषे जेनी निष्ठा होय, अने वेद न भण्यो होय, ते पण पोते तो मुक्त छे, परंतु उपदेश करवाने योग्य आचार्य (ते) नथी, केमके, तेने जिज्ञासुनी शंका मटाडवानी युक्ति आवडती नथी. जेना चित्तविषे शंका उठे नहि, एवो उत्तम संस्कारवाळो जे जिज्ञासु छे, तेने तो उपदेश करवाविषे (पाछळ कह्या तेवा आचार्य) समर्थ पण छे, परंतु सर्वने उपदेश करवाने योग्य नथी, एथी (यथार्थ) आचार्य नहि. किंतु अधीतवेद होय अने ज्ञानविषे जेनी निष्ठा होय, ते आचार्य कहेवाय छे. अने शिष्यनी बुद्धिमां भान जे थाय छे ते **पंचप्रकारना भेद,** तेने नाना (प्रकारनी) युक्तिवडे दूर करवाविषे समर्थ होय, (ते आचार्य कहेवाय छे.)

(पंचप्रकारना भेद.)

१. जीव ईशनो भेदः २. जीवोनो परस्पर भेद; ३. जीव

६५. पचभेदना खंडननी युक्तियो आ छे.–(१) जीवईश्वरनो भेद कल्पित छे, अविद्यामायारूप उपाधिकृत होवाथी, घटाकाश मठाकाश भेदनी पेठे. (२) जीवोनो परस्पर भेद कल्पित छे, साभास अन्तःकरणरूप उपाधिकृत होवाथी, नाना घटाकाशोना भेदनी पेठे. (३)जीव-जडनो भेद कल्पित छे, साभास अन्तःकरण अने निराभास नामरूपमय उपाधिकृत होवाथी, स्वप्नगत चर अचर जीव-जडनी पेठे. (४) ईश जडनो भेद कल्पित छे, साभासमाया अने नामरूपमय उपाधिकृत होवाथी, साक्षी अने स्वप्नप्रपंचना भेदनी पेठे. (५) जड जडनो (परस्पर) भेद कल्पित छे, नामरूपमय उपाधिकृत होवाथी, रज्जुविषे कल्पित सर्पदंड धारादिकना भेदनी पेठे. ए पंचप्रकारनां अनुमान पचभेदना खंडनमां युक्तियो छे. पं. पी. पु.

जडनो भेद; ४. ईश जडनो भेद; ५. जड जडनो भेद. ए पंचप्रकारना भेद, तेनुं खंडन करे, (ते आचार्य). केमके, भेद भयनो हेतु छे. एथी भेदनुं निराकरण अवश्य कर्तव्य छे. भेदनुं निराकरण करीने, अद्वय अने अमल नाम अविद्यादिमलरहित जे ब्रह्म तेने देखाडे कहेतां आत्मरूपेकरीने साक्षात्कार करावे; अने सर्व संसारने मिथ्यारूप करीने उपदेश करे; ते अद्भुत उपदेश देवावाळो आचार्य कहेवाय छे. अने केवल पोते मुंडन करावीने, शिष्यनी शिखाने छेदन मात्र करवावाळो, अथवा अन्य कोई संप्रदायनां चिह्नमात्रेकरी अंकित करवावाळो, आचार्य नथी कहेवातो. ४.

दुहो.

करे मोक्ष भवग्राहथी, दै असि निज उपदेश;
ते दैशिक बुधजन कहे, नहि छलगैरिकवेश. ५.

(भावार्थ. संसाररूप मगरथी, निज उपदेशरूप तरवार आपीने जे छोडावे तेने बुद्धिमान् लोक, 'दैशिक' नाम गुरु कहे छे. कर्यो छे गेरूथी भगवां लूगडांनो वेश जेणे तेने गुरु नथी कहेता.)

९६. दुहो.

दैशिकना लक्षण कह्यां, श्रुति मुनिवच अनुसार;
ते लक्षण छे शिष्यनां, थाय जेथी अधिकार. ६.

टीकाः—शास्त्रने अनुसार, दैशिक नाम गुरु तेनां लक्षण (पूर्वे) कह्यां. अने जे साधनोए ग्रंथमां अधिकार थाय ते साधन शिष्यनां लक्षण छे. एनो आ अभिप्राय छेः—अधिकारीना लक्षण पूर्वे (प्रथम तरंगविषे विवेकादि साधनचतुष्टय) कह्यां, ते ज लक्षण शिष्यनां जाणी लेवां. ६.

९७. अथ गुरुभक्तिना फलनुं वर्णन.

दुहो.

ईश्वरथी गुरुमां अधिक, धारे भक्ति सुजान;
प्रवीण पण गुरुभक्तिविन, लहे न आत्मज्ञान. ७.

टीकाः-गुरुमां ईश्वरथी अधिक भक्ति करे केमके, सर्व शास्त्रमां प्रवीण पण जे पुरुष होय, ते पण गुरुना उपदेश-विना ज्ञानने प्राप्त थाय नहि. ७.

पूर्व दुहामां जे वार्त्ता कही ते ज दृष्टान्तेकरी प्रतिपादन करे छे.

दुहो.

गुरुविन वेदउदधि लहे, लागे लवणसमान;
बादल गुरुमुखद्वार थई, अधिक सुधाथी मान. ८.

टीकाः-वेदरूपी जे 'उदधि' नाम समुद्र छे, ते गुरु विना लवणना समान खारो छे. जेम क्षारसमुद्रमां पेशीने तेना जलनुं जे पान करे, ते केवल क्षारतानो अनुभव करे छे; अने तेथी क्लेशने प्राप्त थाय छे; तेम गुरु विना जे वेदना अर्थने विचारे छे, ते भेदरूप क्षारनो अनुभव करीने जन्म-मरणरूप खेदने प्राप्त थाय छे. ए कारणेकरी रामानुज अने मध्वने आदि लईने जे नाना पुरुष थया छे, तेओए वेदना अर्थनो विचार पण कर्यो छे, परंतु गुरुद्वारा नहि कर्यो पथी भेदविषे निश्चय करीने जन्म-मरणरूपी खेदने ज प्राप्त थया, मुक्तिरूप आनंद तेओने प्राप्त न थयो. यद्यपि रामानुज आदि (द्वैतवादी) जे थया छे तेओए पण वेद पोतपोताना गुरुथी ज भणीने विचार्यो छे, अने विचारीने व्याख्यान कर्युं छे; तथापि जेओनी पासेथी तेओए वेद भण्यो, ते गुरु नहि. केमके, 'जीव-ब्रह्मनी एकतानो जे उपदेश करे

जडनो भेद; ४. ईश जडनो भेद; ५. जड जडनो भेद. ए पंचप्रकारना भेद, तेनुं खंडन करे, (ते आचार्य). केमके, भेद भयनो हेतु छे. एथी भेदनुं निराकरण अवश्य कर्तव्य छे. भेदनुं निराकरण करीने, अद्वय अने अमल नाम अविद्यादिमलरहित जे ब्रह्म तेने देखाडे कहेतां आत्मरूपेकरीने साक्षात्कार करावे; अने सर्व संसारने मिथ्यारूप करीने उपदेश करे; ते अद्भुत उपदेश देवावालो आचार्य कहेवाय छे. अने केवल पोते मुंडन करावीने, शिष्यनी शिखाने छेदन मात्र करवावालो, अथवा अन्य कोई संप्रदायनां चिह्नमात्रेकरी अंकित करवावालो, आचार्य नथी कहेवातो. ४.

दुहो.

करे मोक्ष भवग्राहथी, दे असि निज उपदेश;
ते देशिक बुधजन कहे, नहि कृतगैरिकवेश. ५.

(भावार्थ. संसाररूप मगरथी, निज उपदेशरूप तरवार आपीने जे छोडावे तेने बुद्धिमान् लोक, 'देशिक' नाम गुरु कहे छे. कर्यो छे गेरूथी भगवां लूगडांनो वेश जेणे तेने गुरु नथी कहेता.)

९६. दुहो.

देशिकना लक्षण कह्यां, श्रुति मुनिवच अनुसार;
ते लक्षण छे शिष्यनां, थाय जेथी अधिकार. ६.

टीकाः—शास्त्रने अनुसार, देशिक नाम गुरु तेनां लक्षण (पूर्वे) कह्यां. अने जे साधनोए ग्रंथमां अधिकार थाय ते साधन शिष्यनां लक्षण छे. एनो आ अभिप्राय छेः—अधिकारीनां लक्षण पूर्वे (प्रथम तरंगविषे विवेकादि साधनचतुष्टय) कह्यां, ते ज लक्षण शिष्यनां जाणी लेवां. ६.

टीकाः-'अज्ञ' नाम अज्ञानी जे जन छे ते 'दतिपुट' नाम मशक आदि चर्मपात्र अथवा घट (समान छे), ते द्वारा ग्रहण कर्युं जे समुद्रनुं जल ते (जेम) विलक्षण स्वादनो हेतु नथी, तेम अज्ञानी पुरुषद्वारा ग्रहण करेलुं जे वेदरूप समुद्रनुं अर्थरूप जल, ते विलक्षण आनंदनो हेतु नथी; यथी अज्ञानी पाठक चर्मपात्र अने घट समान छे. अने 'सुज्ञ' नाम सारा ज्ञानी मेघना समान छे, ए वार्त्ता पूर्वे प्रतिपादन करी छे; यथी चर्मपात्र अने घटना समान जे अज्ञानी पाठक छे, तेने त्यागीने, मेघसमान जे ज्ञानी, तेनाथी ज वेदनो अर्थ भणे अथवा सांभले. ९

९९. 'ज्ञानवान्‌नी पासे वेद पढे' ए कहेवाथी आ शंका थाय छे जे; वेदनी श्रुति छे, तेद्वारा ज जीवब्रह्मनुं स्वरूप विचारवाथी ज्ञान थाय छे, अन्य संस्कृत ग्रंथोए अने भाषाग्रंथोए ज्ञान थाय नहि; यथी भाषाग्रंथनो आरंभ निष्फल थशे.

ते ना स मा धा न नो

दुहो.

ब्रह्मरूप छे ब्रह्मवित्, तेनी वाणी वेद;
भाषा अथवा संस्कृत, करे वेद-भ्रम छेद. १०.

टीकाः-'ब्र ह्म वे त्ता जे पु रु ष छे ते ब्र ह्म रू प छे,' ए वार्त्ता श्रुतिविषे प्रसिद्ध छे; यथी तेनी वाणी वेदरूप छे. ते भाषारूप होय, अथवा संस्कृतरूप होय (पण ते वाणी) सर्वथा भेदभ्रमनो छेद करे छे. अने कहे छे 'वेदनां वचन विना ज्ञान थाय नहि,' ते नियम नथी. जेम आयुर्वेदमां कह्या जे रोग अने तेओनां निदान, अने औषध, ते संपूर्णनुं अन्य संस्कृत ग्रंथोपकरी, अने भाषा, फारसी ग्रंथोपकरी ज्ञान थई जाय छे, तेम सर्वनो आत्मा जे ब्रह्म, तेनुं ज्ञान पण भाषादिक ग्रंथोपकरी थाय छे. एनला

'ते गुरु होय छे' ए गुरुलक्षणना प्रसंगमां कही आव्या अने तेओ(रामानुजादि)ना जे पाठक थया छे, ते जीव ब्रह्मनो भेद उपदेश देवावाळा थया छे, एथी तेमनाविषे जे गुरु-शब्दनो प्रयोग करे छे ते अर्हत्‌ना समान करे छे. जेम अर्हत्‌ना शिष्य अर्हत्‌ने गुरु कहे छे, परंतु अर्हत् गुरुपदनो विषय (अर्थ) नथी, तेम भेदवादी पुरुषोना जे शिष्य छे, ते पोताना पाठकोने गुरु कहे छे, परंतु ते गुरु छे नहि. एथी रामानुजथी आदिलईने जे भेदवादी थया छे, तेओए गुरुद्वारा विचार नथी कर्यो, ए कारणथी भेदमां अभिनिवेश करीने जन्म मरणरूपी क्लेशने ज प्राप्त थया. तेम अन्य पण जे कोई, पूर्वक्षलणयुक्त गुरु विना, पोते ज वेदना अर्थनो विचार करे, अथवा भेदवादी पुरुषोथी भणीने विचारे, तेओ पण भेदरूपी क्षारनो अनुभव करीने जन्म मरणरूप क्लेशने ज अनुभव करे छे. ए दुहाना पूर्वार्धनो अर्थ छे. अने वादलरूप ब्रह्मविद्‌गुरुना मुखद्वारा जे (पुरुष) सांभळीने विचारे, तेने वेद अमृतथी पण अधिक आनंदनो हेतु थाय छे. जेम समुद्रनु जल स्वरूपथी खारु छे, अने वादलद्वारा मधुर थाय छे, तेम वेदनो अर्थ ब्रह्मज्ञानी गुरुद्वारा आनदनो हेतु छे. ८

९८. पूर्व दुहामा ए वार्त्ता कही जे.-'गुरुथी भण्यो जे 'वेदनो अर्थ छे, तेना विचारेकरी मुक्तिरूप फल प्राप्त थाय छे.' तेथी गुरु ज्ञानी होय अथवा अज्ञानी होय एवु विशेष नथी कह्यु ते हवे कहे छे. यद्यपि 'ज्ञानहीन गुरु नहि' ए पूर्वे कही आव्या, तथापि पूर्वे कहेली वार्त्ताने दृष्टान्तवते प्रतिपादन करे छे.

दुहो

इतिपुरुघटसम अज्ञजन, मेघसमान ज सुज्ञ;
पढे पद ए हेतुथी, ज्ञानीथी, तजि अज्ञ. ९.

टीकाः-'अज्ञ' नाम अज्ञानी जे जन छे ते 'दतिपुट' नाम मशक आदि चर्मपात्र अथवा घट (समान छे), ते द्वारा ग्रहण कर्युं जे समुद्रनुं जल ते (जेम) विलक्षण स्वादनो हेतु नथी, तेम अज्ञानी पुरुषद्वारा ग्रहण करेलुं जे वेदरूप समुद्रनुं अर्थरूप जल, ते विलक्षण आनंदनो हेतु नथी; एथी अज्ञानी पाठक चर्मपात्र अने घट समान छे. अने 'सुध' नाम सारा ज्ञानी मेघना समान छे, ए वार्त्ता पूर्वे प्रतिपादन करी छे; एथी चर्मपात्र अने घटना समान जे अज्ञानी पाठक छे, तेने त्यागीने, मेघसमान जे ज्ञानी, तेनाथी ज वेदनो अर्थ भणे अथवा सांभळे. ९

९९. 'ज्ञानवान्नी पासे वेद पठे' ए कहेवाथी आ शंका थाय छे जे; वेदनी श्रुति छे, तेद्वारा ज जीवब्रह्मनुं स्वरूप विचारवाथी ज्ञान थाय छे, अन्य संस्कृत ग्रंथोए अने भाषाग्रंथोए ज्ञान थाय नहि; एथी भाषाग्रंथनो आरंभ निष्फळ थशे.

ते ना स मा धा न नो

दुहो.

ब्रह्मरूप छे ब्रह्मवित्, तेनी वाणी वेद;
भाषा अथवा संस्कृत, करे वेद-भ्रम छेद. १०.

टीकाः-'ब्र ह्म वे त्ता जे पु रु ष छे ते ब्र ह्म रू प छे,' ए वार्त्ता श्रुतिविषे प्रसिद्ध छे; एथी तेनी वाणी वेदरूप छे. ते भाषारूप होय, अथवा संस्कृतरूप होय (पण ते वाणी) सर्वथा भेदभ्रमनो छेद करे छे. अने कह्युं छे 'वेदनां वचन विना ज्ञान थाय नहि,' ते नियम नथी. जेम आयुर्वेदमां कह्या जे रोग अने तेओनां निदान, अने औषध, ते संपूर्णनुं अन्य संस्कृत ग्रंथोएकरी, अने भाषा, फारसी ग्रंथोएकरी ज्ञान थई जाय छे, तेम सर्वनो आत्मा जे ब्रह्म, तेनुं ज्ञान पण भाषादिक ग्रंथोएकरी थाय छे. एटला

सारु सर्वज्ञ जे ऋषि अने मुनि थया छे, तेओए स्मृति अने पुराण अने इतिहासग्रंथोमां ब्रह्मविद्यानां प्रकरण कह्यां छे. जो वेद विना ज्ञान न थाय तो, ते संपूर्ण प्रकरण निष्फल थई जशे. एथी आत्माना स्वरूपनुं प्रतिपादक जे वाक्य छे, तेवडे ज्ञान थाय छे; ते (वाक्य) वेदनुं होय अथवा अन्य होय. एथी भाषाग्रंथेकरी पण ज्ञान थाय छे, ए वार्ता सिद्ध थई. १०.

१००. दुहो.

वाणी जेनी वेद सम, करिये तेनी सेव;
सेवाथी थाय प्रसंन्न, जणवी दे निजभेव. ११.

टीकाः—जे ब्रह्मवेत्तानी 'वाणी' नाम वचन वेदना समान छे, ते ब्रह्मवेत्ता आचार्यनी सेवा जिज्ञासु करे. केमके सेवाथी ज्यारे आचार्य प्रसन्न थाय, त्यारे 'निजभेव' नाम पोतानुं स्वरूप जाणे. ए कहेवाथी आ वार्त्ता जणावीः-आचार्यनी जे सेवा छे, ते ईश्वरनी सेवाथी पण अधिक छे, केमके, ईश्वरनी जे सेवा छे, ते तो अदृष्टफलनो हेतु छे, अने आचार्यनी सेवा छे ते अदृष्टफल अने दृष्टफल बंनेनो हेतु छे. [जे वस्तु धर्मअधर्मनी उत्पत्तिद्वारा फलनो हेतु होय ते **अदृष्टफलनो हेतु** कहेवाय छे; अने जे वस्तु धर्मअधर्मनी उत्पत्ति विना साक्षात् फलनो हेतु होय ते **दृष्टफलनो हेतु** कहेवाय छे.] ईश्वरनी जे सेवा छे ते धर्मनी उत्पत्तिद्वारा अंतःकरणनी शुद्धिरूप फलनो हेतु छे, एथी ईश्वरनी सेवा अदृष्टफलनो हेतु छे. अने आचार्यनी सेवा धर्मनी अपेक्षा विना आचार्यनी प्रसन्नताए करीने उपदेशरूप फलनो हेतु छे, एथी दृष्ट(प्रत्यक्ष,फलनो हेतु छे; अने धर्मनी उत्पत्तिद्वारा अंतःकरणनी शुद्धिरूप फलनो हेतु छे, एथी अदृष्टफलनो पण हेतु छे. ए रीतिए आचार्यनी सेवा ईश्वरनी सेवाथी पण उत्तम छे. एथी जिज्ञासु सर्व प्रकारे ब्रह्मवेत्ता आचार्यनी सेवा करे. ११.

१०१. अथ आचार्यसेवाप्रकार.

सोरठो.

थाय जिहां गुरुसंग, करे प्रणाम ज दंडवत;
धारे उत्तम अंग, पावन पादसरोजरज. १२.

टीकाः—ज्यारे गुरु प्राप्त थाय त्यारे दंडनी पेठे साष्टांग प्रणाम करे; अने 'पावन' नाम पवित्र जे छे पादरूप 'सरोज' नाम कमल तेनी 'रज' नाम धूलि तेने 'उत्तम अंग' नाम मस्तक (ते उपर) धारे. १२.

चोपाई.

गुरु समीप वळी कराय वास, जो छे अति उत्कट जिज्ञासा,
तन मन धन वच अर्पि दे ए, हृदयबंधछेदन चाहि जे. १३.
अर्थ स्पष्ट. १३.

१०२. अथ तनअर्पणप्रकार.

(अर्ध चोपाई) तनुएकरी सेवा विस्तारे,
गुरुनी आज्ञा कदा न वारे.

१०३. अथ मनअर्पणप्रकार.

मनमां प्रेम रामसम राखे, थाय प्रसन्न एम अभिलाखे. १४
दोपदृष्टि स्वप्ने नहि आणे, हरि, हर, अज, गंगा, रवि, जाणे,
गुरुमूर्तिनुं हृदये ध्यान ज धारे जो इच्छे कल्याण ज. १५.

---

६६. बे पग, बे ढींचण, बे हाथ, छाती, अने शिर, दृष्टि, वाणी, अने मन, ए रीते आठ अंगसहित गुरुना आगळ नमवुं.

जानुभ्यां च तथा पद्भ्यां पाणिभ्यामुरसा धिया ।
शिरसा वचसा दृष्ट्या प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः ॥

६७. ए नामकथनमां आ रहस्य छेः—गुरु शिष्यउपर ज्यारे वत्सलता करे त्यारे तेने हरि (विष्णु) रूप जाणे, ज्यारे क्रोध करे त्यारे तेने हर (शिव) रूप जाणे; ज्यारे राजसी व्यवहारविषे होय त्यारे तेने अज (ब्रह्मा) रूप जाणेः ज्यारे शान्तिविषे होय त्यारे गंगादेवीरूप जाणे; अने गुरु ज्यारे वचनरूप किरणोए शिष्यना भ्रम-संदेहसहित अज्ञानने दूर करे त्यारे तेने रवि (सूर्य) रूप जाणे; एम ब्रह्मवेत्ता गुरु विषे सर्वदा ईश्वरभाव शिष्य राखे, स्वप्नमां पण दोषदृष्टि लावे नहि. पं. पी. पु.

१०४. अथ धनअर्पणप्रकार

चोपाई.

पत्नी, पुत्र, भूमि, पशु, दासी, दास, द्रव्य, ग्रह, व्रीहि विनाशी;
'धन'पद ए सर्वने ज भाखे, गुरु शरणे थई ते दूर नाखे. १६.

सोरठो

धनअर्पणनो भेद, एक कह्यो, बीजो सुणो,
होय गृही गुरुदेव याज्ञवल्क्य सम त्याहि दे. १७

टीका—पत्नीथी आदिलईने ते 'व्रीहि' नाम धान्यपर्यंत सर्व 'धन' कहेवाय छे, (जे नाशवान छे) ते सर्वने त्यजीने, त्यागी जे गुरु होय तेने शरणे थाय. ए धनअर्पण कहेवाय छे. केमके, गुरु त्यागी छे, ते पोते अंगीकार करे नहि. परंतु ते गुरुनी माफसार धननो त्याग कर्यो छे एथी एवा जे त्याग छे ते पण, गुरुने ज अर्पण कहेवाय छे.

अने जो गुरु गृहस्थ होय तो तेमने समग्र चढावी दे ए बीजा प्रकारनु धनअर्पण कहेवाय छे

एमा कोई शंका करे छे जे, ब्रह्मविद्याना आचार्य, गृहस्थ नथी हता; ते शंका बने नहि. केमके, याज्ञवल्क्य अने उद्दालकथी आदि लईने ब्रह्मविद्याना आचार्य गृहस्थ ज वेदविषे बहु सांभळवामां आवे छे, एथी गृहस्थ पण आचार्य संभवे छे

१०५. अथ वाणीअर्पणविषे.

छंद

भाखे गुणगण गुरुना, वाणी शुद्ध,
दोष न कदा अर्पण करे प्रबुद्ध १८

१०६. शिष्यनो गुरुना संबंधमां व्यवहार.

सोरठो

जो इच्छे कल्याण, तन मन धन वच एम दे,
वसे बहु गुरुस्थान, भिक्षाथी जीवन करे. १९.

टीकाः—जे पुरुष पोतानुं कल्याण इच्छे ते पूर्व रीतिए तनु (शरीर) आदि अर्पण करीने, गुरु ज्यां होय ते स्थानविषे वा (गुरुना) समीपमां बहु काळ पोते वास करे. अने पोते भिक्षाथी 'जीवन' नाम प्राण धारण करे. १९.

१०७. चोपाई.

ते भिक्षा धरी देशिक आगे. वळी निज भोजनने नहि मागे,
जो गुरु दे तो जाठर धरे, नहि, बीजे दिन वृत्ति स्मरे. २०.

टीकाः—जे भिक्षानुं अन्न शिष्य लावे ते पोते ज भोजन न करी ले, किन्तु देशिक जे गुरु छे तेना आगळ धरी दे. अने गुरुना आगळ भिक्षा धरीने पोताना भोजनने गुरुथी मागे नहि. अने एक दिनमां बीजी वार ग्राममां पण भिक्षा मागे नहि. किन्तु गुरु जो कृपा करी दे तो भोजन करे अने गुरु जो शिष्यनी श्रद्धानी परीक्षाना निमित्त न दे तो बीजे दिने 'वृत्ति' जे भिक्षा तेने संभारे. २०.

दुहो.

वळी गुरुना आगळ धरे, भिक्षा शिष्य सुजाण;
न निर्वेद जीवमां करे, जो इच्छे कल्याण. २१.

टीकाः—'निर्वेद' नाम ग्लानि(खेद)नुं छे. अन्य अर्थ स्पष्ट छे.

१०८. चोपाई.

इम करतां ज्यां अवसर पेखे, मुखप्रसन्न गुरु सन्मुख लेखे.
बे कर जोडी विनति करे, गुरु आज्ञाथी प्रश्न उच्चरे. २२.

टीका—ए रीतिनो व्यवहार करतां ज्यारे गुरुनो अवकाश देखे, अने प्रसन्नमुखथी गुरु ज्यारे पोताना सन्मुख जुवे, त्यारे हस्त जोडीने गुरुनी स्तुति करे. अने विनति करे,–

१ ए रीति ब्रह्मचारी वा त्यागी शिष्यनी छे, गृहस्थनी नथी.

'हे भगवन् ! हुं पूछवा इच्छु छुं.' त्यारे गुरु आज्ञा करे तो प्रश्न करे.

अने कदाचित् जन्मान्तरनां उत्तम कर्मथी गुरु कृपा करीने, तनुअर्पण आदि सेवा विना ज शिष्यने उपदेश करी दे, तो विशुद्ध अधिकारीनुं कल्याण थई जाय छे. केमके, गुरु-सेवानां बे फल छे.—एक तो गुरुनी प्रसन्नता अने बीजुं अंतःकरणनी शुद्धि, ते बेए तेने सिद्ध होय छे. २२.

दुहो.

तनु मन धन वच अर्पिने, चित दई जे सेवाय,
सकलरूप ते आप छे, दादु सदा सहाय. २३.

॥ इति श्रीविचारसागरे गुरुशिष्यलक्षण-गुरुभक्तिफलप्रकार-निरूपणं नाम तृतीयस्तरंगः समाप्तः ३.



अथ श्रीविचारसागरस्य
चतुर्थतरंगप्रारंभः.

अथ उत्तमाधिकारी–उपदेशनिरूपणम्
(शुभसंतति नामे राजा तथा तेना त्रिपुत्रनी गाथा.)

१०९. दुहा.

गुरु-शिष्य-संवादनी, गाथी कहुं नवीन,
जे पेखी जिज्ञासु जन, थाय विचारप्रवीण. १.

---

६८. वेदान्तज्ञानना अधिकारीनुं लक्षण आ छेः–जेणे आ जन्ममां वा जन्मान्तरमां विधिवत् अधीत वेद-वेदाङ्गत्वेकरी आपाततः (यथार्थरहस्य जाण्या विना) अखिल वेदना अर्थने जाण्या छे, काम्य–निषिद्ध(कर्म) वर्जनपुर सर (बुद्धिनी शुद्धि छे परम प्रयोजन जेनुं एवां) नित्य नैमित्तिक प्रायश्चित्त (कर्म) अने (चित्तैकाग्र्य छे प्रयोजन जेनुं एवी) उपासना एओना अनुष्ठानेकरी निखिल कल्मषता (मलिनता-पाप) गयेली तेणेकरी नितान्त (अत्यंत) निर्मल स्वान्त (अन्तःकरण) छे जेनुं एवो साधनचतुष्टयसम्पन्न प्रमाता (अन्तःकरणप्रतिबिम्बित चैतन्य) ते ' अधिकारी.'

उत्तम-मध्यम-अधम भेदेकरी अधिकारी त्रिविध होय छेः–

'उत्तम अधिकारी' विशुद्धसत्वसमाहितचेता होय छे. तेने वेदान्तश्रवणमात्र ए ज ज्ञाननो उपाय (साधन) छे. अने विधानेकरी विहितसर्वकर्मत्यागपूर्वक निराकारब्रह्मज्ञानमां तेनो अधिकार छे.

'मध्यम अधिकारी' विवेकवैराग्यसंपन्न पण रजोगुणना लेशनी अनुवृत्तिएकरी विक्षिप्तचेता होय छे. ते सहसा ज चित्तना एकाग्रत्वने पामे नहि. तेने अष्टांग योग ए ज्ञाननुं साधन छे. अने विहितवर्णाश्रमादिकर्मकरणपूर्वक सोपाधिक ब्रह्मोपासनमां तेनो अधिकार छे.

'अधम अधिकारी' प्रबलतर-दुरितप्रतिबद्ध–चित्तवान्, औत्सुक्यमात्रेकरी प्रवृत्त, पण जेनी जिज्ञासा अप्रतिष्ठिता होय छे, तेने जिज्ञासानी प्रतिष्ठाअर्थे वर्णाश्रमधर्म, अने तेणेकरी विशुद्ध थयेलाने दानधर्मादिक, ज्ञाननिमित्त उपाय छे. (तेणेकरी ज्ञानप्रतिबंधक मिथ्या तर्कोनुं शमन थई ज्ञानाधिकार प्राप्त थाय छे.) अने वर्णाश्रमविहितकर्मविधानपूर्वक साकारब्रह्मोपासनमां तेनो अधिकार छे. एप्रमाणे सूतसंहितानां ज्ञानयोगखण्डगत द्वितीय अध्यायनी टीकामां विद्यारण्य-मुनिए कह्युं छे त्यांथी अने अन्यस्थलथी अत्र संगृहीत छे.

आ विचारसागरमां तत्त्वदृष्टि उत्तमअधिकारी छे, अदृष्टि मध्यमअधिकारी छे, अने तर्कदृष्टि अधमअधिकारी छे.

६९. पुराणादि प्राचीन ग्रंथमां कथेली नहीं एवी, गुरुशिष्यना संवादनी, बोधनी सुगमतासारू, स्वबुद्धिकल्पित नवीन कथा.

त्रिसहोदर* संतान शुभ, चक्रवर्तिना बाल;
शुभसंतति पितुने नमे, स्वर्ग-पृथ्वि-पाताल. २.

त्रणे बालकनां नाम.

एक तत्त्वदृष्टि, बीजो तेनुं नाम अदृष्टि,
तर्कदृष्टि पलों ते त्रीजो, उत्तम मध्य कनिष्ठ. ३.

चोपाई.

बालकाल सहु खेले खोयो, †तरुण पामी पछी मदन वगोव्यो।
धारि नारी गृह मार‡प्रकाशी, भोग लीधा त्रिणे सुखराशी. ४.

११०. दुहा.

स्वर्ग भूमि पातालना, भोगवी सर्व §समाज,
शुभसंतति निज तेजबल, करे राजनां काज. ५.
एक समय ते तातने, उपज्यो हृदे विचार;
आत्मा सुखरूप ¶अज, तेथी भिन्न असार. ६.
ए कारण तजों राज आ, जाणुं आत्मसुरूप;
स्वर्ग-भूमि-पातालना, त्रिपुत्रने करी भूप. ७.

शुभसंतति(राजा)ए एवो विचार कर्यो. पछी मंत्रीने संज्ञा करीने पोताना त्रणे प्रवीण पुत्रोने एकान्त देशमां (पोतानी) समीप बोलाव्या; अने पोताना विरागनां वचन संभळाव्यां. (८). पछी कह्युं केः-आ राज्यने तमे संभाळो. एक पाताल प्रति अने एक स्वर्ग प्रति सिधावो; अने भूमि(पृथिवी)नो स्वामी थई एक काशीमां वसो-ज्यां अंतर्यामी शिव रहे छे, (९.) अने ज्यां मरती वेला शिवनो उपदेश सांभ-

* एक उदरना-एक माताना. † युवानीने.
‡ काम. § भोगनी सामग्री. ¶ जेने जन्म नथी एवो

ळीने अनायासे ते शिवना लोकमां प्रवेशे छे, अने त्यां उत्तरवाहिनी गंगानुं अंग जाणे कीर्ति प्रकाशती होय तेम, अधिक प्रकाशे छे. (१०). तमे प्रणे ए रीतिए भिन्न राज करो अने पोतपोताना देशने पाळो. विभाग विना भूमिसार भ्राताओनो क्लेश थाय छे, (माटे हुं तमने वहेंची आपुं छुं.) (११). अवे हुं ते सर्व राजसमाजने असार अने दुःखरूप हृदयमां जाणीने त्यजुं छुं. बीजा लोको तो पोताना दुःखथी दुःखी छे, पण में (राजाए) तो सर्व जगत्नो अपार क्लेश भोगव्यो छे. जे भगवान्-(ऐश्वर्यवान्)मां प्रधान सते अज्ञानी छे ते सर्वजन दरिद्रीओना समान छे. (अर्थात् अन्तरमां दुःखी छे). एवां कारणोने हृदयमां विचारीने जगत्ना भगने (ऐश्वर्यने) त्यागीने सुखाळा निजरूपने जाणुं. (१२).

१११. एम अनेक वाक्यो (शुभसंतति) पिताए कह्यां. तेओने सुबुद्धिना निधान त्रणे भ्राताए सांभळ्यां अने एकान्त वेशी अपार विचारीने पछी ते सुजाण (भ्राता) पोतपोतामां कहे छे के,-'आ दुःखनुं मूल (राज) समाज आपणने दईने (राजा) 'पोते ब्रह्मसमान थया इच्छे छे. (७०) चतुर अने बुद्धिना 'सागर ते जन छे, जे दुःखनो आकर जे जगत् तेने त्यजे.' (१३).

१२ 'एथी दुःखनुं मूल आ राज्य त्यजीने पोतानुं 'कार्य करो.' एम विचार करीने भ्राताओनो समाज गृहथी नीकळ्यो. (१४). हृदयमां मोक्षनी कामना धारीने त्रणे जण सद्गुरुने खोळता चाल्या; अने ताततुं (पितानुं) 'शुभसंतति' ए नाम अर्थसहित कर्युं. (अर्थात् पोते सारा थया तेथी शुभ (सारी) छे संतति (प्रजा) जेनी एवा अर्थवाळुं पितानुं नाम ज 'शुभसंतति' हतुं ते खरेखरा अर्थसहित कर्युं.) (१५).

बहु देशमां खोळतां खोळतां गंगातीरे (तेओ आव्या त्यां)

एकान्तमां, पल्लवशाखाएकरी सघन तरुनुं वॅन हतुं, तेमां (१६) वटवृक्षनी शाखा तळे भद्रामुद्रा धारीने त्रिगुणने त्यागीने

७०. नवां पत्रयुक्त शाखाओएकरी विस्तारवाळां वृक्षोनुं 'वन' नाम वृक्ष-समुदायवाळुं अरण्य.

७१. ए विचार दक्षिणामूर्तिनो प्रसंग मनमां धारीने ग्रंथकारे लखेलो छे. एनी आख्यायिका आवी छेः—

सनकादिक मुनिओ ज्ञानार्थे, अनुक्रमे, ब्रह्मा, विष्णु, शिवना समीप गया, परंतु तेमने प्रवृत्तिमान् जोई यथेच्छ श्रद्धानो अभाव रह्यो. सनकादिक योग्य अधिकारी हता तेथी तेमना कल्याणार्थे दक्षिणामूर्तिरूप दर्शन तेमने थयुं.

'दक्षिणा' नाम दक्षिणदिशाभिमुखा छे, वा अनुकूला छे, 'मूर्ति' नाम प्रतिमा जेनी, पद्मासने बेठेला; (द्विभुजनी भावना होय तो) वामहस्तमां पुस्तक; अने दक्षिण हस्तनो अंगुष्ठ अने तर्जनीनो संयोग करी, मध्यमादि त्रिअंगुलिका भिन्न राखतां थतो भद्रामुद्रा, तेने धारण करी स्वरूपावस्थानमां स्थित; (अने चतुर्भुजनी भावना होय तो) तृतीय हस्तमां जपमाला; अने चतुर्थ हस्तमां अमृतकलश, वा अभयदान छे जेना एवा शान्त सदाशिव महादेव. ए संज्ञानो भावार्थ आ छेः—पुस्तक एम सूचवे छे के,—अधिकारीए अध्ययन, श्रवण, मनन, निदिध्यासन करवुं. भद्रामुद्रा—जे पूर्णमुद्रा, ज्ञानमुद्रा, तर्कमुद्रा, लोपामुद्रा, वा मौनव्याख्यान पण कहेवाय छे,—ते एम सूचवे छे के,—परमात्मा अने जीवात्मा एक छे अने त्रिगुणात्म-माया अव्यक्त अने भिन्न छे. जपमाला एम सूचवे छे के,—आत्मचिन्तन वारंवार करवुं. अमृतकलश वा अभयदान एम सूचवे छे के,— सच्चिदानन्दसाक्षात्कारे करी अमृतरूप अभयनी प्राप्ति.

एवा दक्षिणामूर्ति युवा गुरुना सनकादिक वृद्ध शिष्योने दर्शन थतां ज योग्य अधिकारी होवाथी मात्र मौन व्याख्यानथी ज संशय छिन्न थई जई सर्वोपद्रव-सिद्ध—निष्प्रतियोगिक—नित्यप्राप्त—ब्रह्मनी प्राप्ति थई ते शिष्यो कृतकृत्य थया

चित्रं वटतरोर्मूले वृद्धाः शिष्या गुरुर्युवा ।
गुरोस्तु मौनव्याख्यानं शिष्यास्तु छिन्नसंशयाः ॥

भगवान् शंकराचार्यप्रणीत 'दक्षिणामूर्ति' स्तोत्र छे, ते उपर वार्तिककार सुरेश्वराचार्यनो 'मानसोल्लास' नामे वार्तिकप्रबंध छे. ते उपर रामतीर्थनी 'मानसोल्लासवृत्तान्तविलास' नामे व्याख्या छे. तेना आरंभमां दक्षिणामूर्तिध्याननो आ श्लोक छेः—

मौनच्छायमहावटद्रुमतले योगासनस्थं प्रभुं
प्रत्यक्तत्त्वबुभुत्सुभिः प्रतिदिशं प्रांजलीक्ष्यमाणाननं ।

जीव ब्रह्मनी एकताने उपदेशता एक संत बेठा हता. (१७). त्यां दोषरहित एकाग्रचित्तवाळो परिवाररूप शिष्यसंघ देशिकना उपदेशने जाणीने हृदयमां चारे पास विचार करे छे. (१८). जाणे कैलासमां सनकादिकने शंभु (महादेव) उपदेश करे छे ते(संत)ने देखी तेने शरण (रक्षक) जाणी प्रथम दंडवत् प्रणाम करी (१९), पछी शिष्यरीतिने अनुसार छ मास सुधी त्यां वास कर्यो, अने हृदयमां मोक्षनी कामना धरीने तेमणे त्रणे गुरुनी अधिक सेवा करी. (२०). त्यारे श्रीगुरुए प्रसन्न थईने मृदुवाणीवडे तेओ पूछाया केः-हे तात! तमे त्रणे शा कारणथी अहियां वसो छो अने (परस्पर) कोण छो, अने कोना (पुत्र) छो (२१). त्यारे पोताना अनुजनी संज्ञाने हृदयमां समजी तत्त्वदृष्टि, उभय कर जोडीने, पोताना अभिप्रायनां वचन कहे छे. (२२).

मुद्रां तर्कमयीं दधानममलं कर्पूरगौरं शिवं
हृद्यन्तः कलये स्फुरन्तमनिशं श्रीदक्षिणामूर्तिकं ॥

अर्थः-विस्तृतशाखावाला महान्वट(वड)ना वृक्षतले योगासने विराजेला, जेओनुं मुख, प्रत्यक्तत्व(अन्तरआत्मा)ने जाणवा इच्छता(मुमुक्षुओ)एकरी सर्व दिशामां उच्च दृष्टिए जोवाय छे, जेओए तर्कमयी मुद्राने धारण करी छे, अने जेओ सर्वदा स्फुरी (प्रकाशी) रह्या छे, एवा कर्पूरगौर, अमल, शोभायमान प्रभु दक्षिणामूर्ति शिवने हुं हृदयमध्ये धारण करुं छुं जाणुं छु.

वटविटपसमीपे भूमिभागे निषण्णं
सकलमुनिजनानां ज्ञानदातारमारात् ।
त्रिभुवनगुरुरूपं दक्षिणामूर्तिदेवं
जननमरणदुःखच्छेददक्षं नमामि ॥

एवा अनेक श्लोको दक्षिणामूर्तिमहादेवना ध्यानार्थे प्रचलित छे.

७२. विषयभोगोनी अधिकतायी दश दोष कह्या छे. चोरी, व्यभिचार, हिंसा ए त्रण शरीरना दोष छे, निंदा, असत्य, कठोरता अने वाचालता ए चार वाणीना दोष छे, तृष्णा, चिन्ता, बुद्धिमंदता, ए त्रण मनना दोष छे. ए दश दोषोथी रहित.

पं. पी. पु.

तत्त्वदृष्टिरुवाच.

दुहो.

भगवन् ! त्रण भ्राता अमे, शुभसंततिसंतान;
मर्म जाणवा इच्छिये, दीन, नवीन, अजाण. २३.
जो आज्ञा महाराजनी, थइये पूंछी प्रवीण;
आप दयानिधि कल्पतरु, अम अति दुःखित अधीन. २४.

श्रीगुरुरुवाच.

सोरठो.

जे पूछो तम ते ज, शिष्य शुणो मम वात कहुं;
पामो कुशल मने ज, संशय कोई नहि रहे. २५.

दुहो.

गुरुनी देखी दयालुता, थयुं शिष्यचित्ते चेन,
कार्य सिद्ध निज मानी मन, भाखे सविनय वेण. २६.

११४. तत्त्वदृष्टिरुवाच.

चोपाई.

भो भगवन् ! तम कृपानिधान, छो सर्वज्ञ महेश समान,
कंई न जाणिये, अम अजाणमति, मानिये भय जन्मादि संसृति.२७.
कर्म-उपासन भारे कीधां अन्य अधिक जगपाशो लीधा;
आप उपाय कहो गुरु देव ज, जेथी थाय भवदुःखनो छेद ज. २८.
पुनः इच्छिये परमानंद, तेनो उपाय कहो स्वछंद.
तात ! कृपा करी कहेशो ज्यारे, थशे कुशलता अमने त्यारे. २९.

टीकाः—हे भगवन् ! आप कृपानिधान छो, अने सदाशिवना समान आप सर्वज्ञ छो. अने हे भगवन् ! जन्ममरणथी आदि लईने जे दुःखरूप संसार छे, तेथी अमे डर्या छिये; तेनी निवृत्तिनो उपाय आप कहो: अने परमानंदनी प्राप्तिनो उपाय कहो. अने हे गुरो ! (पूर्वे सकाम) उपासना

अने कर्मनां अनन्त अनुष्ठान पण कर्यां, परंतु तेमनाथी अमने वाञ्छित (मोक्षरूप) फल प्राप्त थयुं नहि; अने तेमनाथी उलटो संसार वधतो गयो. पछी अन्य उपाय आप बतावो; जे करीने अमे कृतार्थ थइये. २९.

ग्रंथकारवचन.

११५ दुहो.

शिष्य मोक्षकामी लखी, तेनुं साधन ज्ञान;
वेदउक्त सद्गुरु कहे, जीव ब्रह्मभिद भान. ३०

टीका:-दुःखनी निवृत्ति अने परमानंदनी प्राप्तिने 'मोक्ष' कहे छे; तेनी कामना शिष्यना हृदयमां देखीने, तेनुं साधन जे वेदोक्त ज्ञान छे, ते (गुरु) कहेता हवा. यद्यपि ज्ञाननुं स्वरूप अनेक शास्त्रविषे भिन्न भिन्न वर्णन कर्युं छे, तथापि जीवब्रह्मनो 'भिद' नाम भेद, तेने दूर करवावाळुं जे ज्ञान छे, ते ज वेदमां मोक्षनुं साधन कह्युं छे, पछी ते (ज्ञानने) ज कहे छे.-

श्रीगुरुरुवाच.

दुहो.

परमानंद मिलाप तुं, जे शिष्य चहे सुजान;
जन्मादिक दुःखनाश वळी, भ्रान्तिजन्य ते मान. ३१.
परमानंद स्वरूप तुं, नहि तुंमां दुःख लेश,
अज अविनाशी ब्रह्म चित्, रखे आण मन क्लेश. ३२.

टीका:—हे शिष्य ! परमानंदनी प्राप्तिविषे अने जन्ममरणथी आदि लईने जे दुःखरूप संसार छे, तेनी निवृत्तिविषे जे तने इच्छा थई छे, ते इच्छामां उत्पत्ति भ्रान्तिए करी थई छे, एम तुं जाण. केमके, तुं आप परम आनंद-

७३. करवानो जे अर्थ ते कर्यो छे जेणे एवा.

स्वरूप छे. पथी तेनी प्राप्तिनी इच्छा बने नहि. जे वस्तु अप्राप्त होय तेनी प्राप्तिनी इच्छा बने छे. अने पोतानुं जे स्वरूप छे, ते सदा प्राप्त छे, तेनी प्राप्तविषे जे इच्छा ते भ्रान्ति विना बने नहि. अने जन्मथी आदि लईने जे संसार छे, ते जो कदाचित् होय, तो तेनी निवृत्तिविषे इच्छा बने ते जन्मादिक संसारनो लेश पण ताराविषे छे नहि. पथी न थयेला दुःखनी निवृत्तिविषे पण इच्छा भ्रान्ति विना बने नहि. अने हे शिष्य! जन्म अने नाशथी रहित जे चेतनरूप ब्रह्म छे, ते तुं छे. पथी पोताना हृदयविषे जन्मादिक खेद न मान. ३२.

११६. तत्त्वदृष्टिरुवाच-

दुहो.

थाय विषयसंगभान कथम, जो हुं आनंदरूप ?
पनुं उत्तर थय कहो, श्रीगुरु मुनिवरभूप. ३३.

टीका.—हे भगवन्! जो मारो आत्मा आनंदरूप होय तो, विषयना संबंधथी आत्माविषे आनंदनुं भान न थवुं जोइये. पथी आत्मा आनंदरूप नथी, किन्तु विषयना संबंधथी आत्माविषे आनंद थाय छे. ३३.

११७ श्रीगुरुरुवाच.

(आत्मा ज आनंदरूप छे, विषयमां आनंद नथी, ते विषे)

चोपाई.

आत्मविमुखबुद्धि जन जे छे, विषयेच्छा तेने थायेछे,
तेथी बुद्धि चंचल थई जाय, सुखाभासहानि त्यां थाय. ३४
पामे इष्ट पदार्थ जिहारे, मतिविक्षेप नासे क्षण त्यारे,
(थाय) आनंद प्रतिबिंब मतिमां, पुनः विडंबन इच्छा क्षणमां.

७४. आनदना प्रतिबिंबने दाबी या अनुकरण करी तेने दूर करनारी.

तेथी स्थिरताहानि थाय ज, नाशक आनन्द प्रतिबिंब ज;
विषयसंग आनंद इम होय, ए गुरु विना न जाणे कोय. ३६.

टीकाः—हे शिष्य ! आत्माथी विमुख छे बुद्धि जेनी एवो जे पुरुष, तेने विषयनी इच्छा थाय छे. [आ स्थानमां जे भोगनुं साधन होय ते विषय कहेवाय छे; ए(विषयशब्द)-थी धनपुत्रादिकनुं पण ग्रहण करी लेवुं.] ते विषयनी इच्छाथी बुद्धि चंचला रहे छे. ते चंचलबुद्धिमां आत्मस्वरूप आनंदनो 'आभास' नाम प्रतिबिंब थतुं नथी, अने जे विषयनी इच्छा थई होय, ते विषय एने प्राप्त थई जाय, त्यारे ए पुरुषनी बुद्धि क्षणमात्र स्थिता थईने बुद्धिनी वृत्ति अंतर्मुख थाय छे. ते अंतर्मुखवृत्तिविषे आत्मानुं स्वरूप जे आनंद तेनुं प्रतिबिंब थाय छे. ते आत्मस्वरूप आनंदना प्रतिबिंबने अनुभव करीने पुरुषने भ्रान्ति थाय छे जेः-मने विषयथी आनंदनो लाभ थयो छे, परंतु विषयमां आनंद छे नहि.

जो कदाचित् विषयमां आनंद होय, तो एक विषयथी तृप्त जे पुरुष, तेने ज्यारे बीजा विषयनी इच्छा थाय, त्यारे पण प्रथम विषयथी आनंद थवो जोइये; ते तो थतो नथी.

अने अमारी रीतिए स्वरूप-आनंदनुं तो (चंचलबुद्धिमां) भान बने नहि; केमके, जे बीजा विषयनी इच्छाए करीने बुद्धि चंचला छे, तेनाविषे प्रतिबिंब बने नहि.

किंवाः-जो विषयमां ज आनंद होय तो जे पुरुषनो प्रिय पुत्र अथवा अन्य कोई अत्यंत प्रिय, जो अकस्मात् बहुकाल

---

७५. जेमां प्रतिबिंब पडे छे एवु दर्पण, पाणी, आदि गमे ते तेमां प्रतिबिंब पाडवु होय तो बे स्थिति अवश्य जोइये. एक स्थिरता अने बीजी निर्मलता. जो दर्पण आदि बहु हालतुं होय अथवा ते उपर मेल पड्यो होय तो तेमां मुख, देखाय नहि. तेम चंचला अने मलिना, किंवा घोर अने मूढ, किंवा राजसी अने तामसी बुद्धिमां आत्माना आनंदनु प्रतिबिंब थाय नहि.

पछी मिली जाय, त्यारे तेने देखतां ज प्रथम जे आनंद थाय, ते आनंद फरी सदा थतो नथी; ते सदैव थवो जोइये. कारण के आनंदनो हेतु जे पुरुष छे, ते तेनी समीप छे.

अने अमारी रीतिए तो प्रथम ज आनंद बने छे, सदा बने नहि. केमके, एकवार प्रियने देखीने वृत्ति स्थिता थाय छे, पछी वृत्ति अन्य पदार्थमां लागी जाय छे, एथी चंचला छे. (अने चंचलवृत्तिमां आनंदनुं प्रतिबिंब पडे नहि.) एथी पदार्थमां आनंद नथी.

· किंवाः–जो विषयमां आनंद होय तो समाधिकालविषे जे योगानंदनुं भान थाय छे ते न थवुं जोइये, केमके समाधिमां कशा विषयनो संबंध छे नहि.

किंवाः–जो विषयमां ज आनंद होय तो सुषुप्तिमां आनंदनुं भान नहि थवुं जोइये; केमके सुषुप्तिविषे पण कोई विषयनो संबंध छे नहि. एथी विषयमां आनंद नथी, किन्तु आत्मस्वरूप आनंद सर्वत्र भान थाय छे; एटला ज माटे वेदमां लख्युं छे केः–"आत्मस्वरूप आनंदने लईने सर्व आनंदवाळा थाय छे."

दुहो.

थाय विषयसंगथी प्रकट, आत्मा आनंदरूप;
शिष्य सुणाव्यो में तने, ए सिद्धान्त अनूप. ३७.

सोरठो.

ते तुं मजने भाप, जे एमां शंका रही;
निज मतिमां मा राख, हुं तेनो उत्तर कहुं. ३८.

(उपर प्रमाणे आत्मविमुख अज्ञानीनी रीति कही. ज्ञानी जनने आनन्द केइ रीतिए थाय छे, ए शिष्य पूछे छे.)

११८. तत्त्वदृष्टिरुवाच.

चोपाई.

हे भगवन् ! तम दीनदयाल, टाळ्यो मम संशय तत्काल,
एमां कइंक रही आशंका, ते कहुं हवे थाय नर्वेका. ३९.
आत्मविमुख-बुद्धि अज्ञानी, तेनी सर्व ए रीति वखाणी,
ज्ञानीजननो कहो विचार, को न आपसम अन्य उदार. ४०.

टीकाः-हे भगवन् ! विषयना संबंधथी आत्मानंदना भाननी जे रीति आपे पूर्वे कही, ते अज्ञानी पुरुषनी कही; अने ज्ञानीनी कही नहि. केमके आत्माथी विमुख छे बुद्धि जेनी तेनुं नाम आपे लीधुं छे. ते आत्माथी विमुख बुद्धि अज्ञानीनी होय छे, ज्ञानीनी नहि. एथी आप हवे ज्ञानीनो विचार कहो जे, ज्ञानवान्ने विषयनी इच्छा अने तेना संबंधथी, पूर्व रीतिपकरी, सुखनुं भान थाय छे अथवा नहि. ए वार्त्ता आप कहो. ४०.

११९. श्रीगुरुरुवाच.

(द्विविध आत्मविमुख. ज्ञानीना आनंदनी रीति.)

दुहो.

शिष्य ! एक सुण वात मम, सावधान मन कान;
आत्मविमुख ते द्विविध छे, अज्ञानी ऽने सुजान. ४१.
थाय कदा व्यवहारमां, विस्मृत ज्ञानी संत;
अज्ञानी विमुख ज रहे, जाण तुं ए सिद्धान्त. ४२.

टीकाः-हे शिष्य ! तुं चित्तने अने श्रवणने सावधान करीने सांभळ. पूर्वे अमे जे आत्मविमुख कह्यो छे, ते आत्मविमुख अज्ञानी ज नथी हतो. किन्तु ज्ञानवाननी पण बुद्धि ज्यारे व्यवहारमां आवी जाय त्यारे ते स्वरूपने भूली जाय छे,

७६. ज्ञानीना विस्मरणविषे आवो प्रकार छे केः-जेम ज्यारे जाग्रदाकारवृत्ति होय त्यारे स्वप्नाकारवृत्ति होय नहि. अने ज्यारे स्वप्नाकारवृत्ति होय त्यारे जाग्रदा-

ते कालविषे ज्ञानवान् पण आत्मविमुख ज थाय छे. अने ज्ञानीनी बुद्धि जो सदा आत्माकार ज रहे, तो भोजनादिक व्यवहार न थाय, एथी आत्मविमुखबुद्धि (अज्ञानी अने ज्ञानी) बंनेनी बने छे. अज्ञानीनी तो बुद्धि सदा आत्मविमुख छे, अने ज्ञानीनी बुद्धि आत्मविमुख थाय ते कालमां ज्ञानीने पण इच्छा, अने विषयना संबंधथी आत्मस्वरूप-आनंदनुं भान, अज्ञानीना समान छे; परंतु आटलो भेद छेः- विषयना संबंधथी जे आनंदनुं भान थाय छे, तेने ज्ञानी तो जाणे छे के, जे ए आनंद छे ते मारा स्वरूपथी अन्य (भिन्न) नथी, किन्तु तेनो ज आभास छे. एथी ज्ञानीने विषयभोगमां पण समाँधि ज छे. अने अज्ञानी नथी जाणतो जे मारुं ज स्वरूप आनंद छे. परंतु (अज्ञानी अने ज्ञानी) बंनेनो स्वरूपानंद छे. विषयेकरी (आनन्द थाय छे एवी) केवल अज्ञानीने भ्रान्ति थाय छे.

१२०. शिष्य उवाच.

(तत्त्वदृष्टि गुरुने पूछे छे केः-जन्ममरणादिक दुःख माराविषे नथी तो कोनाविषे छे !)

चोपाई.

हे प्रभु ! परमानंद वखाण्यो, मम रूप में पीछाण्युं (जाण्यो);
तेमां नहि भवबंधन लेश, तमे कह्यो वळी ए उपदेश. ४३.

कार वृत्ति होय नहि, तेम ज्ञानवान्‌नी बुद्धि पण ज्यारे आत्माकार होय त्यारे अनात्माकार होय नहि, अने ज्यारे अनात्माकार होय त्यारे आत्माकार होय नहि. यद्यपि एक अन्तःकरणविषे एक कालमा भिन्नविषयाकार सामान्य-विशेषरूप बे वृत्तिओ होय छे, तथापि बने विशेषवृत्तिओ होय नहि. .. ज्ञानवान्‌नी बुद्धि ज्यारे प्रत्यक्षादि व्यवहारमां विशेष संलग्न होय त्यारे (अज्ञानीना समान देखाय छे,) अने तेने तत्त्वनु कंइक विस्मरण देखाय छे. परंतु ज्यारे व्यवहारथी उपराम थाय त्यारे तेने परिपूर्ण स्मरण होय छे. प. पी. पुं

७७. विषयना अनादरपूर्वक स्वरूपानुसन्धान रहेतुं होय तो विषयभोगमां पण गौण समाधि गणाय छे. ए अर्थमा अत्र 'समाधि' शब्द छे.

एमां आ शंका मज आवे, जेथी तव वचन मन न सुहावे;
जो मुजमां नहि बंध प्रसारो, कहो कोण तो आश्रय न्यारो. ४४.

टीकाः—हे भगवन्! आपे कह्युं केः-'तुं परमानंदस्वरूप छुं.' ते में सारा प्रकारे जाण्युं. अन्य आपे कह्युं के.—'जन्ममरणथी आदिलईने संसाररूप दुःख ताराविषे छे नहि, एथी तेनी निवृत्ति बने नहि.' एनाविषे मने शंका छे. जो जन्मादिक दुःख माराविषे नथी तो जेनामां आ संसार छे, एवो माराथी 'न्यारो' नाम (अन्य) जुदो आश्रय आप कृपा करीने बतावो; के जेनाविषे संसारदुःख जाणीने पोताविषे मानुं नहि. ४४.

१२१ श्रीगुरुरुवाच.

(गुरु उत्तर दे छे केः-जन्मादिक दुःख कोईनामां नथी)

सोरठो

शुण शिष्य मम वाणी, जेथी तव शंका मटे;
छे जगत्नी अतिहानि*, नहि तुज-मुजमां, अन्यमां. ४५.

अर्थ स्पष्ट.

१२२. तत्त्वदृष्टिरुवाच.

(प्रश्नः-दुःख कोईनामां नथी तो प्रतीत केम थाय छे ?)

दुहो.

जो भगवन् कहिं छे नहि, जन्म, मरण, जगखेद;
छे प्रत्यक्ष प्रतीत एयम, कहो आप ए भेद. ४६.

टीका—हे, भगवन्! जो जन्ममरणथी आदिलईने संसारदुःख मारेविषे तथा अन्यविषे कहिं पण छे नहि, तो प्रत्यक्ष प्रतीत केम थाय छे? जे वस्तु होय नहि ते प्रतीत थाय नहि. जेम वंध्यानो पुत्र अने आकाशविषे पुष्प छे नहि, ते

* नित्य निवृत्ति.

प्रतीत थाय नहि; तेम संसार पण न होय तो प्रतीत न थवो जोइये. अने जन्मथी आदिलइने संसार प्रतीत थाय छे, एथी 'जन्मादिक संसाररूपी दुःख छे नहि,'ए कहेवुं बने नहि. ४६.

१२३. श्रीगुरुरुवाच.

(उत्तर-आत्माना अज्ञानथी मिथ्याप्रतीति थाय छे.)

दुहो.

आतमरूपअज्ञानथी, मिथ्या थाय प्रतीति;
जगत् , स्वप्न, नभनीलता, रज्जुसर्पनी रीति. ४७.

टीकाः—जन्मादिक जगत् परमार्थथी छे नहि तोपण, आत्माना ब्रह्मस्वरूपे करीने अज्ञानथी मिथ्या प्रतीत थाय छे. जेम स्वप्नना पदार्थ, आकाशमां नीलता, अने रज्जुमां सर्प, परमार्थथी छे नहि अने मिथ्या प्रतीत थाय छे; तेम जन्मादिक जगत् परमार्थथी छे नहि (अने) मिथ्या प्रतीत थाय छे. ४७.

१२४. तत्त्वदृष्टिरुवाच.

(मिथ्याप्रतीति केवी रीतिए थाय छे एविषे लोकोनी जे समजण छे तेनो अनुवाद शिष्य करे छे)

चोपाई.

मिथ्या सर्प रज्जुमां जेम, भाख्यो भव आत्मामां तेम;
केम सर्प रज्जुमां भासे; ते संशय मन, बुद्धि विनाशे. ४८.

टीकाः—जेम रज्जुमां सर्प मिथ्या छे, तेम आत्मामां भवदुःख मिथ्या कह्युं; त्यां दृष्टान्तना ज्ञान विना दार्ष्टान्ततुं ज्ञान

७८. रज्जुमां सर्प केवी रीतिए देखाय छे ते हुं समजतो नथी, तेथी मनमां संशय आवी, 'बुद्धि' नाम निश्चय तेने नाश करे छे.

७९. जे अर्थमां लोकनी तथा परीक्षकनी पण बुद्धिनु साम्य छे ते दृष्टान्त कहेवाय छे. अथवा वादिप्रतिवादीनी सम्प्रतिपत्ति (वादिउत्तार्थ विषयनु स्वीकरण)तेनो अर्थ ते दृष्टान्त. (जुओ पृष्ठ. १७४). दृष्टान्तयुक्त उपमेय ते 'दार्ष्टान्त'. सिद्धान्त.

थाय नहि. पछी रज्जुमां सर्प किये प्रकारे भासे छे, ए दृष्टान्तमां प्रश्न छे. ४८.

१२५. (मिथ्याप्रतीति वा भ्रमस्थानमां चार मत.)
(ते चार ख्यातिनां नाम.)

चोपाई

असत्ख्याति, वळी आत्मख्याति, ख्याति अन्यथा, ने अख्याति,
भ्रमस्थले सुण्या मत चार ज, मानुं कियुं कहो ए सार ज ? ४९.

टीकाः—ज्यां रज्जुमां सर्प अने शुक्तिमां रूपुं, इत्यादिक भ्रम छे त्यां चार मत सांभळ्या छे. शून्यवादी **असत्ख्याति** कहे छे. क्षणिकविज्ञानवादी **आत्मख्याति** कहे छे. न्याय अने वैशेषिकमतमां **अन्यथाख्याति** कहे छे. सांख्य अने प्रभाकर (मतमां) **अख्याति** कहे छे. तेमां

---

८०. पूर्वमीमांसाना वार्तिककार भट्टपादनो शिष्य. तेविषे आवी कथा छे,–भट्टपाद अभ्यास करी घेर आवता हता. मार्गमां ए प्रभाकर बालकवयमां एक गाम बहिर् रमतो हतो. तेने भट्टपादे पूछ्युं के,–'ग्राम केटलु दूर छे?', ए प्रश्न सांभळी प्रभाकर हस्यो अने बोल्यो के,–'महाराज ! आपना मुख अने वेश उपरथी एम अनुमान थाय छे के आपे बहु विद्याभ्यास कर्यो छे, तेम छते आवी सुगम वातनु अनुमान नथी करी शकता ए आश्चर्य छे. ज्यां मारा जेवडां बालक रमतां होय त्यांथी गाम दूर केम होय ?' प्रभाकरनी बुद्धि जोई भट्टपाद बहु प्रसन्न थया, अने तेना मातापिताने कही पोतानी पासे भणाववा तेने लीधो. अभ्यास करतां बुद्धिबल बहु वध्यु, ते एटले सुधी के गुरुने जेमां शंका रहे तेनो पण कोई कोई वार ते निर्णय करी आपे

एक दिवस गुरु एक ग्रंथ वांचता हता. तेमां आ पंक्ति हती–

'पूर्वंतुनोक्तंअधुनापिनोच्यते'

ते विषे भ्रान्ति थई ते बहु समय सुधी विचारता पण स्पष्ट थई नही. भोजनसमय वीती गयो. पछी प्रभाकरे कारण पूछ्यु ए गुरुए पंक्ति देखाडी. ते वांचतां ज स्पष्ट समजी गुरुने निवेदन कर्यु के,—पूर्वं 'तु'ना उक्त अधुना 'अपि'ना उच्यते.

पछी गुरुए प्रसन्न थई तेने कह्यु के,—'आ (जय) तारु मत गुरुमत 'कहेवाशे,' आज पण प्रभाकरनुं मत 'गुरुमत' कहेवाय छे

१२६. (असत्ख्यातिनो अनुवाद.)

शून्यवादीनो आ अभिप्राय छे. रज्जुदेशमां सर्प अत्यंत असत् छे, तेम अन्यदेशमां पण अत्यंत असत् छे. एम अत्यंत असत् सर्पनी रज्जुमां प्रतीति थाय छे, तेने **असत् ख्याति** कहे छे. अत्यंत असत्य सर्पनी 'ख्याति' नाम भान अने कथन (ते असत्ख्याति कहेवाय) छे.

१२७. (आत्मख्यातिनो अनुवाद.)

(क्षणिक)**विज्ञानवादीनो** आ अभिप्राय छे. रज्जुदेशमां तथा अन्यदेशमां, बुद्धिनी बहिर्, कहिं सर्प छे नहि. सर्व पदार्थ बुद्धिथी भिन्न नथी. किन्तु सर्व पदार्थना आकारने बुद्धि ज धारे छे. (बुद्धि ज पदार्थरूप थाय छे) ते बुद्धि, क्षणिकविज्ञानरूप छे. क्षण क्षणमां नाश अने उत्पत्तिने प्राप्त थाय एवुं जे विज्ञान (बुद्धि), ते ज सर्परूप प्रतीत थाय छे. एने **'आत्मख्याति'** कहे छे. 'आत्मा' नाम भान अने कथन (ते आत्मख्याति कहेवाय) छे.

१२८. (अन्यथाख्यातिनो अनुवाद.)

(प्राच्यनैयायिकमत प्रमाणे.)

नै या यि क नो अने वै शे षि क नो आ अभिप्राय छे,- वल्मीक (दर-राफडो) आदि स्थानमां साचो सर्प छे, तेने नेत्रेकरी देखे छे अने नेत्रमां दोष छे ते(दोष)ना बलथी सन्मुख (अने) समीप (रज्जुदेशमां सर्प) प्रतीत थाय छे. यद्यपि साचो सर्प अने नेत्रना मध्यमां भित्ति (भींत) आदि अंतराय छे, तथापि दोषसहित नेत्रेकरी, अंतरायसहित पण सर्प देखाय छे.

---

८१. कारणताए सर्व अभावमात्र वदनार बुद्धधर्मी माध्यमिक.

८२. बुद्धधर्मी योगाचार

अने एमां कोई आवी शंका करे,—'दोषथी तो सामर्थ्य घटे छे. 'वधे नहि; जेम जठराग्निमां पाचनसामर्थ्य, वात-पित्त-कफ- 'दोषथी, घटे छे, तेम नेत्रमां पण तिमिरादिदोषथी सामर्थ्य 'घटवुं जोइये. अने वल्मीक आदि स्थानमां स्थित सर्पनुं, 'दोषसहित नेत्रथी, ज्ञान कह्युं, त्यां शुद्ध नेत्रे तो परदेशमां 'स्थितनुं प्रत्यक्ष ज्ञान थाय नहि, अने दोषसहित(नेत्र)थी 'थाय छे; एथी 'दोषथी नेत्रनुं सामर्थ्य अधिक थाय छे,' ए 'मानवामां कंई दृष्टान्त नथी.' ते शंका बने नहि. केमके, कोईने पित्तदोषथी एवो रोग थाय छे के चतुर्गुण भोजन करवाथी पण तृप्ति थाय नहि. जेम पित्तदोषथी जठराग्निमां पाचनसामर्थ्य वधे छे, तेम नेत्रमां पण तिमिरादिदोषथी परदेशमां स्थित सर्पने प्रत्यक्ष करवानुं सामर्थ्य वधे छे. ए रीतिए वल्मीक आदिक देशमां स्थित सर्पनी 'अ न्य था' नाम बीजा प्रकारथी सन्मुख रज्जुदेशमां जे 'ख्याति' नाम भान अने कथन, ते ⁸³अन्यथाख्याति कहेवाय छे. अने

१२९. (नवीन-नैयायिक-मत प्रमाणे.)

चिन्तामणि⁸⁴कार नैयायिकनुं आ मत छेः—जो दोषसहित नेत्रथी वल्मीकमां स्थित सर्पनुं ज्ञान थाय तो, वचला अन्य पदार्थनुं ज्ञान पण थवुं जोइये. (पण एम थतु नथी) एथी परदेशमां स्थित वस्तुनुं नेत्रेकरी ज्ञान थाय नहि; किन्तु दोषसहित नेत्रेकरी रज्जुनुं निजरूपथी भान थाय नहि, सर्परूपथी भान थाय छे. एथी रज्जुनो ज 'अ न्य था' नाम बीजा

८३. ए मतमां अन्यदेशविषे स्थित वस्तुनी अन्य देशमा प्रतीति ज भ्रान्ति कहेवाय छे, अर्थाध्यास किंवा ज्ञानाध्यासरूप भ्रान्ति छे नहि.

८४. चिन्तामणिनामक ग्रंथना कर्ता नवीन नैयायिक कहेवाय छे. तेनुं मत ए छेः—तेमां अन्य वस्तुनी अन्य रूपथी प्रतीति ज्ञानाध्यासने ज भ्रान्ति कहे छे.

प्रकारथी सर्परूपे जे 'ख्याति' नाम भान अने कथन, ते **अन्यथाख्याति** कहेवाय छे.

१३०. (अख्यातिनो अनुवाद.)

(सां ख्य अने मी मां सा (वा प्र भा क र) म त प्र मा णे.)
(अने तेणेकरी उपरनी त्रण ख्यातिओनुं खंडन.)

अने **अख्यातिवादीनो** आ अभिप्राय छेः-जो असत्नी प्रतीति होय तो वंध्यापुत्र अने शशशृंगनी प्रतीति होवी जोइये. (पण होती नथी) एथी असत्ख्याति असंगत छे.

क्षणिकविज्ञाननो ज आकार सर्पादिक होय तो, क्षणमात्रथी अधिक काल स्थिरप्रतीति न होवी जोइये. (पण तेम होय छे) एथी आत्मख्याति असंगत छे.

अने अन्यथाख्यातिनी प्रथम रीति तो चिन्तामणिना मतथी दूषित ज छे; तेम चिन्तामणिनी रीतनुं पण अन्यथाख्याति मत (छे ते) असंगत छे, केमके, ज्ञेयने अनुसार ज्ञान होय छे. ज्ञेय रज्जु, अने ज्ञान सर्पनुं, ए कहेवुं ए अत्यंत विरुद्ध छे. एथी आ रीति मानवी योग्य छेः-

जहां रज्जुमां सर्पभ्रम छे तहां रज्जुसाथे नेत्रनो, पोतानी वृत्तिद्वारा, संबंध थईने, रज्जुनुं "इदं"(आ)रुपथी सामान्य ज्ञान थाय छे, अने सर्पनी स्मृति थाय छे. 'आ सर्प छे,' एमां बे ज्ञान छे. 'आ' अंश तो रज्जुनुं सामान्य प्रत्यक्षज्ञान छे. अने 'सर्प छे' एम सर्पनुं स्मृतिरूप ज्ञान छे. ए रीतिए 'आ 'सर्प छे,' एमां बे ज्ञान छे; परंतु भयदोष प्रमातामां, अने तिमिरदोष प्रमाणमां, तेओना (ए बे दोषना) बलथी पुरुषने एवो विवेक नथी थतो जे 'मने बे ज्ञान थयां छे.' यद्यपि 'आ' अंश रज्जुनुं सामान्य ज्ञान (छे ते) यथार्थ छे; अने पूर्वे देखेला

८५. संनिकृष्ट अने प्रत्यक्ष जे होय ते.

सर्पनुं स्मृतिज्ञान पण यथार्थ ज छे. तो पण 'मने बे ज्ञान 'थयां छे, तेमां रज्जुनुं सामान्यप्रत्यक्षज्ञान छे, अने सर्पनुं 'स्मृतिज्ञान छे,' एम विवेक नथी थतो. ते बे ज्ञानना अविवेकने ज, सांख्यप्रभाकरमतमां, 'भ्रम' कहे छे.

ए ज रीति सर्व भ्रमस्थलमां जाणवी. ए रीतिए रज्जु आदिकोमां सर्पादिक भ्रम जहां थाय, त्यां चार मत सांभळ्यां छे, तेमांथी सारुं मत होय ते कहो; तेने हुं मानुं. [ए शिष्यनो प्रश्न छे.] ४९.

१३१. श्रीगुरुरुवाच.

(ए चारे मत युक्तिहीन छे, एम खंडन करीने पांचमी अनिर्वचनीयख्याति सिद्ध करे छे.)

दुहो.

युक्तिहीन मत चार ए, तेथी पंचम अन्य;
ख्याति अनिर्वचनीय छे, भ्रमस्थानमां मान्य. ५०.

टीकाः-हे शिष्य ! ते चारे ख्यातिथी अन्य ज भ्रमस्थानमां पंचम **अनिर्वचनीयख्याति** जाण. अने असत्ख्याति, आत्मख्याति, अन्यथाख्याति, (अने) अख्याति, ए चारे मत युक्तिहीन छे. जेम उत्तर उत्तर मत निरूपणमां त्रणे मत असंगत कह्यां, तेम अख्यातिमत पण असंगत छे.

(अन्तना अख्यातिमतनुं खंडन सिद्धान्ति करे छे.)

केमकेः—'आ सर्प छे,' ए ज्ञानमां प्रथम 'आ'-अंश तो रज्जुनुं सामान्य-ज्ञान प्रत्यक्ष छे; अने 'सर्प छे' एटलो अंश पूर्वदृष्ट सर्पनुं स्मरणज्ञान छे, ए अख्यातिवादिनुं मत छे. त्यां (कदापि) पूर्वदृष्ट सर्पनुं स्मरण ज मानिये, अने सन्मुख रज्जुदेशमां सर्पनुं ज्ञान नहि मानिये, तो सन्मुख रज्जुथी

पुरुषने भय थईने उलटो भागे छे, ते भय अने भागवुं नहि थवुं जोइये. एथीः–

१३२. सन्मुख रज्जुदेशमां ज सर्पनी प्रतीति थाय छे; पूर्वदृष्ट सर्पनी स्मृति नहि. किंवा रज्जुनुं विशेषरूपथी यथार्थ ज्ञान थयाथी अनंतर एवो बाध थाय छे के:–"मने 'रज्जुमां सर्पनी प्रतीति मिथ्या थई हती.' ए बाधथी पण अने 'आ सर्प छे,' एमां एक ज ज्ञान प्रतीत थाय छे, बे नहि; अने एक कालमां, अंतःकरणथी स्मृतिरूप अने प्रत्यक्षरूप बे ज्ञान थाय पण नहि. एथी अख्यातिमत पण अत्यंत असंगत छे. ए चारे मतनुं प्रतिपादन अने खंडन, विवरण अने स्वाराज्यसिद्धि[87] आदिक ग्रंथोमां विस्तारेकरी लख्युं छे. प्रतिपादन अने खंडननी युक्ति कठिन छे, एथी संक्षेपे जिज्ञासुने रीति जणावी छे. अमे विस्तार लख्यो नथी.

१३३. (अनिर्वचनीयख्यातिथी प्रतीतिनी रीति.)

सिद्धान्तमां अनिर्वचनीख्याति छे. तेनी आ रीति छेः– अंतःकरणनी वृत्ति नेत्रादिद्वारा नीकळीने, विषयना समान आकारने प्राप्त थाय छे. ते(वृत्ति)थी विषयनुं आवरण भंग थईने ते(विषय)नी प्रतीति थाय छे; त्यां (सूर्यादिकनो) प्रकाश पण सहायक होय छे. (केमके) प्रकाश विना पदार्थनी

---

८६. व्यासनारायण किंवा बादरायणप्रणीत 'ब्रह्मसूत्र' उपर श्रीशंकराचार्यनुं 'भाष्य,' ते 'भाष्य' उपर पद्मपादाचार्यकृत 'पंचपादिका' अथवा 'विवरणचतुःसूत्री' नामे टीका छे, ते टीका उपर प्रकाशात्मचरण(यति)कृत (पंचपादिका) 'विवरण' नामे व्याख्यान छे. अने ए 'विवरण' उपर 'पंचपादिका विवरण-प्रकाशिका' नामे नृसिंहाश्रममुनिकृत ग्रंथ छे.

८७. गंगाधरसरस्वतीकृत छे. ते उपर तेमनी ज करेल 'पैयस्यकल्पद्रुम' नामे टीका छे.

प्रतीति थाय नहि. ज्यां रज्जुमां सर्पभ्रम थाय छे, त्यां अंतः-करणनी वृत्ति नेत्रद्वारा नीकळी पण खरी, अने रज्जुसाथे तेनो संबंध पण थाय, परंतु तिमिरादिक दोष प्रतिबंधक छे, पथी रज्जुना समानाकार वृत्तिनुं स्वरूप थाय नहि, पथी रज्जुनुं आवरण नाशे नहि (=भंग थाय नहि). ए रीतिए आ-वरणभंगनुं निमित्त, वृत्तिनो (विषयसाथे) संबंध थयाथी पण, ज्यारे रज्जुनुं आवरण भंग थाय नहि, त्यारे रज्जुचेतनमां स्थित अविद्यामां क्षोभ (विकार) थईने, ते अविद्या सर्पाकार परिणामने प्राप्त थाय छे ते अविद्यानुं कार्य सर्प सत् होय, तो रज्जुना ज्ञाने ते(सर्प)नो बाध थाय नहि, अने (रज्जुनुं ज्ञान थया पछी ते सर्पनो) बाध थाय छे, पथी (ते अविद्यानुं कार्य सर्प) 'सत्' नथी. अने (ते अविद्यानुं कार्य सर्प) असत् होय तो, वंध्यापुत्रनी पेठे (तेनी) प्रतीति थाय नहि, अने प्रतीति थाय छे, पथी 'असत्' पण नथी, किन्तु सत्असत्थी विलक्षण अनिर्वचनीय छे. शुक्ति आदिकोमां रूपादिक

---

८८. त्रिकाल अबाध्य. भूत, वर्तमान अने भविष्यत् ए त्रणे काळमां रहे तेने 'सत्' कहे छे, अने ए त्रणे काळमां न होय एवु स्वरूपहीन तेने 'असत्' कहे छे

८९. अनिर्वचनीयनु शका समाधान अने स्पष्टीकरण आ प्रमाणे छे –सत्थी विलक्षण असत् छे ते असत्ने असत्थी विलक्षण कहेवु ए विरुद्ध छे अने असत्थी विलक्षण सत् छे, सत्ने सत्थी विलक्षण कहवु ए विरुद्ध छ तेथी सत् असत्थी भिन्न कोई तृतीय पदार्थ होय तो 'सत् असत्थी विलक्षण' एम कहेवाय, परतु तेवा तृतीय पदार्थनो अभाव छे तेथी परस्पर विरुद्ध सत् असत्थी विलक्षण 'अनिर्वचनीय' शब्दार्थ असगत लागे छे अने उपलब्धि थती नथी एवी शका छे तेनु समाधान आ छे –त्रिकाल अबाध्य सत् कहेवाय छे, तेथी विलक्षण कहेवाथी 'बाधयोग्य'नु ग्रहण छे अने स्वरूपहीन वध्यापुत्रादिक असत् कहेवाय छे. तेथी विलक्षण कहेवाथी 'स्वरूपवान्'नु ग्रहण छे एथी 'बाधयोग्य स्वरूपवान्' एवो अर्थ अनिर्वचनीय पदनो छे तेवा प्रपच अने रज्जु सर्पादिक छे. तेनी उपलब्धि (प्रतीति) वेदान्तनिपुण पडितोने होय छे

पं पी. पु

पण ए ज रीतिए अनिर्वचनीय उत्पन्न थाय छे. ते अनिर्वचनीय-नी जे 'ख्याति' नाम प्रतीति अने कथन, ते अनिर्वचनीय-ख्याति कहेवाय छे.

१३४. (भ्रम-स्वप्न-साक्षिभास्य छे.)

जेम (रज्जुमां भासेलो) स र्प अविद्यानो ज परिणाम छे, तेम ते(सर्प)मां ज्ञानरूप वृ त्ति पण अविद्यानो ज परिणाम छे; अंतःकरणनो (परिणाम) नथी. केमके, जेम रज्जुज्ञानथी स र्प नो बाध थाय छे, तेम ते(सर्प)ना ज्ञा न नो पण बाध थाय छे.

[अंतःकरणनुं ज्ञान होय तो बाध थवो जोइये नहि.] पछी (सर्पनुं) ज्ञान पण, सर्पनी पेठे, अविद्यानुं कार्य, सत्-असत्-थी विलक्षण अनिर्वचनीय छे. परंतु रज्जुउपहितचेतनमां स्थित तमोगुण-प्रधान-अविद्याअंशनो परिणाम, (रज्जुमां भासेलो) सर्प छे, अने साक्षिचेतनमां स्थित अविद्याना सत्त्वगुण-नो परिणाम, (रज्जुमां भासेला सर्पनुं) वृत्तिज्ञान छे. रज्जु-चेतननी अविद्यानो जे समये सर्पाकार-परिणाम थाय छे, ते ज समय साक्षि-आश्रित-अविद्यानो ज्ञानाकार-परिणाम थाय छे. केमके, रज्जुचेतनआश्रित-अविद्यामां क्षोभनुं जे निमित्त (आ-वरणनुं भंग न थवुं ते) छे ते निमित्तथी ज साक्षिआश्रित-अविद्याअंशमां क्षोभ थाय छे पछी भ्रमस्थलमां सर्पादिक विषय अने तेनुं ज्ञान, एक ज समये उत्पन्न थाय छे; अने रज्जु-आदिक अधिष्ठानना ज्ञानथी एक ज समय लीन थाय छे. ए रीतिए सर्पादिक भ्रमविषे, बाह्य-अविद्याअंश, सर्पादिक वि ष-य नुं उपादान कारण छे; अने साक्षिचेतनआश्रित अंतर्-अविद्या-अंश, ते(सर्पादिक)ना ज्ञा न रू प-वृ त्ति नुं उपादान कारण छे.

अने स्वप्नमां तो साक्षि आश्रित अविद्यानो ज **तमोगुण** अंश, विषयरूप परिणामने प्राप्त थाय छे; अने ते (साक्षि-आश्रित) अविद्यामांनो **सत्त्वगुण** अंश, ज्ञानरूप परिणामने प्राप्त थाय छे. पथी, स्वप्नमां (साक्षी आश्रित) **अंतरअविद्या ज विषय** अने **ज्ञान** बंनेनुं उपादानकारण छे. पथी ज बाह्य रज्जुसर्पादिक अने अंतर् स्वप्नपदार्थ, साक्षिभास्य कहेवाय छे. [अविद्यानी वृत्तिद्वारा जेने साक्षी भासे, नाम प्रकाशे, ते (आ स्थले) साक्षिभास्य कहेवाय छे.]

१३५. (अध्यास था भ्रम ए अविद्यानो परिणाम अने चेतननो विवर्त.)

रज्जु आदिकोमां, अनिर्वचनीय सर्पादिक अने तेनुं ज्ञान, **भ्रम** कहेवाय छे. अने **अध्यास** कहेवाय छे. ते भ्रम, (तुला)अविद्यानो **परिणाम** छे अने चेतननो **विवर्त्त** छे. (तेम आ जगत् पण (मूला) अविद्यानो परिणाम छे अने शुद्धचेतननो विवर्त छे.) [उपादानकारणना समान स्वभाववाळुं अन्यथास्वरूप **परिणाम** कहेवाय छे, अने अधिष्ठानथी (=विवर्तरूपकार्यना उपादानथी) विपरीतस्वभाववाळुं अन्यथास्वरूप **विवर्त्त** कहेवाय छे.] (भ्रमस्थळमां) उपादानकारण अविद्या, ते अनिर्वचनीया छे, तेम रज्जुमां सर्प अने तेनुं ज्ञान पण अनिर्वचनीय छे, पथी रज्जु-सर्प अने तेनुं ज्ञान,-अविद्याना समान स्वभाववाळो, (अने) 'अन्यथास्वरूप' नाम अविद्याथी अन्य प्रकारनो आकार छे,

९०. रज्जुसर्पादिक, सुखदुःखादिक, स्वप्नपदार्थादिक, ए, विषयो प्रतीति-समकाल होवाथी प्रातिभासिक छे; अने ते साक्षिभास्य ज कहेवाय छे.

९१. सर्वदाकार्योमां अनुगत एवुं कारण. कार्यसह अभिन्न कारण. जेम घटादिक प्रति मृत्तिका. जेथी उत्पत्ति, जेणेकरी स्थिति, अने जेमां लय थाय एवुं जे एक कारण. न्यायमतमां एने समवायिकारण कहे छे.

ते अविद्यानो **परिणाम** छे. तेम रज्जुअवछिन्न अधिष्ठानचेतन, सत्‌रूप छे; सर्प अने तेनुं ज्ञान सत्‌थी विलक्षण (अनिर्वचनीय) छे; पथी रज्जुसर्प अने तेनुं ज्ञान, 'अधिष्ठानचेतनथी विपरीत स्वभाववाळो,' 'अन्यथास्वरूप' नाम चेतनथी अन्य प्रकारनो, आकार छे. (=स्वअवस्थान त्यज्या विना अवस्थान्तरप्राप्ति जेनी थवा चेतननो ते विवर्त छे.)

१३६. (भ्रमस्थानमां विषयनुं अने तेना ज्ञाननुं उपाधिभेदथी अधिष्ठान भिन्न छे.)

मिथ्या सर्पनुं अधिष्ठान रज्जुउपहितचेतन छे, रज्जु नहि. केमके सर्पनी पेठे रज्जु पण कल्पित छे. कल्पित वस्तु अन्य कल्पितनुं अधिष्ठान बने नहि, पथी रज्जुउपहितचेतन ज अधिष्ठान छे, रज्जु नहि. अने रज्जुविशिष्ट(चेतन)ने अधिष्ठान कहिये, तो पण रज्जु अने चेतन बंने अधिष्ठान थशे। त्यां रज्जुभागमां अधिष्ठानत्व बाधित छे. पथी रज्जुउपहितचेतन ज अधिष्ठान छे; रज्जुविशिष्टचेतन नहि.

तेम सर्पना ज्ञाननुं, साक्षि चेतन अधिष्ठान छे. ए रीतिए भ्रमस्थानमां, विषयनुं अने तेना ज्ञाननुं, उपाधिभेदथी, अधिष्ठान भिन्न छे, एक नहि. अने विशेषरूपथी रज्जुनी अप्रतीति, अविद्यामां क्षोभद्वारा, बंनेनी उत्पत्तिमां निमित्त छे। तेम रज्जुनुं ज्ञान बंनेनी निवृत्तिमां पण निमित्त कह्युं छे. ए विषे

१३७. आवी शंका थाय छे.

रज्जुना ज्ञानथी सर्पनी निवृत्ति बने नहि. केमके 'मिथ्या

१२. सीमाकरण. अन्यथी भिन्न करी जणावनार रज्जु वेगेरती सीमा करायर्ड्. रज्जु जेटलु.

१३. बाध थवुं. त्रिकाल अभावने अने त्रिकाल अभावना निश्चयने 'बाध' कहे छे.

'वस्तुनुं जे अधिष्ठान होय, ते अ धि ष्ठा न ना ज्ञा न थी 'मिथ्यानी निवृत्ति थाय छे', ए अद्वैतवादनो सिद्धान्त छे. अने मिथ्या सर्पनुं अधिष्ठान रज्जुउपहितचेतन छे, रज्जु नहि. पणी रज्जुना ज्ञानथी सर्पनी निवृत्ति बने नहि. ए शंकानुं

१३८. आ समाधान छे.

(रज्जुनुं ज्ञान ज सर्पना अधिष्ठाननुं ज्ञान छे.)

रज्जु आदिक जड पदार्थनुं ज्ञान, अंतःकरणनी वृत्तिरूप थाय, त्यां आवरणभंग वृत्तिनुं प्रयोजन छे. ते आवरण, अज्ञाननी शक्ति छे. पणी आवरण जडने आश्रित छे नहि, किन्तु जडनुं अधिष्ठान जे चेतन, तेने आश्रित छे; पणी रज्जुसमानाकार अंतःकरणनी वृत्तिए रज्जुअवच्छिन्नचेतननुं ज आवरण भंग थाय छे; वृत्तिमां जे चिदाभास छे, तेथी रज्जुनो प्रकाश थाय छे. चेतन स्वयंप्रकाश छे; तेमां आभासनो उपयोग नथी. ए प्रक्रिया संपूर्ण आगळ (अंक १८७ मां) प्रतिपादन करीशुं. ए रीतिए चिदाभाससहित अंतःकरणनी वृत्तिरूप ज्ञानमां, जे वृत्तिभाग, तेनुं आवरणभंगरूप फळ (रज्जुउपहित) चेतनमां थाय छे, अने चिदाभासभागनुं प्रकाशरूप फळ रज्जुमां थाय छे. पणी वृत्तिज्ञाननो केवळ जडरज्जु विषय नथी, किन्तु अधिष्ठानचेतनसहित रज्जु, साभास (नाम चिदाभाससहित) वृत्तिनो विषय छे. ए कारणथी सिद्धान्त ग्रंथमां आ लख्युं छेः–'अंतःकरणजन्य सर्व वृत्तिज्ञान, 'ब्रह्मने विषय करे छे' (=आवरण भंग करे छे.) ए प्रकारे रज्जुज्ञानथी निरावरण थईने, सर्पना अधिष्ठान-रज्जुअवच्छिन्नचेतननुं पण, निजप्रकाशथी, भान थाय छे. पणी रज्जुनुं ज्ञान ज सर्पना अधिष्ठाननुं ज्ञान छे, तेथी सर्पनी निवृत्ति संभवे छे.

ते अविद्यानो **परिणाम** छे. तेम रज्जुअवछिंन्न अधिष्ठान-चेतन, सत्‌रूप छे; सर्प अने तेनुं ज्ञान सत्‌थी विलक्षण (अनिर्वचनीय) छे; एथी रज्जुसर्प अने तेनुं ज्ञान, 'अधिष्ठान-चेतनथी विपरीत स्वभाववाळो,' 'अन्यथास्वरूप' नाम चेतनथी अन्य प्रकारनो, आकार छे. (=स्वअवस्थान त्यज्या विना अवस्थान्तरप्राप्ति जेनी एवा चेतननो ते विवर्त छे.)

१३६. (भ्रमस्थानमां विषयनुं अने तेना ज्ञाननुं उपाधिभेदथी अधिष्ठान भिन्न छे.)

मिथ्या सर्पनुं अधिष्ठान रज्जुउपहितचेतन छे, रज्जु नहि. केमके सर्पनी पेठे रज्जु पण कल्पित छे. कल्पित वस्तु अन्य कल्पितनुं अधिष्ठान बने नहि, एथी रज्जुउपहितचेतन ज अधिष्ठान छे, रज्जु नहि. अने रज्जुविशिष्ट(चेतन)ने अधिष्ठान कहिये, तो पण रज्जु अने चेतन बंने अधिष्ठान थशे; त्यां रज्जुभागमां अधिष्ठानत्व बाधित छे. एथी रज्जुउपहितचेतन ज अधिष्ठान छे; रज्जुविशिष्टचेतन नहि.

तेम सर्पना ज्ञाननुं, साक्षि चेतन अधिष्ठान छे. ए रीतिए भ्रमस्थानमां, विषयनुं अने तेना ज्ञाननुं, उपाधिभेदथी, अधिष्ठान भिन्न छे, एक नहि. अने विशेषरूपथी रज्जुनी अप्रतीति, अविद्यामां क्षोभद्वारा, बंनेनी उत्पत्तिमां निमित्त छे; तेम रज्जुनुं ज्ञान बंनेनी निवृत्तिमां पण निमित्त कह्युं छे. ए विषे

१३७. आवी शंका थाय छे.

रज्जुना ज्ञानथी सर्पनी निवृत्ति बने नहि. केमके 'मिथ्या

१२. सीमाकरण. अन्यथी भिन्न करी जणावनार रज्जु तेनेकरी सीमा बराबर. रज्जु जेटलुं.

१३. बाध थवेलुं. त्रिकाल अभावने अने त्रिकाल अभावना निश्चयने 'बाध' कहे छे.

'वस्तुनुं जे अधिष्ठान होय, ते अ धि ष्ठा न ना ज्ञा न थी 'मिथ्यानी निवृत्ति थाय छे', ए अद्वैतवादनो सिद्धान्त छे. अने मिथ्या सर्पनुं अधिष्ठान रज्जुउपहितचेतन छे, रज्जु नहि. एथी रज्जुना ज्ञानथी सर्पनी निवृत्ति बने नहि. ए शंकानुं

१३८. आ समाधान छे.

(रज्जुनुं ज्ञान ज सर्पना अधिष्ठाननुं ज्ञान छे.)

रज्जु आदिक जड पदार्थनुं ज्ञान, अंतःकरणनी वृत्तिरूप थाय, त्यां आवरणभंग वृत्तिनुं प्रयोजन छे. ते आवरण, अज्ञाननी शक्ति छे. एथी आवरण जडने आश्रित छे नहि, किन्तु जडनुं अधिष्ठान जे चेतन, तेने आश्रित छे; एथी रज्जुसमानाकार अंतःकरणनी वृत्तिए रज्जुअवच्छिन्नचेतननुं ज आवरण भंग थाय छे; वृत्तिमां जे चिदाभास छे, तेथी रज्जुनो प्रकाश थाय छे. चेतन स्वयंप्रकाश छे; तेमां आभासनो उपयोग नथी. ए प्रक्रिया संपूर्ण आगळ (अंक १८७ मां) प्रतिपादन करीशुं. ए रीतिए चिदाभाससहित अंतःकरणनी वृत्तिरूप ज्ञानमां, जे वृत्तिभाग, तेनुं आवरणभंगरूप फल (रज्जुउपहित) चेतनमां थाय छे, अने चिदाभासभागनुं प्रकाशरूप फल रज्जुमां थाय छे. एथी वृत्तिज्ञाननो केवल जडरज्जु विषय नथी, किन्तु अधिष्ठानचेतनसहित रज्जु, साभास (नाम चिदाभाससहित) वृत्तिनो विषय छे. ए कारणथी सिद्धान्त ग्रंथमां आ लख्युं छेः—'अंतःकरणजन्य सर्व वृत्तिज्ञान, 'ब्रह्मने विषय करे छे' (=आवरण भंग करे छे.) ए प्रकारे रज्जुज्ञानथी निरावरण थईने, सर्पना अधिष्ठान-रज्जुअवच्छिन्नचेतननुं पण, निजप्रकाशथी, भान थाय छे. एथी रज्जुनुं ज्ञान ज सर्पना अधिष्ठाननुं ज्ञान छे, तेथी सर्पनी निवृत्ति संभवे छे.

१३९. अन्यशंका.

यद्यपि ए रीतिए स र्प नी निवृत्ति रज्जुना ज्ञानथी संभवे छे, तथापि स र्प ना ज्ञा न नी निवृत्ति संभवे नहि. केमके, सर्पनुं अधिष्ठान रज्जुअवच्छिन्नचेतन छे; अने सर्पना ज्ञाननुं अधिष्ठान साक्षिचेतन छे. पूर्वोक्त प्रकारथी रज्जुज्ञानथी रज्जुअवच्छिन्नचेतननुं ज भान थाय छे, साक्षिचेतननुं (भान) नहि. एथी रज्जुनुं ज्ञान थयाथी पण, सर्पज्ञाननुं अधिष्ठान साक्षिचेतन अज्ञात छे; अने अज्ञात अधिष्ठानमां कल्पितनी निवृत्ति थाय नहि; किंतु ज्ञात अधिष्ठानमां ज कल्पितनी निवृत्ति थाय छे. एथी रज्जुज्ञानथी स र्प ज्ञा न नी निवृत्ति बने नहि. ते (शंका)नुं–

१४०. समाधान आ छे.

विषयने अधीन ज्ञान थाय छे. विषय जे सर्प, तेनी निवृत्ति थते ज, सर्पना ज्ञाननी, विषयना अभावथी, पोतानी मेळे ज निवृत्ति थाय छे.

१४१. अने जो एम कहे केः–'कल्पित(ज्ञान)नी निवृत्ति 'अधिष्ठानज्ञान विना थाय नहि; अने सर्पनुं ज्ञान पण कल्पित छे, तेनुं अधिष्ठान साक्षिचेतन छे, ते(साक्षिचेतन)ना ज्ञान 'विना कल्पित सर्पना ज्ञाननी निवृत्ति बने नहि.'

१४२. तेनुं समाधान आ छेः–निवृत्ति बे प्रकारनी होय छे. एक तो अत्यंतनिवृत्ति होय छे, अने बीजी कारणमां जे लय ते पण निवृत्ति कहेवाय छे. [कारणसहित कार्यनी निवृत्ति अत्यंतनिवृत्ति कहेवाय छे.] सर्व कल्पित वस्तुनुं कारण, अधिष्ठानने आश्रित अज्ञान छे. ते अज्ञान(रूप

---

१४. जेम इन्धनने अधीन अग्नि छे; तेम इन्धनरूप विषयने अधीन ज्ञानरूप अग्नि छे. इन्धनना नाश थवेथी अग्नि प्रतीत थतो नथी.

कारण)सहित कल्पित कार्य(वस्तु)नी (अत्यंत) निवृत्ति तो, अधिष्ठानज्ञानथी ज थाय छे. परंतु कारणमां लयरूप जे निवृत्ति, ते अधिष्ठानज्ञान विना पण थाय छे. जेम सुषुप्ति अने प्रलयमां सर्व पदार्थनो अज्ञानमां लय, अधिष्ठानज्ञानना विना, थाय छे. त्यां सर्व पदार्थना लयमां निमित्त, भोगना सन्मुख कर्मनो अभाव छे तेम अधिष्ठानसाक्षीना ज्ञान विना पण सर्पज्ञाननो (साक्षि आश्रित अविद्यारूप कारणमां) लय थाय छे. त्यां सर्पज्ञाननो विषय जे सर्प, ते(सर्प)नो अभाव सर्पज्ञानना लयमां निमित्त छे ए प्रकारे सर्पनी निवृत्ति रज्जुज्ञानथी थाय छे. अने सर्पज्ञाननो विषय जे सर्प तेना अभावथी, सर्पज्ञाननो लय थाय छे

१४३ अथवा सर्प अने तेनुं ज्ञान बेनी निवृत्ति रज्जुज्ञानथी ज थाय छे केमके, ज्यारे रज्जुनुं प्रत्यक्ष ज्ञान थाय, त्यारे अंतःकरणनी वृत्ति नेत्रद्वारा नीकळीने रज्जुदेशमां प्राप्त थाय छे, अने रज्जुना समान वृत्तिना आकार थाय छे एथी रज्जुना प्रत्यक्ष (ज्ञान) समये, वृत्तिउपहितचेतन अने रज्जुउपहितचेतन बने एक थाय छे, तेमना भेद रहेतो नथी एमां आ हेतु छे -चेतनना स्वरूपे तो भेद कांहि पण नथी, किन्तु उपाधिना भेदे चेतनना भेद थाय छे वृत्तिउपहितचेतन अने रज्जुउपहितचेतनना भेदक उपाधि, वृत्ति अने रज्जु छे ते वृत्ति अने रज्जु भिन्न भिन्न देशमां स्थित होय, त्यारे तो उपाधिवाळा चेतनना भेद होय छे, पण बने उपाधि एक देशमां स्थित होय, त्यारे उपहितचेतननो भेद बने नहि, ए वार्त्ता (धर्मराज अध्वरीन्द्रकृत) वेदान्तपरिभाषादिक ग्रन्थोमां लखी छे भिन्न देशमां स्थित उपाधिथी ज उपहित चेतनना भेद थाय छे एक देशमां ज्यारे बने उपाधि पण

स्थित होय, त्यारे बंने उपाधिए उपहितचेतन पण एक ज होय छे. ए प्रकारथी रज्जुना प्रत्यक्षज्ञान समये, रज्जुउपहित-चेतन अने वृत्तिउपहितचेतन एक छे. त्यां साक्षिचेतन ज वृत्तिउपहितचेतन छे; केमके, अंतःकरण अने तेनी वृत्तिमां स्थित, जे तेमनो प्रकाशक चेतनमात्र, ते **साक्षी** कहेवाय छे. ए रीतिए रज्जुज्ञानसमये, साक्षिचेतन अने रज्जुउपहित-चेतननो अभेद थाय छे. अने रज्जुउपहितचेतननुं रज्जुज्ञाने-करी भान थाय छे, अने रज्जुउपहितचेतनथी अभिन्न साक्षीनुं पण, रज्जुज्ञानेकरी भान थाय छे. ए प्रकारथी रज्जुज्ञानसमये, अधिष्ठानसाक्षीनुं भान होवाथी, कल्पित सर्पज्ञाननी निवृत्ति संभवे छे.

(सर्व त्रिपुटीओना ज्ञानमां अधिष्ठानसाक्षीनुं ज्ञान होय छे.)

१४४. किंवाः-(पंचदशीनामे ग्रंथना) कूटस्थ दीपमां विद्यारण्यस्वामीए आ प्रक्रिया कही छेः-'आभास सहित 'अंतःकरणनी वृत्ति, इन्द्रियद्वारा नीकळीने, घटादिक विषयने 'प्रकाशे छे. घटादिक विषय (ज्ञेय), अने तेम आभाससहित 'वृत्तिरूप ते(घट)नुं ज्ञान, तथा आभाससहित अंतःकरण-'रूप ज्ञाता, ए त्रणेने साक्षी प्रकाशे छे.'

'आ घट छे' ए रीतिए आभाससहित वृत्तिए घटमात्रनो प्रकाश थाय छे. 'हुं घटने जाणुं छुं' ए रीतिए 'हुं' शब्दनो अर्थ ज्ञाता, अने ज्ञेय (जे) घट, अने तेनुं ज्ञान, ए त्रिपुटीनो साक्षीएकरी प्रकाश थाय छे. ए प्रकारथी सर्व त्रिपुटी-

९५. एवुं ज्ञान ते न्यायमतमां 'व्यवसाय' ज्ञान कहेवाय छे.

९६. व्यवसायज्ञाननुं जे ज्ञान तेने न्यायमतमां 'अनुव्यवसायज्ञान' कहेवाय छे. वेदान्तमतमां व्यवसायज्ञानने 'वृत्तिज्ञानविशेष' कहे छे; अने अनुव्यवसाय-ज्ञानने 'साक्षिज्ञान' कहे छे, कारण के ए ज्ञान त्रिपुटीनुं प्रकाशक छे.

ओनो प्रकाशक साक्षी छे. साक्षी पोते अज्ञान होय तो, त्रिपुटीनुं ज्ञान साक्षीपणुं बने नहि. पथी सर्व त्रिपुटीओना ज्ञानमां साक्षीनुं ज्ञान अवश्य थाय छे. ते साक्षीज्ञानथी सर्पज्ञाननी निवृत्ति संभवे छे. ए पूर्व रीतिए सर्प अने तेना ज्ञाननुं अधिष्ठान भिन्न भिन्न कह्युं, तेमां पटलां शंका-समाधान छे. [ए पक्षमां शंकासमाधानरूप विवाद अन्य पण बहु छे.]

(भ्रमस्थानमां विवर्तोपादानकारणरूप अधिष्ठान साक्षी छे.)

१४५. पथी सर्प अने ते(सर्प)ना ज्ञाननुं अधिष्ठान एक ज छे, ए पक्ष कहिये छिये. त्यां बाह्य जे रज्जुचेतन छे, तेने सर्प अने तेना ज्ञाननुं अधिष्ठान कहिये तो बने नहि. केमके, जेटलां ज्ञान होय छे ते प्रमाता अथवा साक्षीने आश्रित होय छे. बाह्य जे रज्जुचेतन, तेने आश्रित ज्ञान बने नहि. तेम सर्प अने सर्पना ज्ञाननुं अधिष्ठान, अंतःकरणउपहित साक्षिचेतनने मानिये, तो शरीरना अंतर अंतःकरणदेशमां सर्पनी प्रतीति जोइये, रज्जुदेशमां सर्पनी प्रतीति न जोइये. अंतर् उपज्या सर्पनी बहिर्प्रतीति मायाना बलथी मानिये तो, 'आ त्म ख्या ति म त' नी सिद्धि थशे. (के जे खोटी छे एवुं पूर्वे सिद्ध थयुं छे.) ए रीतिए रज्जुउपहितचेतन, (सर्पना) ज्ञाननुं अधिष्ठान बने नहि; अने अंतःकरणउपहितचेतन, सर्पनुं अधिष्ठान बने नहि. पथी सर्प अने ते(सर्प)ना ज्ञाननुं अधिष्ठान एक बने नहि. तथापि रज्जुना समीपप्राप्त जे अंतःकरणनी इदमाकारवृत्ति (आ छे एवा आकारवाली वृत्ति), तेमां स्थितचेतनने आश्रित (जे) अविद्या, (ते अविद्या) सर्पाकार अने ज्ञानाकार परिणामने प्राप्त थाय छे. वृत्तिउपहितचेतनमां स्थित अविद्यानो तमोगुणअंश, सर्पनुं (परि-

णामि) उपादानकारण छे; अने ते(अविद्या)मां ज स्थित सत्त्वगुणअंश **सर्पना ज्ञाननुं** (परिणामि) उपादानकारण छे. सर्प अने तेना ज्ञाननुं, वृत्तिउपहितचेतन अधिष्ठान (=विवर्तोपादान कारण) छे. वृत्ति रज्जुदेशमां बहिर् गई, पछी वृत्तिउपहितचेतन पण बहिर् छे; पछी सर्पनो आश्रय (अधिष्ठान) बने छे. जेटलुं अंतःकरणनुं स्वरूप होय एटलुं ज साक्षीनुं स्वरूप होय छे. शरीरना अंतर्स्थित जे अंतःकरण, ते ज वृत्तिस्वरूपपरिणामने प्राप्त थाय छे; पछी वृत्तिउपहितचेतन साक्षी छे; पछी (सर्पना) ज्ञाननो आश्रय बने छे. रज्जुनो ज्यारे साक्षात्कार थाय, त्यारे रज्जुचेतन अने वृत्तिचेतन बंने एक थाय छे. पछी रज्जुना ज्ञानथी सर्प अने ते(सर्प)ना ज्ञाननी निवृत्ति पण बने छे.

१४६. ज्यां एक रज्जुमां, दश पुरुषने, कोईने सर्प, कोईने दंड, कोईने माला, कोईने पृथिवीनी फाट, कोईने जलनी धारा, एवी रीतिए भिन्न भिन्न प्रतीति थाय, अथवा सर्वने सर्प ज प्रतीत थाय, त्यां जे पुरुषने रज्जुनो साक्षात्कार थाय छे, तेनी वृत्तिचेतनमां कल्पित अध्यासनी (मिथ्या सर्प अने सर्पज्ञाननी) निवृत्ति थाय छे. जेने रज्जुज्ञान नहि थाय तेना अध्यासनी निवृत्ति थाय नहि. पछी वृत्ति(उपहित)चेतन ज कल्पितनुं अधिष्ठान छे, रज्जु आदिक विषय—उपहितचेतन (अधिष्ठान) नहि. जो रज्जुउपहितचेतनने सर्पदंडादिकनुं अधिष्ठान मानिये, तो दश पुरुषोने प्रतीत जे थाय दश पदार्थ ते एकएकने सर्व प्रतीत थया जोइये. अने अमारी रीतिए तो जेनी वृत्तिचेतनमां जे पदार्थ कल्पित छे, ते तेने ज प्रतीत थाय; अन्यने नहि. ए रीतिए बाह्यसर्पादिक अने तेना ज्ञाननुं, वृत्तिउपहितसाक्षी, अधिष्ठान छे. स्वप्नना

पदार्थ अने तेमना ज्ञाननुं पण अंतःकरणउपहितसाक्षी ज अधिष्ठान छे. ए प्रकारे सत्असत्थी विलक्षण जे अनिर्वचनीय-अविद्यानो परिणाम, अनिर्वचनीय सर्पादिक,-तेमनी 'ख्याति' नाम प्रतीति अने कथन; ते 'अनिर्वचनीयख्याति' कहेवाय छे. ५०.

१४७. शिष्य उवाच.

(आ जगत्ना आधारविषे शिष्यनुं प्रश्न.)

दुहो.

मिथ्या प्रतीत थाय आ, जेमां जगत् अपार,
ते भगवन् ! मुजने कहो, को एनो आधार. ५१.

(हे सद्गुरो ! आ अपार जगत् जेमां मिथ्या प्रतीत थाय छे, एवो आ जगत्नो आधार कोण छे ते मने कहो.)

१४८. श्रीगुरुरुवाच.

(मिथ्या जगत्नो आधार तथा अधिष्ठान तुं छुं.)

दुहो.

तव निजरूप अज्ञानथी, थयुं मिथ्या जगभान;
अधिष्ठान, आधार, तुं, रज्जुभुजंग समान. ५२.

टीकाः—हे शिष्य ! तारूं जे 'निजरूपे' नाम ब्रह्मरूपे करीने अज्ञान, तेथी मिथ्या जगत् प्रतीत थाय छे, एथी जगत्नो आधार अने अधिष्ठान तुं छुं. जेम रज्जुना अज्ञानथी मिथ्या सर्प प्रतीत थाय छे, त्यां मिथ्या सर्पनो आधार अने अधिष्ठान रज्जु छे. यद्यपि मिथ्या सर्पनुं अधिष्ठान मुख्य, द्वितीय-पक्षमां, वृत्तिउपहितचेतन छे, अने प्रथमपक्षमां रज्जुउपहित-चेतन छे, कोई पक्षमां (एकली) रज्जु अधिष्ठान नथी. तथापि प्रथम पक्षमां चेतनमां अधिष्ठानत्वनो उपाधि रज्जु छे, एथी स्थूल दृष्टिए, रज्जु अधिष्ठान कहेवाय छे. जेम मिथ्या-

सर्पनुं अधिष्ठान तथा आधार रज्जु छे, तेम मिथ्या जगतनुं अधिष्ठान तथा आधार हुं छुं.

१४९. (आत्मानुं सामान्य-विशेषरूप. जे सामान्यरूप छे ते आधार छे, अने जे विशेषरूप छे ते अधिष्ठान छे.)

ए स्थानमां आ रहस्य छेः-जेम रज्जुनां बे स्वरूप छे-एक तो सामान्यरूप छे, एक विशेषरूप छे. सामान्यरूप 'इदं' ('आ') छे, अने विशेषरूप 'रज्जु' छे. 'आ सर्प छे,' ए रीतिए मिथ्या सर्पसाथे अभिन्न (एकरूप) थईने भ्रान्तिकालमां पण प्रतीत थाय जे 'आ' रूप, ते 'सामान्यरूप' छे, अने जे स्वरूपनी भ्रान्तिकालमां प्रतीति न थाय, किन्तु जेनी प्रतीति थवाथी भ्रान्ति दूर थाय, ते रज्जुनुं 'विशेषरूप' छे. तेम आत्मानां पण बे स्वरूप छे,-एक सामान्यरूप अने बीजुं विशेषरूप. सत्रूप सामान्य (रूप) छे. असंगता, कूटस्थता, नित्यमुक्ततादिक, विशेषरूप छे. जेमके "स्थूलसूक्ष्मसंघात 'छे'." एमां स्थूलसूक्ष्मसंघातनी भ्रान्तिसमये पण मिथ्या संघातनासाथे अभिन्न थईने सत् (छे) रूप प्रतीत थाय छे. एथी आत्मानुं 'सत्' स्वरूप सामान्यरूप छे अने स्थूलसूक्ष्मसंघातनी भ्रान्तिसमये, आत्मानुं असंग, कूटस्थ, नित्यमुक्त स्वरूप प्रतीत थाय नहि. किन्तु असंगतादिस्वरूप आत्मानी प्रतीति थवेथी, संघातभ्रान्ति दूर थाय छे. एथी असंगता, कूटस्थता, नित्यमुक्तता, स्वप्रकाशतादिक (आत्माना) 'विशेषरूप' छे. सर्व भ्रान्तिमां सामान्यरूप 'आधार' कहेवाय छे, अने विशेषरूप 'अधिष्ठान' कहेवाय छे. जेम सर्पनो आश्रय जे रज्जु, तेनुं सामान्य 'इदं' (आ) स्वरूप सर्पनो आधार छे, अने विशेष 'रज्जु' स्वरूप (सर्पनुं) अधिष्ठान छे तेम मिथ्या प्रपंचनो आश्रय जे आत्मा, तेनुं सामान्य सत्स्वरूप,

प्रपंचनो आधार छे; अने असंगत्वादि विशेषरूप अधिष्ठान छे. ए रीतिए आधार अने अधिष्ठाननो किंचित् भेद, सर्वज्ञात्मा नामे मुनिए (संक्षेपशारीरक ग्रंथमां) प्रतिपादन कर्यो छे. ५२.

१५०. शिष्य उवाच.

(जगत्ना अधिष्ठान आत्माथी द्रष्टा भिन्न होवो जोइये.)

दुहो.

भगवन्! मिथ्या जगत्नो, द्रष्टा को कहिये य;
अधिष्ठान, आधार जे, द्रष्टा थाय न तेय. ५३.

अर्थ स्पष्ट. भाव आ छेः-जगत्नो आधार अने अधिष्ठान आत्मा छे, पणी जगत्नो द्रष्टा (देखनार) आत्माथी भिन्न कहो जोइये; जेम सर्पनो आधार अने अधिष्ठान जे रज्जु, तेनाथी भिन्न पुरुष, सर्पनो द्रष्टा छे. ५३.

१५१. श्रीगुरुरुवाच.

(सर्वत्र कल्पितनुं अधिष्ठान ज द्रष्टा छे.)

चोपाई.

मिथ्या वस्तु जगत्मां जे छे, अधिष्ठानमां कल्पित ते छे;
अधिष्ठान ते द्विविध पीछाणो, चेतन एक, बीजुं जड मानो. ५४.
अधिष्ठान जड वस्तु ज्हां छे, द्रष्टा तेथी भिन्न तहां छे,
ज्हां होय चेतन आधार, तहां भिन्न द्रष्टा नहि धार. ५५.

अर्थ स्पष्ट. भाव आ छेः-ज्यां जड अधिष्ठान होय, त्यां अधिष्ठानथी भिन्न द्रष्टा होय छे ज्यां चेतन अधिष्ठान होय, त्यां अधिष्ठान ज द्रष्टा होय छे, भिन्न (द्रष्टा) नहि. ५५.

दुहो.

चेतन, मिथ्या स्वप्ननुं, अधिष्ठान निर्धार;
तेह ज द्रष्टा, भिन्न नहि; तेम ज जगत् विचार. ५६.

---

५७. शंकरना प्रशिष्य अने देवेश्वरना शिष्य सर्वज्ञात्मन् मुनि. एमना समयमां मनुकुलादित्य राजा हता.

टीकाः—जेम स्वप्ननुं अधिष्ठान साक्षिचेतन छे, ते ज (साक्षिचेतन) स्वप्ननो द्रष्टा छे; तेम जगत्नुं आत्मा ज अधिष्ठान छे, ते ज (आत्मा) द्रष्टा छे. ए शंका अने समाधान, स्थूलदृष्टिए रज्जुने सर्पनुं अधिष्ठान मानीने, कह्यां छे. अने सिद्धान्तमतमां तो सर्पनुं अधिष्ठान साक्षिचेतन छे, ते ज द्रष्टा छे. एथी सर्व कल्पितनो अधिष्ठान ज द्रष्टा छे. शंकासमाधान बने नहि. ५६.

१५२. दुहो.

इम मिथ्या संसार-दुःख, थाय तुमां भ्रमभान;
तेनी शी निवृत्ति तुं, इच्छुं शिष्य सुजान. ५७.

टीकाः—हे शिष्य ! ए रीतिए तुं-विषे संसाररूपी दुःख मिथ्या ज भ्रान्तिथी प्रतीत थाय छे. ते मिथ्यानी निवृत्तिनी इच्छा बने नहि. दृष्टान्तः-जेम बाजीगरे (मायिके) मंत्रना बलथी कोई पुरुषने मिथ्या शत्रु देखाड्यो होय, तेने मारवाविषे ते पुरुष उद्योग नथी करतो. तेम मिथ्या संसारनी निवृत्तिनी इच्छा बने नहि ५७.

१५३. शिष्य उवाच.

(मिथ्या संसार पण दुःखनो हेतु छे तेथी तेनी निवृत्तिनो उपाय इच्छे छे.)

चोपाई.

यद्यपि जग मिथ्या गुरुदेव ज, तथापि हुं इच्छुं ते छेद ज;
स्वप्न भयानक जेने भासे, करी साधन जम तेने नाशे. ५८.
एवीं थाय जगहानि जेणे; कहो भगवन् उपाय ज तेने;
तमसमान सद्गुरु नहि अन्य ज, श्रवण फुंकी दे अन्य पंचक ज.५९.

टीकाः—हे भगवन् ! आपे कह्युं जे-'जगत् ताराविषे मिथ्यारूपे करीने छे अने सत्यरूपे करीने नथी.' ते यद्यपि

सत्य छे, तथापि हे भगवन्! ते मिथ्यारूपे करीने, या जे उपाये करीने, (जन्म) मरणादिक संसार माराविषे भान न थाय, ते उपाय आप कहो. अने आपे कह्युं हतुं जे 'मिथ्यानी निवृत्तिने अर्थे साधन जोइये नहि.' ते वार्ता पण सत्य छे. परंतु हे भगवन्! जेने मिथ्या पदार्थ पण दुःखना हेतु होय, तेने ए मिथ्या पण साधनेकरी दूर करवा योग्य छे. जेम कोई पुरुषने प्रतिदिन भयानक स्वप्न आवतां होय, ते मिथ्या पण छे, परंतु तेमने पण दूर करवाने, पादप्रक्षालन अने जप आदिक नाना साधनने अनुष्ठान करे छे. तेम आ संसार मिथ्या पण छे, परंतु जन्मादिक दुःखनो हेतु (संसार) मने प्रतीत थाय छे, एथी संसारनी निवृत्ति चाहुं छुं. आप कृपा करीने उपाय बतावो. ५९.

१५४. श्रीगुरुरुवाच.

सोरठो

ते में कह्युं वखाणी, जे साधन तें पूछियुं;
निज मन निश्चय आणी, रहे न रंचक खेद जग. ६०.

टीकाः—हे शिष्य! जगत्‌रूपी दुःखनी निवृत्तिनुं जे साधन तें पूछ्युं, ते (आत्मज्ञान छे ते) में तुने प्रथम ज (अङ्क ११५ अने १२३ मां) कही दीधुं. तेविषे तुं दृढ निश्चय कर. तेथी जगत्‌रूपी खेद रहे नहि. ६०.

दुहो

(संसारनिवृत्तिनो उपाय आत्मज्ञान छे.)

स्वात्माना अज्ञानथी, थाय प्रतीत जग खेद;
नासे तेना बोधथी, एम वदे मुनि-वेद. ६१.
जगत् हुंमां नहि ब्रह्म हुं, 'अहं ब्रह्म' ए ज्ञान;
शिष्य तने ते में कह्युं, अन्य उपाय न जाण. ६२.

टीकाः—हे शिष्य ! पोताना आत्मस्वरूपना अज्ञानथी जगत्-रूपी खेद प्रतीत थाय छे, ते *आत्मज्ञानथी* मटे छे. जे वस्तु जेना अज्ञानथी प्रतीत थाय, ते तेना ज्ञानथी मटे छे, ए *नियम छे. जेम रज्जुना अज्ञानथी सर्प प्रतीत थाय छे,* ते रज्जुना बोधथी मटे छे; तेम आत्मज्ञानथी जगत् मटे छे. ते आत्मज्ञान अमे कही दीधुं. 'जगत् तो माराविषे त्रण कालमां 'छे नहि, केमके मिथ्या छे. जे मिथ्यावस्तु होय छे ते अधि-'ष्ठाननी हानि करे नहि. जेम मरीचिकानुं (झांझवानुं) जे 'जल छे, ते पृथिवीने भीनी न करे; तेम जगत् प्रतीत पण 'थाय छे परंतु मिथ्या छे, कंई मारी हानि करवाविषे समर्थ 'छे नहि. अने (ब्रह्म हुं छुं अने) हुं सत्-चित्-आनंदरूप 'ब्रह्मस्वरूप छुं.' एवो जे निश्चय, तेनुं नाम **ज्ञान** छे. ते ज मोक्षनुं साधन छे. अन्य कोई नथी. ते ज्ञान में प्रथम उपदेश करी दीधुं. ६२.

(ज्ञानथी ज अज्ञाननो नाश थाय छे, कर्मउपासनाथी नहि.)

१५५. दुहो.

कर्म-उपासनथी नहि, जग निदान-तम नाश।
अंधकार जम गृहविषे, जाय न विना प्रकाश. ६३.

टीकाः—हे शिष्य ! जगतनुं 'निदान,' नाम उपादानकारण (जे) 'तम' नाम अज्ञान छे, ते अज्ञानना नाशथी (अज्ञानना कार्यरूप) जगतनो पोतानी मेळे नाश थई जाय छे. केमके, उपादाननो नाश थया पछे कार्य रहे नहि. ते अज्ञाननो नाश केवल ज्ञानेकरीने छे, कर्म अने उपासनाएकरीने नाश

---

९८. अभेद बोधनी दृढताद्वारा परोक्षता अने परिछिन्नता भ्रान्तिनी निवृत्ति-अर्थे ए बे वाक्योमां ओतप्रोत भाव दर्शाव्यो छे. एने (परस्पर) अन्वय अथवा व्यतिहार पण कहे छे.

थनो नथी. केमके अज्ञाननुं विरोधि ज्ञान छे; कर्मउपासना विरोधि नथी. दृष्टान्तः-जेम गृहनेविषे जे अंधकार छे, ते कोई (अन्या) क्रियाथी दूर थाय नहि, केवल प्रकाशेकरी दूर थाय छे; तेम अज्ञानरूप जे अंधकार छे, ते ज्ञानरूप प्रकाशेकरी दूर थाय छे; अन्य कोई साधनेकरी नथी थतो. ६३.

(ए प्रकारे उपदेशकरी संशय होय ते पूछवा शिष्यने गुरु सूचवे छे.)

दुहो.

कहो शिष्य उपदेश में, जगभंजक मन धारी;
जे एमां संशय रह्यो, ते तुं पूछ विचारी. ६४

१५६. शिष्य उवाच.

(शिष्यना संशय.)

चोपाई.

भो भगवन ! जे कंई तम भाख्युं, ते सउ सत्य जाणी मन राख्युं;
जग निदान अज्ञान बताण्युं, तेनुं भंजक ज्ञान पिछाण्युं. ६५.
ज्ञानरूप वर्णन वळी कीधुं, जगमिथ्या ते में ग्रही लीधुं;
सुखस्वरूप आतमा परकाश्यो, आप दयाथी मुजने भाश्यो. ६६.
वळी भाख्युं 'तुं ब्रह्म स्वरूप' ते में लह्यो न भेद अनूप;
एमां मुज शंका इक आवे, जीवब्रह्मनो भेद जणावे. ६७.

टीकाः—हे भगवन् ! आपे कह्युं जे ते आपनां वचन हुं सत्य जाणुं छुं. आपे जे कह्युं 'जगत्नुं कारण अज्ञान छे, ते 'अज्ञानने नाश करीने, जगत्नी निवृत्ति ज्ञानेकरीने थाय छे.' ते वार्त्ता में जाणी. ते ज्ञाननुं स्वरूप आपे कह्युंः—'जगत् 'मिथ्या छे (१), अने जीव आनंदस्वरूप छे (२), ते (जीव) 'ब्रह्मथी भिन्न नथी' 'किन्तु ब्रह्मरूप छे (जीव ब्रह्म बंने एक 'छे.) (३), एवा निश्चयनुं नाम ज्ञान छे. तेनेविषे जगत्

'मिथ्या छे (१), अने जीव आनंदस्वरूप छे (२)', ए (बे) वार्त्ता में जाणी, परंतु 'जीव ब्रह्म बन्ने एक छे' ए (३) वार्त्ता (यथार्थ) नथी जाणी. केमके जीवब्रह्मना भेदने जणाववावाळी शंका मारा हृदयमां स्फुरे छे ६७

(जीव ब्रह्ममां भेद छे एथी एकता बने नहि)

१५७. (प्रमेयगत संशय.)

चोपाई

पुण्यपापनो छुं हुं कर्त्ता, जन्ममरण ने सुखदुःख धर्त्ता,
वळी अनेक भाते जग भासे, चाहुं ज्ञान अज्ञान ज नासे ६८.
जे एथी विपरीत स्वरूप तेने ब्रह्म कहे मुनिभूप,
कहो एकता क्यम करी जाणुं रुप विरुद्ध हृदयमां मानुं. ६९.

टीका.—हे भगवन् ! हुं पुण्यपापनो कर्ता छुं अने तेमनुं जे फल, जन्ममरण अने सुखदुःख, तेमने धारण करुं छुं. अने नाना प्रकारना जगत् मारेविषे प्रतीत थाय छे अने जगतनुं कारण जे अज्ञान छे तेने दूर करवाने हुं ज्ञान इच्छुं छुं अने ब्रह्मविषे न पुण्य छे, न पाप छे, न जन्म छे न मरण छे, न सुख छे, न दुःख छे, अन्य कांई क्लेश ब्रह्मविषे नथी। अने ज्ञाननी इच्छा छे नहि एथी ब्रह्मनुं अने मारुं स्वरूप परस्पर विरुद्ध छे, एथी बन्नेनी एकता बने नहि यद्यपि मारेविषे पण जन्मादिक संसार परमार्थरीते छे नहि। तथापि मिथ्या जे जन्मादिक छे ते मने भ्रान्तिए प्रतीत थाय छे। अने ब्रह्ममां नथी एथी एटलो भेद छे, एकता बने नहि ६९.

१५८. (प्रमाणगत संशय.)

चोपाई

एणा गुरु बीजो वळी संशय, जीवब्रह्मएकत्व प्रमाणाय।
कह्यं पूर्वमां सम ते एसी, फल मागे हर बीजो स्वच्छ ७०

प्रकाश, भोगरहित, असंग, येद्वचन ए कहे प्रसंग;
कर्म-उपासन वळी बहु भाखे, जीव ब्रह्म एथी ये राखे. ७१.

टीकाः—हे गुरो ! मने एक अन्य संशय छे, ते आप सांमळो. केवो ए संशय छे ! जेथी जीवब्रह्मनी एकतानो निश्चय 'प्रणंशय' नाम दूर थई जाय (छे). ते संशय हुं आपने कहुं छुं, आप सांमळीने ते संशयने दूर करो. वेदविषे मे एवुं दीठुं छे केः-'एक बुद्धिरूपी वृक्षमां बे पक्षी छे, ते बंने 'समान छे. तेओमांथी एक तो कर्मनां फळने भोगवे छे. एक 'स्वच्छ'-नाम शुद्ध छे, भोगरहित छे, असंग छे, अने ते 'भोगववावाळाने प्रकाशे छे.'

एओनेविषे (भोग) भोगववावाळो जीव प्रतीत थाय छे, अने बीजो परमात्मा प्रतीत थाय छे. एथी एमनी एकता बने नहि.

अने वेदविषे कर्म अने उपासना बहुप्रकारनां कह्यां छे, ते जीवब्रह्मनी एकताविषे निष्फल थई जशे. केमके, आप जीवब्रह्मनी जे एकता कहो छो, ते, ब्रह्मविषे जीवना स्वरूपनो अंतर्भाव कहो छो अथवा जीवविषे ब्रह्मना स्वरूपनो अंतर्भाव कहो छो ? जो कदाचित् ब्रह्मविषे जीवना स्वरूपनो अंतर्भाव कहेशो तो जीवने, ब्रह्मरूप होवाथी, अधिकारीनो अभाव थशे, एथी कर्म अने उपासना निष्फल थशे. अने जो जीवविषे ब्रह्मना स्वरूपनो अंतर्भाव कहेशो, तो ब्रह्मने, जीवरूप होवाथी, जेनी उपासना कराय छे, ते उपास्यनो, अभाव थशे; एथी उपासना निष्फल थशे, अने कर्मनां फल देवावाळो जे परमात्मा (ईश्वर) तेनो अभाव थशे; एथी कर्म निष्फल थशे. अने मीमांसक जे कहे छे केः-'कर्म 'ज ईश्वर छे, तेमनाथी ज फल थाय छे.' ते वार्त्ता समीचीन

(सम्यक्) नथी. केमके, जे कर्म छे ते जड छे, तेमने फल देवानुं सामर्थ्य बने नहि; एथी कर्मनुं फल ईश्वर ज दे छे. ए रीतिए परमात्मा अने जीवनी एकता बने नहि. ७१.

१५९. श्रीगुरुरुवाच.

(शिष्यशंकाना समाधानार्थे चार आकाश अने चार चेतननी व्यवस्था दर्शावे छे.)

चोपाई.

शुण शिष्य ऐक कहु विचार, थाय जेथी शंका निस्तार;
घटाकाश एक, जलआकाश, मेघाकाश, महा-आकाश. ७२.
चार भेद ए नभना जाण, वळी चेतनना तथा पीछाण;
एक कूटस्थ, जीव वळी कहिये, ईश, ब्रह्म, मन जाणी रहिये. ७३.
ज्यारे रूप तेमनुं तुं जाणीश, त्यारे निज शंका सउ भागीश;
एथी शुण तेनो अब भेद, शुणे जाय जन्मादिक खेद. ७४.

टीकाः—जे तने शंका थई छे, तेमनो 'निस्तार' नाम निराकरण जेथी थाय, ते विचार हुं कहुं छुं. तुं सांभळ. जेम एक आकाशमां चार भेद छेः-एक (१) घटाकाश छे, अने एक (२) जलाकाश छे, अने (३) मेघाकाश छे, अने (४) महाकाश छे; तेम एक चेतनना चार भेद छेः-एक (१) कूटस्थ छे, अने (२) जीव छे, अने (३) ईश्वर छे, अने (४) ब्रह्म छे. ए चारे भेद, आकाशनी पेठे, चेतनविषे छे. हे शिष्य ! ज्यारे एमना स्वरूपने तुं भला प्रकारे पीछाणीश, त्यारे पोतानी शंकानुं तुं पोते ज समाधान जाणी लइश. एथी हुं एमनुं स्वरूप वर्णन करूं छुं. तुं सांभळ. जेने सांभळीने संशयरहित ज्ञान थईने जन्मादिक दुःखनो नाश थशे. ७४.

(चतुर्विधआकाश.)

१६०. अथ घटाकाशवर्णन.

दुहो.

जलपूरित घटने ज देय यावत् नभ अवकाश;
युक्तिनिपुण पंडित कहे, तेने घट आकाश.

टीकाः—हे शिष्य ! जले भरेला घटने जेटलुं आकाश अवकाश दे छे, तेटला आकाशने पंडितजन **घटाकाश** कहे छे. ७५

१६१. अथ जलाकाशवर्णन.

दुहो.

जलपूरित घटमां ज वळी, छे नभनो आभास,
घटाकाशयुत विज्ञ जन भाषे जल-आकाश. ७६.

टीकाः—हे शिष्य ! जले भरेलो जे घट छे, तेनेविषे नक्षत्रादिसहित (उपरना) आकाशनुं प्रतिबिंब थाय छे, ते (जल विना प्रतिबिंब थाय नहि एथी घटमांना जलसहित) आकाशनुं प्रतिबिंब, अने घटाकाश (घट जेमां रहेलो छे ते अने घटना अन्तरनुं आकाश) ए बे (आकाश) मळेलां सते **जलाकाश** कहेवाय छे. ७६.

एनाविषे कोई शंका करे छे केः-आकाशनुं प्रतिबिंब नथी थतुं. किंतु केवल नक्षत्रादिकनुं ज प्रतिबिंब थाय छे. केमके

९९. अहिं आ शंका छे,—(१) घटथी बहिर जे आकाश छे ते 'महाकाश' छे. तेथी भिन्न घटना अन्तरमां जे आकाश छे ते 'घटाकाश' छे. ए घटाकाशनुं सुगम लक्षण छे. ते छोडीने,—(२) जलपूरित घटने जेटलु महाकाश अवकाश दे तेटलुं आकाश घटाकाश छे,—ए रीतिए लक्षण करवानुं शु प्रयोजन छे ? एनुं आ समाधान छे. प्रथम (१) कह्याप्रमाणे लक्षण करिये तो घटना कपालनी जेमां स्थिति छे ते आकाशने पांचमु 'कपालाकाश' कहेवु पडे. ते शास्त्रथी विरुद्ध छे. एथी द्वितीय (२) लक्षण करवुं उचित छे. पं. पी. पु.

रूपवान् पदार्थनुं प्रतिबिंब थाय छे, आकाश स्वरूपेकरीने रहित छे, एथी आकाशनुं प्रतिबिंब बने नहि. एवी शंका करे छे तेना समाधानना—

दुहा.

जो जलमां आकाशनुं, प्रतिबिंब नव होय;
थोडामां गंभीरता, प्रतीत थाय क्यम् सोय. ७७.
एथी जलमां मानिये, व्योमाभास सुजाण;
ज्यम रूपरहित शब्दथी, प्रतिध्वनिनुं भान. ७८.

टीका:—जो जलविषे आकाशनुं प्रतिबिंब न होय तो जानुपरिमाण जलविषे, मनुष्यपरिमाण गंभीरतानी जे प्रतीति थाय छे, ते नहि थवी जोइये, (ते गंभीरतानी प्रतीति थाय छे.) एथी आकाशनुं प्रतिबिंब अंगीकार करवुं योग्य छे. अन्य जे कहे छे के,–'रूपरहित पदार्थनुं प्रतिबिंब नथी थतुं' ते पण नियम नथी. केमके, रूपरहित जे शब्द छे, तेनो प्रतिध्वनि थाय छे ते शब्दनुं प्रतिबिंब छे. एथी रूपरहित जे आकाश छे तेनुं पण प्रतिबिंब बने छे ७८.

१६२. अथ मेघाकाशवर्णन.

दुहो.

जे अवकाश दे मेघने वळी तेमां आभास;
ते बंनेने केह छे, बुधजन मेघाकाश.

टीका:—मेघ जे वादळ, (तेओने जे आकाश) अवकाश दे छे, अने मेघना जलमां जे (ते मेघोना उपरना) आकाशनुं प्रतिबिंब छे, ते बंने(आकाश)ने मेघाकाश कहे छे. बने विषे कोई शंका करे छे जे, मेघ तो आकाशविषे छे, तेओमां जल अने आकाशनुं प्रतिबिंब, दीठा विना, केम जाण्युं जाय छे ?

तेना समाधाननो दुहो.

घनें मेघ अनंतजल, सजल ज हेतु एथी;

जल नहि नभ आभासविण प्रतिबिंब सह तेथी　　८०.

टीकाः—यद्यपि मेघविषे, जल अने आकाशनुं प्रतिबिंब प्रत्यक्ष छे नहि, तथापि अनुमाने करीने जाण्युं जाय छे. मेघ जे जलनी वृष्टि करे छे, एथी एवुं अनुमान थाय छे जे, मेघो-विषे जल छे. जो मेघोविषे जल न होय तो जलनी वृष्टि मेघोथी न थाय. अने मेघोविषे जल छे; ते, आकाशना प्रति-बिंब सहित छे; केमके जल होय छे ते आकाशना प्रति-बिंब विना नथी हतुं. एथी मेघोविषे जे जल छे, ते पण आकाश-ना प्रतिबिंबवाळुं छे. ए रीतिए मेघविषे, जल अने आकाश-ना प्रतिबिंबनुं अनुमान थाय छे. ८०.

१६३. अथ महाकाशवर्णन.

दुहो.

बाह्याभ्यन्तर एकरस, व्यापक जे नभरूप;
महाकाश तेने कहे, कोविद बुद्धि अनूप　　८१.

टीकाः—(ब्रह्माण्डना) बहिर् अने अन्तर् सर्वत्र एकरस व्यापक जे 'नभ (रूप)' नाम आकाशनुं स्वरूप छे, तेने 'अनूप' नाम अद्भुत बुद्धिमान् पंडित, महाकाश कहे छे.　　८१.

१६४. चतुर्विध चेतन.

दुहो.

चार भांति नभनां कह्यां लक्षण श्रुति अनुसार;
अब चेतननां शिष्य सुण, जेथी मळे विचार.　　८२.

टीकाः—हे शिष्य ! चार प्रकारनां आकाशनां लक्षण कह्यां. हवे चार भातिनां चेतननां लक्षण सांभळ; जेओने सांभळेथी 'विचार' नाम विचारनुं फल ज्ञान प्राप्त थाय.　　८२.

१६५. अथ (घटाकाशसमान) कूटस्थ(चेतन)वर्णन.

दुहो.

मति वा व्यष्टिअज्ञाननुं अधिष्ठान चैतन्य;
घटाकाश सम मानिये, ते कूटस्थ अजन्य. ८३.

टीकाः—बुद्धि(नुं) अथवा व्यष्टिअज्ञाननुं जे अधिष्ठान-चेतन छे, ते कूटस्थ कहेवाय छे. जे पक्षमां बुद्धिसहित चेतन जीव छे, ते पक्षमां बुद्धिनुं (जे) अधिष्ठान (छे ते) 'कूटस्थ' कहेवाय छे; अने जे पक्षमां व्यष्टिअज्ञानसहित चेतन जीव कहेवाय छे, ते पक्षमां व्यष्टिअज्ञाननुं जे अधिष्ठान छे, ते कूटस्थ कहेवाय छे. आ स्थानमां आ सिद्धान्त छेः-जीवत्वनुं जे विशेषण छे तेना अधिष्ठाननुं नाम कूटस्थ कहेवाय छे. ते कूटस्थ 'अजन्य' छे (नाम) उत्पत्तिथी रहित छे. एनो अभिप्राय आ छेः-ब्रह्मथी भिन्न जेम चिदाभास उत्पन्न थाय छे तेम, आ उत्पन्न नथी थयो किन्तु ब्रह्मरूप ज छे. जेम घटाकाश महाकाशथी भिन्न नथी थई गयुं, किन्तु महाकाशरूप छे. ए जे कूटस्थ छे ते ज आत्मपदनो लक्ष्यअर्थ छे; अने एने ज प्रत्यक् (आत्मा) कहे छे; अने एने ज निजरूप कहे छे; अने ए ज जीवसाक्षी छे. ८३.

१६६. अथ (जलाकाशसमान) जीव(चेतन)वर्णन.

दुहो.

कामकर्मयुत बुद्धिमां, जे चेतन-प्रतिबिंब;
तेने जीव विद्वान् कहे, जलनभतुल्य सबिंब. ८४.

टीकाः—नाना काम (वासना) अने (अदृष्ट) कर्मसहित

---

१००. कूटस्थना पर्यायः—आत्मपदनो लक्ष्यार्थ, प्रत्यगात्मा, निजरूप, जीवसाक्षी, अन्तर्मा कहेशे.

१०१. व्यष्टि ए ज अज्ञान. प्रतिजीवगत भेद—अज्ञान.

जे बुद्धि छे, तेमां जे चेतननुं प्रतिबिंब छे, तेने 'विद्वानो' नाम ग्रंथोमां जीव कहे छे. तेओ केवळ प्रतिबिंबमात्रने जीव नथी कहेता, किन्तु जेम घटाकाशसहित आकाशना प्रतिबिंबने जलाकाश कहे छे, तेम 'सबिंब' नाम बिंब जे कूटस्थ तेमसहित चिदाभासने जीव कहे छे. पर्ण आ सिद्धान्त थयोः—बुद्धिमां जे चिदाभास (१) अने बुद्धिनुं अधिष्ठानचेतन (२) ए बेनुं नाम जीव छे. ८४.

१६७. दुहो.

अधिष्ठान कूटस्थथी, थाय 'आभास' बहाळ;
रक्तपुष्प उपर धर्यो, स्फटिक थाय जम लाल. ८५.

टीकाः—पूर्व दुहाविषे, बिंब जे कूटस्थ, ते(कूटस्थ)सहित आभासने जीव कह्यो, पर्ण आ प्रतीति थाय छेः-जे बुद्धिमां प्रतिबिंब छे ते कूटस्थनुं छे, अने बहिरना ब्रह्मचेतननुं नहि, केमके, जेनुं प्रतिबिंब होय ते बिंब कहेवाय छे. ते कूटस्थने बिंब कह्यो, पर्ण तेनुं प्रतिबिंब छे, ए प्रतीति थाय छे. ते आ दुहावडे प्रतिपादन करे छे. जेम मोटा लाल पुष्प-उपर मूकेलो जे श्वेत स्फटिक (पारदर्शक पथ्थर) छे, तेविषे

१०२. विविधवृत्तिओना शिष्योने सुगमना माटे जीवनां थनक लक्षण कराय छेः-स्थूलदेहरूप घटमां नखशिखापर्यन्त भरेडं बुद्धिरूप जळ छे, ते बुद्धिरूप जळमां चेतननुं प्रतिबिंब (१) अने कूटस्थ (२) ए उभयनुं नाम जीव छे.

पंचदशीमां,-बुद्धि (१) अने तेमां स्थित चिदाभास (२) अने ए बंनेनुं अधिष्ठान कूटस्थ चैतन्य (३) ए त्रणना समूहने जीव कह्यो छे.

चिदाभाससहित बुद्धिविशिष्ट कूटस्थचेतन ए जीव छे. किंवा चिदाभासयुक्त अन्तःकरणसहित कूटस्थचैतन्य, ए जीव छे. अथवा अविद्यांश अने तेमां स्थित चिदाभास अने तेमनु अधिष्ठानकूटस्थ ए मिलीने जीव छे.

ईषत् (किंचित्) उद्भूत रजस्तमथी मलिनसत्त्वप्रधाना माया (अविद्या) जे मायीने (स्वनिष्ठ चिदाभासने) वश करे छे ते वशीकृत चैतन्य ए 'जीव' ते संसारी कर्ता, भोक्ता, संयोगी इत्यादि कहेवाय छे.

पुष्पनी लालीनी धमक होय छे, ते (धमक) लाल पुष्पनुं प्रतिबिंब छे; तेम कूटस्थने आश्रित जे बुद्धि; ते (बुद्धि) विषे कूटस्थना प्रकाशनी धमक होय छे. [जेम स्फटिक अत्यंत उज्ज्वल छे, तेम बुद्धि पण अत्यंत शुद्ध छे. केमके बुद्धि सत्त्वगुणनुं कार्य छे] एथी कूटस्थनी धमकनुं नाम प्रतिबिंब छे.

अथवा ब्रह्मचेतननुं प्रतिबिंब छे. जेम महाकाशनुं घटना जलमां प्रतिबिंब थाय छे, अने (घटना) अन्तर्ना आकाशनुं नहि, केमके जेटली गंभीरता जलविषे प्रतीत थाय छे, एटली गंभीरता अन्तर्ना आकाशमां छे नहि. ते गंभीरता आकाशनुं प्रतिबिंब छे, एथी ते बहिर्ना (महा)आकाशनुं प्रतिबिंब छे.

जे आ कहे छेः–'व्यापक चेतननुं प्रतिबिंब बने नहि;' ते शंका आकाशना दृष्टान्तथी दूर थाय छे, केमके जेम आकाश पण व्यापक छे; अने तेनुं प्रतिबिंब थाय छे, तेम व्यापकचेतननुं पण प्रतिबिंब बने छे.

अने जे कहे छे केः–'रूपवान् पदार्थनुं रूपवान् पदार्थमां प्रतिबिंब थाय छे,' ते पण नियम छे नहि; केमके, रूपरहित शब्दनुं रूपरहित आकाशमां प्रतिबिंब थाय छे. ए पूर्वे कहि आव्या एथी चेतननुं प्रतिबिंब बने छे.

ए रीतिए बुद्धिमां आभास अने बुद्धिनुं अधिष्ठानचेतन ए बंनेनुं नाम जीव छे, एम कह्युं; ते जीव, त्वंपदनो वाच्य[103] (अर्थ) कहेवाय छे; अने तेमां थी चिदाभासनो (बुद्धिमांनो आभास) त्याग करीने केवल जे कूटस्थ छे. ते त्वंपदनो लक्ष्य[104] (अर्थ) कहेवाय छे. अने अहं शब्दनो वाच्य पण जीव छे, केवल कूटस्थ लक्ष्य छे.

१०३. तु ए पदनो वाणीएकरी साक्षात् जाणवायोग्य अर्थ.
१०४. शब्दनो परपरासंबंध जे लक्षणा तेणेकरी जाणवा योग्य अर्थ.

१६८. दुहा.

बुद्धिमांहि आभास जे, पुण्य पापफल-भोग;
गमन आगमन ते करे, नहि चेतनमां योग. ८६.

मिथ्या व्यम घटसंग नम, करे क्रिया बहु भात;
(पण) घटाकाश अक्रिय सदा, रहे एकरस शान्त. ८७.

टीकाः—यद्यपि जीव (ए) नाम चिदाभास अने कूटस्थ बंनेनुं छे, तथापि जीवरूपना जे धर्म छे, ते सर्व आभासविषे छे. पुण्य अने पाप, अने पुण्यपापनां फल—सुखदुःख, अने लोकान्तरविषे गमन, अने आ लोकविषे आगमन,-ए आदि लईने सर्व, आभाससहित-बुद्धि करे छे; अने कूटस्थ नथी करतो. कूटस्थविषे केवल भ्रान्तिए (भ्रान्तिमानने) प्रतीति थाय छे. ते भ्रान्तिए प्रतीति पण बुद्धिसहित आभासने थाय छे; कूटस्थने नहि. केमके 'कूट' जे लुहारनी एरण, तेनी पेठे निर्विकाररूपे 'स्थित' होय, ते कूटस्थ कहेवाय छे. अथवा 'कूट' नाम मिथ्या जे बुद्धि अने चिदाभास, तेमनाविषे असंगरूपथी 'स्थित' होय, ते कूटस्थ कहेवाय छे. एथी कूटस्थविषे भ्रान्ति आदिक बने नहि, किन्तु चिदाभासमां बने छे.

१६९. अने अत्यंत विचारेकरी देखिये तो, पुण्य-पाप, सुखदुःख, लोकान्तरमां गमन अने आगमन, केवल बुद्धिमां छे, आभासमां पण नहि; बुद्धिना संयोगेकरी आभासमां छे. जेम जलसहित जे घट छे, ते वांको थाय छे अने सीधो थाय छे, अने जाय छे आवे छे, अने तेना संबंधेकरी आकाशनो आभास संपूर्ण क्रिया करे छे, अने (आभास) स्वतंत्र कशुं पण नथी करतो; तेम कामकर्मरूपी जलथी भर्यो जे बुद्धि-रूपी घट छे, ते पुण्यथी आदिलईने संपूर्ण विकार धारे छे,

अने तेना संबंधेकरी चिदाभास धारे छे, पण कूटस्थ सर्व विकारथी रहित छे. जेम जळपूरितघटना विकारथी रहित घटाकाश छे, तेनी पेठे कूटस्थने जाण, एथी जीवत्वना धर्म चिदाभासमां छे; तथापि अज्ञानेकरी कूटस्थमां प्रतीत थाय छे. एथी बुद्धिविषे कूटस्थसहित जे चिदाभास ते जीव कहेवाय छे. ८७.

१७०. ए जे जीवनुं स्वरूप वर्णन कर्युं, एनेविषे प्राज्ञनी हानि थाय छे. केमके, जे सुषुप्तिना अभिमानी जीवनुं नाम **प्राज्ञ** छे, ते सुषुप्तिविषे बुद्धिनो अभाव थाय छे. एथी बुद्धिमां आभास पण बने नहि. एथी प्राज्ञना स्वरूपनुं प्रतिपादक जे शास्त्र छे, तेनो विरोध थशे. ए कारणथी जीवनुं स्वरूप बीजुं प्रतिपादन करे छे.

(व्यष्टि अने समष्टि अज्ञान.)

दुहो.

या व्यष्टि अज्ञानमां, चिदाभास जे रेह;
अधिष्ठान कूटस्थयुत, जीव पद तेने केह. ८८.

टीकाः—(प्रत्येक जीवसंबंधि) अज्ञानना अंशनुं नाम **व्यष्टि-अज्ञान** कहेवाय छे; अने संपूर्ण अज्ञाननुं नाम **समष्टि-अज्ञान** छे. ते अज्ञानना अंशविषे जे चेतननो आभास, अने अज्ञानना अंशनुं अधिष्ठान जे कूटस्थ छे, ते बंनेने **जीवपद** कहे छे. एथी प्राज्ञनो अभाव नथी थतो.

---

१०५. जेम लोढानी कढाईमां तपावेलुं जे तैल तेमां आकाशनुं प्रतिबिंब होय छे, ए समय अग्निनो ताप तैलनेंज छे, तद्वत आकाशना प्रतिबिंबने नथी. तो तैलपूरित कढाईना अधिष्ठानरूप आकाशने तो क्यांथी ज होय. तेम पुण्यपापादिरूप जे संसार छे ते केवल बुद्धिमां छे. आभासमां पण नथी, तो, तेमनुं अधिष्ठान कूटस्थमां तो क्यांथी ज होय. परंतु तेनी कूटस्थमां प्रतीति ए अज्ञानकृत भ्रान्ति छे. पं. पी. पुं.

केमके, सुषुप्तिविषे अज्ञान रहे छे. सुषुप्तिविषे चेतनना प्रतिबिंब-सहित जे अज्ञाननो अंश छे, ते ज बुद्धिरूपने प्राप्त थाय छे, अने चेतननुं प्रतिबिंब साथे ज होय छे. ते चिदाभाससहित बुद्धिमां पुण्यादिक संसार प्रतीत थाय छे. ए अभिप्रायेकरी शास्त्रोविषे क्यांक बुद्धिने ज जीवत्वनो उपाधि वर्णन करायो छे. पण विचारदृष्टिए जीवत्वनो उपाधि अज्ञान छे. ८८

१७१. अथ (मेघाकाश समान) ईश्वर(चेतन)वर्णन.

दुहो.

चिद्-छाया मायाविषे, अधिष्ठान संयुक्त;
मेघव्योम सम ईश ते, अंतर्यामी, मुक्त. ८९.

टीकाः—मायाविषे, जे चेतननी छाया नाम (मायासहित) आभास, अने मायानुं अधिष्ठान चेतन, (ए) बंनेने ईश्वर कहे छे. ते ईश्वर मेघाकाश सम छे. ते ईश्वर अंतर्यामी छे, केमके सर्वने अंतर् प्रेरणा करे छे, एथी अन्तर्यामी छे. अने

---

१०६. ए जीवनुं स्थाप छे. एमां बुद्धि किंवा बुद्धिना संस्काररूप घट छे, तेमां व्यष्टिअज्ञानरूप जल भर्युं छे, तेमां चेतननु प्रतिबिंब छे. अथवा व्यष्टिअज्ञान-रूप घट छे, तेमा मलिनसत्त्वरूप जल भर्युं छे, तेमां चेतननु प्रतिबिंब छे, ते *अधिष्ठानचेतनसहित जीव कहेवाय छे.* प. पी. पु.

१०७ अन्यथामानहेतुत्वादियं मायेति कीर्तिता ॥ १८ ॥
आत्मतत्त्वतिरस्कारात् तम इत्युच्यते बुधैः ।
विद्यानाश्यत्वतोऽविद्या मोहस्तत्कारणत्वतः ॥ १९ ॥
सद्वैलक्षण्यदृष्ट्येयमसदित्युदिता बुधैः ।
कार्यनिष्पत्तिहेतुत्वात्कारणं प्रोच्यते बुधैः ॥ २० ॥
स्कंदपुराणान्तर्गता सूतसंहिता प्रथमखण्ड. अ ८.

अन्यथामानने हेतु होवाथी ए 'माया' एम कहेवाय छे, आत्मतत्त्वना तिर-स्कार(आवरण ढांकवा)थी 'तम' एम बुद्धिमन्तोए कहेवाय छे, विद्याएकरी नाश थवा योग्य होवाथी 'अविद्या,' ते(आवरण)नुं कारण होवाथी 'मोह,' सत्थी विलक्षणतानी दृष्टिए 'असत्' एम बुद्धिमानोए कहेवाई छे. कार्यनी निष्पत्ति (उत्पत्ति)नो हेतु होवाथी 'कारण (प्रकृति) कहेवाय छे.

सदामुक्त छे, केमके तेने पोताना स्वरूपमां आवरण नथी, एथी जन्ममरणादिक बंधनी प्रतीति नथी, ए हेतुथी ईश्वर नित्यमुक्त छे अने (ईश्वर) सर्वज्ञ छे, (केमके) सर्व पदार्थोने जाणवावाळो छे तेने विषे आ हेतु छे -मायाविषे शुद्धसत्त्वगुण छे. [तमोगुण अने रजोगुणथी दबायलो सत्त्वगुण न होय, किन्तु तमोगुण अने रजोगुणने पोते दबाववावाळो होय ते **शुद्धसत्त्वगुण** कहेवाय छे.] सत्त्वगुणथी ज्ञाननी उत्पत्ति थाय छे, एथी प्रकाशस्वभाववान् सत्त्वगुण छे. एवो सत्त्वगुण वती मायाविषे जे चेतननो आभास तेने स्वरूपविषे अथवा अन्यपदार्थविषे आवरण संभवे नहि, एथी (ईश्वर) मुक्त छे अने सर्वज्ञ छे (केमके-)

अधिष्ठान जे चेतन छे, ते तो जीव अने ईश्वर बन्नेनेविषे बंधमोक्षभेदथी रहित छे (ते अधिष्ठानचेतन) आकाशना समान एकरस छे. परंतु आभासअंशविषे बंध मोक्ष छे. अधिष्ठानविषे, आभासने भ्रान्तिएकरी (बंधमोक्ष) प्रतीत थाय छे, एथी केवल आभासमां बंध मोक्ष छे तेविषे पण आटलो भेद छे -जे आभासमा आवरण छे, तेविषे बंध छे; जे-(आभास)विषे स्वरूपनुं आवरण नथी, ते मुक्त छे ईश्वरमां आवरण नथी, एथी ईश्वर सदा मुक्त छे. अने जीवविषे आवरण छे, (तेथी) ते बद्ध छे. [बद्ध नाम बंधायलो छे] केमके जे अविद्याना अंशमां चेतनना आभासने जीव कह्यो, ते अविद्यानो स्वभाव आवरण करवानो छे यद्यपि **अविद्या**, अने **अज्ञान**, अने **माया** एक ज वस्तुने एहे छे

१०८ ईश्वरनो माया उपाधि छे ते पारदर्शक काचना अतिमहान् घट जेवो छे जेमांथी सर्व जोई शकाय छे जीवनो अज्ञान उपाधि छे ते आवरण बहु ज न्हाना मृत्तिकाना घट जेवो छे, जेमांथी सर्व जाणी शकातुं नथी.

तथापि **शुद्धसत्त्वगुणनी** प्रधानताए **माया** कहेवाय छे, अने **मलिनसत्त्वगुणनी** प्रधानताए **अज्ञान** अने **अविद्या** कहे छे. [रजोगुण अने तमोगुणथी दबायलो जे सत्त्वगुण छे ते **मलिनसत्त्वगुण** कहेवाय छे.] एथी तमोगुण अने रजोगुणनी अधिकता होवाथी, अविद्यामां जे जीवनो आभास-अंश तेने, अविद्या, स्वरूपनुं आवरण करे छे, एथी जीवमां बंधन छे, अने ईश्वरमां नथी.

अधिष्ठानचेतनसहित मायामां जे आभासरूप **ईश्वर** छे, ते तत्पदनो वाच्य(अर्थ) कहेवाय छे. केवल अधिष्ठान-चेतन तत्पदनो लक्ष्य(अर्थ) छे. 'जे ईश्वर छे ते ज जगत्‌नी 'उत्पत्ति, पालन अने संहार करे छे;' ए संपूर्ण शास्त्रमां कह्युं छे, तेनो आ अभिप्राय छेः-चेतनअंश तो आकाशनी पेठे असंग छे. अने आभासअंश जगत्‌नी उत्पत्ति आदि करे छे, अने तेने ज (आभासने ज) विषे सर्वज्ञता छे. अने भक्तजन-नाउपर अनुग्रह (कृपानुं फल-उद्धार) जे करे छे ते पण केवल आभासअंश करे छे. अने जे कांई ऐश्वर्य छे ते केवल आभास-मां छे. अने चेतनअंश एकरस छे, एनेविषे सत्तास्फूर्ति देवाविना अन्य ऐश्वर्य बने नहि. ८९.

१५२. अथ (महाकाशसमान) ब्रह्म(चेतन)स्वरूपवर्णन.

दुहो.

अंतर् वहिर् एक रस, जे चेतन भरपूर;
विभु नभसम ते ब्रह्म छे, नहि समीप नहि दूर. ९०.

टीकाः—ब्रह्माण्डनी 'अंतर' नाम भीतर अने बहिर् जे महाकाशनी पेठे, भरपूर चेतन छे, ते ब्रह्म कहेवाय छे. ते ब्रह्म समीपे नथी अने दूरे नथी. केमके जे वस्तु आपणाथी भिन्न होय अने देशरूप उपाधिवाळुं होय. ते समीप अने

दूर कही शकाय छे. ब्रह्म (कोई वस्तुथी) भिन्न नथी, किन्तु सर्वनो आत्मा छे; अने देशादिक सर्व उपाधिथी रहित छे, एथी समीपे के दूर कह्युं जाय नहि. यद्यपि ब्रह्मशब्दनुं वाच्य सोपाधिक पण छे, केमके व्यापक वस्तुनुं नाम ब्रह्म छे. ते व्यापकता बे प्रकारनी छे,–एक तो **आपेक्षिकव्यापकता** छे, अने एक **निरपेक्षिकव्यापकता** छे. जे वस्तु कोई पदार्थनी अपेक्षाथी व्यापक होय, अने कोईनी अपेक्षाथी न होय, तेना(वस्तुना)विषे आपेक्षिकव्यापकता कहेवाय छे. जेम पृथिवी आदिनी अपेक्षाए माया व्यापक छे, अने चेतननी अपेक्षाए छे नहि; एथी **माया**विषे आपेक्षिकव्यापकता छे. अने जे वस्तु सर्वनी अपेक्षाए व्यापक होय, तेनेविषे जे व्यापकता, ते निरपेक्षिकव्यापकता कहेवाय छे. ते निरपेक्षिकव्यापकता चेतन(ब्रह्म) विषे छे, केमके चेतनना समान अथवा चेतनथी अधिक अन्य कोई व्यापक छे नहि; किन्तु चेतन ज सर्वथी व्यापक छे. एथी **चेतनविषे निरपेक्षिकव्यापकता** छे. ए बंने प्रकारनी व्यापकतासहित जे वस्तु छे, ते ब्रह्म शब्दनो वाच्य(अर्थ) छे. ते बंने प्रकारनी व्यापकता मायाविशिष्टचेतनविषे छे. केमके 'विशिष्टविषे जे मायाअंश छे, ते(माया)नेविषे तो आपेक्षिकव्यापकता छे, अने (विशिष्टविषे जे चेतनअंश छे ते) चेतनअंशविषे निरपेक्षिकव्यापकता छे. यद्यपि मायाविशिष्टचेतनविषे निरपेक्षिकव्यापकता बने नहि, केमके माया, चेतनना एकदेशविषे छे, ते मायाविशिष्टचेतनथी, शुद्धचेतननी व्यापकता अधिक छे; एथी शुद्धचेतनविषे निरपेक्षिकव्यापकता छे. तथापि मायाविशिष्ट जे चेतन छे ते, परमार्थदृष्टिएकरीने, शुद्ध(चेतन)थी भिन्न नथी, किन्तु शुद्धरूप ज छे. एथी मायाविशिष्टमां

पण जे चेतनअंश छे, तेनेविषे निरपेक्षिक ज व्यापकता छे. ए रीतिए मायाविशिष्ट ज ब्रह्मशब्दनुं वाच्य बने छे. अने शुद्धचेतन ब्रह्मशब्दनुं लक्ष्य छे. एथी ईश्वरशब्द अने ब्रह्मशब्द बंनेनो समान ज अर्थ प्रतीत थाय छे; भिन्न अर्थ नहि. तथापि ब्रह्मशब्दनो तो आ स्वभाव छेः-जे बहु स्थानविषे लक्ष्यअर्थने बोधन करे छे, अने कोइक स्थानविषे वाच्य अर्थने कहे छे. अने ईश्वरशब्दनो आ स्वभाव छे जेः-बहु स्थानमां वाच्य अर्थने बोधन करे छे. एटलो भेद छे. एथी लक्ष्य अर्थने लईने ब्रह्मशब्दनो अर्थ भिन्न निरूपण कर्यो छे. ९०.

(अंक १५८ मां शिष्ये शंका करेली तेनुं समाधान.)

१७३. दुहो

चार भात चेतन कयुं, तेमां मिथ्या जीव;
पुण्य-पापफल भोगवे, चित् कूटस्थ ते शिव. ९१.

टीकाः—हे शिष्य ! चार प्रकारनुं चेतन कह्युं, तेमां जीवना स्वरूपमां जे मिथ्या आभासअंश छे, ते पुण्यपाप करे छे, अने तेओनां फलने भोगवे छे; अने कूटस्थ जे चेतन छे ते 'शिव'नाम शिवरूप छे. ('शिव'नाम कल्याणनुं छे.) ९१.

एथी प्रथम जे शंका करी हती जेः-'बुद्धिरूपी वृक्षमां बे 'पक्षी छे,-एक परमात्मा अने (बीजो) जीव.' तेनुं आ उत्तर कह्युंः-परमात्मा अने जीवनुं ग्रहण नहि करवुं. किन्तु कूटस्थ तो प्रकाशमान छे, अने आभास भोगवे छे.

(जीवमांनो आभासअंश कर्म करे छे, अने तेनां फल भोगवे छे. ईश्वरमांनो आभासअंश फल दे छे.)

१७४. दुहो.

कर्मी छाया देय फल, नहि चेतनमां योग;
ते छे असंग एकरूप, जाणे भिन्न कुलोक. ९२.

टीकाः—जीवना स्वरूपमां जे चेतननी 'छाया' नाम आभासअंश छे, ते 'कर्मी' नाम कर्म करे छे. ते कर्म करवावाळाने, (ईश्वरना स्वरूपमां जे चेतननी) छाया जे ईश्वरनो आभासअंश छे, ते फल दे छे. [(दुहामां) 'छा या' शब्द-(छे ते)नो देहलीदीपक न्यायेकरीने पूर्वे उत्तर बंने पास संबंध छे. जेम देहलीनाउपर धरेलो जे दीपक छे ते बंने पासाने प्रकाशे छे, तेम 'छाया' कर्मी छे अने 'छाया' फल दे छे. (एम बंने पदमां 'छाया' शब्द आवे छे.)] पथी आ वार्त्ता सिद्ध थईः–जीवना स्वरूपमां जे आभासअंश छे, ते तो पुण्य-पाप करे छे, अने तेओनुं फल भोगवे छे. अने ईश्वरमां जे आभासअंश छे, ते कर्मनुं फल आपे छे. अने बंनेनेविषे जे चेतनअंश छे, ते-(चेतनअंश)मां कोई वातनो योग नथी. जीवमां जे चेतनअंश छे तेविषे तो कर्म अने फलनो योग नथी; अने ईश्वरमां जे चेतनअंश छे, तेमां फल देवानो योग नथी. ते (कर्म करवानो अने फल देवानो योग) चेतनमां जे कहे छे ते मूर्ख छे. केमके चेतन ते बंनेविषे असंग छे; अने एकरूप छे. चेतननमां भेद नथी. जीवचेतनने ईश्वरचेतनथी अथवा ईश्वरचेतनने जीवचेतनथी 'भिन्न' नाम जुदो जे जाणे, ते 'धुलोक' नाम निंदन करवायोग्य लोक छे. ए कहेवाथी बीजो जे प्रश्न कर्यो हतो केः–'जीव अने परमात्मानी एकता अंगीकार करवाथी कर्म अने उपासनानो प्रतिपादक वेद निष्फल 'थशे,' तेनुं उत्तर कह्युं जे,–जीव अने ईश्वरमां चेतनभाग छे तेओनो तो अभेद छे, अने आभासनो भेद छे, पथी बंने प्रकारनां वचन बने छे. ९२.

(जीव ब्रह्मना लक्ष्यार्थनो अभेद छे तेथी एकता बने छे)
१८५. चोपाई.

तें हे शिष्य ! प्रश्न जे कीधा, तेनां ए उत्तर में दीधां;
कह्यां जे ते तरुमां बे पक्षी, भोक्ता एक, एक अनिच्छी. ९३.
ते चेतन आभास लखाव्यां, जम नभ छाया भिन्न बताव्यां;
कह्यो भिन्न, कर्मी, फलदाता, मति-माया-छाया, ते ताता. ९४.
जीव-ईशमां चेतनरूप, भेद-गंधथी रहित अनूप;
एथी 'अहं ब्रह्म' ए जाणो, 'अहं' शब्द कूटस्थ पिछाणो. ९५.
'ब्रह्म' शब्दनो अर्थ सुमाख्यो, महाकाशसमं लक्ष्य ज राख्यो.
'अहंब्रह्म' यावत् नहि जाणे, तावत् दीन दु:खित भय माने. ९६.

टीकाः—हे शिष्य ! तें जे प्रश्न कर्या तेओनां में उत्तर कह्यां. तें जे कह्युं हतुं के,–'एक वृक्षमां बे पक्षी छे. एक भोगने छे अने एक इच्छाथी रहित छे; एथी जीवब्रह्मनी एकता बने नहि.' एनुं में उत्तर कह्युं जे –आ स्थानमां जीव-ब्रह्मनुं ग्रहण करवुं नहि, किन्तु कूटस्थ अने बुद्धिमां जे आभास, तेओनुं ग्रहण करवुं. तेओ पोतपोतामां घटाकाश अने आकाश नी छायानी पेठे भिन्न छे.

अने तें प्रश्न कर्यो हतो जेः-'जीव तो कर्मउपासना-करवावाळो छे, अने परमात्मा फल देवावाळो छे, तेओनी एकता बने नहि.' एनु पण मे आ उत्तर कह्युं जे,–कर्म करवा-वाळो जीव छे नहि; अने फल देवावाळो ईश्वर छे नहि; किन्तु जीवमां जे आभासअंश छे ते (कर्म) करे छे; अने ईश्वरमां जे आभासअंश छे ते फल दे छे. अने जीव-ईश्वरमां जे चेतनअंश छे, ते घटाकाश महाकाशनी पेठे, भेदनो जे 'गंध' नाम लेश तेथी रहित छे.' हे शिष्य ! ए रीतिए जीव अने ब्रह्मनी एकता बने छे. एथी 'अहं ब्रह्मास्मि' नाम 'हुं ब्रह्म छुं'

एम तुं जाण. 'अहं' शब्दनो अर्थ तो 'कूटस्थने जाण, अने 'ब्रह्म' शब्दनो जे महाकाशना सम लक्ष्यअर्थ कह्यो छे, ते जाण. 'अहं' शब्द अने 'ब्रह्म' शब्दना वाच्य अर्थनो अभेद नथी पण खरो; परंतु लक्ष्य अर्थनो अभेद छे. अने हे शिष्य! ज्यांलगी (उपरनी समज प्रमाणे) तुं 'अहं ब्रह्मास्मि' (हुं ब्रह्म छुं) एम नहि जाणीश, त्यांलगी तुं पोताने दीन मानीश; अने दुःखी मानीश. अने अन्य जे परमात्मा जाण्यो छे, ते तुंने भयनो हेतु थशे. एथी 'हुं ब्रह्म छुं' एम जाण. ९६.

१७८. तत्त्वदृष्टिरुवाच.

('अहं ब्रह्म' एवुं ज्ञान जीवमां कया अंशने थाय छे ?)

दुहो.

कोने थाय, गुरु कहो, 'अहं ब्रह्म' ए ज्ञान ?;
नहि जाणुं हुं आपना कह्या विना सुजाण. ९७.

टीकाः—हे गुरु ! आप कृपा करीने कहो 'अहं ब्रह्मास्मि' (हुं ब्रह्म छुं) एवुं ज्ञान कोने थाय छे ? आपना कह्या विना ए वार्त्ता हुं जाणतो नथी. शिष्यना चित्तमां आ गूढ अभिप्राय छे;–'हुं ब्रह्म छुं,' एवुं ज्ञान कूटस्थविषे थाय छे, अथवा आभाससहित बुद्धिमां थाय छे. जो कूटस्थमां कहेशो तो कूटस्थ विकारी थशे; अने आभाससहित बुद्धिमां कहेशो तो तेने 'हुं ब्रह्म छुं' एवुं ज्ञान भ्रान्तिरूप थशे. केमके आपे पूर्वे एवुं कह्युं जे,–'कूटस्थनी अने ब्रह्मनी एकता छे, अने आभास 'भिन्न छे' एथी ब्रह्मथी भिन्न जे आभास, तेने ब्रह्मरूप करीने जे ज्ञान, ते भ्रान्ति ज थशे. जेम सर्पथी भिन्न जे रज्जु, तेनुं सर्परूप करीने ज्ञान, भ्रान्ति छे. ए रीतिए आभाससहित बुद्धिने 'हुं ब्रह्म छुं' ए ज्ञान यथार्थ नहि थशे, किन्तु भ्रान्तिरूप थशे. अने जो कदाचित् 'अहं ब्रह्मास्मि' ए ज्ञानने

भ्रान्तिरूप ज अंगीकार करशो, तो ए ज्ञानथी मिथ्या जगत्‌नी निवृत्ति नहि थशे. किन्तु यथार्थ ज्ञानेकरी मिथ्यानी निवृत्ति थाय छे. जेम रज्जुना यथार्थ ज्ञानेकरी मिथ्या सर्पनी निवृत्ति थाय छे. ए रीतिए आभाससहित बुद्धिने 'हुं ब्रह्म छुं' ए ज्ञान बने नहि. ९७.

१७७. श्रीगुरुरुवाच.

(गुरु वदे छे के 'अहं ब्रह्म' ए ज्ञान चिदाभासने थाय छे तेनी सत अवस्थानां नाम.)

सोरठो.

कहुं अवस्था सात; सुण तुं अवे आभासनी,
नहि चेतननी वात, तेओमां ए ज्ञान छे.　　९८.

टीकाः—हे शिष्य ! हवे आभासनी सात अवस्था हुं कहुं छुं, ते तुं सांभळ. ते सत अवस्यामांथी कोई पण (अवस्था चेतन जे कूटस्थ तेनी छे नहि. 'अने हुं ब्रह्म छुं' ए ज्ञान पण ते सत(अवस्था)ना अन्तर् ज छे. ९८.

१७८. चोपाई.

एक अज्ञान, आवरण जाणो, भ्रांति, द्विविध वळी ज्ञान, पिछानो;
शोकनाश, अतिहर्ष अपार, सतअवस्था ए निर्धार.　　९९.

(१ अज्ञान, २ आवरण, ३ भ्रान्ति, ४ परोक्ष अने ५ अपरोक्ष एम बे प्रकारनुं ज्ञान, ६ शोकनाश, ७ अति अपार हर्ष, ए सात अवस्था निश्चय जाण.

१७९. अथ अज्ञान अने आवरण स्वरूपवर्णन.

दुहो.

'ना जाणुं हुं ब्रह्मने', एने कहे अज्ञान,
'नथी ब्रह्म, नथी भान थतुं', ए आवरण सुजाण. १००.

टीकाः—हे शिष्य ! 'हुं ब्रह्मने नथी जाणतो', ए जे पुरुष कहे छे, ए व्यवहार(कथन अने प्रतीति)ना हेतु **अज्ञान** छे.

'ब्रह्म छे नहि' अने (ब्रह्मनुं) 'भान नथी थतुं,' (ब्रह्म भासतुं नथी) (एम जे पुरुष कहे छे) ए व्यवहारनो हेतु **आवरण** छे. आवरणथी ए व्यवहार थाय छे. केमके बे प्रकारनी अज्ञाननी **शक्ति** छे-एक तो **असत्त्वापादक** छे; अने एक **अभानापादक** छे, तेओ बंनेने **आवरण** कहे छे. 'वस्तु छे नहि' एवी प्रतीति करावववाळी जे शक्ति, ते **असत्त्वापादक** कहेवाय छे. अने 'वस्तुनुं भान नथी थतुं' एवी प्रतीति करावववाळी जे अज्ञाननी शक्ति ते **अभानापादक** कहेवाय छे. एवी रीतिए 'ब्रह्म छे नहि' एवा व्यवहारनो हेतु, अज्ञाननी असत्त्वापादकशक्ति छे. अने 'ब्रह्म भान नथी थतुं' एवा व्यवहारनो हेतु अज्ञाननी अभानापादकशक्ति छे. ए बंने(शक्तिओ)नुं नाम 'आवरण' छे १००.

१८०. अथ भ्रान्ति(किंवा विक्षेप)वर्णन.

दुहो.

जन्ममरण, गमनागमन, पुण्यपाप, सुखखेद,
थाय भान निजरूपमां, भ्रान्ति पदारथ पेद. १०१.

टीकाः—जन्मथी आदिलईने जे संसार छे, तेनी जे 'निजरूप' नाम कूटस्थमां प्रतीति ते वेदमां 'भ्रान्ति' कहेवाय छे. अने एने ज शोक कहे छे. १०१.

१०१. भ्रान्तिने अध्यास, विक्षेप, शोक पण कहे छे:—
अहं ममेति यो भावो देहाक्षादावनात्मनि ।
अध्यासोऽयं निरस्तव्यो विदुषा स्वात्मनिष्ठया ॥ २७१ ॥
ज्ञात्वा स्वं प्रत्यगात्मानं बुद्धितद्वृत्तिसाक्षिणम् ।
सोऽहमित्येव सद्वृत्त्याऽनात्मन्यात्ममतिं जहि ॥ २७२ ॥
विवेकचूडामणिः
देह-इन्द्रियो आदि अनात्मामां 'अहं मम' (हुं मारुं) एवो जे भाव ते [illegible] (=भ्रान्ति) छे. ए विद्वाने स्वात्मनिष्ठावडे निरस्तव्य (दूर करवा योग्य) (ए भ्रान्तिनाश छे.) २७१. पोतानी बुद्धि अने तेनी वृत्तिओनी साक्षी [illegible]

१८१. अथ द्विविध(परोक्ष अपरोक्ष) ज्ञानवर्णन.

दुहा.

द्विविध ज्ञान वखाणिये परोक्षऽने अपरोक्ष;
'अस्ति ब्रह्म' परोक्ष छे, 'अहं ब्रह्म' अपरोक्ष. १०२.
'नास्ति ब्रह्म' ए अंशनो, करे परोक्ष विनाश,
सकल अविद्याजालने, नाशे अन्य प्रकाश. १०३.

टीका:—'ब्रह्म छे नहि' ए आवरणना अंशने, 'ब्रह्म छे' एवुं परोक्षज्ञान विनाशे छे. केमके, 'सत्यज्ञानअनंतरूप ब्रह्म छे' एवुं जे ज्ञान तेनुं नाम परोक्षज्ञान छे. ते (परोक्ष ज्ञान) 'ब्रह्म छे नहि' एवी प्रतीतिनुं विरोधि छे; अन्य(प्रतीति)नुं नथी. अने 'हुं ब्रह्म छुं' एवुं जे अपरोक्षज्ञान ते सकल अविद्याजालनुं विरोधि छे. ए कारणथी 'हुं ब्रह्मने नथी जाणतो' ए **अज्ञान**, अने 'ब्रह्म छे नहि अने (ब्रह्मनुं) भान 'नथी थतुं' ए **आवरण**, अने 'हुं ब्रह्म नथी, किन्तु पुण्य-पापनो कर्त्ता, अने सुखदुःखनो भोक्ता जीव छुं,' ए **भ्रान्ति**, एटलुं जे अविद्याजाल छे तेने अपरोक्षज्ञान नाश करे छे. १०३.

१८२. अथ भ्रान्ति(=शोक)नाशवर्णन.

दुहो.

जन्ममरण मुजमां नहि, नहि सुखदुःखनो लेश;
किन्तु अजन्य कूटस्थ हुं, भ्रान्तिनाश ए वेश. १०४.

गात्मा जाणीने ते (प्रत्यगात्मा) ज हु छुं एवी सद्वृत्तिए करी, अनात्मा(देहादि)मां आत्ममतिने हण, ए ज्ञान छे. २७२. ब्रह्म अने आत्माना एकत्वनुं विज्ञान ते ज 'सम्यग्ज्ञान' कहेवाय छे.

ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानं सम्यग्ज्ञानं श्रुतेर्मतं २०५. वि. चू.

११०. 'अहं ब्रह्मास्मि'=हुं ब्रह्म छुं–ए ज्ञान सर्व द्वैत वा दृश्यजालनो परोक्षबाध थयेथी ज थाय छे. अने ते दृश्यजालनो जे अपरोक्षबाध ते बोधनुं फल छे.

टीकाः—मारेविषे जन्म अने मरण नहि, अने सुखदुःखनो लेश पण छे नहि. अने कोई पण संसारधर्म मारेविषे छे नहि. किन्तु 'अजन्य' नाम जन्मथी रहित जे कूटस्थ, ते 'हुं छुं.' हे शिष्य ! ए रीतिए सर्व अनर्थनो जे निषेध, ए भ्रांतिनाशनो 'वेश' नाम स्वरूप छे; अथवा ए भ्रान्तिनाश 'वेश' नाम उत्तम छे. आ जगे कूटस्थमां जन्मनो निषेध करवाथी सर्व(अनर्थ)नो निषेध जाणी लेवो. केमके जन्मप्रतीतिथी अनंतर, अन्य अनर्थ प्रतीत थाय छे; एथी जन्मना निषेधथी सर्व अनर्थनो निषेध छे. ए जे भ्रान्तिनाश छे एने ज शोकनाश पण कहे छे. १०४.

१८३. अथ हर्षस्वरूपवर्णन.

दुहो.

संशयरहित स्वरूपनुं, थाय ज अद्वयज्ञान।
हृदये उपजे मोद तव, ते तुं हर्ष पिछान। १०५.

टीकाः—हे शिष्य ! ज्यारे तने संशयरहित पोताना स्वरूपनुं एवुं ज्ञान थशे केः-'हुं अद्वय ब्रह्मरूप छुं' त्यारे तने जे मोद थशे, तेने तुं हर्ष (अतिप्रिय आत्मलाभथी अन्तःकरणनो उत्कर्ष) जाण. १०५.

---

१११. 'प्रमोद' अर्थमां अत्र 'मोद' शब्द छे. तेने निरंकुशातृप्ति पण कहे छे. कोई पदार्थनी 'इच्छा' थाय त्यारे तेने 'प्रीति' कहे छे, ते पदार्थ 'मळेथी' जे मनमां हर्ष थाय तेने 'मोद' कहे छे, अने ते पदार्थ 'भोगवेथी' जे आनंद थाय तेने 'प्रमोद' कहे छे. एम अपरोक्षज्ञानथी भ्रान्ति नाश थई अखंड अक्षय परमानंदनी प्राप्ति जे अधिकारीने थाय छे तेना अन्तरनो उद्गार कंईक आ प्रकारे होय छेः—

धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं विमुक्तोऽहं भवग्रहात्।
नित्यानन्दस्वरूपोऽहं पूर्णोऽहं त्वदनुग्रहात्॥ ४९१॥

वि. चू.

आप(गुरु)ना अनुग्रहथी आ संसाररूप ग्रह(राहु)थी हुं विमुक्त छुं; हुं कृतकृत्य छुं; हुं धन्य छुं; हुं पूर्ण छुं; हुं नित्य आनंदस्वरूप छुं.

दुहा.

कही अवस्था सत में, तुजने शिष्य सुजान;
ते सकला आभासनो, छे तेओमां ज्ञान. १०६.
"ज्ञान थाय छे कोइने," ए पूछी ते वात;
में तेनुं उत्तर कह्युं, इच्छे ते पूछ तात. १०७.

अर्थ स्पष्ट छे.

१८४. जे गूढ अभिप्रायथी प्रश्न कर्यो हतो, तेने हवे शिष्य प्रकट करे छे. (शिष्यनो प्रश्न.)

प्रभु ! थाय आभासने, 'अहं ब्रह्म' ए ज्ञान,
तमे भाख्युं ते जाण्युं में, पण शंका एक आन. १०८.

चोपाई

छे भिन्न ब्रह्मथी आभास ज, एम कर्यो पूर्वे निर्धार ज.
'अहं ब्रह्म' ते केम ज जाणे ? पोते भिन्न ब्रह्मथी माने. १०९.
जो जाणे तो मिथ्या ज्ञान थाये, रज्जु सर्प समान,
श्रीगुरु ए संदेह मिटावो, युक्तिसहित निजउक्ति सुणावो. ११०.

टीकाः—हे भगवन् ! आपे पूर्वे ए कह्युं जेः-'कूटस्थ अने 'ब्रह्म तो बे एक छे, अने आभास ब्रह्मथी भिन्न छे.' ते ब्रह्मथी भिन्न आभासने 'हुं ब्रह्म छुं' एवुं ब्रह्मरूप करीने ज्ञान बने नहि. मारं अधिष्ठान जे कूटस्थ ते ब्रह्मरूप छे एवुं जो

धन्योऽहं धन्योऽहं कर्तव्यं मे न विद्यते किंचित् ।
धन्योऽहं धन्योऽहं प्राप्तव्यं सर्वमद्य संपन्नम् ॥ २९४ ॥
धन्योऽहं धन्योऽहं तृप्तेर्मे कोपमा भवेल्लोके ।
धन्योऽहं धन्योऽहं धन्यो धन्यः पुनः पुनर्धन्यः ॥ २९५ ॥

पंचदशी तृप्तिदीप.

हुं धन्य छु, हु धन्य छु. हवे मारे किंचित् कर्तव्य छे नहि. हु धन्य छु, हु धन्य छुं, हवे सर्व प्राप्तव्य प्राप्त थयु छे, हु धन्य छु, हु धन्य छु, मारी तृप्तिनी लोकमां केइ उपमा होई शके ! (कोई नहि.) हुं धन्य छु, हुं धन्य छु, धन्य धन्य पुनः पुनः धन्य इत्यादि.

आभासने ज्ञान थाय, तो (ते) यथार्थ ज्ञान थाय. अने 'अहं ब्रह्म' (हुं ब्रह्म) ए ज्ञान यथार्थ नहि बने. केमके 'अहं' (हुं) नाम पोताना स्वरूपनुं छे जेने 'हु' कहे छे, ते आभासनुं स्वरूप मिथ्या छे, एथी भिन्न छे. एथी ब्रह्मथी भिन्न आभासनुं जे स्वरूप, तेने ब्रह्मरूप करीने ज्ञान थाय तो मिथ्या ज्ञान थाय; जेम सर्पथी भिन्न जे रज्जु, तेनुं सर्परूप करीने ज्ञान मिथ्या थाय-छे. 'मिथ्या' नाम भ्रान्तिनुं छे. ते ब्रह्मज्ञानने भ्रान्तिरूप कहेवुं बने नहि. ११०.

(गुरुनुं उत्तरः—अहंशब्दना बे अर्थ.)

१८७. दुहा.

अहं शब्दना अर्थनो, सुण तुं शिष्य विवेक;
तुज मनमां जेथी नशे शंककलंक अनेक. १११.

(हे शिष्य! 'अहंशब्द'ना अर्थनो विवेक (भेद) तुं हवे सांभळ. जेथीकरीने तारा हृदयमांथी शंकारूपी अनेक कलंकनो नाश थाय.)

यद्यपि थाय आभासमां, 'अहं ब्रह्म' ए ज्ञान;
तथापि ते कूटस्थनुं, लहे आप अभिमान. ११२.
तेनो सदा अभेद छे, विभुचेतनसह तात;
बाधसमय निजरूप ते, ब्रह्मरूप दर्शात. ११३.

टीकाः—हे शिष्य! यद्यपि 'हुं ब्रह्म छुं' एवुं ज्ञान बुद्धिसहित आभासने थाय छे, अने कूटस्थने नहि; तथापि ते (बुद्धिसहित) आभास, कूटस्थने अने पोताना स्वरूपने, बंनेने पोतानो आत्मा जाणे छः ते आत्मानुं 'हुं'शब्दे करीने ग्रहण थाय छे ते ज अहं (हुं) शब्दनो अर्थ छे.

---

११२. ए मुख्याप कहेवाय छे. तेने ज शास्त्र, वाक्यना अभिप्रेत अर्थ करे छे.

(मुख्यसामानाधिकरण्य अने बाधसामानाधिकरण्य).

ते 'अहं' शब्दमां भान जे थाय छे कूटस्थ तेनो तो ब्रह्मना संगे सदा अभेद (एकता) छे; जेम घटाकाशनो अने महाकाशनो सदा अभेद छे. ए ज कारणथी कूटस्थनुं ब्रह्मनासाथे मुख्यसामानाधिकरण्य वेदान्तशास्त्रमां कह्युं छे. [जे वस्तुनो जे वस्तुना संगे सदा अभेद होय, ते वस्तुनुं तेना संगे मुख्यसामानाधिकरण्य कहेवाय छे. जेम घटाकाशनो महाकाशना संगे सदा अभेद छे, एथी घटाकाश (ते) महाकाश छे.] जे रीतिए घटाकाशनुं महाकाशनी साथे मुख्य सामानाधिकरण्य छे; ते रीतिए कूटस्थनुं ब्रह्मना संगे मुख्य सामानाधिकरण्य छे; केमके कूटस्थनो ब्रह्मसाथे सदा अभेद छे. एथी हुंशब्दमां भान जे थाय छे कूटस्थ, तेनो तो ब्रह्मना संगे सदा अभेद छे.

अने हुंशब्दमां भान जे थाय छे आभास, तेनो ब्रह्मसाथे, पोताना स्वरूपने बाधीने (मिथ्या जाणीने) अभेद थाय छे; जेम मुखनुं जे प्रतिबिंब (आरोपिता दर्पणस्थता अने अभिमुखता,) तेनो बिंबस्वरूप (ग्रीवास्थ)मुखनासाथे, प्रतिबिंबस्वरूपने

---

११३. एकत्र वृत्तिरर्थे शब्दानां भिन्नवृत्तिहेतूनाम् ।
सामानाधिकरण्यं भवतीत्येवं वदन्ति लाक्षणिकाः ॥३०॥
स्वात्मनिरूपण.

भिन्नप्रवृत्तिहेतुओना (भिन्नअर्थनिष्ठ) शब्दोनी एक अर्थविषे वृत्ति (वर्तन) ए सामानाधिकरण्य छे, एम लाक्षणिको (लक्षणाप्रतिपादको) वदे छे.

समान विभक्तिना बलेकरी 'समान' नाम एक छे 'अधिकरण' नाम अर्थरूप आश्रय जेनो एवा जे बे शब्द ते समानाधिकरण कहेवाय छे. ते बे शब्दनो जे परस्पर संबंध ते सामानाधिकरण्य (एकअर्थपरता) कहेवाय छे. तेमां एक सत्ता अने स्वरूपवाळा होवाथी वास्तव भेदरहित बे अर्थना बोधक वाक्यगत बे पदोनुं 'मुख्य सामानाधिकरण्य' कहेवाय छे. जेम घटाकाश पद अने महाकाशपदनुं अथवा कूटस्थपद अने ब्रह्मपदनुं मुख्य सामानाधिकरण्य (अभेद अन्वयबोधकत्व किंवा एकअर्थपरत्व) छे.

बाधीने, अभेद थाय छे. ए ज कारणथी वेदान्तशास्त्रविषे आभासनुं ब्रह्मनासंगे बाधसामानाधिकरण्य कह्युं छे. [जे वस्तुनो बाध थईने जेनी संगे अभेद थाय, ते वस्तुनुं तेना संगे बाधसामानाधिकरण्य कहेवाय छे.] जेम मुखना प्रतिबिंबनो बाध थईने मुखनी साथे अभेद थाय छे; एथी प्रतिबिंब मुख छे, मुखथी भिन्न नथी, एवुं प्रतिबिंबनुं मुखना साथे बाधसामानाधिकरण्य छे. किंवा जेम स्थाणु(थांभला)मां पुरुषनो भ्रम थईने, स्थाणुज्ञानथी अनंतर पुरुष स्थाणु छे, ए रीतिए पुरुषनुं स्थाणुसाथे बाधसामानाधिकरण्य थाय छे। तेम आभासनो बाध थईने ब्रह्मना साथे अभेद थाय छे. एथी 'हुं' शब्दविषे भान जे थाय आभास, ते, ब्रह्म छे. भिन्न नथी. एवुं बाधसामानाधिकरण्य आभासनुं ब्रह्मना साथे थाय छे. ए रीतिए हे शिष्य ! 'अहं' शब्दमां भान जे थाय छे कूटस्थ, तेनो तो मुख्य अभेद छे, अने आभासनो बाध करीने अभेद छे. ११३.

१८६. तत्त्वदृष्टिरुवाच.

(शिष्यनो प्रश्न-अहंवृत्तिविषे कूटस्थ अने आभासनुं भान क्रमथी थाय छे के क्रमविना ?)

दुहो.

थाय भान हुंवृत्तिमां, साक्षी ने आभास।
ते क्रमथी या क्रम विना, एनो करो प्रकाश. ११४.

---

११४. समान विभक्तिना बलेकरी भिन्नभावान् बे पदार्थोनी एकताना बोधक वाक्यगत बे पदोनुं 'बाधसामानाधिकरण्य' कहेवाय छे. जेम स्थाणुपद अने पुरुषपदनी एकता अथवा जगत्पद अने ब्रह्मपदनी एकता छे, अथवा प्रतिबिंबपद अने बिंबपदनी एकता छे, ते 'बाधसामानाधिकरण्य' छे. बाधविषे सामानाधिकरण्य=बाधप्रयोज्य सामानाधिकरण्य. भिन्नप्रवृत्ति निमित्तवाला शब्दो एकार्थवाचक.

११५. ए आभासवादनी रीतिए कह्युं छे. प्रतिबिंबवादनी रीति जुदी छे; तेमां बिंबप्रतिबिंबनो भेद ज मनातो नथी.

टीकाः—हे भगवन् ! आपे कह्युं जे 'अहंवृत्तिमां साक्षी अने आभास बंनेनुं भान थाय छे,' एनेविषे हुं एक वार्त्ता नथी जाणतो. (एथी पूछुं छुं के) ते कूटस्थ अने आभासनुं भान अहंवृत्तिविषे क्रमथी थाय छे, अथवा क्रम विना थाय छे? [एनो अर्थ आ छे.] 'क्रमथी' नाम भिन्न भिन्न कालमां थाय छे अथवा बंनेनुं एक ज कालमां भान थाय छे एनो आप मने 'प्रकाश' नाम बोध करो. ११४.

१८७. श्रीगुरुवाच.

(गुरुनुं उत्तर-अहंवृत्तिविषे कूटस्थ (=साक्षी) अने आभासनुं भान एक ज समये थाय छे.)

दुहो.

सावधान थई शिष्य सुण, कहुं उत्तर निर्धार,
सुणे जाय अज्ञानतम, बोधभानु उगेँ सार. ११५.

टीकाः—हे शिष्य ! ते जे प्रश्न कर्यो, तेनु सारभूत उत्तर हुं कहुं छुं. तु सावधान थईने सांभळ. केवुं उत्तर छे के जेने सांभळतां ज बोधरूपी सूर्यनो प्रकाश थईने अज्ञानरूपी तमने नाशावे छे. ११५.

दुहो.

भान थाय एक ज समय, साक्षी अने आभास,
बीजो चेतननो विषय, साक्षी स्वयंप्रकाश. ११६.

टीकाः—हे शिष्य ! एक ज समय साक्षीनुं अने आभासनुं अहंवृत्तिविषे भान थाय छे. [सर्वे प्रकरणमां 'आभास' शब्दथी 'अंतःकरणसहित आभासनुं' ग्रहण करवुं] एथी, 'बीजो' नाम अंतःकरणसहित जे आभास छे, ते तो चेतन जे साक्षी, तेनो विषय (तेनाथी प्रकाशित) थईने भान थाय

छे. अने साक्षी स्वयंप्रकाशरूपेकरीने भान थाय छे अने अंतःकरणनी जे आभाससहितवृत्ति तेनो विषय साक्षी नथी.

अने घटादिक बहिरना पदार्थोविषे तो आवी रीति छेः- ज्यारे इन्द्रियनो अने घटनो संयोग थाय, त्यारे इंद्रियद्वारा अंतःकरणनी वृत्ती नीकळीने घटना समान आकारने प्राप्त थाय छे. जेम बीबामां रेडेलो जे ताम्र(नो रस) तेनो बीबाना आकारना समान आकार थाय छे, तेम अंतःकरणनी वृत्तिनो पण घटना आकारना समान आकार थाय छे. ते वृत्ति आभासविना नथी हती, किन्तु आभाससहित होय छे; केमके वृ त्ति अं तः क र ण नो प रि णा म छे. [अंतःकरणनो जे परिणाम तेने वृत्ति कहे छे.] जेम अंतःकरण सत्वगुणनुं कार्य होवाथी स्वच्छ छे, पथी अंतःकरणविषे चेतननो आभास थाय छे; तेम वृत्ति पण स्वच्छ अंतःकरणनुं कार्य छे, पथी वृत्तिविषे चेतननो आभास थाय छे अने वृत्ति जे उत्पन्न थाय छे ते आभाससहित अंतःकरणथी उत्पन्न थाय छे, ए कारणथी पण वृत्ति आभाससहित ज होय छे.

१८८. (अज्ञाननो आश्रय अने विषय, चेतन छे.)

विषय जे घट छे ते तमोगुणनुं कार्य छे पथी स्वरूपथी जड छे; अने तेविषे अज्ञान अने तेनुं आवरण छे. एमां आवी शंका थाय छेः-अज्ञान अने तेनुं आवरण, विचारदृष्टिथी, चेतनविषे छे, घटविषे नहि. केमके अज्ञान चेतनने आश्रित छे; अने चेतनने ज विषय करे छे (=ढांके छे.) एवो वेदान्तनो सिद्धान्त छे. अने सप्तअवस्थाना प्रसंगमां जे अज्ञाननो आश्रय अंतःकरणसहित आभास कह्यो, ते अज्ञानना अभिमानी छे. 'हुं अज्ञानी छुं' एवुं अभिमान अंतःकरणसहित आभासने थाय छे; ए कारणथी अज्ञाननो आश्रय

(आभास) कहेवाय छे अने मुख्य आश्रय चेतन छे, आभाससहित अंतःकरण नहि. केमके आभाससहित अंतःकरण अज्ञाननुं कार्य छे. जे जेनुं कार्य होय छे, ते तेनो आश्रय थने नहि. एथी चेतन ज अज्ञाननो अधिष्ठानरूप आश्रय छे, अने चेतनने ज अज्ञान विषय करे छे. [स्वरूपनुं जे आवरण करवुं ते ज अज्ञाननुं विषय करवुं छे.] ते अज्ञानकृत आवरण जडवस्तुविषे थने नहि; केमके जडवस्तु स्वरूपथी ज आवृत छे, ते(जड)नेविषे अज्ञानकृत आवरणनो कंई उपयोग नथी. ए रीतिए अज्ञाननो आश्रय अने विषय चैतन्य छे. जेम गृहना मध्यमां जे अंधकार छे, ते गृहना मध्यने (आश्रये छे अने तेने ज) आवरण करे छे. एथी घटनेविषे अज्ञान अने तेनुं आवरण थने नहि. (एवी पूर्वपक्षीनी शंका छे.) तेनुं आ समाधान छेः—

(वस्तुना प्रत्यक्षज्ञाननी रीति.)

१८९. (बहिरूपदार्थना ज्ञानमां वृत्ति अने आभास ए बेनो उपयोग छे.)

जेम चेतनना स्वरूपथी भिन्न, सत्असत्थी विलक्षण अज्ञान, चेतनने आश्रित छे, ते अज्ञानेकरी चेतन आवृत थाय छेः तेम घटना स्वरूपथी भिन्न अज्ञान, यद्यपि घटने आश्रित छे नहि, तथापि अज्ञाने घटादिक स्वरूपेकरी प्रकाशरहित जडस्वरूप-रच्यां छे, एथी सदा ज अंधना समान

११६. जेम धननो मुख्य आश्रय कोश-पेटी आदि धनना भंडार-छे,अने 'हुं धनी छुं' एवो धननो अभिमानीरूप आश्रय पुरुष छे, तेम अज्ञाननो मुख्य आश्रय चेतन छे, अने अभिमानीरूप आश्रय साभास अन्तःकरण छे. पं. पी. पु.

११७. न्यायमतानुसार–इन्द्रियना अर्थसह सन्निकर्षथी उपजे जे ज्ञान ते 'प्रत्यक्षज्ञान' कहेवाय छे. वेदान्तमतानुसार,–विषयचैतन्य अभिन्न प्रमाणचैतन्य ए 'प्रत्यक्षज्ञान' कहेवाय छे.

आवृत छे. घटादिकनो ते आवृत स्वभाव अज्ञाने कर्यो छे. केमके तमोगुणप्रधान अज्ञानथी भूतनी उत्पत्तिद्वारा घटादिक उपजे छे. ते तमोगुण आवरणस्वभाववान् छे, एथी घटादिक प्रकाशरहित अंध ज थाय छे. ए रीतिए अंधतारूप आवरण, घटादिकोमां अज्ञानकृत 'स्वभावसिद्ध छे. अने घटादिकोना अधिष्ठानचेतनआश्रित अज्ञान, चेतनने आच्छादित करीने, स्वभावथी आवृत घटादिकोने पण आवृत करे छे. यद्यपि स्वभावथी आवृत पदार्थना आवरणमां प्रयोजन छे नहि, तथापि आवरणकर्त्ता पदार्थ, प्रयोजननी अपेक्षा विना पण निरावरणनी पेठे आवरणसहितमां पण आवरण करे छे; ए लोकमां प्रसिद्ध छे. ते अज्ञानथी आवृत घटने व्याप्त जे थाय छे अंतःकरणनी आभाससहित घटाकारवृत्ति, तेमां वृत्तिभाव तो घटना आवरणने दूर करे छे, अने वृत्तिमां (ते वृत्तिसाथे) जे आभासभाग छे ते घटनो प्रकाश करे छे. ए रीतिए बहिरना पदार्थविषे वृत्ति अने आभास ए बंनेनो उपयोग छे. (तेविषे) दृष्टान्त.

१९०. जेम अंधकारमां कुंडाथी मृत्तिका अथवा लोहनुं पात्र ढांकी मुक्युं होय, त्यां दंडेकरी कुंडाने फोडी पण नांखे, पछी दीपक विना ते निरावरण पात्रनो पण प्रकाश थाय नहि, किन्तु दीपकेकरी प्रकाश थाय छे. तेम अज्ञाने आवृत जे घट ते(घट)ना आवरणने (अंत.करणनो) वृत्ति(भाग दंडनी पेठे)भंग पण करे छे, तथापि घटनो प्रकाश थाय नहि. केमके घट तो स्वरूपे जड छे, अने वृत्ति पण जड छे, तेनुं आवरणभंग मात्र प्रयोजन छे; तेथे प्रकाश थाय नहि. एथी घटनो प्रकाशक आभास छे. नेत्रनो विषय जे वस्तु छे, तेना प्रत्यक्षज्ञाननी ए रीति कही. अने श्रवणादिकनो जे विषय छे, तेना प्रत्यक्षनी पण रीति एम ज जाणी लेवी.

वृत्ति अने घट ए एकदेशमां स्थित थयाथी घटनुं ज्ञान प्रत्यक्ष कहेवाय छे. अने अंतःकरणनी वृत्ति तो (अन्तरमां मनोमय) घटाकार होय अने घटना संगे वृत्तिनो सम्बन्ध न होय, किन्तु अन्तर् ज वृत्ति होय, ते घटनुं **परोक्षज्ञान** कहेवाय छे. 'आ घट छे' एवो अपरोक्ष (नाम प्रत्यक्ष) ज्ञाननो आकार छे; अने 'घट छे' अथवा 'ते घट छे' एवो परोक्षज्ञाननो आकार छे. यद्यपि स्मृतिज्ञान पण परोक्षज्ञान ज छे, तथापि स्मृतिज्ञान तो 'संस्कारजन्य' छे; अने अनुमितिआदि परोक्षज्ञान 'प्रमाणजन्य' छे, एटलो भेद छे. प्रमाणना प्रसंगथी अमे प्रमाणनिरूपण करिये छिये.

(प्रमाणनिरूपणं.)

१९१. (प्रत्यक्ष प्रमाण.)

चार्वाक जे छे ते एक 'प्रत्यक्षप्रमाण' अंगीकार करे छे.

१९२. (अनुमानप्रमाण.)

अने कणाद अने सुगतमतना जे अनुसारी छे, ते बीजुं 'अनुमानप्रमाण' पण अंगीकार करे छे. केमके एक प्रत्यक्ष ज प्रमाण अंगीकार करे तो तृप्तिना अर्थीनी भोजनविषे प्रवृत्ति नहि थशे. केमके अभुक्तभोजनविषे तृप्तिनी हेतुतानुं,

---

११८. शब्दबोधथी जनित अनुभवज्ञाननुं रूप.

११९. स्मृतिज्ञाननुं रूप, वा आकार, वा अभिनय.

१२०. प्रमाज्ञाननुं करण; वा अनधिगतार्थक-अनुभव-कारणत्व; अथवा बोधेद्धावृत्ति वा वृत्तीद्धबोधः ए 'प्रमा' अने तेनुं करण ए 'प्रमाण.' तेनुं 'निरूपण' नाम लक्षणादिप्रकारेकरी ज्ञानअनुकूल वचन.

१२१ नास्तिकमतवाला देहात्मवादी.

१२२. इन्द्रियना अर्थसह संनिकर्षथी उत्पन्न थाय जे ज्ञान ते 'प्रत्यक्षप्रमा,' तेनुं 'करण' नाम प्रत्यक्षप्रमानुं असाधारण साधन जे नेत्रादिक इंद्रिय छे ते प्रत्यक्षप्रमाण.'

१२३. वैशेषिक शास्त्रना कर्ता, जेने, कणभुक् पण कहे छे.

प्रत्यक्षप्रमाणजन्य प्रत्यक्षज्ञान छे नहि. एथी (पूर्व) भुक्तभोजनमां अनुभव जे करी छे तृप्तिनी हेतुता, ते अभुक्तभोजनमां पण अनुमानेकरी जाणीने, तृप्तिना अर्थीनी भोजनमां प्रवृत्ति होवाथी, अनुमानप्रमाण पण अंगीकार कर्युं जोइये. ए रीतिए कणाद अने सुगतमतना अनुसारी प्रत्यक्ष अने अनुमान बे प्रमाण अंगीकार करे छे.

१९३. (शब्दप्रमाण.)

अने सांख्यशास्त्रना कर्त्ता जे कपिल छे तेना मतना अनुसारी त्रीजुं 'शब्दप्रमाण' पण अंगीकार करे छे. केमके जो प्रत्यक्ष अने अनुमान बे ज प्रमाण अंगीकार करे तो देशान्तरविषे जेनो पिता मरी गयो होय तेने कोई यथार्थवक्ता आवीने कहे:-'तारो पिता मरी गयो छे.' त्यारे श्रोताने पितानां मरणनो निश्चय नहि थयो जोइये. केमके देशान्तरविषे स्थित पितानां मरणनुं ज्ञान प्रत्यक्ष अने अनुमाने करीने बने नहि. ए रीतिए कपिलमतना अनुसारी, प्रत्यक्ष, अनुमान, अने शब्द, ए त्रण प्रमाण अंगीकार करे छे.

१९४. (उपमानप्रमाण.)

अने न्यायशास्त्रना कर्त्ता जे गौतम छे, तेना मतना अनुसारी चतुर्थप्रमाण 'उपमान' पण अंगीकार करे छे. केमके प्रत्यक्ष आदिक त्रण ज प्रमाण अंगीकार करे तो, जे पुरुषे गवय (बलद जेवुं पशु, रोझ) नहि दीठो होय अने वनवासी पुरुषथी एवुं सांभळ्युं होय के, 'गौना सदृश गवय होय छे,' ते पुरुष जो वनमां चालशे जाय अने (त्यां) गवयने देखी ले, त्यारे तेने वनवासी पुरुषे कहेलु जे:-'गौना सदृश गवय होय छे' ए वाक्य, तेना अर्थनुं स्मरण थाय छे; ते स्मृतिथी अनंतर पुरुषने आवुं ज्ञान थाय छे:-'आ पशु गवय छे,' एवुं

ज्ञान न थवुं जोइये. एथी एवा विलक्षण ज्ञाननो हेतु 'उपमान-प्रमाण' पण अंगीकार करे छे.

१९५. (अर्थापत्तिप्रमाण नाम अनुक्तार्थनी सिद्धि थाय छे जेथी ते प्रमाण.)

अने पूर्वमीमांसानो एकदेशी जे भट्टनो शिष्य प्रभाकर छे, ते पंचम 'अर्थापत्ति' (कार्यथी कारणनी कल्पना) प्रमाण पण अंगीकार करे छे. दिनमां भोजनत्यागी पुरुषने स्थूल देखीने आवुं ज्ञान थाय छेः- 'आ पुरुष रात्रिए भोजन करे छे.' त्यां रात्रिभोजनविना दिनमां भोजनत्यागीना विषे स्थूलता बने नहि. एथी रात्रिभोजन(ना ज्ञाननुं) स्थूलता-(ज्ञान) 'संपादक' छे, अने रात्रिभोजन 'संपाद्य' छे. संपाद्य जे रात्रिभोजन तेना ज्ञाननो हेतु स्थूलतानुं ज्ञान ते 'अर्थापत्तिप्रमाण' कहेवाय छे.

१९६. (अनुपलब्धिप्रमाण.)

अने पूर्वमीमांसक जे भट्ट छे ते छठ्ठुं 'अनुपलब्धिप्रमाण' पण अंगीकार करे छे. अने वेदान्तशास्त्रविषे पण षट् प्रमाण अंगीकार कर्यां छे. अनुपलब्धिप्रमाणनुं प्रयोजन आ छेः-गृहादिकमां घटादिकोना अभावनुं ज्ञान थाय छे, त्यां जे पदार्थनी प्रतीति नथी थती, तेना अभावनुं ज्ञान थाय छे. [अप्रतीतिने 'अनुपलब्धि' कहे छे.] घटनी जे अनुपलब्धि नाम अप्रतीति (न जणावुं), तेथी घटना अभाव(नो) निश्चय थाय छे. एम पदार्थना अभावनिश्चयनो हेतु जे पदार्थनी अप्रतीति तेने 'अनुपलब्धिप्रमाण' कहे छे.

१९७. (प्रमाज्ञाननुं लक्षण.)

प्रमाज्ञान(यथार्थज्ञान)नुं जे करण छे ते 'प्रमाण' कहेवाय छे.

प्रत्यक्षप्रमाणजन्य प्रत्यक्षज्ञान छे नहि. पछी (पूर्व) भुक्तभोजनमां अनुभव जे करी छे तृप्तिनी हेतुता, ते अभुक्तभोजनमां पण अनुमानेकरी जाणीने, तृप्तिना अर्थीनी भोजनमां प्रवृत्ति होवाथी, अनुमानप्रमाण पण अंगीकार कर्युं जोइये. ए रीतिए कणाद अने सुगतमतना अनुसारी प्रत्यक्ष अने अनुमान बे प्रमाण अंगीकार करे छे.

१९३. (शब्दप्रमाण.)

अने सांख्यशास्त्रना कर्ता जे कपिल छे तेना मतना अनुसारी त्रीजुं 'शब्दप्रमाण' पण अंगीकार करे छे. केमके जो प्रत्यक्ष अने अनुमान बे ज प्रमाण अंगीकार करे तो देशान्तरविषे जेनो पिता मरी गयो होय तेने कोई यथार्थवक्ता आवीने कहेः-'तारो पिता मरी गयो छे.' त्यारे श्रोताने पिताना मरणनो निश्चय नहि थशे जोइये. केमके देशान्तरविषे स्थित पिताना मरणनुं ज्ञान प्रत्यक्ष अने अनुमाने करीने बने नहि. ए रीतिए कपिलमतना अनुसारी, प्रत्यक्ष, अनुमान, अने शब्द, ए त्रण प्रमाण अंगीकार करे छे.

१९४. (उपमानप्रमाण.)

अने न्यायशास्त्रना कर्ता जे गौतम छे, तेना मतना अनुसारी चतुर्थप्रमाण 'उपमान' पण अंगीकार करे छे. केमके प्रत्यक्ष आदिक त्रण ज प्रमाण अंगीकार करे तो, जे पुरुषे गवय (बलद जेवुं पशु, रोझ) नहि दीठो होय अने वनवासी पुरुषथी एवुं सांभळ्युं होय के, 'गोना सदृश गवय होय छे,' ते पुरुष जो वनमां चालशे जाय अने (त्यां) गवयने देखी ले, त्यारे तेने वनवासी पुरुषे कहेलु जेः-'गोना सदृश गवय होय छे' ए वाक्य, तेना अर्थनुं स्मरण थाय छे; ते स्मृतिथी अनंतर पुरुषने आवुं ज्ञान थाय छेः-'आ पशु गवय छे,' एवुं

ज्ञान न थवुं जोइये. एथी एवा विलक्षण ज्ञाननो हेतु 'उपमान:प्रमाण' पण अंगीकार करे छे.

१९५. (अर्थापत्तिप्रमाण नाम अनुक्तार्थनी सिद्धि थाय छे जेथी ते प्रमाण.)

अने पूर्वमीमांसानो एकदेशी जे भट्टनो शिष्य प्रभाकर छे, ते पंचम 'अर्थापत्ति' (कार्यथी कारणनी कल्पना) प्रमाण पण अंगीकार करे छे. दिनमां भोजनत्यागी पुरुषने स्थूल देखीने आवुं ज्ञान थाय छे.– 'आ पुरुष रात्रिए भोजन करे छे.' त्यां रात्रिभोजनविना दिनमां भोजनत्यागीना विषे स्थूलता बने नहि. एथी रात्रिभोजन(ना ज्ञाननुं) स्थूलता–(ज्ञान) 'संपादक' छे, अने रात्रिभोजन 'संपाद्य' छे. संपाद्य जे रात्रिभोजन तेना ज्ञाननो हेतु स्थूलतानुं ज्ञान ते 'अर्थापत्तिप्रमाण' कहेवाय छे.

१९६. (अनुपलब्धिप्रमाण.)

अने पूर्वमीमांसक जे भट्ट छे ते छट्टुं 'अनुपलब्धिप्रमाण' पण अंगीकार करे छे. अने वेदान्तशास्त्रविषे पण षट् प्रमाण अंगीकार कर्यां छे. अनुपलब्धिप्रमाणनुं प्रयोजन आ छेः-पृ-ह्लादिकमां घटादिकोना अभावनुं ज्ञान थाय छे, त्यां जे पदार्थनी प्रतीति नथी थती, तेना अभावनुं ज्ञान थाय छे. [अप्रतीतिने 'अनुपलब्धि' कहे छे.] घटनी जे अनुपलब्धि नाम अप्रतीति (न जणानुं), तेथी घटना अभाव(नो) निश्चय थाय छे. एम पदार्थना अभावनिश्चयनो हेतु जे पदार्थनी अप्रतीति तेने 'अनुपलब्धिप्रमाण' कहे छे.

१९७. (प्रमाज्ञाननुं लक्षण.)

प्रमाज्ञान(यथार्थज्ञान)नुं जे करण छे ते 'प्रमाण' कहेवाय छे.

[स्मृतिथी भिन्न जे अबाधित (नाम व्यवहारदशामां जे बाधने प्राप्त न थाय एवा) अर्थने विषय करवावाळुं ज्ञान छे ते '**प्रमा**' कहेवाय छे.] 'स्मृतिज्ञान' जे छे ते 'प्रमा' नथी, केमके जे प्रमाज्ञान छे ते प्रमाताने आश्रित होय छे. अने स्मृति प्रमाताने आश्रित नथी; किन्तु साक्षीने आश्रित अंगीकार करी छे. अने भ्रान्तिज्ञान अने संशय(ज्ञान) पण साक्षीने आश्रित अंगीकार कर्यां छे. ए कारणथी 'स्मृति' अने 'भ्रान्ति' अने 'संशय' ए त्रणे ज्ञान, (ब्रह्मना) आभाससहित अविद्यानी वृत्तिरूप छे, अंतःकरणनी वृत्तिरूप नहि; एथी (ए त्रण ज्ञान) प्रमाताने आश्रित नथी, किन्तु साक्षीने आश्रित छे. जे अंतःकरणनी वृत्तिरूप ज्ञान होय, ते प्रमाताने आश्रित होय छे, अने ते ज 'प्रमा' (किंवा प्रमाज्ञान) कहेवाय छे. स्मृतिज्ञान अंतःकरणनी वृत्ति नथी, एथी प्रमाताने आश्रित नहि, अने प्रमा पण नहि. एथी प्रमानां लक्षणविषे 'स्मृतिथी भिन्न' कह्युं जोइये. अबाधित अर्थने विषय करवावाळुं (नाम ग्रहण करनार-जणावनार) ज्ञान तो स्मृतिज्ञान पण छे, परंतु स्मृतिज्ञान 'स्मृतिथी भिन्न' नहि. एथी अबाधित अर्थने विषय करवावाळुं जे स्मृतिथी भिन्न ज्ञान छे ते '**प्रमा**' (यथार्थ अनुभव) कहेवाय छे. ए लक्षणविषे कोई दोष नथी.

१९८. (स्मृतिज्ञान, भ्रान्तिज्ञान, संशयज्ञान.)

अने कोई स्मृतिज्ञानने पण प्रमारूप माने छे. तेमना मतमां प्रमानां लक्षणविषे 'स्मृतिथी भिन्न' एवुं न कहेवुं. किन्तु 'अबाधितअर्थने विषय करवावाळुं जे ज्ञान छे ते प्रमा (यथार्थज्ञान) कहेवाय छे' (एम कहेवुं). भ्रान्तिज्ञान जे छे ते अबाधितअर्थने विषय नथी करतुं; किन्तु बाधितअर्थने विषय करे छे. एथी प्रमानुं लक्षण भ्रान्तिज्ञानमां नथी जतुं.

जेमना मतमां स्मृतिज्ञानविषे पण प्रमाव्यवहार छे, तेमना मतमां स्मृतिज्ञान अंतःकरणनी वृत्ति छे, अविद्यानी वृत्ति नहि; अने साक्षीने आश्रित पण नहि. किन्तु प्रमाताने आश्रित छे. केमके अंतःकरणनी वृत्तिनो आश्रय प्रमाता ज बने छे, साक्षी बने नहि. ए रीतिए स्मृतिज्ञान कोईना मतमां तो अंतःकरणनी वृत्ति छे, एथी प्रमारूप छे, अने कोईना मतमां अविद्यानी वृत्ति छे, एथी प्रमारूप नथी. अने 'भ्रान्तिज्ञान' अने 'संशयज्ञान' ए बंने सर्वना मतमां अविद्यानी वृत्ति छे; अने साक्षीने आश्रित छे; एमां कोई विवाद नथी. अने विचार करीने देखिए तो स्मृतिज्ञान पण अविद्यानी वृत्ति छे, अने साक्षीने आश्रित छे, प्रमारूप नथी. केमके जे वेदान्तसंप्रदायना वेदांतो[124] छे, तेमणे प्रमाज्ञान षट् प्रकारनुं कह्युं छे. ते छ प्रकारमां स्मृतिज्ञान छे नहि, एथी (ते) प्रमा नहि.

१९९ (षट्प्रमा. करण. कारण.)

अने मधुसूदनस्वामीए 'स्मृतिज्ञान' साक्षीने आश्रित ज कह्युं छे. एक तो प्रत्यक्षप्रमा[125] छे. अने बीजी अनुमिति प्रमा[126] छे, अने त्रीजी उपमितिप्रमा[127] छे, अने चोथी शाब्दीप्रमा[128] छे, अने पांचमी अर्थापत्तिप्रमा[129] छे, अने छठी अभावप्रमा[130] (अनुपलब्धिप्रमा) छे. ए षट्प्रमा छे अने पूर्वे कह्यां जे प्रत्यक्षादि 'षट्प्रमाण' छे ते तेओनां क्रमथी करण[131] छे 'प्रत्यक्षप्रमानुं' जे करण होय ते 'प्रत्यक्षप्रमाण' कहेवाय छे. असाधारण कारण जे होय ते करण कहेवाय छे. जे सर्व कार्यनुं

---

१२४. वेदान्तपरिभाषाग्रंथना कर्ता धर्मराजाध्वरीन्द्रादि वेदान्त जाणनार. १२५. प्रत्यक्षप्रमाणजन्य ज्ञान. १२६. अनुमानप्रमाणजन्य ज्ञान. १२७. उपमानप्रमाणजन्य ज्ञान. १२८. शब्दप्रमाणजन्य ज्ञान. १२९. अर्थापत्तिप्रमाणजन्य ज्ञान. १३०. अनुपलब्धिप्रमाणजन्य ज्ञान. १३१. व्यापारभिन्नत्वे सति असाधारणकारणत्वं.

कारण होय ते **साधारण कारण** कहेवाय छे. जेम धर्मअधर्मादिक, सर्व कार्यनां कारण छे, पयी साधारण कारण छे. सर्व कार्यनुं कारण न होय, किन्तु कोईक कार्यनुं कारण होय ते असाधारण कारण कहेवाय छे. जेम दंड जे छे ते सर्व कार्यनुं कारण नथी, किन्तु घटादिक जे कार्यविशेष छे तेमनुं कारण छे; पयी दंड **'असाधारण कारण'** कहेवाय छे अने घटनुं 'करण' पण कहेवाय छे; तेम प्रत्यक्षप्रमानां, ईश्वर अने तेनी इच्छाथी आदिलईने (नव कारणो छे ते) तो, 'साधारण कारण' छे; केमके ईश्वरादि लईने सर्व कार्यनां कारण छे. तेनाविना कोई कार्य थतुं नथी; पयी ईश्वरादिक 'साधारण कारण' छे; अने नेत्रथी आदिलईने जे इन्द्रिय छे ते प्रत्यक्षप्रमानां 'असाधारण कारण' छे. पयी नेत्रादिक जे इन्द्रिय छे ते प्रत्यक्षप्रमानां 'करण' छे. ए रीतिए नेत्रादि जे इन्द्रिय छे ते प्रत्यक्षप्रमाण कहेवाय छे.

२००. (चार चेतनः-प्रमाता प्रमाण, प्रमिति वा प्रमा, प्रमेय)

यद्यपि इन्द्रियने, वेदान्तसिद्धान्तविषे, प्रमाज्ञाननी कारणता, कहेवुं बने नहि; केमके चेतनना चार भेद छेः- एक तो 'प्रमाताचेतन' छे; अने बीजुं 'प्रमाणचेतन' छे; अने त्रीजुं 'प्रमितिचेतन' छे, [तेने ज 'प्रमाचेतन' पण कहे छे.] अने चोथुं 'प्रमेयचेतन' छे; [तेने ज 'विषयचेतन' पण कहे छे.] ए रीतिए प्रमा नाम चेतननुं छे; ते नित्य छे, इन्द्रियजन्य नथी. पयी इन्द्रिय तेनुं (प्रमाचेतननुं) कारण नथी, तथापि चेतनमां प्रमाव्यवहारनो संपादक (साधक) वृत्ति पण 'प्रमा'

१३२. नव साधारण कारण—ईश्वर (१). ईश्वरनी ईच्छा (२). ईश्वरनुं ज्ञान (३). ईश्वरनुं प्रयत्न (४). काळ (५). दिशा (६). अदृष्ट (७). प्रागभाव (८) प्रतिबंधकाभाव (९).

कहेवाय छे, (अने ते प्रमाव्यवहारसंपादकवृत्तिरूप जे प्रमा) तेनां इन्द्रिय करण छे.

देहना मध्ये जे अंतःकरण तेणेकरीने अवच्छिन्न जे चेतन ते **प्रमाता** कहेवाय छे, ते ज अंतःकरण नेत्रादिक इन्द्रियद्वारा निकलीने जेटले दूर घटादिक विषय स्थित होय एटलो लांबो परिणाम अंतःकरणनो थाय छे. अने आगळ विषय जे घटादिक छे तेओनी साथे[१३३] मिलीने जेवो घटादिकनो आकार होय तेवो ज अंतःकरणनो आकार थाय छे,-जेम कुंड(जलाशय)मां भर्युं जे जल ते छिद्रद्वारा निकलीने; लांबी नीकना आकारे थईने, क्यारिकाना केदार(क्यारा)मां जाय छे; अने केदारमां जईने जेवो केदारनो आकार होय, तेवा आकारने ते जल प्राप्त थाय छेः-तेम अंतःकरण पण इंद्रियरूपी छिद्रद्वारा निकलीने विषयरूपी केदारमां जाय छे; त्यां शरीरथी लईने घटादिक विषयपर्यंत जे अंतःकरणनो नीकना समान परिणाम-तेने **वृत्तिज्ञान** कहे छे; तेणे करीने अवच्छिन्न (आ स्थले विशिष्ट) जे चेतन तेने **प्रमाणचेतन** कहे छे; अने वृत्तिज्ञानरूप जे अंतःकरणनो परिणाम तेने **प्रमाण** कहे छे. जेम केदारविषे जल जईने केदारना समानाकार थाय छे, तेम घटादिक जे विषय छे तेओमां वृत्ति जईने घटादिकना समान आकारने प्राप्त थाय छे, तेणेकरीने अवच्छिन्न जे चेतन ते **प्रमाचेतन** कहेवाय छे. ज्ञानना विषय जे घटादिक तेणेकरीने अवच्छिन्न जे चेतन ते **विषयचेतन**

---

१३३. आ स्थानमां कुंडनुं जल, नीकनुं जल, केदारनुं जल, अने केदार शब्द छे त्यां त्यां तेने तेणे अवच्छिन्न (विशिष्ट) आकाशनुं पण ग्रहण छे. ते आकाश चेतनस्थानीय छे.

कहेवाय छे; अने **प्रमेयचेतन** पण कहेवाय छे. ए वेदअर्थना जाणवावाळा जे आचार्य छे तेमनी परिभाषा छे.

२०१. (अवच्छेदवाद.)

एमां आटलो भेद छे. जे **अवच्छेदवाद** अंगीकार करे छे; तेओना मतमां तो अंतःकरण**विशिष्ट** जे चेतन छे ते **प्रमाता** छे; अने ते ज **कर्ताभोक्ता** छे. अने अंतःकरण**उपहित** (चेतन) **साक्षी** छे. एक ज अंतःकरण प्रमातानुं तो विशेषण छे, अने साक्षीनो उपाधि छे.

(विशेषण लक्षण.)

स्वरूपविषे जेनो प्रवेश होय एवुं जे व्यावर्त्तक वस्तु छे ते **विशेषण** कहेवाय छे. [अन्य पदार्थथी भिन्नता करीने वस्तुना स्वरूपने जे जणावे ते **व्यावर्त्तक** कहेवाय छे. (अने) जेने भिन्नता करीने जणावे ते **व्यावर्त्य** कहेवाय छे.] जेम 'नील घट छे,' ए स्थानमां घटनुं नीलता विशेषण छे, केमके नील घटनेविषे नीलतानो प्रवेश छे, अने पीतश्वेतादिकोथी भिन्नता करीने जणावे छे, एथी (नीलता) व्यावर्त्तक छे, ए रीतिए नीलता घटनुं 'विशेषण' छे; अने घट परिच्छेद्य छे, केमके पीतश्वेतादिकोथी भिन्नता नाम जूदो करीने जणावाय छे. जे भिन्नता करीने जणावाय छे ते **परिच्छेद्य** कहेवाय छे, **व्यावर्त्य** कहेवाय छे (अने) **विशेष्य** पण कहेवाय छे. अने 'दंडी पुरुष छे' ए स्थानमां पण पुरुषनुं दंड विशेषण छे; ए रीतिए प्रमातानुं अंतःकरण विशेषण छे केमके प्रमाताना स्वरूपविषे अंतःकरणनो प्रवेश छे, अने प्रमेय-

---

१३४. परितः व्याप्ता भाषा. शास्त्रकारनी विशिष्ट सत्ता. जेम गृहमध्यस्थित दीपक कोइएक स्थलमां रह्यो स्वप्रभाद्वारा सर्व गृहने प्रकाशे छे, तेम कोइएक देशस्थ छतां सर्व शास्त्रने प्रकाशे छे; अथवा स्वबुद्धिजननद्वारा सर्व शास्त्रनो उपकारक संकेत छे—'परिभाषा.'

चेतनथी भिन्नता करीने, प्रमाताना स्वरूपने जणावे छे, एथी (अंतःकरण प्रमातानुं) 'व्यावर्त्तक' छे.

(उपाधिलक्षण, साक्षी अने प्रमाता.)

जे वस्तुनो स्वरूपविषे प्रवेश न होय, अने व्यावर्त्तक होय, ते **उपाधि** कहेवाय छे. जेम नैयायिकना मतमां कर्णशष्कुलीथी अवच्छिन्न जे आकाश छे ते 'श्रोत्र' कहेवाय छे ए स्थानमां कर्णशष्कुली श्रोत्रनो उपाधि छे; केमके श्रोत्रना स्वरुपविषे (नाम अन्तर् आकाशविषे) तो कर्णशष्कुलीनो प्रवेश छे नहि; अने बहिर्‌ना आकाशथी भिन्नता करीने श्रोत्रने जणावे छे, एथी व्यावर्त्तक छे. अने 'घटाकाश' जे छे ते मण परिमाण अन्नने अवकाश दे छे, ए स्थानमां पण आकाशनो घट उपाधि छे. केमके मण अन्नने अवकाश देवावाळुं जे आकाश छे, ते(आकाश)ना स्वरूपविषे तो घटनो प्रवेश छे नहि. घट पार्थिव (पृथ्वीनुं कार्य माटीनो) छे, ते(घट)नाविषे अवकाश देवो बने नहि, एथी (घटाकाशना) स्वरूपमां घटनो प्रवेश बने नहि, अने व्यापक आकाशथी भिन्नता करीने जणावे छेः एथी मण अन्नने अवकाश देवावाळुं जे आकाश तेनो घट उपाधि छे. तेम अंतःकरणउपहित जे चेतन छे, ते **साक्षी** छे. ए स्थानमां अंतःकरण 'साक्षीनो उपाधि' छे. केमके साक्षीना स्वरूपविषे तो अंतःकरणनो प्रवेश छे नहि, अने 'प्रमेयचेतनथी' साक्षीने भिन्नता करीने जणावे छे. एथी ए क ज अं तः क र ण सा क्षी नो तो उ पा धि छे, अ ने प्र मा ता नुं वि शे ष ण छे. ए रीतिए अंतःकरण**उपहित** जे चेतन छे, ते तो **साक्षी** छे, अने अंतःकरण**विशिष्ट** (जे) चेतन (छे, ते) **प्रमाता** छे, [जे उपाधिवाळुं होय ते 'उपहित' कहेवाय छे, अने विशेषणवाळुं होय ते

'विशिष्ट' कहेवाय छे.] जे अंतःकरण विशिष्ट **प्रमाता** छे. ते ज कर्ता भोक्ता सुखी दुःखी संसारी **जीव** छे. ए अवच्छेदवादनी रीति छे.

२०२. (आभासवाद.)

अने **आभास-वादमां** आभाससहित अंतःकरण **जीवनुं विशेषण** छे; अने आभाससहित अंतःकरण **साक्षीनो उपाधि** छे. एथी साभासअंतःकरण**विशिष्ट**चेतन जीव छे, अने साभासअंतःकरण**उपहित**चेतन **साक्षी** छे. यद्यपि बंने पक्षमां विशेषणसहित चेतन जीव छे ते ज संसारी छे; तथापि विशेष्य भाग जे चेतन छे तेनेविषे तो जन्ममरणआदिलईने संसारनो संभव छे नहि एथी **विशेषणमात्रमां** (जे) संसार छे ते ज विशिष्टचेतनमां **प्रतीत** थाय छे, (१) कहींक तो विशेषणना धर्मनो विशिष्ट(विशेषणसहित विशेष्य)मां व्यवहार थाय छे; अने (२) कहींक विशेष्यना धर्मनो विशिष्टमां व्यवहार थाय छे; अने कहींक (३) विशेषणविशेष्य बंनेना धर्मनो विशिष्टमां व्यवहार थाय छे.

(१) जेम 'दंडेकरीने घटाकाशनो नाश थाय छे.' ए स्थानमां विशेषण जे घट छे, तेनो दंडेकरीने नाश थाय छे. अने विशेष्य जे आकाश तेनो नाश बने नहि, तो पण विशिष्ट जे घटाकाश छे तेनो नाश प्रतीत थाय छे. (ए रीतिए विशेषणना धर्मनो विशिष्टमां व्यवहार थाय छे.)

(२) अने 'कुंडली पुरुष सुवे छे.' ए स्थानमां कुंडल, विशेषण छे; अने पुरुष विशेष्य छे. विशेषण जे कुंडल छे तेनाविषे सुवुं बने नहि. किन्तु विशेष्य जे पुरुष छे तेनाविषे सुवानुं छे. अने 'कुंडलविशिष्ट (=कुंडली पुरुष) सुवे छे' एवो

विशिष्टमां व्यवहार थाय छे. (ए रीतिए विशेष्यना धर्मनो विशिष्टमां व्यवहार थाय छे).

(३) अने 'शस्त्री पुरुष युद्धमां गयो छे.' ए स्थानमां विशेषण जे शस्त्र अने विशेष्य (जे) पुरुष बन्ने युद्धमां गया छे, एथी (विशेषण अने विशेष्य बंनेना धर्मनो विशिष्टमां व्यवहार थाय छे.

ए स्थानमां अवच्छेदवादमां तो (केवल) अंतःकरण विशेषण छे अने आभासवादमां साभास अंतःकरण विशेषण छे; अने बंने पक्षमां चेतन 'विशेष्य' छे. तेनेविषे तो जन्मादि संसार बने नहि, किन्तु विशेषण अंतःकरण अथवा साभास-अंतःकरण, तेनो धर्म जे जन्मादिक संसार, तेनो विशिष्टचेतनमां व्यवहार कराय छे. [व्यवहार नाम प्रतीति अने कथननुं छे.] ए रीतिए आभासवाद अने अवच्छेदवादनो भेद छे.

२०३. (अधिकारीपरत्वे आभासवादनी श्रेष्ठता.)

आभासवादमां तो अंतःकरण 'आभाससहित' छे, अने अवच्छेदवादमां अंतःकरण 'आभासरहित' छे. बन्ने पक्षमां आभासवाद श्रेष्ठ छे केमके भाष्यकारे (उपदेशसाहस्रीमां) आभासवाद अंगीकार कर्यो छे. अने अवच्छेदवादमां विद्यारण्यस्वामीए (पंचदशीमां) दोष पण कह्यो छेः-जो आभासरहित अंतःकरणअवच्छिन्नचेतनने प्रमाता मानिये, तो घटअवच्छिन्नचेतन पण प्रमाता थवुं जोइये. केमके, जेम अंतःकरण भूतोनुं कार्य छे तेम घट पण भूतोनुं कार्य छे, अने जेम अंतःकरण चेतननुं 'अवच्छेदक' नाम व्यावर्त्तक छे, तेम घट पण चेतननो अवच्छेदक छे; एथी अंतःकरणविशिष्टनी पेठे घटविशिष्ट पण प्रमाता थयो जोइये. अने अंतःकरण-

मां आ भा स अंगीकार कर्याथी ए दोष (आवतो) नथी. केमके अंतःकरण तो भूतोना सत्त्वगुणनुं कार्य छे एथी स्वच्छ छे; अने घटादिक भूतोना तमोगुणनां कार्य छे एथी स्वच्छ नथी. जे स्वच्छ पदार्थ होय ते ज आभासने योग्य होय छे, मलिन पदार्थ आभासने योग्य नथी. जेम काच अने तेनुं ढांकणुं बन्ने पृथिवीनां कार्य छे, परंतु काच तो स्वच्छ छे तेमां मुखनो आभास थाय छे, ढांकणुं स्वच्छ नथी एथी तेमां आभास थाय नहि. तेम सत्त्वगुणनुं कार्य होवाथी अंतःकरण स्वच्छ छे, तेमां चेतननो आभास थाय छे; शरीरादिक अने घटादिक तमोगुणनां कार्य होवाथी स्वच्छ नथी, तेओमां चेतननो आभास थाय नहि.

२०४ (अंतःकरणमां द्विविध प्रकाश छे एथी ते ज प्रमाता छे.)

ए रीतिए अंतःकरणमां द्विविध प्रकाश छे. एक तो व्यापक चेतननो प्रकाश, अने बीजो आभासनो प्रकाश छे. शरीरादिक अने घटादिकोमां एक व्यापक चेतननो प्रकाश तो छे, (पण) बीजो आभासनो प्रकाश नथी. एथी द्विविध प्रकाशसहित अंतःकरणविशिष्टचेतन ज **प्रमाता** कहेवाय छे. एक प्रकाशसहित जे घटादिक तेओएकरीने संयुक्त चेतन प्रमाता नहि. जेओना मतमां अंतःकरणमां आभास नथी तेओना मतमां, घटादिकोनी पेठे, अंतःकरणमां पण आभासनो बीजो प्रकाश तो छे नहि. व्यापक चेतननो जे एक प्रकाश अंतःकरणमां छे ते ज व्यापकचेतननो प्रकाश घटादिकोमां छे, एथी अंतःकरणविशिष्टनी पेठे घटविशिष्ट, वा शरीरविशिष्ट, वा भित्तिविशिष्टचेतन पण, प्रमाता थवो जोइये. ए रीतिए घटशरीरादिकोथी अंतःकरणमां आ ज विलक्षणता छे. अंतःकरण सत्त्वगुणनुं कार्य छे, एथी

स्वच्छ होवाथी चेतननो आभास ग्रहण करवाने योग्य छे; बीजा पदार्थ स्वच्छ नथी, पणी आभास ग्रहण करवाने योग्य नथी. आभास ग्रहणने योग्य जे अंतःकरण तेणेकरीने संयुक्त चेतन ज 'प्रमाता' कहेवाय छे. घटादिक अने शरीरादिक आभासग्रहणने योग्य नथी, पणी तेओएकरीने विशिष्ट-चेतन प्रमाता नथी. ए रीतिए आभासवाद ज उत्तम छे अवच्छेदवाद नहि.

२०५. (प्रमाण अने प्रमा-चेतन.

जेम अंतःकरण आभाससहित छे तेम अंतःकरणनी वृत्ति पण आभाससहित ज होय छे. साभासवृत्तिविशिष्ट चेतन **प्रमाणचेतन** कहेवाय छे.

अंतःकरणनी, घटादिविषयाकार जे वृत्ति तेमां आरूढचेतनने **प्रमा** अने **यथार्थज्ञान** कहे छे. तेनुं साधन जे इन्द्रिय ते **प्रमाण** कहेवाय छे. केमके विषयाकार वृत्तिमां आरूढचेतनने **प्रमा** (चेतन) कहे छे, त्यां चेतन यद्यपि स्वरूपे करीने नित्य छे, पणी इन्द्रियजन्यताना अभावथी, प्रमाचेतननुं साधन इन्द्रिय नथी, तथापि निरुपाधिक चेतनमां तो प्रमाव्यवहार छे नहि; किन्तु विषयाकारवृत्तिउपहित चेतनमां प्रमाव्यवहार थाय छे, पणी चेतनविषे प्रमाशब्दनी प्रवृत्तिमां विषयाकारवृत्ति उपाधि छे. ते विषयाकारवृत्ति इन्द्रियजन्य छे, इन्द्रिय तेनुं साधन छे. प्रमात्वनी उपाधि जे वृत्ति, ते इन्द्रियजन्य होवाथी, उपहित जे प्रमा ते पण इन्द्रियजन्या कहेवाय छे. पणी इन्द्रिय प्रमानुं साधन कहेवाय छे; परंतु अंतःकरणनो सर्व परिणाम 'प्रमा' नथी कहेवातो, किन्तु शरीरना अन्तर् जे अंतःकरण, तेनो विषय घटादिकोसुधी परिणाम तेने **प्रमाण** कहे छे, (अने) विषय-

थी (साथे) मळीने विषयना समान जे अंतःकरणनो परिणाम एटलाने **प्रमा** कहे छे. शरीरना अन्तर् जे अंतःकरण त्यांथी लईने घटादिक विषयसुधी पहोंच्यो जे अंतःकरणनो परिणाम ते ज प्रमारूपने धारे छे; एथी प्रमानो, प्रमाणरूप अंतःकरणनी वृत्तिथी, अत्यंत भेद नथी. ए रीतिए बहिरना पदार्थनुं प्रत्यक्ष ज्ञान ज्यां थाय, त्यां अंतःकरणनी वृत्ति बहिर् जईने, विषय जे घटादिक तेमना समानाकाररूपने धारे छे. अने शरीरना अंतर् जे आत्मा, तेनुं प्रत्यक्ष थाय, त्यारे अंतःकरणनी वृत्ति बहिर् जाय नहि; किन्तु शरीरना अन्तर् ज वृत्ति आत्माकार थाय छे. ते वृत्तिएकरी आत्माने आश्रित आवरण दूर थाय छे, अने आत्मा पोताना प्रकाशेकरी ते वृत्तिमां प्रकाशे छे. ए कारणथी वृ त्ति नो वि ष य आ त्मा ने कह्यो छे. अने चिदाभासरूप जे वृ त्ति मां फ ल, ते(चिदाभास)नो विषय आत्मा नथी. ए प्रकारे साक्षिआत्मा स्वयंप्रकाशरूप भान थाय छे. ए सिद्ध थयुं. ११६.

तत्त्वदृष्टिउवाच.

१०६. (ब्रह्मज्ञान प्रत्यक्ष बने नहि.)

दुहो.

इंद्रियना संबंध विण, 'अहं ब्रह्म' ए ज्ञान।
केम थाय प्रत्यक्ष प्रभु ? मजने कहो सुजान. ११७.

टीकाः—'ब्रह्मना अपरोक्षज्ञानथी सकलअविद्याजालनो नाश थाय छे, परोक्षज्ञानथी (थाय) नहि'. ए पूर्वे कह्युं तेनाविषे शंका करे छे. ब्रह्मनुं ज्ञान प्रत्यक्ष बने नहि; केमके इन्द्रियजन्य

१२५. लोढानी कांटीमां लोढदंड अने लोहजन्य एम बे भाग होय छे, तेम अंतःकरणनुं सर्व परिणाम कांटीरूप छे, तेमां 'प्रमाण' ए दंडतुल्य छे, अने 'प्रमा' ए फल जेवी छे.

ज्ञान प्रत्यक्ष होय छे. ब्रह्मनुं ज्ञान इन्द्रियजन्य बने नहि. केमके नेत्रइन्द्रिये रूपवान्नुं अथवा नीलादिक रूपनुं ज्ञान थाय छे, एवुं ब्रह्म नथी. एथी नेत्रइन्द्रियजन्य ज्ञान ब्रह्मनुं बने नहि.

२०७ (केवा अभिप्रायथी रामकृष्णादि परमेश्वर कहेवाय छे.)

रामकृष्णादिकोनी जे मनुष्याकार मूर्ति छे ते यद्यपि रूपवती छे, तथापि ते मूर्ति मायारचिता छे, मिथ्या छे, ते मूर्ति ब्रह्म नथी. अने पुराणमां रामकृष्णादिकोने ब्रह्मरूपता कही छे, ते तेमनी शरीररूप मूर्ति ब्रह्मरूप छे ए अभिप्रायथी नथी कही, किन्तु तेमना शरीरनुं अधिष्ठानचेतन ब्रह्म छे, ए अभिप्रायथी कही छे. यद्यपि आवी शंका थाय छेः-
'सर्व शरीरनुं अधिष्ठानचेतन ब्रह्म छे; एथी अधिष्ठान-
'चेतनअभिप्रायथी रामकृष्णादिकने ब्रह्मरूपता कही होय
'तो सर्व शरीरनुं अधिष्ठानचेतन ब्रह्म होवाथी, मनुष्य,
'पशु, पक्षी, आदि सर्व ज ब्रह्मरूप छे, तेओने समान ज
'रामकृष्णादिको थशे, एथी रामकृष्णादिकोने, अधिष्ठानचेतन ब्रह्म
'छे, ए अभिप्रायथी ब्रह्मरूपता नथी कही, किन्तु तेओने अन्य
'जीवोथी विशेषरुपतानी सिद्धिअर्थे, तेओनुं शरीर ज ब्रह्म छे
'एवुं मानवुं योग्य छे'.

ए बने नहि. केमके शरीरनो बाध करीने तेमनां शरीरोने ब्रह्मरूपता मानिये तो, सर्व शरीरोनो बाध करीने सर्व ज शरीर ब्रह्मरूप छे. अने बाध कर्या विना तो अन्य शरीरनी पेठे हस्तपादादिक अवयवसहित रूपवान् क्रियावान् शरीरनो, निरवयव नीरूप अक्रिय ब्रह्मसह अभेद बने नहि. एथी रामकृष्णादिकोनुं शरीर ब्रह्म नहि; परंतु एटलो भेद छे. जीवोनां शरीर पुण्यपापने अधीन छे, भूतोनां कार्य छे; अने जीवोने देहादिक अनात्मपदार्थोविषे, अविद्याबलथी अहं-

ममअध्यास छेः आचार्यना उपदेशे ते अध्यासनी निवृत्ति थाय छे.

अने रामकृष्णादिकोनां शरीर पोतानां पुण्यपापथी रचित नथी, (अने) भूतोनां कार्य नथी. किन्तु जेवां सृष्टिना आदिमां प्राणियोनां कर्म भोग देवाने सम्मुख थाय, त्यारे आप्तकाम ईश्वरमां पण प्राणियोना कर्मना अनुसार, 'हुं जगत्नी 'उत्पत्ति करूं' एवो संकल्प थाय छे. ते संकल्पथी जगत्नी उत्पत्तिरूप सृष्टि थाय छे. तेम सृष्टिथी अन्तर पण. 'हुं जगत'नुं पालन करूं,' एवो ईश्वरनो संकल्प थाय छे; ते संकल्पथी जगत्नुं पालन थाय छे. [कर्मोना अनुसार सुखदुःखनो संबंध (करी देवो ते) पालन कहेवाय छे.] ते पालनसंकल्पना मध्ये, उपासक पुरुषोनी उपासनाना बलथी, ईश्वरने आवो संकल्प थाय छेः–'रामकृष्णादिकनामसहित मूर्ति सर्व'ने प्रतीत थाय.' ते ईश्वसंकल्पथी, विशेषनामरूपरहित ईश्वरमां, **रामकृष्णादिक** नाम पीताम्बरधरादि श्यामसुंदरविग्रहरूपनी, उत्पत्ति थाय छे. ते विग्रह (देह) कर्मने अधीन नथी. यद्यपि रामकृष्णादि विग्रहथी साधु अने दुष्टोने क्रमथी सुख दुःख थाय छे. जे जेना सुखदुःखनो हेतु होय छे ते तेनां पुण्यपापथी रचित होय छे, एथी पुण्यपाप अधीन कहेवाय छे. ए रीतिए अवतारोनां शरीर, साधु पुरुषोने सुखनो हेतु होवाथी, साधु पुरुषोना पुण्यसमुदायथी रचित छे. तेम असुरादिक असाधु पुरुषोने दुःखनो हेतु होवाथी, तेमना (असाधु पुरुषना) पापथी रचित छे. एथी 'अवतारोनां शरीर पुण्यपापने अधीन नहि,' ए कहेवुं नहि संभवे. तथापि जेम जीवे पूर्वशरीरमां पुण्यपापकर्म कर्यां छे, तेमनुं फल-सुखदुःख-उत्तरशरीरमां ते जीवने थाय छे.

त्यां शरीरअभिमानी जीवना पूर्व शरीरना पोताना पुण्यपापने अधीन उत्तरशरीर कहेवाय छे; तेम रामकृष्णादिकनां शरीर, यद्यपि साधु असाधु पुरुषोनां पुण्यपापने अधीन छे, अने तेओने सुखदुःखनो हेतु छे, परंतु रामकृष्णादिकोनां, (पोतानां) पुण्यपापथी रचित अवतारशरीर नथी. अने तेओने पोताना शरीरथी सुखनो तथा दुःखनो भोग थाय नहि. एथी रामकृष्णादिकोनां शरीर पोताना पुण्यपापने अधीन नथी, ए संभवे छे.

तेम भूतोना परिणाम पण रामकृष्णादिक शरीर नथी; किन्तु चेतनआश्रितमायानो परिणाम छे. जो पंचीकृतभूतोना परिणाम होय तो कृष्णशरीरविषे रज्जुकृत बंधनादिकोनो अभाव शास्त्रमां कह्यो छे, ते असंगत थशे. यद्यपि पंचभूतरचित सिद्धयोगिशरीरमां पण बंधनादिक थाय नहि, तथापि योगिशरीरमां (योग सिद्ध थयाथी) प्रथम बंधनादिकोनो संभव होय छे. पछी योगाभ्यासरूप पुरुषार्थथी बंधनदाहादिकोनी योग्यता नाश थाय छे. कृष्णादिकोनां शरीरमां योगीनी पेठे कंई पुरुषार्थेकरी बंधनादिकोनो अभाव नथी. किन्तु तेओनां शरीर सहज ज बंधनादियोग्य नथी; एथी भूतोना परिणाम नथी. अने माण्डूक्यभाष्यनी टीकामां आनंदगिरिए रामादिकशरीर भूतोना परिणाम कह्या छे, ते स्थूलदृष्टिए अन्यशरीरना समान ते शरीर प्रतीत थाय छे, ए अभिप्रायथी कह्यां छे. केमके भाष्यकारे गीताभाष्यमां आ

---

१३६. ए नामनी एक उपनिषद् छे. तेना उपर शंकरना परमगुरु गौडपादाचार्यनी जे कारिकाओ छे, ते उपर शंकरनुं भाष्य छे. ते भाष्यनी टीकामां ए उपनिषद्संबंधमां आ वाक्य प्रचलित छेः—

माण्डूक्यमेकमेवालं मुमुक्षूणां हितासये ।
तथाप्यसिद्धं चेत् ज्ञानं दशोपनिषदं पठ ॥

कह्युं छेः-'जीवोना उपर अनुग्रह करीने शरीरधारीनी पेठे 'मायाना बलथी परमात्मा कृष्णरूप प्रतीत थाय छे. ते जन्मादिकरहित छे. वसुदेवद्वारा देवकीथी तेनो जन्म पण 'मायाथी प्रतीत थाय छे.' ए रीतिए भाष्यकारे कृष्णशरीर मायानुं कार्य कह्युं छे. एथी (पंच)भूतोथी अवतार शरीरनी उत्पत्ति नथी; किन्तु तेओनां शरीरोनुं उपादानकारण साक्षात् माया छे.

अन्य जीवोने देहादिकोमां आत्मभ्रान्ति छे, रामकृष्णादिकोने नथी. केमके जीवनो उपाधि,-अविद्या, मलिनसत्त्वगुणवती छे, रामकृष्णादिकोनो उपाधि,-माया, शुद्धसत्त्वगुणवती छे; एथी जीवोने अविद्याकृतभ्रान्ति अने रामकृष्णादिकोने मायाकृत सर्वज्ञता होय छे. जीवोने अज्ञानकृत आवरण अने भ्रान्तिना नाशनिमित्त, आचार्यद्वारा महावाक्यना उपदेशजन्य ज्ञाननी अपेक्षा छे. तेम रामकृष्णादिकोने आवरण अने भ्रान्ति नथी, एथी उपदेशजन्य ज्ञाननी अपेक्षा नथी. किन्तु जीवने अंतःकरणनी वृत्तिरूप (उपदेशजन्य) ज्ञाननी पेठे, ईश्वरने मायानी वृत्तिरूप आत्मानुं ज्ञान तो उपदेशादि विना पण होय छे, परंतु ते ज्ञानथी कशुं प्रयोजन तेमने (रामादिकोने) सिद्ध थतुं नथी. केमके जीवोने घटादिकना ज्ञानथी, आवरणभंग अने विषय जे घटादिक तेओने प्रकाश थाय छे. अने ब्रह्मरूपे आत्मानुं ज्ञान जे जीवोने थाय छे; त्यां ज्ञाननो विषय जे आत्मा तेनो आवरणभंग तो ज्ञानथी थाय छे, अने आत्मा (रूप) विषय स्वयंप्रकाश छे, एथी आत्मज्ञानेकरी विषयनो प्रकाश थाय नहि. तेम ईश्वरने मायानी वृत्तिरूप जे 'अहं ब्रह्मास्मि' एवुं ज्ञान, ते(ज्ञान)नो विषय ईश्वरनो आत्मा, ते आवरणरहित स्वयंप्रकाश छे; एथी आवरणभंग

वा विषयनो प्रकाश, ईश्वरना ज्ञाननुं प्रयोजन नथी. जेम जीवन्मुक्त विद्वान्ने, निरावरण आत्माने विषय करवावाळी अंतःकरणनी 'अहं ब्रह्मास्मि' एवी वृत्ति, आवरणभंगादिक प्रयोजनरहिता होय छे, तेम ईश्वरने पण आवरणभंगादिक प्रयोजनविना मायानी वृत्तिरूप 'अहं ब्रह्मास्मि' एवुं ज्ञान, उपदेशादिक विना, होय छे.

ए रीतिए रामकृष्णादिकोने जीवोथी विलक्षणता(रूप) ईश्वरता होय छे, तोपण तेओनुं शरीर मायारचित छे एथी ब्रह्म नथी, किन्तु मिथ्या छे. मायाए उत्पन्न कर्युं जे अवतारनुं शरीर ते हस्तपादादिक अवयवसहित अने रूपसहित कर्युं छे; एथी नेत्रइन्द्रियनो विषय तेओनुं शरीर होय छे. ब्रह्मने नेत्रइन्द्रिय विषय करे नहि.

२०८. तेम त्वचाइन्द्रिय पण स्पर्शने अने स्पर्शना आश्रयने विषय करे छे. ब्रह्म स्पर्श नथी अने स्पर्शनो आश्रय नथी, एथी त्वचाइन्द्रियनो विषय नथी.

२०९. रसनाइन्द्रिये रसनुं ज्ञान, घ्राणे गंधनुं ज्ञान, श्रोत्रे शब्दनुं ज्ञान थाय छे. रस-गंध-शब्दथी ब्रह्म विलक्षण छे; एथी रसनाए, घ्राणे, अने श्रोत्रेकरी ब्रह्मनुं ज्ञान थाय नहि.

२१०. अने कर्मइन्द्रिय ज्ञाननां साधन नथी, किन्तु वचनादिक क्रियानां साधन छे; एथी तेओएकरी तो कशानुं ज्ञान थाय नहि.

ए रीतिए कोई इन्द्रियवते ब्रह्मनुं ज्ञान बने नहि, इन्द्रिय

१३७ नेत्र अने त्वचा ए बे इन्द्रियोमां, गुण अने गुणी ए उभयना ग्रहणनुं सामर्थ्य छे. श्रोत्र, रसना, अने घ्राण ए त्रण इन्द्रियोमां, केवल गुणना ग्रहणनुं सामर्थ्य छे, गुणीना ग्रहणनुं सामर्थ्य नथी.

वते जे ज्ञान, ते ज्ञान प्रत्यक्ष कहेवाय छे. [प्रत्यक्षने ज अपरोक्ष कहे छे.] एथी ब्रह्मनुं अपरोक्षज्ञान बने नहि, किन्तु शब्देकरी ब्रह्मनुं ज्ञान थाय छे. जे शब्देकरी ज्ञान होय ते परोक्ष होय छे, एथी ब्रह्मनुं ज्ञान पण परोक्ष ज थाय छे. (ए प्रमाणे तत्त्वदृष्टिनी शंका छे.)

श्रीगुरुरुवाच.

२११. (गतअंक २०६ थी २१० पर्यन्तनी शंकानुं समाधान. प्रत्यक्षज्ञानने इन्द्रियजन्यतानो अनियम.)

दुहो.

इन्द्रियविन प्रत्यक्ष नहि, शिष्य ? ए नियम न जाण;
विनेन्द्रिय प्रत्यक्ष छे, जेम दुःखसुख ज्ञान. ११८.

टीकाः-'इन्द्रियसंबंध विना प्रत्यक्षज्ञान थाय नहि;' ए नियम नथी. केमके, जेम सुखनुं अने दुःखनुं ज्ञान थाय ते कोई इन्द्रियेकरी थाय नहि, (तेम छतें) ते सुखदुःखनुं ज्ञान पण प्रत्यक्ष होय छे. एथी इन्द्रियसंबंधेकरी जे ज्ञान थाय ते ज प्रत्यक्ष ज्ञान थाय, ए नियम नथी. किन्तु विषयसंग वृत्तिनो संबंध थईने विषयाकारवृत्ति ज्यां थाय त्यां प्रत्यक्षज्ञान

११८. प्रत्यक्षज्ञान किंवा अपरोक्षज्ञाननुं लक्षण आ प्रमाणे कहेवाय छे.-अनधिगतअबाधितवर्तमानयोग्यविषयचैतन्यअभिन्न-प्रमाणचैतन्य.

निवृत्तविषयचैतन्यभिन्न प्रमाणचैतन्य ए परोक्षज्ञान कहेवाय छे.

'विषयचेतननो वृत्तिचेतनसह अभेद,' ए विशेषण प्रत्यक्षज्ञाननुं व्यावर्तक-लक्षण छे. ते अभेद कहीं इन्द्रियद्वारा (१) होय छे, कहीं शब्देकरी (२) होय छे. अने कहीं इन्द्रिय शब्द रूप बाह्यनिमित्त विना पण अन्तःकरणनी केवलवृत्ति, द्वारा (३) होय छे. चेतननो स्वरूपेकरीने तो कहीं भेद छे ज नहि. किन्तु विषय अने वृत्तिरूप उपाधिए करेल भेद छे, ते उपाधि ज्यारे भिन्न देशमां स्थित होय, त्यारे ते उपाधिमत् चेतननो भेद कहेवाय छे. ज्यारे विषयाकारवृत्ति थाय त्यारे उभयउपाधि विषयरूपउपाधि अने वृत्तिरूपउपाधि-एकदेशविषे स्थित थाय छे, एथी ते उपाधिमत्विषयचेतन अने वृत्तिचेतननो अभेद

कहेवाय छे. विषयसंग वृत्तिनो ते संबंध कहिंक इन्द्रियद्वारा थाय छे, अने कहिंक शब्देकरी थाय छे. जेम 'दशमो तुं छुं,' (जुओ पृष्ठ ११७. टिप्पनी २६.) ए शब्देकरी दशमो जे पोते, तेसाथे अंतःकरणनी वृत्तिनो संबंध थईने, दशमाकारवृत्ति थाय छे; एथी शब्दजन्य पण दशमानुं ज्ञान प्रत्यक्ष थाय छे.

तेम प्रमाताविषे सुखदुःख थाय, त्यारे सुखाकार दुःखाकार अंतःकरणनी वृत्ति थाय, (तथा) ते वृत्तिसाथे सुखदुःखनो संबंध थाय छे, एथी सुखदुःखनुं ज्ञान प्रत्यक्ष कहेवाय छे. पूर्वउत्पन्न सुखदुःख नष्ट थया पछी ज्यां पुरुषने सांभरी आवे, त्यां सुखाकार-दुःखाकार अंतःकरणनी वृत्ति तो थाय छे, परंतु नष्ट थयेलां सुखदुःखसाथे वृत्तिनो संबंध नथी; एथी ते ज्ञान **स्मृतिरूप** छे, प्रत्यक्षरूप नथी. यद्यपि अंतःकरणना धर्म सुखदुःख साक्षिभास्य छे, तथापि सुखाकार-दुःखाकार अंतःकरणनी वृत्तिद्वारा साक्षी सुखदुःखनो प्रकाश करे छे. जे साक्षिभास्य पदार्थ छे तेमने पण साक्षी, वृत्तिनी अपेक्षाथी ज, प्रकाशे छे. जेम शुक्तिरजत साक्षिभास्य छे, त्यां अविद्यानी वृत्तिनी अपेक्षाकरीने साक्षी रजतने प्रकाशे छे. परंतु सुखदुःखना प्रकाशमां अंतःकरणनी वृत्ति साक्षीनी सहायिका छे, अने मिथ्या रजतादिकना प्रकाशमां अविद्यानी वृत्ति (साक्षीनी) सहायिका छे.

कहेवाय छे. ते 'विषयचेतनसह वृत्तिचेतननो अभेद,' ए ज प्रत्यक्षज्ञान कहेवाय छे. एने अपरोक्षज्ञान अने साक्षात्कार पण कहे छे. ए प्रत्यक्षज्ञाननु लक्षण,— इन्द्रियद्वारा (१) इन्द्रियजन्य बाह्य घटादिकोना प्रत्यक्ष ज्ञानविषे, अने शब्दद्वारा (२) महावाक्यजन्य ब्रह्मना प्रत्यक्षज्ञानविषे, अने इन्द्रिय -शब्द—रूप बाह्यनिमित्त विना (३) अन्तर् उपजता सुखदुःखना प्रत्यक्षज्ञानविषे, अनुगत छे; अने अविद्यानी वृत्तिरूप जीवना रज्जुसर्पादिकना ज्ञानविषे, अने विद्या किंवा मायानी वृत्तिरूप ईश्वरना ज्ञानविषे पण, अनुगत छे. पं. पी. पु.

ए रीतिए साक्षिभास्य पदार्थना ज्ञानमां पण वृत्तिनी अपेक्षा छे. ते वृत्ति ज्यां इन्द्रियादिक बाह्यसाधनथी थाय, (त्यां) ते(वृत्ति)नो विषय साक्षिभास्य नथी कहेवातो. सुखदुःखने विषय करवावाळी वृत्तिमां बाह्येन्द्रियादिक हेतु नथी; किन्तु ज्यारे सुखादिक उत्पन्न थाय, ते ज कालमां अन्य साधननी अपेक्षा विना, सुखाकार-दुःखाकार अंतःकरणनी वृत्ति थाय छे, ते वृत्तिमां आरूढ साक्षी सुखदुःखने प्रकाशे छे, एथी सुखदुःख साक्षिभास्य कहेवाय छे.

२१२. अने बाह्य जे घटादिक छे तेमनीसाथे अंतःकरणनी वृत्तिनो संबंध नेत्रादिक इन्द्रियद्वारा थाय छे; एथी घटादिक साक्षिभास्य नथी.

(ब्रह्मनुं ज्ञान प्रत्यक्ष संभवे छे.)

तेम ब्रह्माकारे अंतःकरणनी वृत्ति थाय छे, ते अंतःकरणनी वृत्ति बहिर् जती नथी, किन्तु शरीरना अंदर् ज थाय छे. ते वृत्तिसाथे ब्रह्मनो संबंध छे; एथी ब्रह्मनुं ज्ञान पण, सुखदुःखना ज्ञाननी पेठे, प्र त्य क्ष रू प छे. परंतु सुखाकारदुःखाकारवृत्तिमां बाह्य (प्रमाणरूप) साधननी अपेक्षा नथी; एथी सुखदुःख साक्षिभास्य छे. अने ब्रह्माकार जे अंतःकरणनी

१३९. जेम चक्षुविषे सूर्यनी अभेदता छे. ते अभेदता, अंगुलि आदिरूप स्वल्प आवरणेकरी आच्छादित थये, ब्रह्माण्डवर्त्ति सूर्यनो प्रकाश देखातो नथी. अने ते आवरण निवृत्त थये चक्षुगत अन्तःकरणनी वृत्तिए ब्रह्माण्डवर्ति सूर्यनो प्रकाश देखाय छे; तेम साक्षीआत्माविषे ब्रह्मनी अभेदता छे. ते अभेदता अन्तःकरणगत अज्ञानांशरूप स्वल्प आवरणेकरी आच्छादित थये, सर्वत्र परिपूर्ण ब्रह्म प्रत्यक्ष भासतुं नथी. ज्यारे शरीरना अन्तर् उपजी ब्रह्म-आत्मानी अभेदताना आकारवृत्तिएकरी उक्त आवरणभंग थाय, त्यारे गृहगत आकाशना असंगतादिकना ज्ञानेकरी महाकाशना असंगतादिकना ज्ञाननी पेठे, सर्वत्र परिपूर्ण ब्रह्मनुं स्वप्रकाशताएकरीने भान थाय छे. पं. पी. पु.

वृत्ति, तेमा तो गुरुद्वारा वेदवचननो श्रोत्र साथे सबध (रूप) बाह्यसाधन जोइये छिये, एथी ब्रह्म साक्षिभास्य नहि ए रीतिए ज्या विषयसाथे वृत्तिनो संबंध थाय त्या प्रत्यक्ष-ज्ञान कहेवाय छे 'अहं ब्रह्मास्मि' ए वृत्तिना, विषय जे ब्रह्म, तेसाथे सबध छे, एथी ब्रह्मनु ज्ञान प्रत्यक्ष सभवे छे

(प्रत्यक्ष-परोक्ष ज्ञान)

अने ज्या धूमने देखीने अग्निनु ज्ञान थाय छे, त्यां धूमनुं ज्ञान तो प्रत्यक्ष छे, पण अग्निनु ज्ञान प्रत्यक्ष नथी. केमके, नेत्रद्वारा अत करणनी वृत्तिनो धूमसाथे सबध छे, एथी धूमनु ज्ञान प्रत्यक्ष कहेवाय छे, अने अनुमानथी, अत करणनी वृत्ति शरीरना अतर् अग्निना आकारने ग्रहण करवावाळी तो थई, परन्तु अग्निसाथे वृत्तिनो सबध नथी, एथी अग्निनु ज्ञान प्रत्यक्ष नथी ए रीतिए ज्या वृ त्ति सा थे वि ष य नो सबध था य, त्या 'प्रत्यक्ष' ज्ञान कहेवाय छे ज्या वृत्तिसाथे विषय नो सबध होय नहि, विषय बहिर् दूर होय, अथवा भूत वा भविष्यत् होय अने अनुमाने अथवा शब्दे विषयाकार वृत्ति अतर् थाय ते ज्ञान 'परोक्ष' कहेवाय छे इन्द्रियजन्य ज्ञान ज प्रत्यक्ष होय छे ए नियम नथी जेम सुखदुःखनु ज्ञान

---

१४० जेम ब्रह्म साक्षिभास्य नहि, तेम ब्रह्म, चिदाभाससहित अन्त करणनी वृत्तिरूप प्रमातानो पण, विषय नहि अन्य दीपकनी अपेक्षाए रहित केवल चक्षुना विषय दीपकनी पठे, अन्त करणनी 'अहं ब्रह्मास्मि', ए आकारवती केवल वृत्तिनो विषय ब्रह्म छे एथी ब्रह्म प्रमाताभास्य पण नथी किन्तु पोताना प्रकाश मां अन्य प्रकाशनी अपेक्षारहित सर्वनुं प्रकाशक एवु स्वयप्रकाशरूप ब्रह्म छे वृत्ति पण, जेम क्षार, वस्त्रना मलने दूर करे छे, तेनी पठे, ब्रह्मपरनु आवरण भग्न करे छ–ते ज वृत्तिनु विषय करवु छे वृत्तिनु अन्य प्रकारनु विषय करवु नथी अने 'अहं ब्रह्मास्मि' एवी वृत्तिरूप तत्त्वज्ञानने बाह्यसाधननी अपेक्षा विना साक्षी प्रकाश छ एथी तत्त्वज्ञान साक्षिभास्य छे

इन्द्रियजन्य नथी अने प्रत्यक्ष छे; तेम दशमपुरुषनुं ज्ञान शब्दजन्य छे तो पण प्रत्यक्ष होय छे. ए रीतिए गुरुद्वारा श्रवण कर्यो जे महावाक्यरूप वेदशब्द, ते(शब्द)थी उत्पन्न थयुं ब्रह्मज्ञान पण प्रत्यक्ष ज संभवे छे. ११८.

(ब्रह्मात्मैकत्व उपदेशे तत्त्वदृष्टिना भेदभ्रमनो अन्त.)

दुहा.

गुरुमो ए उपदेश सुणी, तत्त्वदृष्टि धीमंत;
आतमा जाणी ब्रह्मरूप, कर्यो भेदभ्रम अंत. ११९.
'अहं ब्रह्म' ए वृत्तिमां, निरावरण छे भान;
दादु आदिरूप ते, इम लीधुं अमे पिछानि. १२०.

इति श्रीविचारसागरे उत्तमाधिकार्युपदेशनिरूपणं नाम

चतुर्थस्तरंगः

समाप्तः ४.



अथ श्रीविचारसागरस्य
पंचमतरंगप्रारंभः

अथ श्रीगुरुवेदादिव्यावहारिकप्रतिपादन मध्यमाधिकारिसाधननिरूपणं.

२१३. (अद्वैतमतविषे अदृष्टिनी शंका.)

पूर्व तरंगमां एम कह्युं केः- 'गुरुमुखद्वारा श्रवण 'कर्या वेदवाक्यथी अद्वैत ब्रह्मनो साक्षात्कार थाय छे.' तेने सांभळीने अदृष्टिनाम द्वितीयशिष्य आ शंका करे छे.- वेदगुरु सत्य होय तो अद्वैतनी हानि, असत्य होय तो तेमना थी पुरुषार्थनी प्राप्ति बने नहि. बने रीतिए वेदगुरुथी अद्वैत-ज्ञान बने नहि.

चोपाई

वेद गुरु जो मिथ्या कहिये, तेथी भवदुख नाशुं न जोइये।
जेम ज मिथ्या मरुस्थलनुं जल, तृपानाशनु तेमां नहि बल. १.
सत्य वेदगुरु कहे तो द्वैत थाय, जाय सिद्धान्त अद्वैत,
एम जोई शांकरमत अशुद्ध, त्यजो सकल मध्वादि प्रबुद्ध. २
ए शंका भगवन् मम उपजे, द्यो उत्तर दयालु विण खीजे,

२१४ (गुरुनुं उत्तर-शांकरमतनी प्रमाणता)

गुरु बोल्या शिष्यनी शुणी वाणी, शांकरनुं मत परम प्रमाणि. ३.
चारमत[१४१] मध्वादिक जे छे, वेदविरुद्ध कहे सर्वे ते छे,
एमां व्यास-वचन शुणी ल्हये, शांकरमत ज प्रमाण कारये. ४.

---

१४१. रामानुज, मध्व, निंबार्क, अने वल्लभ.

(व्यासनारायणनां वचन)

'कलिमां वेदअर्थ बहु करशे, श्रीशंकर शिव तदावतरशे;
'जैनबुद्धमत मूल उखाडशे, गंगाथी प्रभुमूर्ति काडशे. ५.
'जेम जगत्मां-सूर्यप्रकाश, अंधकारनो करे ज नाश;
'सर्व वस्तु ज्यमत्यम भासे, संशय अने विपर्यय नासे. ६.
'वेदअर्थमां तेम अज्ञान, दूर करे शंकर-व्याख्यान;
'करशे ते उपदेश यथार्थ, नासे संशय ने अयथार्थ. ७.
'वेदअर्थ बीजा जे करशे, ते शठ वृथा परिश्रम धरशे.'
एम **व्यास** पुराणे के छे, प्रमाण शंकरमतमां ए छे. ८.
मध्वादिकनुं मत न प्रमाण्युं, ए अम **व्यास**वचनथी जाण्युं.
अन्य प्रमाण कहुं ते सुणिये, वाल्मीकि ऋषि मुख्य जे गणिये. ९.
ते मुनिकृत ग्रंथ वासिष्ट, तेमां मत अद्वैत स्पष्ट;
शंकरे अद्वैत वखाण्युं, तेनुं मत ए हेतु प्रमाण्युं. १०
वाल्मीकिऋषि वचनविरुद्ध, भेदवाद लख सकल अशुद्ध. ११.

२१९. (भेदवादनी अप्रमाणता.)

टीकाः—सर्व प्रकरणनो भाव आ छेः-व्यासभगवाने पुराणमां आ कह्युं छेः-'ज्यारे कलिमां वेदना अर्थ (लोक) नानाप्रकारे करशे त्यारे कृपालु शिव, श्रीशंकर नाम धरीने अवतार लईने, बद्रिनाथनी मूर्तिनो देवनदीमांथी उद्धार, स्वस्थानमां स्थापन, जैनबुद्धमतखंडन अने वेदनुं यथार्थ व्याख्यान करशे. (वायु-कूर्मादिपुराणोंते) ए व्यासवचन-

१४२. अयथार्थ=भ्रान्ति.

१४३. (शंकराचार्यविषे व्यासनुं भविष्यकथन.)

कलौ रुद्रो महादेवो लोकानामीश्वरः परः ।
करिष्यत्यवतारं स्वं शंकरो नीललोहितः ॥
श्रौतस्मार्तप्रतिष्ठार्थं भक्तानां हितकाम्यया ।
उपदेक्ष्यति तज्ज्ञानं शिष्याणां ब्रह्मसंमितं ॥
सर्ववेदान्तसारं च धर्मान्वेदनिदर्शनात् ।

थी श्रीशंकरमत प्रमाण छे; अने मध्वादिकोनुं भेदमत अप्रमाण छे. अने उपनिषद्, गीता, सूत्र, ए त्रण जे वेदान्तनां **प्रस्थान** (उपदेशना उपाय) छे, तेमनां यद्यपि मध्वादिके कोई रीतिए खेंचीने स्वस्वमतने अनुसार व्याख्यान कर्यां छे, तथापि व्यासवचनथी श्रीशंकरकृत व्याख्यान ज यथार्थ छे. अने आदिकवि सर्वज्ञ वाल्मीकि ऋषिए उत्तररामायण (योग) वासिष्ठनामे ग्रंथ कर्यो छे, त्यां अद्वैतमतमां प्रधान जे **दृष्टि-सृष्टिवाद**[144] छे, ते अनेक इतिहासोथी प्रतिपादन कर्यो छे. एथी वाल्मीकिवचन अनुसार अद्वैतमत प्रमाण छे; अने वाल्मीकिवचन विरुद्ध भेदमत अप्रमाण छे. ए रीतिए सर्वज्ञ ऋषिमुनिवचनविरोधथी भेदवाद अप्रमाण कह्यो, अने युक्तिथी पण भेदवाद विरुद्ध छे, ए **खंडन** (खंडखाद्य)[145] आदिक ग्रंथमां श्रीहर्षादिके प्रतिपादन कर्युं छे. युक्ति कठिन छे एथी भेदमतखंडननी युक्ति लखी नथी.

२१६. अने ऋषिमुनिवचनथी विरुद्ध भेदमतमां जैन-मतनी पेठे अप्रमाणता निश्चय थयाथी, युक्तिथी खंडननी आस्तिक अधिकारीने अपेक्षा पण नथी ए कहे छे –

श्रीहर्षे 'खंडन' नामे जे ग्रंथ कर्यो छे तेमां भेदनुं खंडन अने एकतानुं मंडन कर्युं छे. ते(ग्रंथ)मां बहु विस्तार-थी लख्युं छे के,–'भेदवाद युक्ति सहन करी शकतो नथी.' (१२) बीजो **'भेदधिक्कार'**[146] नामे जे ग्रंथ छे तेमां भेदखं-

१४४. दृष्टि समये सृष्टि. वा दृष्टि ए ज सृष्टि.

१४५. एने 'न्यायखंडनखंडखाद्य' पण कहे छे. नैषधीयचरितना कर्ता हीरना पुत्र श्रीहर्ष कवि एना कर्ता छे.

१४६. गीर्वाणेन्द्रसरस्वती अने जगन्नाथाश्रमना शिष्य अने नारायणाश्रमना गुरु नृसिंहाश्रमकृत ए 'भेदधिक्कार' ग्रंथ छे. तेओए अद्वैतदीपिका, तत्त्वविवेक, वेदान्तविवेक आदि बहु ग्रंथ रच्या छे.

डननो मार्ग छे. (पण तेमांना) ते तर्को (मीमांसारूप विचार) अति कठिन दुरूह (दुःखेकरी कल्पना-परीक्षा-थाय एवां) छे. हे शिष्य ! तेओमां तारी मति प्रवेश करी शकशे नहि; (१३). एथी जे युक्तिए भेदने खंडन करे छे ते उक्ति (कथन) तने कही नथी. ज्यारे भेदमत अप्रमाण जाण्यो त्यारे खंडनमां युक्तिनी अपेक्षा पण नथी. (१४).

वेदवचनथी पण भेदमत विरुद्ध छे ए कहे छे. कठउपनिषदमां यमराजा (नचिकेता प्रति) पोकारी कहे छे,-हे तात ! 'भेदप्रतीति महादुःखदात्री छे, एथी चित्तथी भेदवादनो त्याग कर अने एक अद्वैतवादप्रति अनुराग राख.' (१५).

" ॥ मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति" ॥ इति श्रुतेः (जे (पुरुष) इहां (परमात्माविषे) नाना (भेद) पेठे देखे छे ते मृत्युथी मृत्यु पामे छे.)

"द्वितीयाद्वै भयं भवति ॥"

" ॥ अन्योसावन्योहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेव स देवानाम् ॥" इति द्वे श्रुती.

अर्थः—जे (पोतानी) मतिमां 'द्वितीयने धारे तेने तेथी 'भय थाय छे,' एम वेद पोकारे छे. 'ज्ञेय अने ध्येय ए अन्य 'छे हुं अन्य छुं एम जाणे, ते देवोना पशु ज जेवो छे. ते कंई 'जाणतो नथी.' एम वेदनो ढंढेरो छे. (१६). एथी हे शिष्य ! अति दुःखदाता मध्वादिकनी वाणी तें सांभळी होय ते विसारी मूक. तारा हृदयमां ज्यां लगी द्वैतवचन हशे त्यां लगी अद्वैतनो साक्षात्कार नहि थाय. (१७).

२१७. द्वैतवचननुं जो स्मरण थाय तो साक्षात् थाय तेमां पण संशय उत्पन्न थायः छे; (कारण के) पूर्वस्मृति,

साक्षात् विनाशे छे. तेविषे एक आवी कथा प्रकाशुं छुं ते सांमळ. (१८).

(भर्छुनी वार्त्ता.)

भर्छु नामे एक राजानो मंत्री हतो. सर्व राजकार्य ते भर्छुने तंत्र (अधीन) हतुं, तेथी अन्य जेटला अमात्यमंत्रीओ हता तेटला तेनी साथे ईर्षा करता; (१९). (पण) भर्छुनी कशी हानि करी शकता नहि. (कारणके) महाराजे पोताना जीव-समान प्रिय तेने जाण्यो हतो. पछी सर्वेए मळीने आ उपाय रच्यो. दोडधाड नंखावी दंगो मचवाव्यो. (२०). ए वात सांभली राजाए पोतानी सभा भरी सर्व उग्र अमात्योने बोलावी लीधा अने तेमने कह्युं केः-'वेगथी चढी जाओ अने धाड-'दंगाने नसाडो.' (२१). त्यारे सर्वेए मळीने आ उत्तर आप्युं केः-'तमे तो सदा भर्छुने ज जाण्यो छे. अने मरवासारू अवे 'अमने मोकलो छो. भर्छुने कहि केम नथी चढावता?' (२२). (ए सांभळी) पछी भर्छु करजोडी बोल्यो केः-'हे महाराज ! 'मारी विनती सांभळिये. महाराजानी आज्ञा होय तो हुं 'दोडी सकल धाडने मारूं.' (२३). त्यारे राजा भर्छु प्रति बोल्यो केः-'तमे चढी जाओ, कार्य समारो.' भर्छुए जतां ज ते सर्वने मार्या. अने वणिक अने कृषीवल(खेडुत)ने सुखी कर्या. (२४). तेओए (पेला बीजा अदेखा मंत्रीओए) भर्छुनो विजय ज्यारे सांभळ्यो त्यारे (बीजो प्रपंच रच्यो अने) राजा प्रति आ कह्युं, – 'भर्छु मार्यो गयो. अने कार्य सुधर्युं 'नहि.' ए मिथ्या वचन सांभळतां ज (२५) राजाए तेने स्थानके बीजो अमात्य प्रधान कर्यो. अने तेने छत्र, सुखपाल, पंखादि दीधां. पछी पेला बीजा मंत्रीओए पोतामां एवी युक्ति करी के राजा स्वप्नमां पण भर्छुने सांभळे नहि. (२६).

त्यारे भर्तृहरि सर्व वृत्तान्त सांभळी अने आवुं गणीने केः- '(पेला लोको) हवे राजा प्रति मने जवा देशे नहि; कारणगी 'गये तो मारा प्राण ज लेशे,'–तेणे तपस्वीनुं रूप धर्युं (२७). (अने विचार करवा मांड्या केः–)

आज लगी सर्व पदार्थ भोगव्या, देह अने इन्द्रिय नीरोगी रह्यां, सुंदर तरुणी जे चार चतुष्पाद, चार पुष्प, चार फल अने चार पक्षीथी सोहामणी थईने मनने मोहमां नांखे छे,'' (२८).

---

१४७. इहांथी–स्त्रीनां अंगोना वर्णनरूप आरोप कर्या छे ते दोषदृष्टिरूप अपवादअर्थ छे............एथी स्त्रीना अंगनी उपमामां तात्पर्य नथी. किन्तु तेवी उपमा देवावाळा विषयलंपट जनोना उपहासमां तात्पर्य छे. सर्व काव्यग्रंथनो पण ए ज अभिप्राय छे. पं. पी. पुं.

१४८. अंक २९–३०–३१–३२ ना दुहा मूलमांथी टीपमां नांख्या छे. कामशास्त्रमां स्त्रीना शरीरना अवयवोने चार पशु, चार फूल, चार फल, अने चार पक्षीनी उपमा आपेली छे, ते:–

चार चतुष्पदनां नाम. दुहो.

[करिकर उरु, मृगखुरी पुरज, केसरी सम कटि मान;
लोचन चपल कुरंगसम, वर्णे परम सुजाण] २९.

(हाथीनी सुंड जेवी साथळ–जांग, मृगनी खरी जेवुं गुह्यस्थान, सिंहनी केड जेवी पातळी कमर, अने हरणनी आंख जेवां चंचल नेत्र, ए रीतिए चारपगां प्राणीनां चार वानांसहित सुंदर स्त्री.)

चार फूलनां नाम. दुहो.

[कमल वदन, अलसी कुसुम चिबुक चिन्ह मतिधाम;
तिलप्रसूनसम नासिका, चंपक तनु अभिराम.] ३०.

(कमलना जेवुं मुख; अलसीना फूल जेवु–बुद्धिना धाम जेवी हडपची उपर-घनश्याम छुंदणुं; तलना फूल जेवी नासिका; अने चंपाना फूल जेवुं सुंदर शरीर, एवां चार फूल जेनी पासे छे एवी स्त्री.)

चार फलनां नाम. दुहो.

[बिंब अधर, दाडिम दशन, उरज बिल्लसम धीर,
कोहर सम एडी कहत, कोविद मतिगंभीर.] ३१.

(पाका धीलोडा जेवो नीचेनो होठ, दाडिमना बीज जेवा दन्त, बीलानां

२१८. जेम सागर गंगाने कदि पण त्याग करतो नथी, तेम जे स्त्रीथी रसिक(पुरुष)नुं मन अनुरागे छे एवी अने वली ब्रह्माए जाणे अपर तिलोत्तमा ज [जेणे सुंदने हण्यो तेथी ते श्रेष्ठ नहि.] बनावी होय एवी, (अति सुंदर स्त्री) (३३). जेना हाथपगनो रंग मेंदी अने जपा पुष्प जेवो छे, तेनो में निमिष त्याग कर्यो नथी. ते स्त्रीभोगनां उपकरण-बीजा सर्व भोग भोगव्या छे. मरण निकट आव्युं छे (३४). अरे ! मारा जेवो जगत्मां मूढ कोण छे ?

जेना कठिन अने स्थिर स्तन, कोद्दर (सलगमनां लाल कंद) जेवी एडी, ए रीतिए चार फलवाळी स्त्री.)

चार पक्षीनां नाम. दुहो.

[मराल सम छे मद गति, कपोत कट ज वेश,
कोकिल-वाणी अति मधुर, मयूरपुच्छसम केश.] ३२.

(हंसना जेवी मदगति, कपोत (होला वा कबूतर) ना जेवो कटनो आकार कोयलना जेवी बहु मधुर वाणी, अने मोरना पीछां जेवा वाल, ए रीवे चार पक्षी जेनी पासे छे एवी.)

१४९. स्वर्गनी मुख्य अप्सरामानी एक अप्सरा. तेविषे एवी कथा छे केः— सुंद अने उपसुंद नामे बे दैत्य निसुन्दना पुत्र हता. तेने ब्रह्मानुं एवुं वरदान हतुं के तेओनामां अन्योन्य विरोध पेशी तेओ परस्पर लडे त्यारे ज मरे. बीजा कोईथी मरे नहि. तेओने परस्पर परमस्नेह हतो. तेओ सरधी महाबलवान् थया अने इन्द्रने इन्द्रासन उपरथी उठाडी मूक्यो अने देवोने सतापवा लाग्या तेथी देवो ब्रह्मा पासे आव्या अने ते दैत्योनो नाश करवा उपाय योजवा प्रार्थना करी. तेथी ब्रह्माए तिलतिल जेवां रत्ननी एक अति सुंदर स्त्री घडी अने तेनुं नाम 'तिलोत्तमा' पाड्युं. पछी ज्यां सुंदउपसुंद रहेता हता त्यां ते स्त्रीने मोकली. एने जोतां ज बन्ने भाइयो दोडी आव्या अने एकेको हाथ झाल्यो. पछी ते स्त्रीने लेवा बंनेए परस्पर युद्ध कर्युं. ते एटले सुधी के बन्ने जण परस्परना प्रहारथी मरण पाम्या. ए तिलोत्तमा सुंदउपसुंदना मरणमां निमित्त थई तेथी हत्यारी गणाई एटले ते श्रेष्ठ नहि. पण पोतानी स्त्री तेवी नहि एथी तिलोत्तमाथी पण श्रेष्ठ, एवो अभिप्राय छे. स्त्रीमां मोहित थयेथी विवेक जई महाबलवानोमां कुसंप थई मरण थाय छे.

हुं आजसुधी भगमां लंपट थयो. (अरे ए धिःकारवा योग्य छे !) मलिन मांसउपर चामडुं लपेटेलुं अने उपर अलिन् (विछीना दंशवाला)वाळ एवुं, अशुद्ध अने निशदिन अंदर मूत्रथी गंदुं अने भीनुं रहेनार अने जेमांथी क्षतविना मांसमय रुधिर स्त्रवे छे एवुं, अति अपवित्र अने ग्लानिनुं स्थान,-एमां कियो पदार्थ सुंदर छे. (३५-३६) जेने केलना स्तंभ अने हाथीनी सुंढनी उपमा आपे छे ते स्त्रीनी जांघ तो सदा निन्दित ज छे, अने हाडकां, मांस, लोही, अने चांमडीनो पसारो अने मूत्रनो पचपचो खाळ न होय, तेवी छे. स्थूल नितंब (धगडा) जे सारा लागे छे तेना मध्यमां तो मलनो मलिन नळ (गुद) रह्यो छे, जेने तटे अति दुर्गंध रहे छे. अरे ! त्यां जे आसक्त थाय ते अंध छे. (३७-३८).

थुंक अने लाळथी भीना थता अधरने ग्लानि त्यजी पोताना मुखमां दे छे. दृष्टमदा (जेने देखतां ज मद चढी जाय एवी) नारीरूप मदिराने सेवीने शुद्धअशुद्धनो विवेक तजी दीधो (३९). (धिःकार छे.) नारीनां जे अंग सारां कहे छे, (ते तो,) विचार करतां एवां फीकां लागे छे. में हवे नारीने कुडकपटनी खाण जाणी अने त्यजवा विचारी छे (४०).

२१९. कालकंद (बरफी), पेंडा, कंद, दुग्धपाक, दहीं, तंदुल, बहुप्रकारनां व्यंजन (शाकादि), घृत, अने बीजां विविध भोजन जे कर्यां ते सर्वना रस जीभे लीधा छे (४१), पण हजीसुधी ए(शरीर)ने तृप्ति थई नहि, एथी तेने पोषवुं वृथा छे. वननां फलकंद क्षुधानो नाश करे छे. (एम सते) आ जीव पराधीन केम थाय छे ! (४२). गुफारूपी महालय अने वनरूपी बाग घणा छे, तो राजानो चेलो (चाकर) शासारुं हुं थाउं ! शिलारूपी सेज छे, अने पोताना भुजरूपी उसीकुं छे.

फररूपी पात्रमां निर्मल निर्झरानां जल छे जे कोई रोके नहि. (४३). हे भर्तु ! एकान्तमां ज बेसीने स्वच्छंद थइने परमानंदने लइए. समुद्रपर्यन्त सर्व ज पृथ्वी मळे (तोपण) एकान्त विना आनंद कदि पण छे नहि. (४४).

२२०. (सर्वने एकान्तमां ज सुख छे) पृथ्वीपती, नीरोगी, युवा, दढ अने बलवान् स्थूल(शरीर), विद्वान्, एवो जे राजा होय तेमां मनुप्यसुखनो अंत छे (अन्त आव्यो एम गणाय छे.) (४५).

अने जे मानवगंधर्व कहेवाय छे ते उपर कहेला राजाथी सोगुणु सुख पामे छे. अन्य जे देवगंधर्व होय छे, तेने मानवगंधर्वथी सोगुणु सुख वधारे छे. (४६). देवगंधर्वनुं जे सुख छे तेथी पितृलोकनुं (सुख) सोगुणु छे. वली ते पितृलोकथी आजान(स्वर्गजात)देवमां सोगुणु सुख छे. आजानदेवथी कर्मदेवमां सोगुणु सुख छे (४७). तेमां वली जे मुख्यदेव छे तेओमां कर्मदेवथी सोगुणु (सुख) छे. अने जे त्रिलोकपति इंद्र कहेवाय छे तेमां (ते मुख्यदेवथी) पण सोगुणु (सुख) गणीलयो (४८) सर्व देवना गुरु बृहस्पति छे ते इंद्रथी सोगुणा सुखनी गतिने ले छे. जेनुं नाम प्रजापति कहे छे ते बृहस्पतिथी सोगुणु सुख राखे छे. (४९).तेना करतां पण ब्रह्मनुं सुख सोगुणु छे ते लेश पण दु:ख कदि लेता नथी. एटला ए क्रमथी सुखने पामे छे एम तैत्तिरीय श्रुति समजावे छे. (५०),

सोरठो

राजाथी ब्रह्मान्त, कह्युं जे सुख ते सकल ले,
रहे सदा एकान्त, कामदग्ध जेनुं न हृदय. ५१.

१५०.[मुख्य देव एकत्रीश (३१) छे.तेमां ११ रुद्र, १२ आदित्य, ८ वसु. तेमां इन्द्र अने प्रजापति मळी ३३ देव थाय छे.

२२१. अथ युवतीसंगदुःखवर्णन.

एकान्त देशमां एवुं सुख छे. युवती, पुत्र, धनना संगथी सदा दुःख छे. जेनी स्त्री कुरूप अने कुवचनी होय छे तेने हृदये सदा आ शोक थाय छे. (५२):-हे प्रभु! पुरीषनो पिण्ड आ रंडा, ए मने कया पापनो दंड दीधो छे. सर्पिणी, पागडी, बोकडी, भेंश, नोळी अने नागणीना (५३) भूतभावती (चुडेल) उटणीना जेवा तो बोलो बोले छे. गधेडीनुं बोलवुं सांभली गधेडा मोहे छे. शीयाली जे उंचा स्वरने शब्दे उचारे छे ते सांभली हजारो शीयालवा पोकारे छे (५४.) (प्राणीने गमती स्त्रीनुं बोलवुं प्रिय छे.) निरपराधिनी स्त्रीने तजवी ए, विराग विना, बनतुं नथी तेथी (पूर्वजन्ममां करेला) पापनुं (स्त्रीरूप फल) जीवने लाग्युं छे-आव्युं छे. स्त्रीना कुबोल सांभलीने अने कुरूप तनु जोईने निशदिन प्रियनुं मन दुःखित रहे छे. (५५.) जे कामिनी सुरूप अने सुवाणी-वाली छे, ते वली कुरूप स्त्रीथी (अधिक) दुःखदात्री छे. चमकती चामडीनी ते प्रियने प्रिया छे; तेथी तेना धर्म अने अर्थनो नाश करनारी अने मोक्षने बिगाडनारी छे. (५६.) स्त्रीनां मीठां वेण छे ते झेरवाला लाडू जेवां छे, तेने खाई बुद्धिने गुमावी भडवो थाय छे, अने ते कामथी अंध थई एक कामिनी विना बीजुं स्वप्नमां पण देखतो नथी. (५७.)

२२२. अथ युवतीसंगे धर्मबिगाड

जे कंई धन बहिर्‌थी के घरमांथी मळे छे सर्व कामिनीने सारु खरचे छे. तेने भूषणवस्त्र पहेरावे छे पण गुरु, पिता माता तो तेने सांभरतां पण नथी. (५८.) दुधपाक, मीठाई, मेवा, पान, निजदेव (जे ते स्त्री) तेने भक्तिथी दे छे. स्त्री छे ते खेडुत जेवी छे अने तेनो प्रिय ते बलद जेवो छे. ते

नाथने स्नेहरूपी नाथे खीप नाथ्यो छे, ते छुटी शकतो नथी, तेने कूदवां ज करे छे. (५९).

२२३. अथ युवतिसंगे धर्मविगाड.

जेम पिंजरामां राखेलो पोपट शुद्ध अशुद्ध जे शिखव्युं होय ते बोले छे, तेम (पेलो धणी) जे कंइ ते नारी शिखवे छे ते ज (पोतानां) मातापिता अने गुरुने संभळावे छे. (६०.) जेम मोर मोरली आगळ नाची रीझावीने पोते अनुरागे छे तेम विविध वेषेकरी स्त्रीनुं मन रीझावीने प्रियनुं मन रीझे छे. (६१.) ज्यारे बंनेनुं मन अनुरागवाळुं थाय छे त्यारे मदनरूप मदिरानो मद जागे छे. पछी बावरा थई वस्त्रनो त्याग करे छे. अने अति उन्मत्त थई वळी घूर्णवा लागे छे. (६२). नग्न अमंगल प्रेतरूप धरी (वाय) भीडी फरी भीडे छे. जाणे बे घेटानुं दंगल (लडवुं थतुं) होय. जेम कोई मतवाळो दारुडियो गंदकी मलिनता के ख्याल गण्या विना गमे त्यां आळोट्यां करे छे. (६३)) तेम नरनारी मदनना मदथी अंध थईने अति मलिन अंगमां बंधाय छे. मनने मदनमद जे भ्रम करे छे, ते सांभळी त्यागी जनने आश्चर्य थाय छे. (६४). मदनना मदथी नरनी बुद्धि नाश पामे छे, (तेथी ते स्त्री) उच्च छे के नीच छे; घरनी छे के परनी छे, ए कंई जोतो नथी. स्त्रीने पण मदने बावरी बनावी छे. (तेथी) जे क्रिया दुःखदा छे ते सुखदा थाय छे. (६५.) प्रबल कामनी मदिराथी मद जागे छे त्यारे छिजनी स्त्री धानक (बाघरी-कोळी) साथे लागे छे. नर नारी मदनरूपी मदिरा पीए छे (तेथी) एवी अनत खुवारी करे छे. (६६.) कामरूप दोष ए रीतिए नरने वगोवे छे ते सुंदरस्त्रीने जोवाथी प्रकटे छे. एथी अति सुरूपवती स्त्री दुःखदानी छे,-एथी तेना त्यागने मुनि सुखदाता कहे छे. (६७.)

जे सुरूपा स्त्रीमां अनुराग करे छे अने तेने विषसम दुःखदा छे एवुं देखी भागता नथी, तेओ उभय लोकनी बहु हानि करे छे. एम मुनिजनना गण, प्रमाण बखाणी, गणे छे. (६८.)

२२४. (युवतिसंगथी बिंदुनो नाश.)

(मनुष्य) जे नानाविध भोजन खाय छे तेनो रस फलरूप बिंदु(वीर्य)ने उपजावे छे. सर्वनुं जीवन बिंदुने अधीन छे. मननो शोक बिंदुए नाश पामे छे. (६९.) ज्यारे जननुं मन मलजासि थाय छे त्यारे शोक करे छे अने अति-उदासीनता (मूढता) धरे छे. ज्यारे मन रुधिरमां निवास धरे छे त्यारे चंचल थई अधिक रजो गुण धारे छे. (७०.) पण ज्यारे मन बिंदुमां वास करे छे त्यारे, शोक अने चंचलता नाशे छे; (एटलुं ज नहि पण(पोताने ज बलवान् जन जाणे छे अने प्रसन्न थई शुभकार्य करे छे. (७१.) जे जनमां अधिक बिंदु होय छे तेना तनुमां सुंदर कान्ति अने रूप होय छे. शरीरमां बिंदुनु ज अजवालुं छे. बिंदुनो नाश थतां शरीर हत्यारा जेवुं थाय छे. (७२.) जेना बिंदुनो कदि पण नाश थतो नथी, तेना शरीरमां वलियां (पडतां नथी) अने पळियां प्रकाशतां नथी. योगी खेचरी-मुंद्रा करे छे तेथी बिंदुने रक्षीने

---

१५१. दोषेण तीव्रो विषयः कृष्णसर्पविषादपि ।
विषं निहन्ति भोक्तारं द्रष्टारं चक्षुषाप्ययं ॥ ७९ ॥

विवेकचूडामणिः

दुहो. अहिविष तनु काटे चढें, यहि चितवत, चढी जात,
ज्ञान ध्यान मुनि प्राण हुं, लेत मूल सुत खात.

---

१५२. कपालकुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा ।
भ्रुवोरन्तर्गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी ॥

भद्र थाय छे. (७३.) योगीओ जे अष्टसिद्धि धारण करे छे ते (योगी) विंदु रसेथी भोगी थई हारे छे. जगत्मां एवुं अति उत्तम जे विंदु छे, तेने स्त्री पोताना भागमां छीनावी ले छे. (७४.) जेम खेडुत शेलडीने वारंवार कोलमा घाली पीले छे अने तेना रसने नीचोवी ले छे अने पछी (ते शेलडीनो) पुलो असार (कुंचा) थाय त्यारे तेने बाळे छे. (७५) तेम स्त्री प्रियने बाथमां पीशीने, तेना अमीरसने खेंची लई पोतानी.. रूप घटने भरे छे. अने त्यांसुधी तेना अंगमां विंदुनुं पण विंदु शेष रहे त्यांसुधी (स्त्री) एवी क्रिया वारंवार नित्य कर्यां करे छे. (७६.) फुलमांथी फुलेल खेंची जेम कुंचा राखे छे तेम नारी नरनो देह (कुंचा जेवो) असार करी नांखीने पछी ते अकाम दाय थाय त्यारे तेने, अलात (बळतां) खोयणांना जेवा सूका वोलथी, बाळे छे. (७७.)

जे सुरूपवान् बलवान् अने धनवान् होय छे ते नरना उपर नारी बलिहारी थाय छे, अने तेनां रूप, धन अने बलनो अंत करी पछी तेने कहे छे केन्तुं कोनो कान्त! (७८.) (एम छतां पण) वळी जे अनाडी तेने फरी मळवा चहाय छे, तेने धडउपर हाथ मूकतां ज (रांड) गाळो दे छे, नाक चढावीने आंख मरडे छे, जेथी पति सहेजपासे जाय ज नहि. (७९.) कोटि वज्रनो संघात कराय अने ते सर्वनो सार खेंची एकठो मूकाय, ते पण स्त्रीना हृदया जेवुं कठोर नथी,—एवो ऋषि

चित्त चरति खे यस्मात् जिह्वा चरति खे गता
तेनैषा खेचरी नाम मुद्रा सिद्धैर्निषेविता ॥
यावद्विंदुः स्थिरो देहे तावन्मृत्युभयं कुतः ।
यावद्बद्धा च सा मुद्रा तावद्बिन्दुर्न गच्छति ॥
१५३. अणिमा लघिमा प्राप्तिः प्राकाम्यं महिमा तथा ।
ईशित्वं च वशित्वं च तथा कामावसायिता ॥

मुनिना गण ढंढेरो पीटी दे छे. (८०.) जेम जेम स्त्री गुमान करे छे अने हठे छे तेम तेम शठमति जननुं मन (वधारे वधारे) चांटे छे. कोईक वार तेनुं वांछित करीने तेने पकडीने मरण सुधी छोडती नथी. (८१.) श्रुति, स्मृति, गीता, ने पुराण भणेलो, तर्कमां निपुण अने वली कोईए जितायलो नहि एवा नरने पण, जेम बाजीगर वानरने अधीन करे छे तेम, नारी अधीन करे छे. (८२.) (तेनी पासे) सर्व कंई मनभावतुं करावे छे, अने ए भणेला पशुने भली भाते नचावे छे. ज्यारे पंडित पढीने स्त्री प्रति जाय त्यारे उक्ति (बोलवुं) अने युक्ति ए सर्व ज विसरे छे. (८३.) ज्यारे कदा वेद(नाम विद्या)ने ए संभारे छे त्यारे कंईक स्त्रीमां खेद माने छे; अने तेनो त्याग करवानी इच्छाने धारे छे; (पण तेने) फरी स्त्रीनां नयननी सेनरूपी शर (बाण) शारे छे. (८४.) नयनकटाक्षरूपी बहु तेरी शर, भ्रुकुटीयुगलरूपी कमानने जोडी ताणीने तेपर चढावी स्त्री मारे छे, ते सर्व जननां हृदय शारे छे. तेमांथी विद्वान् पण बचता नथी, तो शठगणनी गणत्री ज शी? (८५.) स्त्रीमां तीव्र विराग थयो नथी (एथी) एम मतिमंद (लोक) फरीथी तेमां राग करे छे. जेम चाकरउपर हुकम करे तेम ठाकुरपेठे बेठेली (पतिपर) विविध आज्ञा करे छे. (८६.) नारीना नयनशरे जे नर विंधाया छे तेनां हृदय सीधां होतां नथी. सारअसार, सुखदुःख, सर्व ते वीसरी जाय छे,-तो ते भव दुःखमांथी केम नीसरे! (८७.) नारी वेश्या हो, परकीया हो, ते बुरी छे. त्रीजी घरनी (स्वकीया) पण नरकनीशानी छे. विवेकी (जन) त्रणेमां स्नेह त्यजे छे. जे स्नेह करे ते शठना म्होउपर धूल (पडो.) (८८.)

दुहो.

अर्थ, धर्म, ने मोक्षने, नारी बिगाडे पन;
जाणी सर्व अनर्थ-मूल, थाय त्यजे ते, चेन. ८९.

२२५. (पुत्र आसक्तिमां दुःख.)

पुत्र सदा आम दुःख दे छेः—तेनी प्राप्ति नहि ए (प्रथम) एक दुःख, गर्भसमय दुःख, जन्मतां दुःख, अने मरे तो अनेक दुःख. (९०) ज्यां लगी नारी गर्भने धारे नहि त्यां लगी दंपती(वरवधू)ना मनमां भारे दुःख थाय छे. जो गर्भ रहे तो पण ए चिंता (दुःख) नाशती नथी. पुत्र के पुत्री थशे (ए चिन्ता) प्रकाशे छे. (९१.) गर्भ गरवाना अनन्त हेतुओ तेओथी डरीने अति चिन्ता करे छे. जो नवमास विती गये पुत्र थाय तो जननीजनक अधिक दुःखे भराय छे. (९२.) सकल जगतमां कोई जननो एवो जन्म नथी के, जेमां नवग्रह-मांथी एक बे थीगड्या होय नहि. ते विगडेला ग्रहनी निशि-दिन चिंता, मातापिता एकान्त बेशी कर्यां करे छे. (९३.) धावबुं त्यजीने ज्यारे शिशु (बालक) उदास थाय छे त्यारे बंने मळीने रोवा लागे छे. एम चिंता करतां करतां केटलाक मास जाय छे एटले पुत्रना झीणा दांत नीकले छे, (९४.) त्यारे-दांत नीकलतां बहु बालको मरी जाय छे-एवुं चितादुःख स्त्रीपुरुषने थाय छे. ए दुःखमांथी दुर्बल बालक जीवे (ते सारु) चकलुं जोई उतार मूके छे. (९५.) म्लेच्छ, चमार, चंडाल अने कोळी एवानीपासे, घोरी द्विज (होय ते पण) पीछी (उजणी) नंखावे छे, अने सईयद ख्वाजा (खोजा), पीर, अने फकीरो पासे नमे छे अने अधीरा थईने हाथ जोडे छे. (९६.) जेने आर्य लोक (हिन्दु) कदा माने नहि, तेने पुत्र सारु इष्ट जाणे छे. नाना भूत भैरवने मनावे छे, अने श्मशान-

भूमिमां शिवावलि (शियालने बलिदान) धरे छे. (९७.) घरमां वायरीनां (भूवानां) डाकलां वागे छे अने (तेने) हाथ जोडतां अने पूजतां लाजता नथी. बीजां बहु तावीज अने यंत्र लखी मढावीने पुत्रने गले घाले छे. (९८.) निज कुलमां एक अच्युत-(ईश्वर)नी पूजा छे. कोणे पण बीजाने स्वप्नमां संभारेला नहि, ते कुलनो नियम, पुत्रहित सारू त्यागे छे, अने व्यभि-चारिणीनी पेठे, जहिं तहिं लागे छे. (९९.) ज्यारे शीतलानुं नीकळवुं थाय छे त्यारे मातापिताना मननुं विकसवुं नाशे छे. ज्ञानक्रिया तजीने (तेओए) मलिन रहेतां परमदेव गधेडाने कर्यो छे. (१००.) अने बाग(छोकरडा)ने मरडीने कहे छे के 'हे माता (गधेडी)! मारो शिशु मने बकसजे अने हुं तारा गधेडाने चरावुं छुं.' एम कही खोळामां चणा धरी विनति करी गधेडाने चारे छे. (१०१.) एवां अनंत दुःखथी शिशुनुं पालन थाय छे; अने बीजां हजारो (दुःख) ते युवा थाय त्यांलगी वेठवां पडे छे, पण जो पुत्रनुं वय थोडुं होय छे तो, करोडो उपाय करो पण ते मरे छे ज. (१०२.) अने मरे सते मातापिता पोताने अनाथ दीन मानीने माथां कूटे छे, अने हायहाय कही निशदिन रोयां करे छे तथा धिक्‌धिक् कही पोताना जन्मने वगोवे छे. (१०३) पुत्रमरणनुं दुःख छे ते जेवुं पुत्रवाळां जाणे छे तेवुं अपुत्र जाणतां नथी. जो (पुत्र) जीवे तो ते तरुण थते ज नारीनुं भरणपोषण करवा लागे छे. (१०४.) जेओए अनेक यत्नोए करीने प्रतिपाल्यो तेओने तो जल पावुं पण भारे पडे छे. रात्रे पलंगपर नारी शिखवे जे तारां मातापिता मने गाळो दे छे. (१०५.) (ते सांभली) जो सुपुत्र होय तो प्रातःकालमां उठीने मस्तकने नमावी दूरथी मावापने नमे छे, मातापिता इच्छे छे के (पुत्र) पासे

आवे (पण) पुत्र आंखथी सन्मुख देखतो नथी. (१०६.) कुपुत्र होय तो प्रातःकालमां उठतां ज गाळोना जेवां असरा वचन वको घरनुं सर्व धन लई जूदो थाय छे. मावापने तेमनुं शरीर ज एकलुं दे छे. (१०७.) पछी तेओने कदा संभारतो पण नथी. पोताना अने स्त्रीना शरीरनुं सर्व दिन पोषण करे छे. एवुं जोई मावाप निश्वास मूके छे. ए प्रकारे पुत्र सदा दुःखनो ढगलो छे. (१०८.) विचार करी देखिये (तो एम) पुत्र सदा दुःखरूप छे. पुत्रथी जे सुख चहाय छे ते मूढोना राजा छे. (१०९).

२२६. (धनआसक्तिमां दुःख.)

दुहो.

स्त्री पुत्र त्यजी जे धन चहे, तेना सुखमां धूळ,
धनजोडन, रक्षाकरण, खरच, नाश, दुःखमूळ. ११०

जे बहु माया (धन) जोडवाने इच्छे छे ते लाखो अने क्रोडो अनर्थ करे छे. जे जन धनने जोडवा लागे छे, ते जातिना धर्म अने कुलना धर्मनो पण त्याग करे छे(१११). तदपि भाग्य विना धन एकठुं थतुं नथी. (कदापि) एकठुं थयुं तो तेनी रक्षा करी करीने मरे छे. खरचतां धन घटी जशे ए चिंता थाय छे, अने नाश थवथी निशदिन अनन्त ताप थाय छे. (११२). एम धन, मनने सदा दुःख करे छे. ते(धन)ने जे चाहाय छे ते जनने धिक् धिक् छे.

(ए प्रमाणे)स्त्री, पुत्र, अने धन, एओने दुःखदाता जाणीने भर्तृए (तेमना उपरथी) ममतानो नातो त्यज्यो. (११३.) पछी भर्तृ एकान्त वनमां गयो अने चित्तने शान्त कर्युं.

---

१५४. अर्थानामर्जने दुःखं तथैव परिपालने।
नाशे दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थं च पुनः पुनः ॥ १ ॥

२२७. (अथे पेला राजापासे) जे नवो मंत्री थयो तेणे ए सर्व वृत्तान्त सांभळ्यो. तेने आ चिन्ता उपजी,-जो भर्तु जीवे छे (ए वार्ता) राजा सांभळशे अथवा कोई नाके ए मळी जशे तो अमे जुठा ठरीशुं, अने राजा सर्वने दंड देशे. पछी अवे (सर्वे) मळीने कहो के,-'भर्तु प्रचंड प्रेत थयो छे'. (११४.) ए सलाह परस्पर करीने, (सर्वे) राजसभामां गया; अने सर्वेए मळीने राजाने कह्युं के,-'भर्तु नीच प्रेत थयो छे.' (११५.) देहपर राख लगावे छे, अने जेने मळे तेने घात करे छे अने पछी मारे छे. अने ते ज नर बचे छे जे तेने देखी पली (नाशी) जाय छे. (११६.)

(ए वात) सांभळी राजाए, प्रमादी अने अचेत थईने साचजुठ जाण्या विना, एवो निश्चय कर्यो के,-'भर्तु मरीने 'प्रेत थयो छे.' (११७.) केटलाक दिवस विती गया पछी राजा शिकार मारवा गयो. त्यां एक सघन गिरिवनमां ज्यां हजारो मृगराज (सिंह) हता त्यां पेठो. (११८.) त्यां पोतानो मंत्री भर्तु एक तरुतले तप करतो हतो तेने देखी दुःख दाता प्रेत मानीने राजा उलटो भाग्यो. (११९.)

२२८. जेम, 'भर्तु मुवो अने प्रेत थयो छे,'-ए असत्य वाक्यने सत्य जाण्युं तेथी, पोतानी आंखे (राजाए भर्तुने) जीवतो देखी लीधो तोपण (तेने) प्रेत मानी भाग्यो; तेम जे अजाण (लोक) वंचकथी (ठग लोकथी) द्वैतने सांभळीने मतिमां विश्वास करे छे, ते अद्वैत ब्रह्मने प्रत्यक्ष जाणे तोपण तेना (ठगाई गयेला भोळाना) हृदयमां ते ठसतुं नथी. (१२०)

जे कोई अजाण्या, भेदवचनउपर विश्वास करीने सांभळे छे, ते जन सदा दुःख भोगवे छे, अने (तेमने) ब्रह्मनु ज्ञान

थतुं नथी. (१२१.) पछी भेदनां वचन सांभळे तो (तेने) असत्य जाणे त्यारे तेने महावाक्यथी सत्य ज्ञान थाय. (१२२.)

हे शिष्य ! तें जे भेदनी कहाणियो सांभळी होय तेने नरकनी निशानी अने जुठी जाण. तेओना कहेनारा पण सर्व पुरुषार्थसुखथी गएला एवा शठ अने जुठा छे. (१२३.) तेओनो संग कदापिए न करवो, जो संग थाय तो (तेमनां जुठां) वचन सांभळवां नहि, (जो जुठां वचन) सांभळवामां आवे तो सांभळतां ज त्यजवां अने म्लेच्छ अने जैन वचनसम जाणीने तेथी भागवुं. (१२४.)

२२९. (मिथ्या दुःख मिथ्याए ज छेदाय.)

(हे शिष्य ! तारी शंका हती के) 'जो देशिक (गुरु) अने वेद मिथ्या होय तो, (तेओ केम करी भवदुःखनो छेद करी शके ?' एनो अवे उत्तर (तुं) सांभळी ले. मिथ्या दुःख छे ते मिथ्याथी ज छेदाय छे. (१२५.)

(ए विषे दृष्टान्त. एक राजानुं स्वप्न.)

चोपाई.

वेद गुरु सत्य ज जो होय, तो मिथ्या भवदुःख न खोय,
एमां एक दृष्टान्त श्रुणावुं, जेथी तु ज संदेह नशावुं. १२६.
सुरपति इंद्र स्वर्गमां जेवो, प्रबल प्रताप एक भूप एवो;
भीमसमान शूर बहु नित्ये, चार पास तेनी रहे प्रीते. १२७.
योद्धा लई निजनिज हथियारो, खडा रहे ते द्वार हजारो;
मंदिर अंतर्, दोडी, उभा, लई खड्गोने कोशथी काढी सहि. १२८.
उच्च महालय अटारी जेमां, फूल सेज सूवे नृप तेमां;
पक्षी पोचवाने पामे नहि, अन्य केम चाली जाये तहि ! १२९
आवुं स्वप्न त्यां दीठुं नृपे, पकड्यो स्वपग शियाळे झडपे;
इच्छे भूप छोडावा निज पग, शियाळ न मूके पकडी पगरग.१३०.

तदा उभो नृप एम पुकारे, छे को एवो शियाल मारे;
उभा योद्धा जे निजद्वारे, सहाय तेणे न दीधी त्यारे. १३१.
नृपे दंड लीधो निज करमां, पोते मार्यो शियाळ शिरमां;
दंड लागी थयो तेनो अन्त ज, पगरगथी निःसर्या तव दंत ज. १३२.
लाग्या गाढ दंत नृपपगमां, चाले लंगडतो मारगमां;
तव चाल्यो लई लाकडी करमां, पहोच्यो घावैद्यतणा घरमां. १३३.
तेने कह्युं मलम द्यो एवो, पग-घा तुरत भराए तेवो ;
कह्युं आ नृपने घावैद्ये तहिं, घरमां मलम तयार ज छे नहिं. १३४.
जो तुं दे एक पैसो मजने, तो तयार करी देउं तजने;
तव पलट्यो नृप लाकडी टेके, नहि देवाने कोडी ज एके. १३५.
ते घरथी टली शोक करे छे, कोण धनविना वात बुजे छे !
जो बहुभागी ने धनी हुं हत, घावैद्य ज दोड्यो घर आवत. १३६.
मने नकामो रंक जाणी त्यम, टाल्यो घरथी तुरत रोग ज्यम;
दोष कशो नव देवो एने, प्रीति स्वार्थविना छे केने ? १३७.
मातपिता बान्धव सुत नारी, करे प्रीति स्वारथथी भारी;
जो स्वार्थ सिद्धि नहि पामे, जोवुं एमने गमे न सामे. १३८.
जे विना घडी एक न रहे, अपार दुःख विरहे सउ लहे;
गृह-पदपर आव्यो देखीने, गृहनां धाई मले भेटीने. १३९
विधि अधीन ते पतियो थाय, सौ अंगे पाणी चुतुं जाय;
आंगळियो जेनी रसों पडती, तेने मुख माखी बणबणती. १४०.
तेने कहे गृहनां ते प्यारां, अवे तुं मर पापी हत्यारा;
नेत्र न तृप्त थतां जोई जेने, ग्लानि वमनवत देखी तेने. १४१.
जे पति प्रिय लागतो हृदयथी, पळ न च्हाती दूर करवा उरथी;
तेनो पवन वचवा चा'ये , लुगडुं नाक दे समीप जाये. १४२.
मातपिता जे खोळे लेतां, संकोचे करथी कंई देतां;
मळता भुज भेटी जे भ्रातो, करे पद्यान्तर राखी वातो. १४३.

एम स्वार्थनुं जगत सहु कहि, स्वार्थविना कोई कोईनुं प्रिय नहि.
थिथिए स्वार्थ योग्य नव कीधो, एथी पणे मलम न दीधो. १४४.
ए चिन्तवतां मळ्यो मुनि एक, दई जडी मटाड्युं घाउंख छेक;
निद्राथी नृप जाग्यो त्यारे, घाउंख, मुनि, नाश्यां त्यारे. १४५.
शिष्य ! ए ज दृष्टान्त प्रकाश्युं, रहस्य,-मिथ्याथी मिथ्या नाश्युं;
राजाए दीठुं मिथ्या दुःख, साच समाजे न कर्युं कई सुख. १४६.

२३०. टीकाः—सर्व प्रकरणनो अर्थ स्पष्ट (छे); भाव आ छेः—संसाररूप दुःख मिथ्या छे; एथी तेने दूर करवानां साधन-वेदगुरु-मिथ्या ज जोइये. मिथ्याना नाशमां सत्य साधननी अपेक्षा नथी. अने सत्य साधन होय तो तेओथी मिथ्यानो नाश थाय नहि. जेम राजाना समीप मिथ्या शियाल स्वप्नमां पहोंच्यो (ते) कोई सत्य योद्धाथी रोकाई नहि, अने राजाए पोकार्यु त्यारे कोईथी पण (ते शियाल) मर्यो नहि. अने राजानी पासे अनेक साचां शस्त्रो मूक्यां हतां; तोपण (ते काममां आव्यां नहि अने) मिथ्या दंडे मर्यो. अने राजाने मिथ्या घा थयो त्यारे कोई वैद्य के पाटो बांधनार साचो मळ्यो नहि. मिथ्या पाटो बांधनार पासे गयो तेणे पैसो माग्यो, तो अनत साचा खजाना धर्या ज रह्या. एक पैसो पण राजाने मळ्यो नहि, कोई पण सत्य साधन राजानां दुःखनो नाश करवामां समर्थ थयुं नहि; किन्तु मिथ्या मुनिए मिथ्या जडी (बुटी) दईने मिथ्या दुःखनो नाश कर्यो. एवी रीतिनां स्वप्न सर्वने अनुभवसिद्ध छे. जाग्रत पदार्थनो स्वप्नमां कोईने कदा पण उपयोग थतो नथी. तेम मिथ्या जे संसारदुःख तेनो नाश (चेतननी अपेक्षाथी) मिथ्या वेदगुरुथी थाय छे. साचा वेदगुरु अपेक्षित नथी.

२३१. जेम मरुस्थल(झांजवा)नां मिथ्या जलथी तृषानो

'नाश थाय नहि; तेम मिथ्या वेदगुरुथी संसारदुःखनो नाश 'थाय नहि; अने मिथ्या वेदगुरु मानीने संसारदुःखनो ते- 'ओनाथी नाश अंगीकार करशो, तो मरुभूमिना जलथी पण 'तृषानो नाश थयो जोइये,' ए शंका शिष्ये करी हती तेनुं समाधान.

चोपाई.

यद्यपि मिथ्या मरुस्थलपाणी, तेथी तृषा मटाडे न जाणी;
तदपि तव दृष्टान्त विषम छे, जो वेमां सत्ताभेद ज छे. १४७.

टीकाः—यद्यपि मिथ्या जे मरुभूमिनुं पाणी तेथी कोईए तृषा मटाडी नथी, अने मिथ्या गुरुवेदथी दुःखना नाशनी पेठे, मिथ्या जलथी तृषानो नाश थयो जोइए, अने तृषानो नाश थतो नथी; तेम मिथ्या गुरुवेदथी संसारनो नाश बने नहि. 'तदपि', नाम तो पण, तारुं दृष्टान्त विषम छे. केमके, 'वेमां' नाम मरुस्थलना जलमां अने तृषा-ए वेमां, सत्तानो भेद छे, ते जुवो. १४७.

२३२. त्रिविधा सत्ता=विद्यमानता.

चोपाई.

समसत्ता, भवदुःख, गुरु वेद, इम गुरु वेद करे भवछेद;
आपसमां समसत्ता जेनी, लख्य साधकबाधकता तेनी. १४ .

---

१५५. इहां आ शंका छे:—'समसत्तावाला पदार्थ ज परस्पर साधक बाधक छे,' ए नियम घटित छे नहि. किन्तु विषमसत्तावाला पदार्थो पण कांईक परस्पर साधकबाधक होय छे. केमके, सर्वत्र आरोपनी अधिष्ठानथी विषमसत्ता छे, ते-(आरोप)नी साधकता (कारणता) अधिष्ठानमां छे, जेम कल्पितरजतनुं अधिष्ठान शुक्ति छे. ते(शुक्ति)नी व्यावहारिकसत्ता छे, रजतनी प्रतिभाससत्ता छे. ते प्रतिभास-सत्तावाला रजतनी साधकता (कारणता) शुक्तिमां छे, किंवा जगतनुं अधिष्ठान ब्रह्म छे, तेनी परमार्थ-सत्ता छे, अने जगत्नी व्यावहारिकसत्ता छे. ते व्यावहारिकसत्तावाला जगत्नी साधकता ब्रह्ममां छे. एथी विषमसत्तावाळुं पण साधक होय छे. अने अन्तःकरणनी वृत्तिरूप शुक्तिना यथार्थ ज्ञानेकरी

टीकाः—भवदुःख अने गुरुवेदनी 'समसत्ता' नाम एकसत्ता छे; एथी गुरुवेदथी भवदुःखनो छेद थाय छे. जेमनी परस्परमां समसत्ता होय छे, तेओनी परस्परमां साधकता अने बाधकता होय छे. जेम मृत्तिका अने घटनी समसत्ता छे, एथी मृत्तिका घटनी साधिका छे; अग्नि अने काष्ठनी समसत्ता छे त्यां अग्नि काष्ठनो बाधक छे. [साधक नाम कारण अने बाधक नाम नाशक.] मरुस्थलना जलनी अने तृषानी समसत्ता नथी; एथी मरुस्थलनुं जल तृषानुं बाधक नथी. ए स्थानमां आ रहस्य छेः—चेतनमां परमार्थसत्ता छे, अने

ज्ञानसहित रजतनो बाध थाय छे. त्यां ज्ञानसहित रजतनी प्रतिभास-सत्ता छे, अने शुक्तिना ज्ञाननी व्यावहारिकसत्ता छे; एथी विषमसत्तावालुं पण बाधक होय छे. तेथी 'विषमसत्तावाला पदार्थ परस्परमां साधकबाधक होय नहि,'—ए नियम असंगत छे.

ए(शंका)नुं आ समाधान छे.—केवल (शुद्ध) शुक्ति किंवा ब्रह्म, क्रमथी, रजतनी किंवा जगतनी कल्पनानो अधिष्ठान (=विवर्तिउपादानकारण) छे नहि. किन्तु तूलाविद्यासहित शुक्ति रजतनुं अधिष्ठान छे; अने मूलाविद्यासहित ब्रह्मचेतन जगतनुं अधिष्ठान छे. कहिं 'विशेषणना धर्मनो विशिष्टमां व्यवहार थाय छे,'—ए नियमथी प्रातिभासिक तूलाविद्यासहित शुक्ति 'प्रातिभासिक' कहेवाय छे; अने व्यावहारिकमूलाविद्या सहित ब्रह्मचेतन पण व्यावहारिक कहेवाय छे. यद्यपि इहां अविद्या 'उपाधि' छे, विशेषण नथी; तथापि अविवेकी जनोनी दृष्टिए विशेषणनी पेठे प्रतीत थाय छे, एथी 'विशेषण' कहेवाय छे. एथी ज ते अविद्याना धर्म-प्रातिभासिकता अने व्यावहारिकता-(तेमनो) पोताना विशेष्य (आश्रय जे) शुक्ति अने ब्रह्म तेमां व्यवहार थाय छे. एथी इहां वि ष म-सत्तावालुं साधक नथी पण सम-सत्तावालुं ज साधक छे.

अने पंचपादिकाकारनी रीतिए मूल अविद्याथी भिन्न तूल-अविद्या नथी, एथी तेनी निवृत्ति (बाध) शुक्तिना ज्ञानेकरी थाय नहि; किन्तु ब्रह्मज्ञानेकरी थाय छे. परंतु व्यावहारिक अन्तःकरणनी वृत्तिरूप शुक्तिना यथार्थ ज्ञानेकरी शुक्तिनिष्ठ मूलाविद्यानो तिरस्कार थाय छे. (बाध नथी थतो.) तेथी तेना कार्य ज्ञानसहित रजतनो पण तिरस्कार थाय छे; एथी इहां विषमसत्तावालुं बाधक नथी ए (मूलग्रंथमांना) प्रसंगनुसारी समाधान छे. पं. पी. पु.

चेतनथी भिन्न जे मिथ्या पदार्थ, तेमां बे प्रकारनी सत्ता छेः-एक तो व्यवहारसत्ता छे अने बीजी प्रतिभाससत्ता छे.

२२३. (व्यावहारिकसत्ता.)

जे पदार्थनो ब्रह्मज्ञानविना बाध थाय नहि, किन्तु ब्रह्मज्ञानथी ज बाध थाय, ते पदार्थमां व्यवहारसत्ता कहेवाय छे. ते व्यवहारसत्ता ईश्वरसृष्टिमां छे. केमके देहइन्द्रियादि प्रपंच जे ईश्वरसृष्टि, तेनो ब्रह्मज्ञानविना बाध थाय नहि. ब्रह्मज्ञानथी ज बाध थाय छे. यद्यपि ईश्वरसृष्टिना पदार्थोनो ब्रह्मज्ञानविना **नाश** तो थाय छे पण खरो; परंतु ब्रह्मज्ञानविना बाध थाय नहि. [अपरोक्षमिथ्या-निश्चयनुं नाम बाध छे.] ते अपरोक्षमिथ्या-निश्चय ईश्वरसृष्टिना पदार्थोमां ब्रह्मज्ञानथी प्रथम (पूर्वे) कोईने थाय नहि, ब्रह्मज्ञानथी अनंतर ज थाय छे. एथी (शुद्ध चेतनने आच्छादन करनारी) मूल-(कारण) अविद्यानां कार्य जे जाग्रत्ना पदार्थ,-ईश्वरसृष्टि,-तेमां व्यवहारसत्ता छे. जन्म, मरण, बंध, मोक्ष आदिक व्यवहारने सिद्ध करवावाळी जे सत्ता नाम होवुं (विद्यमानता), ते **व्यवहारसत्ता** कहेवाय छे.

२२४. (प्रातिभासिकसत्ता)

अने ब्रह्मज्ञानविना ज जेओनो बाध थाय ते पदार्थोमां प्रतिभाससत्ता कहेवाय छे. जेम ब्रह्मज्ञानविना ज, शुक्ति, रज्जु, मरुस्थल, आदिकोना ज्ञानथी, रूपुं, सर्प, जल, आदिकोनो बाध थाय छे. तेमां प्रतिभाससत्ता छे. ['प्रतिभास'

१५६. जाग्रत्ना घटादिपदार्थनी व्यावहारिकसत्ता गणाय छे; अने तेनो बाध तत्त्वज्ञानेकरी थाय छे.

१५७. शुक्तिरजतादिनी प्रातिभासिकसत्ता गणाय छे. अने तेनो बाध तेओना अधिष्ठानना साक्षात्कारेकरी थाय छे.

नाम प्रतीति मात्र, जे 'सत्ता' नाम थवुं-(विद्यमानता), ते प्रतिभाससत्ता कहेवाय छे.] (शुक्तिआदि जड पदार्थ उपहित-चेतनने आच्छादन करनारी) मूलाअविद्यानां कार्य,-रूपा आदिक पदार्थोनुं प्रतीति मात्र ज होवुं (विद्यमानता) छे, एथी तेओनी **प्रतिभाससत्ता** छे.

२३५. (पारमार्थिकसत्ता.)

जेनो त्रण कालमां बाध थाय नहि, तेनो परमार्थ-सत्ता कहेवाय छे. चेतननो बाध कदा थाय नहि. एथी **परमार्थसत्ता** चेतननी छे.

२३६. (वेदगुरु अने संसारदुःखनी समानसत्ता होवाथी दुःखनो नाश थाय छे.)

ए रीतिए वेदगुरु अने संसारदुःख, एओनी एक व्यवहारसत्ता होवाथी परस्परमां समसत्ता छे, एथी मिथ्या वेद-गुरुथी मिथ्या भवदुःखनो नाश बने छे. अने क्षुधापिपासा प्राणोना धर्म छे; प्राण अने तेओना धर्मोनो ब्रह्मज्ञानविना, बाध थाय नहि. एथी पिपासानी व्यवहारसत्ता छे. मरुस्थलना जलनो ब्रह्मज्ञानविना ज, मरुस्थलना ज्ञानथी, बाध होवाथी, मरुस्थलना जलनी प्रातिभासिकसत्ता छे. एथी पिपासा अने मरुस्थलनी समसत्ता नहि होवाथी, ते जलथी पिपासानो नाश थाय नहि. ए प्रकारे दार्ष्टान्तविषे बाधक वेदगुरु अने बाध्य संसारदुःख, तेओनी सत्ता एक छे. अने दृष्टांत विषे जल अने पिपासानी सत्तानो भेद छे, एथी दृष्टान्त विषम नाम दार्ष्टान्तसम नथी. १५८.

---

१५८. ब्रह्मनी पारमार्थिकसत्ता छे. अने तेनो बाध त्रिकालमां कदापि थतो ज नथी.

२३७. शंका.

(बाधमां पूर्वोक्त सत्तामेद शा हेतुथी राख्यो छे ?)

चोपाई.

ब्रह्मभिन्न मिथ्या सौ भाखो, तेनो भेद शा कारण राखो ?
उपज्यो ए मजने संदेह, प्रभु करो अब छेदन तेह. १४९.

टीकाः—हे प्रभु ! ब्रह्मथी भिन्न सर्वने आप मिथ्या कहो छो, ते मिथ्या पदार्थमां शुक्तिरूप, रज्जुसर्प, मरुस्थलजल आदिकोनो ब्रह्मज्ञान विना ज बाध, अने संसारदुःखनो ब्रह्मज्ञानथी अनन्तर बाध, ए भेद कया हेतुथी राखो छो ? १४९.

२३८. उत्तर.

(जेना अज्ञानथी जे उपजे छे तेना ज्ञानथी तेनो बाध थाय छे.)

चोपाई.

सकल अविद्याकार्य ज मिथ्या, शिष्य नहि तेमां कंई तथ्या;
जे अज्ञानथी उपजे जेह, थाय बाध ते ज्ञाने तेह. १५०.

टीकाः—हे शिष्य ! यद्यपि ब्रह्मथी भिन्न सकल, अविद्यानु कार्य छे तेथी, मिथ्या छे, तेमां किंचित् पण 'तथ्य' नाम सत्य नथी; परंतु जे ना अ ज्ञा न थी जे उ प जे छे, ते ना ज्ञा न थी ते नो बा ध था य छे. शुक्ति, रज्जु, मरुस्थल, आदिकोना अज्ञानथी, रूपु, सर्प, जल, आदि उपजे छे, तेओनो बाध, शुक्ति, रज्जु, मरुस्थल, आदिकोना ज्ञानथी थाय छे; अने ब्रह्मना अज्ञानथी जे जन्ममरणादिक संसारदुःख उपजे छे, तेनो बाध ब्रह्मज्ञानथी थाय छे. १५०.

२३९. शिष्य उवाच.

(संसार कया क्रमथी उपजे छे ?)

दुहो

भगवन् ! ब्रह्म अज्ञानथी, जे उपजे संसार,
कया क्रमेथी थाय ते, कहो मने निर्धार. १५१.

अर्थ स्पष्ट. १५१.

२४०. श्री गुरूवाच.

(जगत्नी उत्पत्तिना क्रमनो अनियम.)

चोपाई.

थाय स्वप्न ज्यम विनाक्रमथी, त्यम मिथ्या जग भासे भ्रमथी;
जाण्यो इच्छे तेनो क्रम जे, वसन निचोवे मरुस्थल-जल ते.

अर्थ स्पष्ट. १५२.

दुहो.

उपनिषदोमां बहु विधे, जगतउत्पत्ति प्रकार;
अभिप्राय तेनो ज आ,-'चेतन भिन्न असार.' १५३.

टीका.-यद्यपि उपनिषदोमां जगत्नी उत्पत्ति अनेक प्रकारे कही छे. छान्दोग्य(उपनिषद्)मां तो,-'सत्रूप परमात्माथी अग्नि, जल, पृथ्वी, क्रमथी उपजे छे,'-ए कह्युं छे. अने तैत्तिरीयमां आकाश, वायु, अग्नि, जल अने पृथ्वी, क्रमथी थाय छे, ए रीतिए पंचभूतनी उत्पत्ति कही छे. अने कहिं सर्वनी परमेश्वर उत्पत्ति करे छे, ए रीते क्रम विना पण उत्पत्ति कही छे. एम जगत्नी उत्पत्ति वेदमां अनेक प्रकारे कही छे. त्यां वेदनो आवो अभिप्राय छे-जगत् मिथ्या छे. जो जगत् कई पदार्थ होत तो तेनी उत्पत्ति अनेक प्रकारे वेद कहत नहि. अनेक प्रकारे जगत्नी उत्पत्ति कही छे, तेथी जगत्नी उत्पत्ति प्रतिपादनमां वेदनो अभिप्राय नथी, किन्तु अद्वैत ब्रह्म लखाववाने, जगत्नो निषेध करवाअर्थे, मिथ्या जगत्नो कोई रीतिए आरोप कर्यो छे. दृष्टान्त.-जेम विनोदना निमित्त उडाववासारू दारूनो हस्ती बनावे छे, तेनां कानपूछडुं वांकांचुंकां होय छे तो सुधां करवासारू यत्न नथी करता; तेम अद्वैतज्ञानना निमित्त प्रपंचने निषेधवासारू, प्रपंचनो आरोप कर्यो छे. एथी वेदे, प्रपंचनो उत्पत्ति-क्रम, एक-

रूप कहेवामां, यत्न नथी कर्यो. प्रपंचनी उत्पत्ति वेदे एकरूप नथी कही, एथी आ जणाय छे:—वेदनो अभिप्राय प्रपंचनिषेधनमां छे; तेनी उत्पत्तिमां अभिप्राय नथी.

२४१. अने सूत्रकार (व्यासनारायण) भाष्यकारे (शंकरे) ब्रह्मसूत्रना द्वितीय अध्यायमां उत्पत्ति कहेवावाळां श्रुतिवचननो विरोध दूर करीने जे एकरूपे, तैत्तिरीयश्रुतिने अनुसार उत्पत्तिमां सर्व उपनिषदोनो अभिप्राय कह्यो छे, ते मंदजिज्ञासुने निमित्त कह्यो छे. उत्पत्तिवाक्योना पूर्वे कहेला अभिप्रायने जे नथी जाणता, ते मंदजिज्ञासुने, उपनिषदोमां *नाना प्रकारे जगत्नी उत्पत्ति देखीने, परस्परमां उपनिषदोनो* विरोध छे, ए भ्रान्ति थई जवानी. तेने दूर करवाने सर्व उपनिषदोमां एकरूपेकरी जगत्नी उत्पत्ति(ना)प्रतिपादननो प्रकार (सूत्रकार अने भाष्यकारे) कह्यो छे. अने जेने ब्रह्मविचारेकरी यथार्थ ज्ञान न होय, तेने लयचिन्तनना निमित्त पण उत्पत्तिक्रम कह्यो छे. जे क्रमथी उत्पत्ति कही छे, तेथी विपरीतक्रमथी लयचिन्तन करे, ते लयचिन्तनथी अद्वैतमां बुद्धि स्थिता थाय छे. ते लयचिन्तननो प्रकार **पंचीकरणमां** वार्तिककार सुरेश्वराचार्ये कह्यो छे. आ ग्रंथ उत्तम जिज्ञासुना निमित्त छे. एथी जगत्नी उत्पत्ति अने लयनो प्रकार नथी लख्यो. अने (आ) सागररूप छे, एथी संक्षेपे देखाडे छे. शुद्धब्रह्मथी जगत्नी उत्पत्ति थाय नहि; केमके शुद्धब्रह्म असंग छे अने अक्रिय छे; किन्तु मायाविशिष्ट जे ईश्वर तेथी जगत्नी उत्पत्ति थाय छे. एथी माया अने ईश्वरनुं स्वरूप प्रतिपादन करे छे. १५३.

---

१५९. कार्यकारणना अभेदनुं अनुसधान करवु.

२४२. (माया अने ईश्वरनुं स्वरूप.)

कवित्त.

जीव ईश-भेदहीन, चेतनस्वरूपमांही
माया, ते, अनादि, एक, सान्त तेने मानिये;
सतऽने असतथी विलक्षण स्वरूप तेनां
तेने ज अविद्या ऽने.अज्ञान ज वखाणिये.
सामान्य-चेतन न विरोधी तेनुं साधक छे,
वृत्तिमां आरूढ या विरोधी वृत्ति जाणिये;
मायामां आभास, अधिष्ठान, अने माया मळी,
ईश सर्वज्ञ जगतहेतु ज पीछाणिये. १५४.

(मायानुं स्वरूप.)

टीकाः—जीव-ईश्वर-भेदरहित जे शुद्धचेतन तेने आश्रिता माया छे. ते माया अनादि नाम आदिरहित छे. [आदि नाम उत्पत्तिनुं छे.] जो मायानी उत्पत्ति अंगीकार करिये तो, मायाना कार्यप्रपंचथी तो, पुत्रथी पितानी (उत्पत्तिनी) पेठे, मायानी उत्पत्ति बने नहि; चेतनथी ज मायानी उत्पत्ति मानवी पडशे. त्यां जीवभाव अने ईश्वरभाव तो मायानां कार्य छे; मायानी सिद्धि थयाविना जीवईश्वरनुं स्वरूप असिद्ध छे. एथी जीवचेतनथी या ईश्वरचेतनथी मायानी उत्पत्ति कहेवी असंभव छे. अने शुद्धचेतन असंग छे, अक्रिय छे, निर्विकार छे; तेथी मायानी उत्पत्ति माने, (ते) विकारी थशे. अने शुद्धचेतनथी मायानी उत्पत्ति थाय तो मोक्षदशाविषे माया पुनः उपजशे; एथी मोक्षनिमित्त साधन निष्फल थशे. ए रीतिए माया उत्पत्तिरहिता छे, एथी अनादि छे, अने एक छे, (अने) 'सान्त' नाम अंतवाळी छे; (कारण) ज्ञानेकरी मायानो अन्त थाय छे.

अने (माया) सत्असत्‌थी विलक्षणा छे. [जेनो त्रिकालमां बाध थाय नहि ते **सत्** कहेवाय छे. एवुं चेतन छे.] मायानो ज्ञानथी बाध थाय छे एथी सत्‌थी (ते) विलक्षण छे. [जेनी त्रिकालमां प्रतीति थाय नहि ते शशश्रृंग, वंध्यापुत्र, आकाशफूल, आदिक **असत्** कहेवाय छे.] ज्ञानथी पूर्वे माया अने ते(माया)नुं कार्य प्रतीत थाय छे. जाग्रत्‌विषे 'हुं अज्ञानी छुं, ब्रह्मने नथी जाणतो,' ए रीतिए माया प्रतीता थाय छे. अने स्वप्नविषे जे नाना पदार्थ प्रतीत थाय छे, तेओनुं उपादानकारण माया छे. अने सुषुप्तिथी अनंतर अज्ञानी आ रीतिए स्मृति थाय छेः-'हुं सुखे सूतो हतो, कशुं पण 'जाणतो न हतो.' ते स्मृति अज्ञातवस्तुनी थाय नहि. एथी सुषुप्तिमां अज्ञाननुं भान थाय छे; ते अज्ञान अने माया एक ज छे, तेओना भेद नथी. ए प्रकारे त्रणे अवस्थाविषे मायानी प्रतीति थाय छे; एथी असत्‌थी विलक्षणा छे. ए रीतिए सत्-असत्‌थी विलक्षणा जे माया तेनुं कार्य पण सत्-असत्‌थी विलक्षण छे. [सत्-असत्‌थी विलक्षणने ज अद्वैतमतमां **मिथ्या** कहे छे. अने **अनिर्वचनीय** पण कहे छे.] एथी माया अने तेनां कार्यथी द्वैतनी सिद्धि थाय नहि. केमके जेम चेतन सत्‌रूप छे, तेम माया अने तेनुं कार्य सत्‌रूप होय तो द्वैत थाय; ते माया अने तेनुं कार्य सत्-असत्‌थी विलक्षण होवाथी मिथ्या छे. मिथ्या पदार्थथी द्वैत थाय नहि. जेम स्वप्नना पदार्थ मिथ्या छे, तेओथी द्वैत थाय नहि.

२४३. (स्वाश्रय स्वविषय अज्ञान.)

जीवईश्वरविभागरहित शुद्ध ब्रह्मने आश्रिता माया छे, अने ते शुद्ध ब्रह्मने ज आच्छादन करे छे. जेम गृहने आश्रित अंधकार गृहने आच्छादन करे छे. ए पक्षने **स्वाश्रयस्ववि-**

पणपस्र कहे छे. 'स्व' नाम शुद्ध ब्रह्म ज, 'आश्रय,' अने 'स्व' नाम शुद्ध ब्रह्म ज, 'विषय', नाम मायाथी आच्छादित छे[अर्थ आ,-ढंकायलुं छे.] संक्षेप-शारीरक, (पंचपादिका) विवरण, वेदान्तमुक्तावलि, अद्वैतसिद्धि, अद्वैत दीपिका, आदिकग्रंथकारोए स्वाश्रयस्वविषय ज अज्ञान अंगीकार कर्युं छे.

२४४. (अन्याश्रय अन्यविषय अज्ञान.)

अने वाचस्पतिनुं आ मत छेः-अज्ञान जीवने आश्रित छे, अने ब्रह्मने विषय करे छे (नाम ढांके छे). 'हुं अज्ञानी 'ब्रह्मने नथी जाणतो', ए प्रतीतिथी, 'हुं' शब्दनो अर्थ जीव, 'अज्ञानी' कहेवाथी अज्ञाननुं 'आश्रयभान' (ते जीवने) थाय छे; अने 'ब्रह्मने नथी जाणतो' एथी अज्ञाननो विषय ब्रह्म प्रतीत थाय छे. ए रीतिए अज्ञान, जीवने आश्रित अने ब्रह्मने विषय नाम आच्छादन करे छे. ते अज्ञान एक नहि, किन्तु अनंत छे. केमके जो एक अज्ञान माने तो, एक अज्ञाननी, एकना ज्ञानथी, निवृत्ति थवाथी, अन्योने अज्ञान अने तेनुं कार्य संसार प्रतीत नहि थवो जोइये. जो एम कहे के,-आज सुधी कोईने ज्ञान थयुं नथी, तो आगळ पण कोईने ज्ञान नहि थशे; एथी श्रवणादि साधन निष्फल थशे. एथी अनंत जीवोने आश्रित अज्ञान अनंत छे. अनंत जीवोनां अनंत अज्ञान-कल्पित, ईश्वर अनंत अने ब्रह्मांड अनंत छे. जे जीवने ज्ञान थाय तेनुं अज्ञान, ईश्वर, अने ब्रह्मांड(ए त्रणे)नी निवृत्ति

१६०. जेम अंगुठवते आंखने ढांकिए एटले कशु देखातु नथी. ते अंगुठो आंखपासे छे अने आंखने आश्रित छे अने आकाशने विषय करे छे नाम 'ढांके छे'-देखावा देतो नथी. तेम अज्ञान जीवनी पासे छे अने तेने आश्रित छे, अने ब्रह्मने विषय करे छे=ब्रह्मने ढांके छे.

थाय छे. जेने ज्ञान नहि थाय तेने बंध रहे छे:—ए वाचस्पतिनुं मत छे, ते समीचीन नथी. केमके:—

२४५. (अज्ञान एक छे.)

'ईश्वर जीवना अज्ञानथी कल्पित छे' ए कहेवुं श्रुति, स्मृति, पुराणथी विरुद्ध छे. ईश्वर अनंत अने जीवजीवमां सृष्टिनो भेद ए पण विरुद्ध छे; एथी नाना अज्ञान मानवां ए असंगत छे. अने नाना अज्ञान मानीने ईश्वर अने सृष्टि एक मानिये तो बने नहि. केमके, जीव, ईश्वर, प्रपंच, (सृष्टि) अज्ञानकल्पित छे. अनंत अज्ञान मान्येथी, एक एक अज्ञान-कल्पित जीवनी पेठे ईश्वर अने प्रपंच पण अनंत ज थशे. एथी ज वाचस्पतिए अनंत ईश्वर अने अनंत सृष्टि कही छे. एथी अज्ञान एक छे, ए मत समीचीन छे.

२४६. (स्वाश्रय स्वविषय अज्ञान छे.)

ते एक[१६१] अज्ञान पण जीवने आश्रित नथी, किन्तु शुद्धब्रह्मने आश्रित छे. केमके जीवभाव अज्ञाननुं कार्य छे. ते अज्ञान स्वतंत्र कदि पण रहे नहि. एथी निराश्रय अज्ञानथी तो जीवभाव बने नहि. प्रथम कोईने आश्रित अज्ञान होय, त्यारे अज्ञाननुं कार्य जीवभाव थाय. जीवत्वनी पेठे ईश्वरता

---

१६१. 'अज्ञान एक छे,' एनो आ अभिप्राय छे.—जेम अंशीरूप अंधकार एक छे तेना अंशरूप नाना अंधकार प्रतिगृहविषे स्थित छे;—(तेमांथी) जे गृहमां दीपक थाय ते गृहनो अंशरूप अंधकार नाश थाय छे: तेम अंशी (रूप) अज्ञान एक छे, तेना अंशरूप नाना अज्ञान प्रतिअन्तःकरणदेशमां गत साक्षिचेतन-विषे स्थित छे;—(तेमांथी) जे अन्तःकरणदेशमां ज्ञान थाय ते अन्तःकरण-देशगत अज्ञान अंशनो नाश थाय छे, एथी एकने ज्ञान थाय तेथी सर्वने, अज्ञान-तत्कार्यनी निवृत्तिद्वारा, मुक्ति प्रतीत थाय नहि. ए रीतिए एक अज्ञानने अंगीकार करे पण बंधमोक्षनी व्यवस्था बने छे. अने 'जीवना अज्ञाने कल्पित ईश्वर अनन्त छे अने जीवजीवमां सृष्टिनो भेद छे,' ए श्रुतिस्मृतिपुराणथी विरुद्ध पक्षनो अंगीकार करवो पण नथी पडतो. पं. पी. पु.

पण अज्ञान(माया)नुं कार्य छे. ते(ईश्वर)ने आश्रित पण अज्ञान नथी, किन्तु शुद्धब्रह्मने आश्रित अनादि अज्ञान छे. अनादि जे चेतन अने अज्ञान तेओनो संबंध पण अनादि छे. चेतन-अज्ञानना अनादि संबंधथी, जीवभाव ईश्वरभाव पण अनादि छे. परंतु जीवभाव अने ईश्वरभाव अज्ञानने अधीन छे, एथी (ते) अज्ञाननुं कार्य कहेवाय छे. यद्यपि 'हुं अज्ञानी छुं,' ए रीतिए जीवने आश्रित अज्ञान प्रतीत थाय छे; तथापि शुद्धब्रह्मने आश्रित जे अज्ञान तेनुं जीवने 'हुं अज्ञानी छुं,' ए अभिमान थाय छे. अने जीव अज्ञाननुं कार्य छे, एथी अज्ञाननो अधिष्ठानरूप आश्रय, जीव बने नहि. किन्तु शुद्धब्रह्म ज अज्ञाननुं अधिष्ठानरूप आश्रय छे. शुद्धब्रह्म अधिष्ठानने आश्रित जे अज्ञान, ते(अज्ञान) ते ब्रह्मने ज आच्छादन करे छे. त्यारपछी 'हुं अज्ञानी छुं,' ए रीतिए अज्ञाननो अभिमानीरूप आश्रय जीव थाय छे. ए प्रकारे स्वा श्र य स्व वि ष य अ ज्ञा न छे.

२४७. ते अज्ञान यद्यपि एक छे अने ज्ञानथी निवृत्त थाय छे, परंतु जे अंतःकरणमां अज्ञान होय, ते अंतःकरणअवच्छिन्न चेतनमां स्थित जे अज्ञाननो अंश तेनी निवृत्ति ज्ञानथी थाय छे, ते ज मुक्त थाय छे. जे अंतःकरणमां ज्ञान न होय, त्यां अज्ञाननो अंश रहे छे, अने बंध रहे छे. ए रीतिए एक अज्ञान पक्षमां बंध मोक्ष व्यवहार बने छे. अने कोईने वाचस्पतिनी रीतिए नानाअज्ञानवाद ज बुद्धिमां प्रवेश होय तो, ते पण अद्वैत ज्ञाननो उपाय छे. तेना खंडनमां कई आग्रह नथी. जे रीतिए जिज्ञासुने अद्वैतबोध थाय ते रीतिए बुद्धिनी स्थिति करे. शुद्धब्रह्मने आश्रित जे **माया** तेने अविद्या अने अ ज्ञा न कहे छे. [अचिन्त्यशक्ति अने युक्तिने

सहन न करे एथी माया[१६२] कहे छे.] विद्याथी नाश थाय छे एथी अविद्या कहे छे. स्वरूपनुं आच्छादन करे छे एथी अज्ञान कहे छे. जे चेतनने आश्रित (ए माया) छे ते सामान्यचेतन[१६३] तेनुं विरोधी नथी; किन्तु सामान्यचेतन मायानुं साधक छे; (अने) सत्ता स्फुरण दे छे. अने वृत्तिमां 'आरूढ' नाम स्थित जे चेतन अथवा चेतनसहित वृत्ति तेनी (अज्ञाननी) विरोधिनी जाणिये. कवितना त्रण पादथी मायानुं स्वरूप कह्युं.

२४८. (ईश्वरनुं स्वरूप.)

'मायामां आभास' इत्यादि (गत २४२ ना अंकमांना कवितना) चतुर्थ पादथी ईश्वरनुं स्वरूप कहे छेः-शुद्धसत्त्वगुणसहित माया (१), अने मायानुं अधिष्ठान चेतन (२), (अने) मायामां आभास (३), ए त्रण मळे सते ते ईश्वर कहेवाय छे ते ईश्वर सर्वज्ञ छे; ते ज जगत्‌नो 'हेतु' नाम कारण छे.

(उपादान अने निमित्त ए बे प्रकारनां कारण.)

कारण बे प्रकारनां होय छेः-एक तो उपादानकारण होय छे. अने एक निमित्तकारण होय छे. जेनो कार्यना स्वरूपमां प्रवेश होय, अने जे विना कार्यनी स्थिति होय नहि, ते उ[१६४]-

१६२. अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्तिरनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका परा ।
कार्यानुमेया सुधियैव माया यया जगत्सर्वमिदं प्रसूयते ॥ ११० ॥
वि. चू.

१६३. जेम सामान्य अग्नि, जल अने पृथ्वीनां सर्व कार्योमां गुप्त रहेलो छे, ते सामान्य अग्नि अंधकारनो विरोधी वा नाशक नथी. परंतु संघर्षणद्वारा विशेषरूपे थये सते ते अग्नि अंधकारनो विरोधी वा नाशक छे. तेम सामान्यचेतन मायानुं विरोधी नथी, परंतु ज्ञानेश्वरी प्रकटित वृत्तिआरूढ विशेषचेतन मायानुं विरोधिबाधक छे.

१६४. उपादानकारणने नैयायिको समवायिकारण कहे छे. कार्यअभिन्नकारण, कार्यान्वितकारण, कार्यनी उत्पत्ति स्थिति अने लय, ए त्रणेनुं जे कारण (नाम कार्यथी नियत अव्यवहित पूर्ववृत्ति) ते 'उपादानकारण' कहेवाय छे.

पादान-कारण कहेवाय छे. जेम मृत्तिका घटनुं उपादान-कारण छे-घटना स्वरूपमां ते(मृत्तिका)नो प्रवेश छे, अने मृत्तिका विना घटनी स्थिति नथी.

जेनो स्वरूपमां प्रवेश नथी, किन्तु भिन्न स्थित होईने कार्यने करे, अने जेना नाशथी कार्य विगडे नहि, ते निमित्त[१६५]-कारण कहेवाय छे जेम कुंभकार, दंड, चक्र आदिक घटनां निमित्तकारण छे. घटना स्वरूपमां तेओनो प्रवेश नथी, घटथी 'भिन्न' नाम किनारे स्थित होईने घटनी उत्पत्ति करे छे. अने उत्पत्ति थया पछी कुंभकार, दंड, चक्र आदिकोना नाशथी घट विगडे नहि. ए रीतिए उपादान अने निमित्त बे प्रकारनां कारण होय छे.

२४९. अने जगतनुं उपादान अने निमित्त बन्ने प्रकारथी ईश्वर ज कारण छे. जेम एक ज ऊर्णनाभि (करोळियो) जाळानुं उपादान अने निमित्त कारण छे. अने जो आम

१६५. कार्यनी उत्पत्तिमात्रमां जे कारण ते 'निमित्तकारण' कहेवाय छे. निमित्तकारण अनेक प्रकारना होय छे.

१६६. उपादानं प्रपञ्चस्य मृद्भाण्डस्येव कथ्यते ।
अज्ञानं चेति वेदान्तैस्तस्मिन्नष्टे क्व विश्वता ॥ ९४ ॥
अपरोक्षानुभूति.

मृत्तिकाना पात्रनु मृत्तिका (उपादानकारण) छे, तेम आ प्रपचनु अज्ञान (माया) अने (तेमानो चेतनभाग ईश्वर) उपादान (कारण) छे, एम वेदान्तो(उपनिषदो)वने कहेवाय छे. ते अज्ञान नष्ट थये सते विश्वता (प्रपच=जीव-जगत्-ईश्वर=भाव) क्यां !

एनो आ भाव छेः—केवळ चेतनभाग निर्विकार छे (तेमां कारणता होय नहि), तेथी ते जगतनु कारण बने नहि. केवळ माया पण जड होवाथी जगतनु कारण बने नहि तेथी उभय (माया अने चेतन अर्थात् ईश्वर) मळीने ज जगतनु कारण थाय छे. 'सत्यानृते मिथुनीकरोति' एम श्रुति छे.

ज्यां ब्रह्म प्रपचनु उपादानकारण कहेवाय छे त्यां पूर्व अवस्थाना परित्याग विना अवस्थांतरप्राप्ति लक्षण छे जेनु, एवु 'विवर्त उपादान-कारण' गणवु.

कहिए केः-ऊर्णनाभिनुं जड-शरीर जाळांनुं उपादान कारण, अने ऊर्णनाभिना शरीरमां जे चेतनभाग ते निमित्त-कारण छे; एथी एक ईश्वरने निमित्त कारण अने उपादानकारण मानवामां कंई (उक्त) दृष्टान्त(नुं सादृश्य) नथी. (ए शंका थाय) तो ऊर्णनाभि पेठे, ईश्वरनुं शरीर (जे) जडमाया, (ते) जगतनुं उपादान कारण, अने चेतनभाग निमित्तकारण (एम गणवुं). ए रीतिए एक ज ईश्वर, जगत्नुं उपादान अने निमित्तकारण छे. तेमां ऊर्णनाभि(करोळिया)नुं दृष्टान्त अने मुख्य दृष्टांत स्वप्न छे. जे समये जीवोनां कर्म फल देवाने संमुख होय नहि त्यारे प्रलय थाय छे. अने (जे समय) जीवोनां कर्म, फल देवाने संमुख होय, त्यारे सृष्टि थाय छे. ए रीतिए जीवकर्मने अधीन सृष्टि छे. एथी,

२५०. (जीवनुं स्वरूप.)

दुहो

मलिनसत्त्व अज्ञानमां जे चेतन-आभास,
अधिष्ठानयुत जीव ते, करे कर्म-फल-आश. १५५.

टीकाः-(जे) रजोगुण-तमोगुणने दाबी ले ते 'शुद्ध सत्त्व-गुण' कहेवाय छे. अने (जे) रजोगुण तमोगुणथी पोते दबाय ते 'मलिन सत्त्वगुण' कहेवाय छे. ते (१) मलिन-सत्त्वगुणसहित अज्ञानना अंशमां जे चेतननो आभास, अने (२) अज्ञान, अने (३) तेनुं अधिष्ठान कूटस्थ, ए त्रणे मळे सते जीव कहेवाय छे. ते जीव कर्म करे छे, अने फलनी आशा करे छे. १५५.

---

१६७. स्वप्न थाय छे त्यारे जे प्रपञ्चनी उत्पत्ति भासे छे, तेनु उपादानकारण अने निमित्तकारण ए बे, मलिनसत्त्वगुण अविद्याउपहित साक्षिचेतन जीव पोते छे, तेम आ व्यावहारिक जगत्नु उपादान अने निमित्तकारण-किंवा 'अभिन्ननि-मित्तउपादानकारण-शुद्धसत्त्वगुणमायाउपहित' साक्षिचेतन-ईश्वर छे.

२५१. (ईश्वरमां वैषम्य-नैर्घृण्य-दोष छे नहि.)

ते जीवनां कर्मने अनुसार उच्चनीचभोगनिमित्त ईश्वर सृष्टि रचे छे. पथी ईश्वरमां विषमदृष्टि अने क्रूरता नथी. अने जो आम कहियेः–सर्वथी प्रथम सृष्टिथी पूर्व कर्म न हतां, अने प्रथम सृष्टिमां उच्च-नीच शरीर अने भोग ईश्वरे रच्यां छे; पथी ईश्वर विषम दृष्टि छे. ते बने नहि. केमके **संसार** (प्रवाहरूपे) **अनादि** छे. उत्तरउत्तर सृष्टिमां पूर्वपूर्वसृष्टिनां कर्म हेतु छे. सर्वथी प्रथम कोई सृष्टि नथी, पथी ईश्वरमां दोष नथी.

२५२. (जगत्नी उत्पत्ति)

कवित.

जीवोनां पूर्वसृष्टिनां कर्मअनुसार, ईश-
इच्छा थाय,–'जीवभोग जग उपजावियें.'
नभ, वायु, तेज, जल, भूमि, भूत रच्यां तहां
शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, गुण गाइये;
सत्वअंश पांचतणो मळी उपजे छे अंत्र,
रजोगुणअंश मळी प्राण तेम जाणिये;
एक एक भूत सत्वअंश ज्ञानेन्द्रिय रचे,
कर्मेन्द्रिय रजोगुण अंशथी प्रमाणिये. १५६.

टीकाः–ज्यारे जीवोनां कर्म, भोग देवाथी उदासीन थाय, त्यारे प्रलय थाय छे. प्रलयमां सर्व पदार्थोना संस्कार मायामां रहे छे. पथी जीवोनां कर्म पण जे बाकी रह्यां हतां; ते सूक्ष्म थईने मायामां रहे छे. ज्यारे कर्म, भोग देवाने समुख थाय छे, त्यारे ईश्वरने आ इच्छा थाय छेः–'जीवोना भोगनिमित्त 'जगत् उपजावियें.'

---

१. अंत:करण.

२५३. (पंचमहाभूत. सूक्ष्मसृष्टिनिरूपण.)

ईश्वरनी पछी इच्छाथी माया तमोगुणप्रधाना थाय छे; ते तमोगुणप्रधानमायाथी आकाश, वायु, तेज, जल, भूमि ए **पंचभूत** रच्यां जाय छे. ते(पंच)भूतोमां क्रमथी, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, ए पांच गुण थाय छे. मायाथी शब्दसहित आकाशनी उत्पत्ति. अने आकाशथी वायुनी उत्पत्ति. वायु आकाशनुं कार्य छे, पछी आकाशनो शब्दगुण वायुमां होय छे, अने पोतानो स्पर्श (गुण) होय छे. वायुथी तेजनी उत्पत्ति. अने तेजमां आकाशनो शब्द अने वायुनो स्पर्श होय छे, तथा पोतानो रूप(गुण) होय छे. तेजथी जलनी उत्पत्ति. आकाशनो शब्द, वायुनो स्पर्श, अने तेजनुं रूप जलमां होय छे, तथा पोतानो रस(गुण) होय छे. जलथी पृथ्वीनी उत्पत्ति. अने आकाशनो शब्द, वायुनो स्पर्श, तेजनुं रूप, अने जलनो रस पृथ्वीमां होय छे, पोतानो गंध (गुण) होय छे. आकाशमां प्रतिध्वनिरूप शब्द छे. वायुमां, शीशीशब्द अने उष्ण-शीत-कठिनथी विलक्षण स्पर्श छे. अग्निरूप तेजमां, भुक्भुक्शब्द, अने उष्ण स्पर्श, अने प्रकाश रूप छे. जलमां, चुलुचुलु शब्द, शीत स्पर्श, शुक्ल रूप, अने मधुर रस छे. [अने पृथिवीना संबंधथी क्षार तथा कटु जल प्रतीत थाय छे, (परंतु) जलनो रस मधुर ज छे ते मधुरता, हरीतकी (हरडे) आदिक भक्षण करीने जलपान कर्याथी, प्रकट थाय छे.] पृथ्वीमां कड्कड्शब्द; उष्णशीतथी विलक्षण कठिन स्पर्श छे; श्वेत, नील, पीत, रक्त, हरित आदि रूप छे; मधुर, आम्ल, क्षार, कटु, कषाय, तिक्त रस छे; अने सुगंध अने दुर्गंध बे प्रकारनो गंध छे. ए रीतिए आकाशमां एक, वायुमां बे, तेजमां त्रण, जलमां चार, पृथ्वीमां पांच गुण छे. ते-

ओमां एक एक (गुण) पोतानो छे अने अधिक कारणना (गुण) छे. अने सर्वनुं मूलकारण ईश्वर छे, तेमां माया अने चेतन बे भाग छे. सर्व भूतमां **मिथ्यात्व मायानुं** छे अने **सत्तास्फूर्ति चेतननां** छे. कवितना बे पादनो ए अर्थ छे.

२५४. (अंतःकरण.)

पंचभूतनो सत्त्वगुणअंश मळीने, 'सत्त्व' नाम अंतःकरणने उपजावे छे. अंतःकरण ज्ञाननो हेतु छे; अने ज्ञाननी उत्पत्ति सत्त्वगुणथी अंगीकार करी छे. एथी अंतःकरण भूतोना सत्त्वगुणनुं कार्य छे. अने पंचभूतोनां कार्य-पंचज्ञानइन्द्रिय-ते सर्वनुं (अंतःकरण) सहायक छे, एथी पंचभूतोना मळेला सत्त्वगुणथी अंतःकरणनी उत्पत्ति कही छे. देहनी 'अंतर' नाम (अभ्यंतर) भीतर छे, अने 'करण' नाम ज्ञाननुं साधन छे, एथी **अंतःकरण** कहेवाय छे. अने भूतोना सत्त्वगुणनुं कार्य छे, एथी अंतःकरणनुं 'सत्त्व' पण नाम छे.

(अंतःकरणनी चार वृत्तिओ.)

अंतःकरणनो जे परिणाम तेने 'वृत्ति' कहे छे. ते अंतःकरणनी वृत्ति चार छे. पदार्थना सार असार स्वरूपने निश्चय करवावाळी (निश्चयात्मिका) वृत्ति '**बुद्धि**' कहेवाय छे; संकल्पविकल्प (आत्म) वृत्ति '**मन**' कहेवाय छे; चिन्ता(पराःपरअनुसंधानआत्मिका)वृत्ति '**चित्त**' कहेवाय छे; '**अहं**' (हुं) एवी अभिमान(आत्मिका) वृत्ति '**अहंकार**' कहेवाय छे.

२५५. (पंचप्राण.)

पंचभूतोना मळेला रजोगुणअंशथी प्राणनी उत्पत्ति थाय

---

१६८. वृत्तिनुं यथार्थ लक्षण आ छेः—'अस्ति' व्यवहारनो हेतु जे—(सुषुप्तिमां) अविद्यानो अने (जाग्रत्स्वप्नमां) अन्तःकरणनो—परिणाम, ते वृत्ति.

छे. ते प्राण, क्रियाभेदथी अने स्थानभेदथी, पांच प्रकारना छे. जेनुं हृदयस्थान, अने क्षुधापिपासा (खावापीवानी इच्छारूप) क्रिया (छे), ते 'प्राण' कहेवाय छे. अने जेनुं गुदस्थान अने मूत्रमल अधोनयन (नीचे आणवारूप) क्रिया ते **अपान** (कहेवाय छे). जेनुं नाभिस्थान अने भुक्तपीत (खाधेलां पीधेलां) अन्नजलने पाचनयोग्य (जे) सम करे ते **समान.** जेनुं कंठस्थान अने श्वासक्रिया ते **उदान,** जेनुं सर्व शरीरस्थान, रसमेलन क्रिया ते **व्यान.** (ए) प्रकारे पंचप्राण छे. अने कहिं नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, अने धनंजय (ए) पंच (उप)प्राण अधिक कह्या छे. तेओनी उद्गार, निमेष, छींक, जृंभ अने मृत शरीरने फुलाववुं, ए क्रमथी, क्रिया कही छे. पृथ्वी, जल, तेज, वायु, अने आकाश, ए पांचेना रजोगुणअंशथी एक एकनी (उपप्राणनी) क्रमथी उत्पत्ति कही छे. अने अपान, समान, प्राण, उदान, अने व्यान, एओनी पण पृथ्वीआदिक एक एकना रजोगुणअंशथी उत्पत्ति कही छे; सर्वना मळेला रजोगुणअंशथी नहि. परंतु अद्वैतसिद्धान्तमां ए प्रक्रिया नथी; केमके पंचदशीविषे विद्यारण्यस्वामीए तथा पंचीकरणविषे (सुरेश्वराचार्य) वार्तिककारे सूक्ष्मशरीरमां अने पंचकोशोमां, नाग, कूर्मआदिकोनुं ग्रहण कर्युं नथी; अने तेओए अपानादि पंचप्राणनी उत्पत्ति पण, भूतोना मळेला रजोगुण अंशथी कही छे. एथी एक एकना रजोगुण अंशथी आपानादिनी उत्पत्तिकथन असंगत (छे), अने सूक्ष्मशरीरमां, नाग, कूर्मआदिकोनुं ग्रहण (पण) असंगत (छे); पंचप्राणनुं ज सूक्ष्मशरीरमां ग्रहण छे. प्राण विक्षेप(प्रेरण)रूप छे, अने विक्षेपस्वभाव रजोगुणनो छे. एथी भूतोना रजोगुणअंशथी प्राणनी उत्पत्ति कही छे. ए तृतीय पादनो अर्थ छे.

२५६. (पंचज्ञानेन्द्रिय.)

एक एक भूतनो सत्वगुणअंश, पंचज्ञानइन्द्रिय रचे छे; अने एक एकनो रजोगुणअंश एक एक कर्मइन्द्रिय रचे छे. आकाशना सत्त्वगुण(अंश)थी श्रोत्र, वायुना सत्त्वगुणअंशथी त्वक्. तेजना सत्त्वगुणअंशथी नेत्र, जलना सत्त्वगुणअंशथी रसना, अने पृथ्वीना सत्त्वगुणअंशथी घ्राण थाय छे. ए पंच-इन्द्रिय ज्ञाननां साधन छे, पथी ज्ञानेन्द्रिय कहेवाय छे. अने ज्ञान सत्त्वगुणथी थाय छे, पथी भूतोना सत्त्वगुणथी (ज्ञानेन्द्रियनी) उत्पत्ति कही छे. श्रोत्रेन्द्रिय आकाशना गुणने ग्रहण करे छे, पथी श्रोत्रेन्द्रियनी आकाशथी उत्पत्ति कही. तेम जे भूतना गुणने जे इन्द्रिय ग्रहण करे, ते भूतथी ते इन्द्रियनी उत्पत्ति कही छे.

(पंचकर्मेन्द्रिय.)

आकाशना रजोगुणअंशथी वाक्इन्द्रियनी उत्पत्ति, वायुना रजोगुणअंशथी पाणिनी, तेजना रजोगुणअंशथी पादनी, जलना रजोगुणअंशथी उपस्थनी, अने पृथ्वीना रजोगुणअंशथी गुदानी, उत्पत्ति थाय छे. [स्त्रीना अने पुरुषना गुह्यस्थानमां जे विषयानंदनुं साधन इन्द्रिय ते 'उपस्थ' कहेवाय छे.] 'कर्म' नाम क्रियानुं छे. (उपरनां) ए पांच इन्द्रियो क्रियानां साधन छे; पथी कर्मेन्द्रिय कहेवाय छे. क्रिया रजोगुणथी थाय छे; पथी भूतोना रजोगुण-अंशथी तेमनी उत्पत्ति कही छे. २५६.

२५७. (आत्म-अनात्मविवेक.)

सवैया वृत्त.

भूत अपंचीकृतऽने तेनुं कार्य सूक्ष्मसृष्टि ए जाण;
पंचीकृतभूतोथी उपज्यो स्थूल प्रसारो सर्वे मान्

कारण-सूक्ष्म स्थूल देह, अने पंचकोश एमां परमाण;
करी विवेक, लख्य आतमा भिन्न ज, मुंज ईषीकाथी ज्यम लाण.

टीकाः—अपंचीकृत भूत अने तेमनुं कार्य,-अंतःकरण, प्राण, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मइन्द्रिय, एटली सूक्ष्मसृष्टि कहेवाय छे. सूक्ष्मसृष्टिनुं ज्ञान इन्द्रियथी थाय नहि. नेत्रनासिकादिक गोलक तो इन्द्रियोना विषय छे. परंतु ते गोलकोमां स्थित जे इन्द्रिय, ते कोईनां इन्द्रियोना विषय नथी. सूक्ष्मसृष्टिनी उत्पत्तिथी अनंतर, ईश्वरनी इच्छाथी, स्थूलसृष्टिना निमित्त (अपंचीकृत) भूतोनुं पंचीकरण होतुं हवुं.

२५८. (पंचीकरण अने तेना बे प्रकार.)

पंचीकरण बे प्रकारे कह्युं छे. (एक तो) एक एक भूतना बे बे भाग सम थईने एक एक भागना चार चार भाग थया. पांच भूतोना अर्ध अर्ध भाग पृथक्, जेमना तेम रह्या छे, अने अर्ध अर्ध भागना जे चचार भाग ते पृथक् रह्या. मोटा अर्ध भागोमां (बाकीना चार) पोतपोताना भागने छोडीने मीलेथी सर्व भूतोमां अर्ध भाग पोतानो, अने अर्ध भाग पोताथी इतर चारे भूतोनो (चोथो चोथो भाग) मीलीने पंची· करण कहेवाय छे. अने बीजो प्रकार आ छेः-एक एक भूतना

१ आशपाश विंटायला तृण-छाल-थी मुंजना-सरकटना शलियाने जुदो करे तेम.

१६९. धारो केः—पंचभूतोने स्थाने, चालीस रुपीआ भारना एक शेर चोखा, एक शेर घउं, एक शेर दाळ, एक शेर मोग, अने एक शेर बाजरी, एवां पंचधान्य छे. तेनी पांच ढगलियो करी. उपर कह्या प्रमाणे ते प्रत्येकना बे बे सम भाग कर्या, तो विश विश रुपीआ भारना बे अर्धा शेर चोखा, बे अर्धा शेर घउं, बे अर्धा शेर दाळ, बे अर्धा शेर मोग, अने बे अर्धा शेर बाजरी, एवी दस ढगलियो थई. तेमांथी प्रत्येक धान्यनी वीश रुपीआ भारनी अर्ध शेरनी एकेकी ढगलियो एमनी एम रानी; ते पांच आम्नी रही. बाकीनी वीश रुपीआ भारना अर्धा अर्धा

बे बे भाग थया ते सम नहि; किन्तु (एकैक भूतना पंचभाग करी) एक भाग चार अंशनो (मोटो) अने एक भाग पांचमा (एक) अंशनो (नहानो) ए रीतिए अधिक न्यून बे भाग थया. तेओमांथी सर्व (भूतोना) अधिक भाग जेवाना तेवा पृथक् स्थित रहे; अने पंचभूतोना न्यून जे पंचभाग तेओना एक एक भागना पांच पांच भाग करीने, पृथक् स्थित अधिक पंच भागोमां (न्यून भागनो पांचमो पांचमो) एक एक भाग मिलिने पंचीकरण थाय छे.

प्रथम पक्षमां एक भागना चारे भाग, पृथक् रहेला अर्धा अर्धा भागोमां पोताना भागने छोडीने मीले. अने बीजा पक्षमां न्यून भागना पांच भाग, पृथक् रहेला अधिक पंचभागोमां पोताना भागसहित[मां], मीले. अने प्रथम पक्षमां पंचीकृत भूतोमां, पोतानो अर्ध अंश, अने अर्ध अंश अन्योनो (जे चार भूतो रह्यां तेनो चोथो चोथो भाग मळीने थयेलो अर्ध भाग); बीजा पक्षमां पंचीकरण कर्येथी पोताना एकवीश (अंश) अने अन्य(भूत)ना चार अंश.

अने बीजा पक्षनी सुगम रीति आ छेः–एक एक भूतना पचीश पचीश भाग होय. (तेमांथी) एकवीश एकवीश भाग

शेरनी पांच ढगलीओ रहियो, ते प्रत्येकना चार चार भाग कर्या, एटले एकैकी पांच रुपीआ भारना नवटांकनी एवी प्रत्येक धान्यनी चार चार ढगलीओ थई. कुल २० ढगलीओ नवटांक नवटांकनी थई. अने चोखानी जे प्रथम जुदी राखेली वीश रुपीआ भारना अर्धा शेरनी ढगली छे ते, अने तेमां नवटांक घउ, नवटांक दाल, नवटांक मोग, अने नवटांक बाजरी, ए रीते चारे वानां नवटांक नवटांक मेळवतां ए चारे मळी वीस रुपीआभार अर्धो शेर थयु ते एकठु करिये एटले कुल चालीश रुपीयाभार शेर एक थाय, ए प्रमाणे बीजा धान्यमां अनुक्रमे करवु ए रीतिए जे खीचडु थयु ते पचीकरण कहेवाय छे. सोल भाग करी अंकगणित रीतिए लखिये तो –१६=(८+८)=(८+[४×२])=१६.

अने चार चार भाग पृथक् थया. चार चार भागोमांथी एक एक भाग पोताना एकवीश भागने छोडी (अन्यना) एकवीश एकवीश भागमां मळे. (एम कन्ये चारे भूतना चार भाग पेला पोताना एकवीश भागमां मीळेथी कुल पचीश पचीश पूरा थाय.) ए रीतिए वे प्रकारनुं पंचीकरण कह्युं छे. एक एक भूतमां पांच पांच भूतने मेळवीने जे करवुं तेनुं नाम **पंचीकरण** छे. जे भूतोनुं पंचीकरण कर्युं छे तेओने **पंचीकृत** (भूत) कहे छे.

२५९. (स्थूलसृष्टि. चौद लोक.)

ते पंचीकृत भूतोथी, इन्द्रियोना विषय जे स्थूलब्रह्माण्ड ते थतुं हतुं. ते ब्रह्माण्डना अंतर्, भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक, अने सत्यलोक, ए सत-भुवन उपरनां थतां हवां. अने अतल, सुतल, पाताल, वितल, रसातल, तलातल, महातल, ए सात लोक नीचेना थता हवा. ते चतुर्दश लोकोमां जीवोना भोगयोग्य अन्ना-दिक, अने भोगनां स्थान,-देव मनुष्य पशु आदि स्थूलशरीर थतां हवां. सक्षेपथी सृष्टिनुं ए निरूपण कर्युं. अने मायानां कार्यनुं विस्तरथी निरूपण करते, कोटि ब्रह्माना वयथी पण, मायाकृतपदार्थनिरूपणनो अन्त थाय नहि. ए वाल्मीकिए अनेक इतिहासेकरी (योग)वासिष्ठमां निरूपण कर्युं छे. सवैयाना वे पादनो ए अर्थ छे.

२६०. (शरीरत्रय.)

(सवैयाना) तृतीय पादनो अर्थ आ छे:-'एमां' नाम माया अने तेनां कार्यमां, त्रण शरीर अने पंचकोश छे. शुद्ध-सत्त्वगुणसहित माया, ईश्वरनुं कारण शरीर छे; अने मलिनसत्त्वगुणसहित अविद्या अंश, जीवनुं कारण शरीर

छे. (ते कारण शरीरथी) उत्तर शरीरनां आरंभक, पंचसूक्ष्मभूत (छे; अने ते पंचसूक्ष्मभूतनां कार्य-) मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार; पंचप्राण; पंचज्ञानेन्द्रिय; अने पंचकर्मइन्द्रिय; (ए सर्व मळी) जी व नुं सू क्ष्म शरीर छे. अने सर्व जीवोनां सूक्ष्मशरीर ज मळीने ई श्व र नुं सू क्ष्म श री र छे. संपूर्ण स्थूलब्रह्माण्ड ई श्व र नुं स्थू ल शरीर छे. अने जीवोनां व्यष्टि स्थूलशरीर (तो) प्रसिद्ध छे.

(पंचकोश.)

ए त्रणे शरीरोमां ज पंचकोश छे. कारणशरीरने आ नं द म य को श कहे छे. वि ज्ञा न म य, म नो म य, अने प्रा ण म य, ए त्रण कोश सूक्ष्मशरीरमां छे. [पंचज्ञानेन्द्रिय, अने निश्चयरूप अंतःकरणनी वृत्ति (जे) बुद्धि ते **विज्ञानमयकोश** कहेवाय छे. पंचज्ञानेन्द्रिय अने संकल्पविकल्परूप अंतःकरणनी वृत्ति (जे) मन ते **मनोमयकोश** कहेवाय छे. पंचप्राण अने पंचकर्मेन्द्रिय **प्राणमय कोश** छे.] स्थूलशरीरने **अन्नमयकोश** कहे छे. ए रीतिए त्रण शरीरमां ज पंचकोश छे. ईश्वरनां शरीरमां ईश्वरना कोश, अने जीवना शरीरमां

१७०. ईश्वरशरीरना पंचकोश. समष्टि अज्ञानरूपिणी माया ईश्वरनुं का र ण श री र छे, ते ईश्वरनो आ न न्द म य को श छे. अने जीवोना सूक्ष्मशरीरनी समष्टि जे हिरण्यगर्भ, ते ईश्वरनुं सू क्ष्म श री र छे, तेमां विज्ञानमय, मनोमय, अने प्राणमय, ए त्रण कोश आ प्रमाणे छे.-श्रोत्रादिक ज्ञानेन्द्रियनी-अधिष्ठात्री देवता-दिक्पाल,-वायु, सूर्य, वरुण, अने अश्विनीकुमार, ए पांच ईश्वरनां ज्ञानेन्द्रिय, अने समष्टिबुद्धिमय महत्तत्त्वरूप वा सर्वे बुद्धिओनो अभिमानी ब्रह्मारूप ईश्वरनी बुद्धि, ए मळीने, ईश्वरनो वि ज्ञा न म य को श कहेवाय छ. अने ईश्वरनां पूर्वोक्त ज्ञानेन्द्रिय, अने समष्टिमनरूप अहंकारमय, वा सर्वेना मनोनो अभिमानी चंद्रमारूप ईश्वरनुं मन, ए मळीने, ईश्वरनो म नो म य को श कहेवाय छे. अने वाणी आदि कर्मेन्द्रियनी अधिष्ठात्री देवता–अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, प्रजापति अने यम (मृत्यु) ए पांच ईश्वरनां कर्मेन्द्रिय, अने समष्टिप्राण वा वायुना अभिमानी देवता-

जीवना कोश छे. कोश नाम म्याननुं छे. (तरवारना) म्याननी पेठे पंचकोश आत्माना स्वरूपने आच्छादन करे छे; एथी अन्नमयादिक 'कोश' कहेवाय छे. अनेक मंदमति पुरुष पंचकोशमां जे अनात्मपदार्थ छे, तेमांना कोई एकने आत्मा मानीने, मुख्य साक्षिआत्मस्वरूपथी विमुख ज रहे छे. एथी अन्नमयादिक (कोश) आत्मस्वरूपने आच्छादन करे छे.

२६१. (विरोचनमतवाळा स्थूलशरीरने आत्मा माने छे.)

त्यां केटलाक पामर विरोचनमतना अनुसारी स्थूलशरीररूप अन्नमयकोशने ज आत्मा कहे छे अने आ युक्ति कहे छेः–जेमां अहंबुद्धि होय ते आत्मा छे. ते अहंबुद्धि स्थूलशरीरमां होय छे. 'हुं मनुष्य छुं. हुं ब्राह्मण छुं' एवी प्रतीति सर्वने थाय छे; अने ते मनुष्यपणुं, ब्राह्मणपणुं, स्थूलशरीरमां ज छे. एथी स्थूलशरीर ज अहंबुद्धिनो विषय होवाथी आत्मा छे. किंवा जेमां मुख्यप्रीति होय ते आत्मा छे. स्त्री, पुत्र, धन, पशु, आदि स्थूलशरीरना उपकारक होय तो, तेमां प्रीति होय छे; अने स्थूलशरीरनां उपकारक होय नहि तो प्रीति थाय नहि. जेना निमित्त अन्यपदार्थमां प्रीति थाय ते स्थूलशरीरमां ज मुख्य प्रीति छे. एथी स्थूलशरीर

रूप ईश्वरना प्राण, ए मिलीने ईश्वरनो प्राणमयकोश कहेवाय छे. अने समष्टिस्थूलसृष्टिरूप विराट् ए ईश्वरनुं स्थूलशरीर छे. ते ईश्वरनो अन्नमयकोश छे.

जेम, जीवना शरीरमां जे जीवना कोशो छे, ते जीवनी दृष्टिए जीवनुं निजरूप जे प्रत्यगात्मा तेना आच्छादक छे; तेम ईश्वरनां शरीरोमां जे ईश्वरना कोशो छे, ते, ईश्वरनी दृष्टिए ईश्वरनुं निजरूप जे ब्रह्म तेना आच्छादक नहि, किन्तु जीवनी दृष्टिए ब्रह्मना आच्छादक छे. एथी जीवने जेम व्यष्टिपंचकोशोथी प्रत्यगात्मानुं विवेचन कर्तव्य छे, तेम समष्टिपंचकोशोथी ब्रह्मनुं विवेचन पण जीवने ज कर्तव्य छे. ईश्वरने आवरणना अभावथी नित्यमुक्त होवाथकी, कंई पण कर्तव्य छे नहि. पं. पी. पु.

ज आत्मा छे. ते(स्थूलशरीर)नुं, वस्त्र, भूषण, अंजन, मंजन, अने नानाविध भोजनेकरी, शृंगारपोषण ज परम पुरुषार्थ छे. ए असुरस्वामी विरोचननो सिद्धान्त छे.

२६२. (कोई स्थूलशरीरने नहि पण इन्द्रियोने ज आत्मा माने छे.)

अन्य कोई आम कहे छेः-स्थूलशरीर ज आत्मा नथी किन्तु स्थूलशरीरमां जेना होवाथी जीवनव्यवहार थाय छे अने जेना न होवाथी मरणव्यवहार थाय छे ते आत्मा स्थूल शरीरथी भिन्न छे. जीवनमरण इंद्रियोने अधीन छे. जेटला काल सुधी शरीरमां इन्द्रिय होय तेटला काल सुधी जीवन छे. अने कोई इन्द्रिय न होय त्यारे मरण कहेवाय छे. अने 'हुं देखुं छुं, हुं सांभळुं छुं, हुं बोलुं छुं,' ए रीतिए अहंबुद्धि पण इन्द्रियमां होय छे. एथी इन्द्रिय ज आत्मा छे.

२६३. (कोई इन्द्रियोने नहि पण प्राणने ज आत्मा माने छे.)

अने हिरण्यगर्भना उपासी प्राणने आत्मा कहे छे. तेमां युक्ति कहे छे केः-ज्यारे मरणसमये मूर्च्छा थाय छे त्यारे तेनां संबंधी पुत्रादिक, प्राण शेष होय तो जीवन (छे एम) जाणे छे, अने प्राण शेष न होय तो मरण जाणे छे. किंवा शरीरमां नेत्रइन्द्रिय न होय तो अंधशरीर रहे छे, श्रोत्र विना वधिर रहे छे, वाक् विना मूक रहे छे, एम जो इन्द्रिय न होय तेना व्यापार विना पण शरीर स्थित ज रहे छेः अने प्राण विना ते ज क्षणमां श्मशानना समान अमंगळ भयंकर थईने पडी जाय छे. अने 'हुं देखुं छुं, सांभळुं छुं,' ए प्रतीतिए पण इन्द्रियोथी भिन्न ज आत्मा सिद्ध थाय छे. केमके 'नेत्रस्वरूप हुं देखुं छुं, श्रवणस्वरूप हुं सांभळुं छुं,' जो एवी प्रतीति थाय तो इन्द्रियरूप आत्मा सिद्ध थाय. किन्तु 'हुं नेत्रवाळो देखुं

'छुं, श्रोत्रवाळो हुं सांभळुं छुं,' एवी प्रतीति थाय छे. एथी इन्द्रियथी भिन्न ज आत्मा छे. अने सुषुप्तिमां सर्व इन्द्रियनो अभाव छे, तोपण प्राणना होवाथी जीवनव्यवहार थाय छे, एथी जीवन-मरण पण इन्द्रियोने अधीन नहि. किन्तु स्थूल-शरीर अने प्राणना वियोगने **मरण** कहे छे. एथी जीवन-मरण प्राणने ज अधीन छे. ते(प्राण) ज आत्मा छे.

२६४. (कोई प्राणने नहि पण मनने आत्मा माने छे.)

अन्य कोई आवुं कहे छेः-प्राण जड छे, एथी घटनी पेठे अनात्मा छे. अने बंधमोक्ष मनने अधीन छे. विषयमां आसक्त जे मन, ते बंधननो हेतु छे. विषयवासनारहित मन मोक्षनो हेतु छे. अने मनना संबंधथी ज इन्द्रिय ज्ञानना हेतु छे. मनना संबंध विना इन्द्रियथी ज्ञान थाय नहि. एथी सर्व व्यवहारनो हेतु मन छे ते (मन) ज आत्मा छे.

२६५. (क्षणिकविज्ञानवादी बौद्ध, मनने नहि पण बुद्धिने आत्मा माने छे.)

अने क्षणिकविज्ञानवादी बौद्ध आ कहे छेः-मननो व्यापार बुद्धिने अधीन छे. केमके बुद्धिनो ज आकार मन थाय छे, एथी क्षणिकविज्ञानरूप बुद्धि ज आत्मा छे, मन नहि. आ तेमनो अभिप्राय छेः-संपूर्ण पदार्थ, विज्ञानना ज आकार छे; ते विज्ञान प्रकाशरूप छे. अने क्षणक्षणमां विज्ञाननां उत्पत्तिनाश थाय छे. पूर्वविज्ञानना समान अन्यविज्ञाननी उत्पत्ति थयेथी पूर्वविज्ञाननो नाश थाय छे. तेम तृतीय विज्ञाननी उत्पत्ति अने द्वितीय विज्ञाननो नाश, चतुर्थ-(विज्ञान)नी उत्पत्ति अने तृतीय(विज्ञान)नो नाश थाय छे. ए रीतिए नदीना प्रवाहनी पेठे विज्ञाननी धारा बनी रहे छे. ते

विज्ञाननी धारा बे प्रकारनी छे. एक तो आलयविज्ञानधारा छे, अने बीजी प्रवृत्तिविज्ञानधारा छे. 'अहं अहं' (हुं हुं) एवी विज्ञानधाराने **'आलयविज्ञानधारा'** कहे छे. तेने ज बुद्धि कहे छे. 'आ घट छे, आ शरीर छे,' एवी विज्ञानधाराने **'प्रवृत्तिविज्ञानधारा'** कहे छे. आलयविज्ञानधाराथी प्रवृत्तिविज्ञानधारानी उत्पत्ति थाय छे. मननुं स्वरूप पण प्रवृत्तिविज्ञानधारामां छे, एथी आलयविज्ञानधारारूप बुद्धिनुं (मन) कार्य छे, ते **बुद्धि ज आत्मा** छे. आलयविज्ञानधाराविषे, प्रवृत्तिविज्ञानधाराना बाधचिन्तनथी निर्विशेषक्षणिकविज्ञानधारानी स्थिति ज, तेमना मतमां, मोक्ष छे. ए रीतिए विज्ञानवादी बुद्धिने ज क्षणिकरूप अने स्वयंप्रकाशरूप कल्पना करीने आत्मा कहे छे.

२६६. (भट्टमत प्रमाणे बुद्धि नहि पण आनंदमयकोश ते आत्मा मनाय छे.)

अने पूर्वमीमांसानो वार्तिककार भट्ट आ कहे छेः-विद्युत्नी पेठे क्षणिकरूप आत्मा नहि, किन्तु स्थिरस्वरूपआत्मा, जडस्वरूप अने चेतनरूप छे. तेनो अभिप्राय आ छे- सुषुप्तिथी जागीने पुरुष आ कहे छे.-'हुं जड थईने सूतो 'हतो.' एथी आत्मा जडरूप छे, अने जागेलाने स्मृति थाय छे, अज्ञातनी स्मृति थाय नहि. आत्मस्वरूपथी भिन्न ज्ञाननां अन्य साधन सुषुप्तिमां नथी, एथी सुषुप्तिमां स्मृतिनो हेतु ज्ञान छे. ते आत्मानुं स्वरूप ज छे. ए रीतिए खद्योत-(आगिया)नी पेठे आत्मा प्रकाश अने अप्रकाशरूप छेः- ज्ञानरूप छे एथी प्रकाशरूप, अने जड छे एथी अप्रकाशरूप छे. ते प्रकाशरूप अने अप्रकाशरूप आनंदमयकोश छे. केमके सुषुप्तिमां चेतनना आभाससहित जे अज्ञान तेने आनदमय

कोश कहे छे. त्यां आभास तो प्रकाशरूप, अने अज्ञान अप्रकाशरूप छे. पथी भट्टना मतमां आनंदमयकोश ज आत्मा छे.

२६७. (शून्यवादी माध्यमिकबौद्ध शून्यने ज आत्मा माने छे.)

अने शून्यवादी बौद्ध आ कहे छेः-आत्मा निरंश छे, पथी एक आत्माने प्रकाशरूप अने अप्रकाशरूप कहेवो बने नहि. अने खद्योतनो तो एक अंश प्रकाशरूप छे अने बीजो अंश अप्रकाशरूप छे. तेनी पेठे अंशरहित आत्माविषे उभयरूप कहेवुं असंगत छे. पथी उभयरूपनी सिद्धिसारू आत्मा अंशसहित ज मानवो पडशे. जे अंशवाळा पदार्थ घटादि छे ते उत्पत्ति अने नाशवाळा होय छे; तेम आत्मा पण अंशसहित होवाथी उत्पत्ति-नाशवाळो ज मानवो पडशे. जे उत्पत्तिनाशवाळो पदार्थ होय ते उत्पत्तिथी पूर्वे अने नाशथी अनंतर असत् होय छे. जे आदिअंतमां असत् होय ते मध्यमां पण सत् होय नहिः किन्तु मध्यमां पण असत् ज होय छे. पथी आत्मा असत्रूप छे. तेम आत्माथी भिन्न पण संपूर्ण पदार्थ उत्पत्तिनाशवाळा छे, पथी असत्रूप छे. प रीतिप आत्मा अने अनात्मा समग्र वस्तु असत्रूप होवाथी शून्य ज परमतत्त्व छे, प शून्यवादी माध्यमिकबौद्धनुं मत छे.

ते पण अज्ञानरूप आनंदमयकोशने प्रतिपादन करे छे. केमके अज्ञान त्रण रूपथी प्रतीत थाय छे. अद्वैतशास्त्रना संस्काररहित जे मूढ, तेओने तो जगत्रूप परिणामने प्राप्त अज्ञान, सत्य प्रतीत थाय छे. अने अद्वैतशास्त्रना अनुसार युक्तिनिपुण पंडितोने सत्असत्थी विलक्षण अनिर्वचनीयरूप अज्ञान अने तेनुं कार्य जगत्, प्रतीत थाय छे. ज्ञाननिष्ठाने प्राप्त जे जीवन्मुक्तविद्वान् तेओने, कार्यसहित अज्ञान, तु-

च्छरूप प्रतीत थाय छे. तुच्छ, असत, अने शून्य, ए त्रणे शब्द एक ज अर्थने कहे छे. ए रीतिए जीवन्मुक्तने तुच्छरूप जे प्रतीत थाय अज्ञान, तेनेविषे मोहित शून्यवादी परमपुरुषार्थने नथी जाणता; किन्तु तुच्छरूप आनंदमयकोशने ज आत्मा कहे छे.

२६८. (पूर्वमीमांसक प्रभाकर अने नैयायिक, शून्यने नहि पण, आनंदमयकोशने आत्मा माने छे.)

अने पूर्वमीमांसानो एकदेशी प्रभाकर अने नैयायिक आ कहे छेः-आत्मा शून्यरूप नहि. केमके जे शून्यरूप आत्मा माने छे तेने आ पूछे छेः-'शून्यरूपनो तें अनुभव कर्यो छे, 'अथवा नहि ?' जो आम कहेः-'शून्यरूपनो अनुभव नथी 'कर्यो,' तो शून्य छे नहि, एम सिद्ध थयुं. अने जो कहे के,-'शून्यनो अनुभव कर्यो छे,' तो जेणे शून्यनो अनुभव कर्यो छे, ते (अनुभव करनार) आत्मा शून्यथी विलक्षण सिद्ध थाय छे. ए रीतिए शून्यथी विलक्षण आत्मा छे. तेविषे मनना संयोगथी ज्ञान थाय छे. ते ज्ञानगुणथी आत्मा चेतन कहेवाय छे. अने स्वरूपथी आत्मा जड छे. तेम (वळी जेमना मतमां) सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, आदिक गुण आत्माविषे छे; तेओना मतमां पण आनंदमयकोश ज आत्मा छे. अने विज्ञानमयकोशमां जे बुद्धि छे, ते आत्मानो ज्ञानगुण कहे छे;-केमके आनंदमयकोशमां चेतन गूढ (गुप्त) छे (ते) विवेकहीनने प्रतीत थाय नहि. अने प्रभाकर तथा नैयायिक आत्माने सुषुप्तिमां ज्ञानहीन मानीने स्वरूपथी जड कहे छे. एथी गूढ (छे) चेतन (जेमां एवा) आनंदमयकोशमां ज तेओने (नैयायिकादिकोने) आत्मभ्रान्ति छे, अने आत्मस्वरूप नित्यज्ञानने तो जीव(आत्मा)मां मानता

नथी, किन्तु अनित्यज्ञान (जीवात्मामां)माने छे. ते अनित्य-ज्ञान, सिद्धान्तमां, अंतःकरणनी वृत्ति (जे) बुद्धि(ते)रूप छे. ए रीतिए प्रभाकर-नैयायिकमतमां **आनंदमयकोश** आत्मा छे; अने बुद्धि तेनो गुण छे. तेओनुं मत पण समीचीन नथी. केमके—

२६९. (उपरनां मतोसंबंधमां विचार.)

ज्ञानथी भिन्न जे जडवस्तु घटादि छे ते अनित्य छे. तेम आत्मा पण ज्ञानस्वरूप न होय तो घटादिकनी पेठे जड होवाथी अनित्य थशे. जो आत्मा अनित्य होय तो मोक्षने अर्थे साधन निष्फल थशे. ए रीतिए वेदान्तवाक्यमां विश्वास-हीन अनेक बहिर्मुख पंचकोशमां ज कोई पदार्थने आत्मा माने छे; अने मुख्य आत्मस्वरूप साक्षीने जाणता नथी. एथी अन्नमयादिक आत्माना आच्छादक होवाथी कोश कहेवाय छे.

(ईश्वरनुं स्वरूप.)

जेम जीवना पंचकोश, जीवनुं यथार्थ स्वरूप साक्षीने आच्छादन करे छे, तेम ईश्वरना समष्टिपंचकोश ईश्वरना यथार्थ स्वरूपने (जीवोनी दृष्टिथी) आच्छादन करे छे. केमके ईश्वरनुं यथार्थ स्वरूप तो तत्पदनुं लक्ष्य छे, तेने त्यागीने, कोई तो मायारूप आनंदमयकोशविशिष्ट जे अंतर्यामी तत्पद-नुं वाच्य, तेने ज परमतत्त्व कहे छे; तेम हिरण्यगर्भ, वैश्वा-नर, विष्णु, ब्रह्मा, शिव, गणेश, देवी, सूर्यथी आदिलईने, असि, कुदाली, पीपलो, आकडो, वांसपर्यंत पदार्थोमां (ए ज) परमात्मा (छे एवी) भ्रान्ति करे छेः यद्यपि सर्व पदार्थोमां लक्ष्य-भाग परमात्माथी भिन्न नथी; तथापि ते ते उपाधिसहित-ने जे परमात्मा माने छे, ते तेने भ्रान्ति छे; ए रीतिए पंच-

कोशथी आवृत जे जीवईश्वरनुं परमार्थस्वरूप, तेथी विमुख थईने देहादिकोमां आत्मभ्रान्ति करीने पुण्यपाप कर्म करे छे. अने अंतर्यामीथी आदिलईने वांसपर्यंतने ईश्वररूप मानीने आराधन करीने सुख इच्छे छे. जेवा उपाधिनुं आराधन करे छे, तेने अनुसार ज तेओने फल थाय छे. केमके, कारण-सूक्ष्म-स्थूल-प्रपंच सर्वे ईश्वरना त्रण शरीरना अंतर्भूत छे. तेमां उपासनाना अनुसार फल पण सर्वथी ज थाय छे. परंतु ब्रह्मज्ञान विना मोक्ष थाय नहि. जो मोक्षनी इच्छा होय तो विवेकथी जीवईश्वरना स्वरूपने पंचकोशोथी पृथक् करे. दृष्टान्तः-जेम मुंज अने इषीका नाम तुल (मुंज जातना सर-कडनी शलाका (शरियो) अने मुंजनां तृण) मळ्यां होय छे, तेओने (शलाकाउपरनां पात्रांने)तोडीने (मध्यनी तुलथी विशायली शलाकाने) पृथक् करे छे; तेम विवेकथी जीवईश्वरना स्वरूपने पंचकोशथी पृथक् जाणे. ए (उपरना) सवैयानो अर्थ छे. १५७.

२७०. (ते पंचकोशथी आत्मविवेकनो प्रकार.)

सवैयो.

स्थूलदेहनुं भान न थाये स्वप्नमांहि छे आत्मभान;
सुषुप्तिसमये सूक्ष्मज्ञान नहि, सुखस्वरूप छे आत्म ज भान;
भासे, थये समाधि अवस्था, निरावरण आत्मा, न ऽज्ञान;
एम देह त्रण छे व्यभिचारी, आत्मा अनुगत भिन्न ज जाण. १५८.

टीकाः-स्वप्न-अवस्थामां ज स्थूलदेहनुं भान थाय नहि अने आत्मानुं 'भान' थाय छे. तेम सुषुप्तिअवस्थामां सूक्ष्म-शरीरनुं भान थतुं नथी, अने सुखस्वरूप आत्मा, स्वयंप्रकाश-रूपथी 'भान' नाम प्रतीत थाय छे (जो) सुखनुं ज्ञान सुषु-प्तिमां न होय तो 'हुं सुखे सूतो हतो,' एवी स्मृति, जागीने नहि थई जोइये. (पण ते थाय छे) एथी सुखनुं ज्ञान

(महावाक्यना अर्थनो उपदेश. आत्मानुं स्वरूप.)

सवैयो.

पंचकोशथी आत्मा भिन्न ज जाणी जाण ते ब्रह्मस्वरूप;
तेथी भिन्न जे देखाय सुणाय ज, ते मानो मिथ्या भ्रमरूप;
मिथ्या न अधिष्ठान बिगाडे, स्वप्नभीखे न दरिद्री भूप;
सहु कंइ कर्ता *तथाप्यकर्ता तुज अद्भुत रूप एवुं अनुप. १५९.

टीकाः-हे शिष्य ! पंचकोशथी आत्माने भिन्न जाणीने पछी 'ते' नाम ते आत्मा, ब्रह्मस्वरूप छे; ए जाणो.

(शंका.)

२७२. एनेविषे आवी शंका थाय छेः-आत्मा पुण्यपाप करे छे तेथी स्वर्ग नरक अने, मृत्युलोकमां नाना प्रकारनां सुखदुःख भोगवे छे, तेनी ब्रह्मसंगे एकता बने नहि.

ए शंकानुं समाधान.

२७३. (शरीरअध्यासे कर्ता अने स्वरूपे अकर्ता आत्मानो ब्रह्मसंगे अभेद छे.)

'तेथी भिन्न जे देखाय' इत्यादि (सवैयानां) त्रण पादोथी कहे छे. ते ब्रह्मरूप आत्माथी भिन्न जे देखाय छे, अने स्वर्ग, नरक, पुण्य, पाप, शास्त्रेकरी समळाय छे, ते संपूर्ण मिथ्या भ्रम छे; एम मानो. अने मिथ्या वस्तु अधिष्ठानने बिगाडे नहि. जेम स्वप्ननी मिथ्या 'भीख' नाम भिक्षा मागवाथी भूप (राजा) दरिद्री थतो नथी, अने मरुस्थलनां मिथ्या जलथी भूमि भीनी थाय नहि. (अने) मिथ्या सर्पथी रज्जु विषसहित थाय नहि. एथी 'सहु कइ कर्ता' नाम संपूर्ण मिथ्या शुभ अशुभ क्रियानो कर्ता छे, तोपण 'अकर्ता' नाम

* तथापि अकर्ता, सर्व कई कर्ता सते पण अकर्ता.

परमार्थथी कर्ता नथी. एवुं तारुं अद्भुत (नाम) आश्चर्यरूप, 'अनुपम' नाम उपमारहित छे. एनो भाव आ छेः-ब्रह्मसाथे अभिन्न तारा स्वरूपविषे, स्थूल-सूक्ष्मशरीर अने तेओनी शुभ-अशुभ-क्रिया अने तेनुं फल-जन्म मरण, स्वर्ग-नरक, सुख-दुःख, संपूर्ण अविद्याए कल्पित छे. ते कल्पित सामग्रीए तारो ब्रह्मभाव बिगडतो नथी. एथी ज्ञानथी प्रथम पण आत्मा ब्रह्मस्वरूप ज छे, तेनेविषे त्रणे कालमां शरीर अने तेना धर्मोनो संबंध नथी. किन्तु आत्मा सदा ज नित्यमुक्त छे. तेनो ब्रह्मथी कदि पण भेद नथी. १५९.

२७४. जो आम कहे'-आत्मा सदा ज नित्यमुक्त ब्रह्मस्वरूप होय तो, श्रवणादि ज्ञाननां साधन निष्फल थशे. तेनुं समाधान.

(जीवन्मुक्तनी दृष्टि.)

इन्द्रविजय अथवा मत्तगयंद छंद.

जो, न, खपुष्प समान प्रपंच ज, तो ईश क्यां कर्ता ज कहाये;
साक्ष्य नहि, इम साक्षीस्वरूप न, दृश्य नहि दृक् कोने जणाये.
बंध ज होय तो मोक्ष बने, वळी होय अज्ञान तो ज्ञानथी शामे
जाणी ज ए परतन्त्र तजे सउ, निश्चल थतां ज निश्चल पामे. १६०.

टीका-जीवन्मुक्त विद्वाननी दृष्टिमां अज्ञान अने तेनुं कार्य तुच्छ छे. ते जीवन्मुक्तनो निश्चय बतावे छे. हे शिष्य! आ प्रपंच, 'खपुष्पसमान' नाम आकाशना फूलनी पेठे, छे नहि; एथी तेनो कर्ता ईश्वर पण छे नहि. साक्षीनो विषय अज्ञानादिक 'साक्ष्य' कहेवाय छे. ते 'साक्ष्य' नथी एथी साक्षी पण नथी. तेम दृश्यनो प्रकाशक 'दृक्' कहेवाय छे. अने प्रकाशवा योग्य देहादिक 'दृश्य' कहेवाय छे. ते देह

दिक दृश्य छे नहि, एथी दृक् पण नथी. यद्यपि केवल कूटस्थ-चेतनने साक्षी अने दृक् कहे छे; तेनो (स्वरूपेकरी) निषेध बने नहि. तथापि साक्ष्यनी अपेक्षाए 'साक्षी' नाम (छे), अने दृश्यनी अपेक्षार्थी 'दृक्' नाम छे. साक्ष्य अने दृश्यनो अभाव छे. एथी साक्षी अने दृक् (ए) 'ना म नो' निषेध करे छे; 'स्व रू प' नो नहि. अने बंध होय तो बंधनी निवृत्ति-रूप मोक्ष होय; (पण) बंध ज नहि तेथी मोक्ष पण नहि. अने अज्ञान होय तो तेनो ज्ञानथी नाश थाय. अज्ञान छे नहि एथी तेनुं नाशक ज्ञान पण नथी. एम जाणीने 'कर्तव्य तजे' नाम 'मारे ए करवा योग्य छे' ए बुद्धिने त्यागे. केमके आ लोक तथा परलोक तो तुच्छ छे; तेओना निमित्त कंई कर्तव्य नथी. आत्मामां बंध नथी तेथी मोक्षने निमित्त पण कर्तव्य नथी, ए रीतिए आत्माने नित्यमुक्तब्रह्म-रूप जाणीने ज्यारे निश्चल थाय, सर्व कर्तव्य त्यागे; त्यारे 'निश्चल' नाम अक्रिय ब्रह्मस्वरूप विदेहमोक्षने प्राप्त थाय. एनो अभिप्राय आ छेः–

यद्यपि आत्मा, ज्ञानथी प्रथम पण, नित्यमुक्त ब्रह्मस्वरूप ज छे; परंतु ज्ञानथी पूर्वे, आत्माने कर्ता भोक्ता मिथ्या मानीने, सुखप्राप्ति अने दुःखनी निवृत्ति अर्थे अनेक साधन करे छे, तेथी क्लेशने ज प्राप्त थाय छे. जो उत्तम आचार्य मळे तो ते वेदान्तवाक्योनो उपदेश करे छे. ते वेदान्तवाक्योना श्रवणथी आवुं ज्ञान थाय छेः–'हुं कर्ता–भोक्ता नहि, किन्तु हुं 'ब्रह्मस्वरूप छुं. एथी मारे किंचित् पण कर्तव्य नथी.' एवुं जाणवुं ज श्रवणादिकोनुं फळ छे. अने ब्रह्मनी प्राप्ति वेदान्त-श्रवणनुं फल नथी. कारण के ब्रह्म पोतानुं स्वरूप छे, एथी नित्यप्राप्त छे. १६०.

२७५. (गोप्य तत्त्वनो उपदेश.)

दुहो.

ए ज चिन्ह अज्ञाननुं, जे माने कर्त्तव्य;
ते ज ज्ञानी सुघड नर, नहि जेने भवितव्य. १६१.

टीकाः–जे कर्तव्य माने ते अज्ञाननुं चिह्न छे; अने 'जेने 'भवितव्य नहिं' नाम जे अन्यरूप थवा नथी चहातो ते नर ज्ञानी कहेवाय छे. १६१.

२७६. (इन्द्रविजय वृत्त.)

एक अखंडित, ब्रह्म, असंग, अजन्म, अदृश्य, अरूप, अनामी;
मूल-अज्ञान न, सूक्ष्म न, स्थूल न, व्यष्टि समष्टि न, (अंतर्यामी,)
ईश न, सूत्र विराट न, प्राज्ञ न, तैजस विश्वस्वरूप न जेमां; भोग न, जोग न, बंध न मोक्ष, न कांई तहिं वळी छे सहु तेमां. १६२.
जाग्रत्मांही प्रपंच प्रभासत ते सउ बुद्धिविलास बन्यो छे,
स्वप्नविषे ज्यम भोग्य न, भोग न, तो पण चित्र विचित्र जण्यो छे.
लीन सुषुप्तिविषे मति थाय ज, भेद मटचे, रूप एक गुण्यो छे.
बुद्धिरचित मनोरथ मात्र ज, निश्चल बुद्धिप्रकाश भण्यो छे. १६३.

[1]सवैया वृत्त.

जेने हृदये ज्ञान प्रकाशे तमअंधारू थाय विनाश;
सदा असंग एक रस आत्मा ब्रह्मरूप ते स्वयंप्रकाश;

---

१ निश्चल नाम ब्रह्म तेने शास्त्रमां बुद्धिनु 'प्रकाशक' कह्युं छे.

१७१. श्रीमद्भगवतगीताना पंचम अध्यायगत ७ थी ९ पर्यन्त श्लोकोनो अभिप्राय लईने ग्रंथकर्ताए ए युगल सवैया लख्या छे. ते मूलश्लोकः—

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेंद्रियः ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ ७ ॥

(कर्मरूपयोगे वा ब्रह्मनिष्ठारूप संन्यास) योगे जे युक्त छे, (अने तेणेकरी) शुद्ध (रागद्वेषरहित) छे आत्मा (अन्तःकरण) जेनो, (अने तेणेकरी) जित्यां छे (=विषयनी ग्रहणताथी विमुखताने प्राप्त कर्यां छे) बंने प्रकारनां इन्द्रिय जेणे, (अने एणेकरीने जित्यो छे आत्मा नाम वासनात्मक स्वभाव जेणे तेथी ब्रह्माथी

ना कई थयुं, न छे, नहि थारो; जगत् मनोरथ मात्र विलास;
तेनी प्राप्ति निवृत्ति न जोइये, जेम ज्ञानीने कोई न आश. १६४.
देखे, सुणे, न देखे, न सुणे, सउ रस ग्रहे, न ले वळी स्वाद;
सुंघे, स्पर्शे, स्पर्श न, न सुंघे, वचन न बोले, करे विवाद;
ग्रहे, न ग्रहे, मळ त्यजे, न त्यागे, चाले नहि, वळी धावे पाद;
युवती भोगवे, संन्यासी सदा, शिष्य ! जाण अद्भुत संवाद. १६५.

(एनो अभिप्राय कहे छे.)

निज विषयोमां इन्द्रिय वर्ते, तेओथी नहि मारो संग;
हुं इन्द्रिय नहि; मारूं न इन्द्रिय, हुं साक्षी कूटस्थ असंग;
इन्द्रि विषय भोगवे त्यागे, लागे मने न किंचित् रंग;
ए निश्चय ज्ञानीनो, जेथी कर्ता भासे, करे न अंग ! १६६.

हे अंग ! नाम हे प्रिय ! अन्य अर्थ स्पष्ट. १६६.

आदि लईने स्तंबपर्यन्त)सर्व भूतोना आत्मभूत (स्वरूपभूत) थयो छे (प्रत्यग्रूप) आत्मा जेनो, [एवा सर्वात्मभावने प्राप्त थयो जे ब्रह्मवित्तम छे ते शरीरनी यात्रा (निर्वाह) अर्थ विधि अविधि पूर्वक] कई कर्म करे सते पण (ते पुण्य वा अपुण्यरूप कर्मेकरी) लेपातो नथी;—कर्मविषे अकर्मतानी दृष्टिए ते संबंधने पामतो नथी.

× × × × × × × ×

नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।
पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन्नश्नन् गच्छन्स्वपन्श्वसन् ॥ ८ ॥
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ॥ ९

अर्थ.—(आत्माना स्वभावने जाणनार जे ब्रह्मवित्) तत्त्ववित् (ते पोतानी कूटस्थता असंगता अने अन्तर् बहिर् पूर्णताना दर्शनरूप प्रसाद) युक्त थई (बहिर्) देखतो, सांभळतो, स्पर्शतो, सुंघतो, खातो, चालतो, सूतो, श्वास लेतो, मूकतो, बोलतो, मळ त्यागतो, लेतो, आपतो, उन्मेषनिमेषने करतो सतो पण, इन्द्रियो ज इन्द्रियोना अर्थ जे शब्दस्पर्शादिविषयो तेमां वर्ते छे, एम (अने पोते द्रष्टा, श्रोता, कर्ता, भोक्ता नथी एवा लक्षणवाळी वृत्तिने सर्वदा) धरतो सतो हुं (साक्षी) किञ्चित् पण करतो ज नथी, एम माने छे.

२७७. ए रीतिए आचार्ये शिष्यने गोप्य तत्त्वनो उपदेश कर्यो; तो पण शिष्यनुं मुख अत्यंत प्रसन्न न देखीने आवुं जाण्युंः-शिष्य कृतार्थ नथी थयो. जो कृतार्थ (थयो) हत तो तेनुं मुख प्रसन्न हत. एथी पुनः स्थूल रीतिए उपदेश करवाने—

लयचिन्तन कहे छेः-

सवैया वृत्त.

कार्य माटीनुं छे घट तेमां माटी बाह्यऽने अंतर् जेम;
जलथी फेन तरंग बुद्बुदा उपजे जलथी जुदा न एम;
जे जेनुं कार्य ज छे ते तो कारणरूप पीछाणो तेम,
कारण ईश सकलनुं ते हुं, लयचिन्तन जाणो विध एम. १६७.

टीकाः—जेम माटीनां कार्यनी बहिर् अन्तर माटी छे, एथी माटीनां सर्व कार्य माटी स्वरूप ज छे; फेन आदि जलनां कार्य जलस्वरूप ज छे, एम जे जेनुं कार्य छे, ते ते कारण-स्वरूपथी भिन्न नथी. किन्तु कार्य कारण ज स्वरूप छे. अने सकल प्रपंचनुं मूल कारण ईश्वर छे, एथी सर्व कार्य-प्रपंच ईश्वररूपथी भिन्न नथी; किन्तु सर्व प्रपंचनुं स्वरूप ईश्वर ज छे ते ईश्वर हुं छुं ए रीतिए लयचिन्तन (नाम कार्यने कारणरूप) जाणी तुं (एवुं ध्यान) कर.

२७८. लयचिन्तननो संक्षेपथी आवो क्रम छेः—स्थूल ब्रह्मांड सर्व पंचीकृत भूतोनुं कार्य छे. त्यां जे पृथ्वीनुं कार्य ते पृथ्वीस्वरूप अने जलनुं कार्य (ते) जलस्वरूप, ए रीतिए जे भूतोनुं जे कार्य ते तेनुं ज स्वरूप छे. ए रीतिए सर्व स्थूलब्रह्मांड पंचीकृतभूतस्वरूप छे. तेम पंचीकृतभूत पण अपंचीकृत-भूतोनां कार्य छे. एथी अपंचीकृत(भूत) स्वरूप ज पंचीकृत-भूत छे, भिन्न नथी. अने अंतःकरण आदि सूक्ष्मसृष्टि पण

अपंचीकृतभूतोनुं कार्य होवाथी, अपंचीकृतभूतस्वरूप छे. तेमां अंतःकरण सर्व भूतोना सत्त्वगुणनुं कार्य छे, एथी सत्त्वगुणस्वरूप छे. अने भूतोना रजोगुणअंशनुं कार्य प्राण रजोगुणस्वरूप छे. गुदाइन्द्रिय पृथ्वीना रजोगुणअंशनुं कार्य, ते पृथ्वीना रजोगुणस्वरूप; घ्राणइन्द्रिय पृथ्वीना सत्त्वगुणनुं कार्य, ते सत्त्वगुणस्वरूप, एम रसना अने उपस्थ जलना सत्त्वगुण-रजोगुणस्वरूप; नेत्र अने पाद तेजना सत्त्वगुण-रजोगुण-स्वरूप; त्वक् अने पाणि वायुना सत्त्वगुण-रजोगुणस्वरूप; श्रोत्र अने वाक् आकाशना सत्त्वगुण रजोगुण-स्वरूप; ए रीतिए सर्व सूक्ष्मसृष्टि अपंचीकृतभूतस्वरूप छे.

२७२. ए चिन्तन करीने अपंचीकृतभूतोनुं पण लयचिन्तन करे. पृथ्वी जलनुं कार्य छे, एथी जलस्वरूप छे. जल तेजनुं कार्य छे (एथी) तेजस्वरूप छे. तेज वायुनुं कार्य होवाथी वायुस्वरूप छे. (अने) वायु आकाशनुं कार्य (होवाथी) आकाशस्वरूप छे. तमोगुणप्रधानप्रकृतिनुं कार्य आकाश प्रकृतिस्वरूप छे.

(कारणसहित मायानां जुदां जुदां नाम.)

अने मायानी अवस्थाविशेष ज प्रकृति छे, एथी प्रकृति मायास्वरूप छे. एक (ज) वस्तुनां प्रधान, प्रकृति, माया, अविद्या, अज्ञान; ए नाम छे. सर्व कार्यने पोतानामां लीन करीने प्रलयमां स्थित उदासीनस्वरूपने **प्रधान** कहे छे. अने सृष्टिना उपादान योग्य तमोगुणप्रधानस्वरूपने **प्रकृति** कहे छे. जेम देशकालादि सामग्रीविना दुर्घट पदार्थनी इन्द्रजालेकरी उत्पत्ति थाय छे, त्यां इन्द्रजालने माया कहे छे; तेम असंग अद्वितीय ब्रह्ममां इच्छादिक दुर्घट छे, तेने करे छे एथी **माया** कहे छे. स्वरूपने आच्छादन करे छे

एथी **अज्ञान** कहे छे. ब्रह्मविद्याए नाश थाय छे एथी **अविद्या** कहे छे. अने स्वतंत्र क्दा पण रहे नहि, किन्तु चेतनने आश्रित ज रहे छे एथी **शक्ति** पण कहे छे. ए रीतिए प्रकृति आदिक प्रधानना ज भेद छे. जेम एथी प्रधानरूप छे. ते प्रधान, ब्रह्मचेतननी शक्ति छे. जेम पुरुषमां सामर्थ्यरूप शक्ति पुरुषथी भिन्न नथी, तेम चेतनमां प्रधानरूप शक्ति ब्रह्मचेतनथी भिन्न नथी. ए प्रकारे सर्व अनात्मपदार्थोनो ब्रह्मविषे लयचिन्तन करीने "ते अद्वय ब्रह्म हुं छुं." ए चिन्तन करे.

(ध्यान अने ज्ञाननो भेद.)

२८०. जेने महावाक्यविचार कर्याथी पण बुद्धिनी मंदतादिक कोई प्रतिबंधकथी अपरोक्ष ज्ञान थाय नहि, तेने ए

१७२. यद्यपि ब्रह्मनी शक्ति ब्रह्मथी भिन्न कहिये तो अद्वैतश्रुतिनी विरुद्ध थशे, अने अभिन्न कहिये तो तेने ब्रह्मरूप होवाथी ब्रह्मसाथे अभिन्नपणुं शक्ति-नामेकरी कथन व्यर्थ थशे. एथी शक्तिनो ब्रह्मनी साथे भेद-अभेद बंने कहेवुं पडे. अने भेदअभेद ए धर्म तम–प्रकाशनी पेठे एकआश्रयविषे रहे नहि. परंतु शक्तिनो ब्रह्मनी साथे,—रज्जुसाथे सर्पना संबंधनी पेठे,—कल्पितभेद अने वास्तवअभेदरूप अनिर्वचनीयतादात्म्य संबंध छे तेथी शक्तिनो पोताना [illegible] आश्रय)थी वास्तवभेदना अभावथी अने कोई प्रमाणेकरी भिन्नपणे [illegible] अभाव-थी ते शक्ति ब्रह्मथी भिन्न नहि, किन्तु जेम कल्पित सर्प परमार्थे रज्जुरूप छे, तेम शक्ति परमार्थे ब्रह्मरूप ज छे. पं. पी. पु

१७३. आत्मदर्शनविषे आ क्रम उत्तम छे. स्थूल रीतिए शब्दादि विषय-थी, श्रोत्रादि इन्द्रियोनो मनविषे उपसंहार करीने, ते मनने [illegible] बुद्धिविषे उपसंहार करीने [illegible] करीने एकाग्रताए जे (ध्येयाकार) चिन्तन ते 'ध्यान' अथवा (ध्येयविषे) तेरूप [illegible] अखंडित प्रवाह (वृत्ति) ए, 'ध्यान'. ब्रह्म अने आत्मानुं एकत्व अनुभववुं ए, 'ज्ञान'

१७४. आ प्रतिबंधना त्रिविध प्रतिबंध कह्या छे –

पुन. पुनर्विचारेऽपि त्रिविधप्रतिबंधतः ।
न वेत्ति तत्त्वमित्येतद्वार्तिके सम्यगीरितम् ॥ ३८ ॥
पंचदशी ध्यानदीप ९.

लयचिन्तनरूप ध्यान कर्युं छे. ध्यान अने ज्ञाननो आटलो भेद छेः-ज्ञान तो प्रमाण अने प्रमेयने अधीन छे, विधि (अज्ञातार्थज्ञापक वेदभाग अथवा पुरुषप्रेरक शास्त्रवचन) अने पुरुषनी इच्छाने अधीन नथी. अने ध्यान, विधिने, अने पुरुषनी इच्छा अने विश्वास तथा हठने, अधीन छे. जेम प्रत्यक्षज्ञानमां प्रमाण नेत्र अने प्रमेय घटादिक, त्यां नेत्रनो अने घटनो संबंध थयाथी पुरुषनी इच्छा विना पण घटनुं प्रत्यक्षज्ञान थाय छे. भाद्रपद शुद्ध चतुर्थीने दिने चंद्रदर्शननो निषेध छे, विधि नथी. अने पुरुषने आ इच्छा होय छेः-'मने आज चंद्रदर्शन न थाय.' तो पण कोई रीतिए नेत्र(रूप) प्रमाणनो जो चंद्र-(रूप) प्रमेयसाथे संबंध थई जाय तो चंद्रनुं प्रत्यक्षज्ञान अवश्य ज थाय छे. ए रीतिए प्रमाणप्रमेयने अधीन ज्ञान छे; विधि अने इच्छाने अधीन नथी. अने शालग्राम विष्णुरूप छे ए ध्यान करे, तेने उत्तम फल प्राप्त थाय छे, त्यां शास्त्रप्रमाणेकरी विष्णुने तो चतुर्भुज मूर्ति, शंख, चक्र, गदा, पद्म, लक्ष्मीसहित जाणे छे, अने नेत्रप्रमाणे करी शालग्रामने शिला जाणे छे. तथापि विधि, विश्वास, (अने) इच्छाथी शालग्राम विष्णु छे ए ध्यान थाय छे. परंतु ते ध्यान नाना

बहुवार (तत्त्वने) विचारे सते पण त्रिविध प्रतिबंध(ना बल)थी तत्त्वने नथी जाणतो (साक्षात्कार नथी थतो), एम वार्तिकमां सारी रीतिए कह्युं छे.—कार्यने अनुकूल कोई धर्मनो विघटक—बिगाडनार निवारनार—तेने 'प्रतिबंध' कहे छे. प्रारब्धेकरी प्राप्त थयेला प्रतिबंध त्रण प्रकारना छेः—भूतभाविने, वर्तमान. प्रस्तुतकार्य जे ज्ञान तेने अनुकूल धर्म—श्रवण-मनन निदिध्यासनविषे योग्यता—तेने जे बिगाडे तेने 'प्रतिबंध' कहे छे. पूर्वे अनुभवेला विषये आसक्तिकरी पुनः पुनः स्मरण ते 'भूतप्रतिबन्ध'. फलाभिसन्धिकृत प्रारब्धशेष, ब्रह्मलोकेच्छा, ते 'भाविप्रतिबन्ध.' विषयासक्ति, प्रज्ञा (बुद्धि) मान्द्य, कुतर्क, विपर्यय, दुराग्रह, ए चतुर्विध 'वर्तमानप्रतिबंध' छे.

प्रकारनुं छे. कहिं तो अन्यवस्तुनुं अन्यरूपथी ध्यान,-जेम शालग्रामनुं विष्णुरूपथी ध्यान-एने **'प्रतीकध्यान'** कहे छे. अने **वैकुंठलोकवासी विष्णुनुं** शंखचक्रादिकसहित चतुर्भुज मूर्तिरूपे ध्यान छे, त्यां अन्यनुं अन्यरूपथी ध्यान नथी, किन्तु ध्येयरूपना अनुसार ए ध्यान छे. **वैकुंठवासी विष्णुनुं** स्वरूप प्रत्यक्ष तो छे नहि, केवल शास्त्रेकरी जणाय छे. अने शास्त्रे शंखचक्रादिकसहित ज विष्णुनुं स्वरूप कह्युं छे, एथी ध्येयस्वरूपने अनुसार ज ए ध्यान छे. विधि-विश्वास-इच्छा विना ध्यान थाय नहि. 'आ उपासना करे,' एवुं पुरुषनुं प्रेरक वचन, ते **विधि** कहेवाय छे. ते वचनमां श्रद्धा, **विश्वास** कहेवाय छे. अने अंतःकरणनी कामनारूप रजोगुणनी वृत्ति, ते **इच्छा** कहेवाय छे. ए त्रण ध्यानना हेतु छे, ज्ञानना नथी. अने ध्यान हठेकरी थाय छे, ज्ञानमां हठनी अपेक्षा नथी. केमके निरंतर ध्येयाकार चित्तनी वृत्तिने ध्यान कहे छे; त्यां वृत्तिमां विक्षेप होय तो हठेकरी वृत्तिनी स्थिति करे, अने ज्ञानरूप अंतःकरणनी वृत्तिए तत्काल आवरणभंगथयेथी, वृत्तिनी स्थितिनो उपयोग नथी, एथी (ज्ञानविषे) हठनी अपेक्षा नथी.

(अहंग्रह-उपासना)

वैकुंठवासी चतुर्भुज विष्णुना ध्याननी पेठे, 'हुं ब्रह्म छुं.' ए ध्यान पण ध्येयने अनुसार छे. प्रतीक(ध्यान) (ध्यान)नहि, परंतु ए **अहंग्रहध्यान** छे. [ध्येयस्वरूपनुं पोता-साथे अभेद करीने चिन्तन **अहंग्रहध्यान** कहेवाय छे.] जे पुरुषने अपरोक्षज्ञान न थाय, अने वेदनी आज्ञारूप विधिमां विश्वास करीने हठेकरी निरंतर 'हुं ब्रह्म छुं' ए

वृत्तिनी स्थितिरूप 'अहंग्रहध्यान' करे, तेने पण ज्ञान प्राप्त थईने मोक्षनी प्राप्ति थाय छे. १६७.

२८१. (प्रणवनुं अहंग्रहध्यान.)

अन्यरीतिए अहंग्रहउपासना कहे छे.

सवैया वृत्त.

ध्यान अहंग्रह प्रणवरूपनुं कह्युं सुरेश्वर श्रुतिअनुसार;
अक्षरप्रणव ब्रह्म समरूप ते, इम अनुलय निजमतिगति धार;
एना समान अन्य ध्यान नहि; पंचीकरणप्रकार विचार;
जे मुनि करे उपासन ए ते नासे द्रुत संसार अपार. १६८.

टीका:—हे शिष्य ! 'प्रणवरूप' नाम ॐकारस्वरूपनुं अहंग्रह ध्यान, मांडूक्य प्रश्न आदिक श्रुतिने अनुसार सुरे-

---

१७१. बाष्पं धूमतया बुद्ध्वा तत्राङ्गारानुमानतः ।
　　वह्निर्यदृच्छया लब्धः स संवादिभ्रमो मतः ॥ ७ ॥
　　　　पंचदशी-ध्यानदीप. ९.

यद्यपि साधनचतुष्टयसंपन्न, सम्यक्श्रवणमनननिदिध्यासनना अनुष्ठानवान् अधिकारीने 'तत् त्वं' पदना अर्थना विवेचनपूर्वक महावाक्यनो अर्थ (ब्रह्म-आत्मानी एकता) तेना अपरोक्षज्ञानेकरी ब्रह्मभाव-लक्षण मोक्ष थाय छे, एवो वेदान्तशास्त्रविषे प्रतिपादित सिद्धान्त छे, तथापि कोई बुद्धिमांद्यादि प्रतिबन्ध-करी वाक्यार्थविषया अपरोक्षप्रमिति (यथार्थअनुभवज्ञान) उत्पन्न नहि थई, त्यां मोक्षफलक-उपासनाद्वारा ते प्रमितिने उत्पन्न करवा ब्रह्मतत्त्वनी उपासनाए पण (ज्ञान थई) मोक्ष थाय छे. ए मार्ग दर्शावे छे. तेविषे 'संवादिभ्रम' नुं दृष्टान्त आपे छे —

(कोईक प्रदेशमां स्थित) बाष्प(बाफ)ने धूमत्व (धूमाडापणुं) मानीने तेना मूलप्रदेशमां अंगार(अग्नि)ना अनुमानथी दैवगतिए वह्नि (अग्नि) मळे छे. त्यारे बाष्पविषय धूमज्ञानने 'संवादिभ्रम' मनाय छे.

ए दृष्टान्तनी दार्ष्टान्तविषे योजना आवी छे:-जेम बाष्पने धूम गणी-ज्यां धूम होय त्यां अग्नि होय-ए अनुमानथी अग्नि लेवा गयेला पुरुषने, बाष्प ए धूम न हतो तेथी मिथ्याज्ञान हतुं, तो पण तेद्वारा अग्निनी प्राप्तिरूप फल दैवगतिए थाय छे, तेम 'अहंग्रह ध्यान' थी ब्रह्मात्मैक्यज्ञान थई मोक्ष थाय छे.

१ त्वरित, झटिति, विनाविलंबे

श्वराचार्ये कह्युं छे, ते तुं कर तेनो संक्षेपथी प्रकार आ छेः- प्रणवअक्षर ब्रह्मस्वरूप छे, 'ते प्रणवरूप ब्रह्म हुं छुं.' ए रीतिए 'अनुलव' नाम क्षणमात्रअंतरायरहित निजमतिनी 'गति' नाम वृत्ति, धार, स्थित कर. एना समान अन्य ध्यान छे नहि. अने ए ध्याननो प्रकार नाम विशेषरीति सुरेश्वरकृत **पंचीकरण** नामना ग्रंथेकरी विचार. चतुर्थ पाद स्पष्ट.

२८२. (प्रणव-ॐउपासनानी रीति.)

यद्यपि प्रणवउपासना बहु उपनिषदोमां छेः तथापि (कारिकासहित) **मांडूक्यउपनिषद्**मां विशेष छे. तेना व्याख्यानमां भाष्यकार अने आनंदगिरिए तेनी रीति स्पष्ट लिखी छे. ते ज रीति वार्तिककारे (सुरेश्वराचार्ये) पंचीकरणमां लिखी छे. तथापि ते ग्रंथना विचारोमां जेमनी बुद्धि समर्थ छे नहि, तेमने अर्थे प्रणव उपासनानी रीति अमे लखिये छिये. बे प्रकारे प्रणवनुं चिन्तन उपनिषद्मां कह्युं छेः एक तो **परब्रह्मरूपे** प्रणवनुं चिन्तन कर्युं छे, अने बीजुं **अपरब्रह्मरूपे** कह्युं छे. [निर्गुणब्रह्मने **परब्रह्म** कहे छे; अने सगुणब्रह्मने **अपरब्रह्म** कहे छे.] परब्रह्मरूपे प्रणवनुं चिन्तन करे ते मोक्षने प्राप्त थाय छे. अने अपरब्रह्मरूपथी प्रणवनुं चिन्तन करे ते ब्रह्मलोकने प्राप्त थाय छे. एम निर्गुण-सगुण भेदथी प्रणवउपासना बे प्रकारनी छे.

२८३. (निर्गुणरूप प्रणवउपासना.)

तेमां निर्गुणउपासनानी रीति लखिये छिये, सगुणनी नहि. केमके, जेने ब्रह्मलोकनी कामना होय तेने निर्गुणउपासनाथी पण (ब्रह्मलोकनी) कामनारूप प्रतिबंधकथी, ज्ञानद्वारा तत्काल मोक्ष थाय नहि, किन्तु ब्रह्मलोकनी ज प्राप्ति थाय छे. त्यां हिरण्यगर्भना समान भोगोने भोगवीने

ज्ञान थाय त्यारे मोक्ष थाय. अने जेने ब्रह्मलोकनी कामना नहि होय तेने आ लोकमां ज ज्ञान थईने मोक्ष थाय छे. ए रीतिए सगुणउपासनानुं फळ पण निर्गुणउपासनाने अंतर्भूत छे. एथी निर्गुण उपासनानो प्रकार कहिये छियेः-जे कांई कारणकार्यवस्तु छे ते ॐकारस्वरूप छे; एथी सर्वरूप ॐकार छे. सर्व पदार्थोमां नाम अने रूप बे भाग छे. त्यां रूपभाग पोतपोताना नामभागथी जूदो नथी, किन्तु नामस्वरूप ज रूपभाग छे. केमके पदार्थनुं 'रूप' नाम आकार, तेनुं नामवते निरुपण करीने ग्रहण वा त्याग थाय छे, नाम जाण्या विना केवल आकारथी व्यवहार सिद्ध थाय नहि, एथी नाम ज सार छे. अने आकारनो नाश थयेथी पण नाम शेष रहे छे. जेम घटनो नाश थयेथी मृत्तिका शेष रहे छे, त्यां घट मृत्तिकाथी पृथक् वस्तु नथी, मृत्तिकास्वरूप छे; तेम आकारनो नाश थयेथी मृत्तिकानी पेठे शेष रहे जे नाम, तेथी आकार पृथक् नथी,-नामस्वरूप ज आकार छे. किंवा जेम घटशरावादिकोमां मृत्तिका अनुगत छे, अने घटशरावादिक परस्पर व्यभिचारी छे; एथी घटशरावादिक मिथ्या, तेओमां अनुगत मृत्तिका सत्य छेः तेम घटआकार अनेक छे ते सर्वनुं 'घट' ए बे अक्षर(नुं)नाम एक छे; ते आकार परस्पर व्यभिचारी, अने सर्व घटना आकारमां नाम एक अनुगत छे; एथी मिथ्या आकार सत्य नामथी पृथक् नथी. ए रीतिए सर्व पदार्थोना आकार पोतपोताना नामथी भिन्न नथी, किन्तु नामस्वरूप ज आकार छे. ते सर्व नाम ॐकारथी भिन्न नथी, किन्तु ॐकारस्वरूप ज नाम छे केमके वाचक शब्दने नाम कहे छे, अने लोकवेदना सर्व शब्द ॐकारथी उत्पन्न थया छे, ए श्रुतिमां प्रसिद्ध छे. संपूर्ण कार्य,

कारणस्वरूप होय छे, पथी ॐकारनां कार्य जे वाचक शब्द-रूप नाम ते ॐकारस्वरूप छे. ए रीतिए रूपभाग जे पदार्थोनो आकार ते तो नामस्वरूप छे, अने सर्व नाम ॐकारस्वरूप छे. पथी सर्वस्वरूप ॐकार छे.

२८४. (ॐकार अने ब्रह्मनो अभेद.)

जेम सर्वस्वरूप ॐकार छे, तेम सर्वस्वरूप ब्रह्म छे, पथी ॐकार ब्रह्मरूप छे. किंवा ॐकार ब्रह्मनो वाचक छे, ब्रह्म वाच्य छे. वाच्यनो अने वाचकनो अभेद होय छे. पथी पण ॐकार ब्रह्मरूप छे. अने विचारदृष्टिथी ॐ (ओ) अक्षरब्रह्मविषे अध्यस्त छे, ब्रह्म तेनु अधिष्ठान छे. अध्यस्तनु स्वरूप अधिष्ठानथी अन्य होय नहि, पथी पण ॐकार ब्रह्म-स्वरूप छे. पथी ॐकारने ब्रह्मरूपे करीने चिन्तन करे.

२८५ (ब्रह्म अने जीवना चार चार पाद.)

ब्रह्मरूप ॐकारने आत्मासाथे पण अभेद चिन्तन करे. केमके आत्मानो ब्रह्मसाथे मुख्य (स्वरूपे) अभेद छे. अने ब्रह्मने चार पाद छे. तेम आत्माने पण चार पाद छे. ['पाद' नाम भागनु छे. तेने ज अश पण कहे छे] विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर, अने तत्पदनु लक्ष्य ईश्वरसाक्षी, ए चार पाद ब्रह्मना छे. विश्व, तेजस, प्राज्ञ, अने त्वपदनु लक्ष्य जीवसाक्षी, ए चार पाद आत्माना छे. जीवसाक्षीने जे तुरीय (पण) कहे छे.

(विराट् अने विश्वनां सात अग)

समष्टिस्थूलप्रपचसहित चेतन **विराट्** कहेवाय छे. व्यष्टिस्थूलअभिमानी **विश्व** कहेवाय छे. विराटनो अने विश्वनो उपाधि स्थूल छे, पथी विराट्रूप ज विश्व छे, विराट् थी भिन्न नथी. विराट्रूप विश्वनां सात अग छे, स्वर्ग

लोक मूर्धा छे, सूर्य नेत्र छे, वायु प्राण छे, आकाश धड (कबंध) छे; समुद्रादिरूप जल मूत्रस्थान छे, पृथिवी पाद छे, जे अग्निमां होम करिये ते अग्नि मुख छे, ए सात अंग (विराट्‌रूप विश्वनां मांडूक्यमां कह्यां छे. यद्यपि स्वर्गलोकादिक विश्वनां अंग बने नहि, तथापि विराट्‌नां अग छे. ते विराट्‌साथे विश्वनो अभेद छे. एथी विश्वनां अंग कह्यां छे.

(विराट्‌रूप विश्वनां मुख.)

तेम विराट्(रूप)विश्वनां ओगणीश मुख छे'-पंचप्राण, पंचकर्मइन्द्रिय, पंचज्ञानइन्द्रिय, चार अंतःकरण; ए ओगणीश, मुखनी पेठे, भोगनां साधन छे, एथी मुख कहेवाय छे. ए ओगणीशथी, स्थूलशब्दादिकोने, बाह्यवृत्तिकरीने, जाग्रत अवस्थाविषे, भोगवे छे, एथी विराट्‌रूप विश्व स्थूलनो भोक्ता, अने बाह्यवृत्ति (बहिःप्रज्ञ) कहेवाय छे, अने जाग्रत अवस्थावाळो कहेवाय छे.

२८६. प्राणादिक ओगणीश जे भोगनां साधन छे, तेओमां श्रोत्रादिक (दश) इन्द्रिय, अने अंतःकरण चार, ए चतुर्दश पोतपोताना विषय अने पोतपोतानी देवतानु साहाय्य चहाय छे. देवता (अने) विषयना साहाय्यविना केवळ एओथी (इन्द्रियो अने अंतःकरण मळी चतुर्दशथी) भोग थाय नहि. एथी पंचप्राण अने चतुर्दशत्रिपुटी (इंद्रियो अंतःकरणादि १४ + तेमना विषय १४ + तेमनी देवता १४ एम करी=४२ विराट्‌रूप विश्वनां मुख कहेवाय छे. [त्रणना समुदायनुं नाम त्रिपुटी छे.] -

(इन्द्रिय, विषय अने देवतानी चतुर्दश त्रिपुटी.)

ते त्रिपुटी आ रीतिए कही छे.-श्रोत्रइन्द्रिय अध्यात्म छे, अने तेनो विषय शब्द अधिभूत छे, दिशानी अभिमानिनी

देवता अधिदेव छे. [आ प्रकरणमां क्रियाशक्तिवाळां अने ज्ञानशक्तिवाळां इन्द्रिय अने अंतःकरण **अध्यात्म** कहेवाय छेः तेमना विषयो **अधिभूत** कहेवाय छे; अने तेमनी सहायक देवता **अधिदेव** कहेवाय छे.]

त्वचाइन्द्रिय अध्यात्म छे, तेनो विषय स्पर्श अधिभूत छे, अने वायुतत्त्वनी अभिमानिनी देवता अधिदेव छे. नेत्रइन्द्रिय अध्यात्म छे, रूप अधिभूत छे, सूर्य अधिदेव छे. रसनाइन्द्रिय अध्यात्म छे, रस अधिभूत छे, वरुण अधिदेव छे. घ्राणइन्द्रिय अध्यात्म छे, गंध अधिभूत छे, अश्विनीकुमार अधिदेव छे. [अने वार्तिककार सुरेश्वराचार्ये पृथिवीनी अभिमानिनी देवता घ्राणनो अधिदेव कही छे, ते पण बने छे. केमके पृथिवीथी घ्राणनी उत्पत्ति छे एथी पृथिवी (देवता) अधिदेव कही छेः अने सूर्यनी वडवानी (घोडीरूप थयेली स्त्रीनी) नासिकाथी अश्विनीकुमारनी उत्पत्ति कही छे; एथी नासिकानो अधिदेव कहिं अश्विनीकुमार ज कहे छे.] वाक्इन्द्रिय अध्यात्म छे, वक्तव्य अधिभूत छे, अग्निदेवता अधिदेव छे. हस्तइन्द्रिय अध्यात्म छे, पदार्थनुं ग्रहण अधिभूत छे, इन्द्र अधिदेव छे. पाद इंद्रिय अध्यात्म छे, गमन अधिभूत छे, अने विष्णु अधिदेव छे. गुद(गोलकमां स्थित पायु)इन्द्रिय अध्यात्म, मलत्याग अधिभूत, यम अधिदेव छे. उपस्थइन्द्रिय अध्यात्म, ग्राम्यधर्मना (मैथुनक्रियारूप पशुधर्मना) सुखनी उत्पत्ति अधिभूत, प्रजापति अधिदेव छे. मन अध्यात्म छे, मननो विषय (मन्तव्य) अधिभूत छे, चंद्रमा अधिदेव छे. बुद्धि अध्यात्म छे, बोद्धव्य अधिभूत छे, बृहस्पति अधिदेव छे. [ज्ञाननो विषय बोद्धव्य कहेवाय छे.] अहंकार अध्यात्म छे, अहंकारनो विषय अधिभूत छे, रुद्र

अधिदैव छे चित्त अध्यातम छे, चिन्तनना विषय अधिभूत छे, क्षेत्रज्ञ जे साक्षी ते अधिदैव छे ए चतुर्दश त्रिपुटी अने प्रचमाण ए ओगणीश विराट्रूप विश्वना मुख छे.

२८७ (विश्व विराट् अने ॐकारनी 'अ' मात्रानुं

अभेदचिन्तन.)

जेम विराट्साथे विश्वना अभेद छे, तेम ॐकारनी प्रथम मात्रा जे अकार, तेनो पण विराट्रूप विश्वसाथे अभेद छे केमके ब्रह्मना चार पादमां प्रथम पाद विराट् छे, अने आत्माना चार पादमां प्रथम विश्व छे, तेम ॐकारनी चार मात्रारूप (चार) पादमां प्रथम पाद अकार छे एथी 'प्रथमता' धर्म ए त्रणेमां समान होवाथी, विश्व, विराट्, (अने) अकार, एमनो अभेद चिंतन करे

२८८ जे सात अंग अने ओगणीश मुख विश्वना कह्यां ते ज सात अंग अने ओगणीश मुख तैजसना पण जाणवाने योग्य छे परंतु आटलो भेद छे-विश्वना जे अंग अने मुख छे, ते तो ईश्वररचित छे, अने तैजसना जे इन्द्रिय, विषय अने देवतारूप त्रिपुटी अने मूर्द्धादिक अंग ते मनोमय छे तेजसनो भोग सूक्ष्म छे यद्यपि भोग नाम सुख अथवा दु खनो ज्ञाननुं छे, तेनेविषे स्थूलता अने सूक्ष्मता कहेवी बने नहि, तथापि बाह्य जे शब्दादि विषय छे, तेओना संबंधथी, जे सुख अथवा दु खनो साक्षात्कार तेने स्थूल (भोग) कहेवाय छे अने मानस जे शब्दादि तेओना संबंधथी जे भोग थाय ते सूक्ष्म (भोग) कहेवाय छे ए ज कारणथी विश्व तो स्थूलनो भोक्ता श्रुतिविषे कह्यो छे अने तैजस सूक्ष्मनो भोक्ता कह्यो छे केमके तेजसना भोग्य जे शब्दादिक छे ते तो मानस छे एथी सूक्ष्म छे अने तेओनी अपेक्षा करीने, विश्वना भोग्य,

बाह्य शब्दादिक छे ते स्थूल छे, अने विश्व बहिःप्रज्ञ छे; तैजस अंतःप्रज्ञ छे. केमके जे विश्वनी अंतःकरणनी वृत्तिरूप प्रज्ञा छे, ते बहिर् जाय छे, अने तैजसनी नथी जती.

२८९. (तैजस, हिरण्यगर्भ अने ॐकारनी 'उ'मात्रानुं अभेदचिन्तन.)

जेम विश्वनो अने विराट्नो अभेद छे, तेम तैजसने पण हिरण्यगर्भरूप जाणे. केमके तैजसनो सूक्ष्म उपाधि छे, अने हिरण्यगर्भनो पण सूक्ष्म ज छे, एथी बंनेनो एकता जाणे. तैजस-हिरण्यगर्भनी एकता जाणीने ॐकारनी द्वितीय-मात्रा उकारसाथे तेमना अभेद चिन्तन करे. केमके आत्माना चार पादमां द्वितीयपाद तैजस छे, ब्रह्मना पादमां हिरण्यगर्भ बीजो पाद छे, ॐकारनी मात्रामां द्वितीयमात्रा उकार छे. 'द्वितीयता' त्रणेमां समानधर्म छे, एथी त्रणेनी एकता चिन्तन करे.

२९०. (प्राज्ञ, ईश्वर अने ॐकारनी'म'मात्रानुं अभेदचिन्तन.)

अने प्राज्ञने ईश्वररूप जाणे. केमके प्राज्ञनो कारण-उपाधि छे. अने ईश्वरनो पण कारणउपाधि छे. ईश्वर अने प्राज्ञ, पादोमां तृतीय छे. ॐकारनी तृतीयमात्रा मकार छे. 'त्रीजापणुं' त्रणेमां समानधर्म छे, एथी त्रणेनी एकता जाणे. अने ए प्राज्ञ प्रज्ञानघन छे. केमके जाग्रत् अने स्वप्ननां जेटलां ज्ञान छे ते सुषुप्तिविषे 'घन' नाम एक अविद्यारूप थई जाय छे, एथी **प्राज्ञघन** कहेवाय छे; अने **आनंदभुक्** पण ए प्राज्ञ श्रुतिमां कह्यो छे. केमके अविद्याए आवृत जे आनंद छे, तेने ए प्राज्ञ भोगवे छे, एथी आनंदभुक् कहे-वाय छे.

जेम तैजस अने विश्वना भोग त्रिपुटीए थाय छे, तेम

प्राज्ञना भोगनी पण त्रिपुटी कहेवाय छे. चेतनना प्रतिबिंब सहित जे अविद्यानी वृत्ति छे ते अध्यात्म छे, अज्ञाने आवृत जे स्वरूप आनंद ते अधिभूत छे, अने ईश्वर अधिदैव छे. ए रीतिए विश्व तो बहिःप्रज्ञ छे, तैजस अंतःप्रज्ञ छे, अने प्राज्ञ प्रज्ञानघन छे.

२९१. (उपाधिकृत ज भेद. वास्तव एकता.)

एवो जे त्रणेनो भेद छे ते उपाधिएकरीने छे. विश्वना स्थूल, सूक्ष्म, अने अज्ञान, (ए) त्रण उपाधि छे. अने तैजसना, सूक्ष्म अने अज्ञान ए बे उपाधि छे. अने प्राज्ञना एक अज्ञान उपाधि छे. ए रीतिए उपाधिनी न्यूनता-अधिकताए त्रणनो भेद छे. परमार्थेकरीने स्वरूपे भेद नथी.

विश्व, तैजस, प्राज्ञ, ए त्रणेविषे अनुगत जे चेतन छे, ते परमार्थेकरी त्रण उपाधिना संबंधथी रहित छे. त्रणे उपाधिनुं अधिष्ठान तुरीय छे. ते बहिःप्रज्ञ नथी, अने अंतःप्रज्ञ नथी, अने प्रज्ञानघन पण नथी; कर्मइंद्रियनो अने ज्ञान-इन्द्रियनो विषय नहि; अने बुद्धिनो विषय नहि; कोई शब्दनो विषय नहि; एवो जे तुरीय छे, तेने परमात्मानो चतुर्थ पाद, ईश्वरसाक्षी, शुद्धब्रह्मरूप, जाणे.

२९२. (परमार्थ अने अपरमार्थ एवां आत्मानां अने ॐकारनां बे स्वरूपनुं अभेदचिन्तन)

ए रीतिए बे प्रकारनुं आत्मानुं स्वरूप कह्युं. एक तो परमार्थरूप छे अने एक अपरमार्थरूप छे. त्रण पाद तो अपरमार्थरूप छे; अने एक पाद,-तुरीय,-परमार्थरूप छे. जेम आत्मानां बे स्वरूप छे, तेम ॐकारनां पण बे स्वरूप छे. अकार, उकार, अने मकार, ए त्रण मात्रारूप जे वर्ण छे, ते तो अपरमार्थरूप छे; अने त्रणे मात्राविषे व्यापक, अस्ति-

भातिप्रियरूप जे अधिष्ठानचेतन छे, ते परमार्थरूप छे. जे ॐकारनुं परमार्थरूप छे तेने श्रुतिविषे 'अमात्र' शब्देकरीने कह्युं छे. केम के ते परमार्थस्वरूपविषे 'मात्रा' विभाग छे नहि, पथी 'अमात्र' कहेवाय छे. ए रीतिए बे स्वरूपवाळो जे ॐकार छे, तेनो बे स्वरूपवाळा आत्मानी संगे अभेद जाणे.

व्यष्टि अने समष्टि जे स्थूलप्रपंच, ते सहित विश्व अने विराट्नो अकारसाथे अभेद जाणे. आत्माना जे पाद छे तेओनाविषे 'विश्व आदि' छे; अने ॐकारनी मात्राविषे 'अ'कार-आदि छे, पथी बेने एक जाणे. सूक्ष्मप्रपंचसहित जे हिरण्यगर्भरूप तैजस छे, तेने उकाररूप जाणे. तैजस पण बीजो छे अने उकार पण बीजो छे, पथी बेने एक जाणे. कारण उपाधिसहित जे ईश्वररूप प्राज्ञ छे, तेने मकाररूप जाणे. जेम ईश्वररूप प्राज्ञ त्रीजो छे तेम मकार पण त्रीजो छे, पथी ईश्वररूप प्राज्ञ अने मकारने एक जाणे. (ए) त्रणेविषे अनुगत (व्यापेलो) जे परमार्थरूप तुरीय छे तेने, ॐकार वर्णनी त्रण मात्राविषे अनुगत जे ॐकारनुं परमार्थरूप 'अमात्र' छे, तेसाथे अभिन्न जाणे. जेम विश्वादिक विषे तुरीय अनुगत छे, तेम अकारादिक त्रणे मात्राविषे अमात्र अनुगत छे; पथी ॐकारना अमात्ररूपने अने तुरीयने एक जाणे. ए रीतिए आत्माना पाद अने ॐकारनी जे मात्रा छे तेओनी एकता जाणीने लयचिन्तन करे.

२९३. (लयचिन्तन अने ॐकारनुं निर्गुण उपासन.)

ते लयचिन्तन कहेवाय छे. विश्वरूप जे अकार छे ते तैजसरूप उकारथी भिन्न नथी, किन्तु उकाररूप छे एवुं जे चिन्तन करवुं ते आ स्थानमां 'लय' कहेवाय छे.

एवुं ज अन्य मात्राविषे पण जाणी लेवुं. अने जे उकारविषे अकारनो लय कर्यो छे, ते तैजसरूप उकारनो, प्राज्ञरूप जे मकार छे तेने विषे, लय करे. अने प्राज्ञरूप जे मकार छे, तेने तुरीयरूप जे ॐकारनुं परमार्थरूप अमात्र छे, तेनाविषे लीन करे. केमके स्थूलनी उत्पत्ति अने लय सूक्ष्मविषे थाय छे. एथी विश्वरूप जे अकार छे तेनो तैजसरूप उकारमां लय बने छे. अने सूक्ष्मनी उत्पत्ति अने लय कारणमां थाय छे. एथी तैजसरूप जे उकार छे, तेनुं कारण प्राज्ञरूप जे मकार छे, तेनेविषे लय बने छे. आ स्थानविषे विश्वआदि-कोना ग्रहणथी समष्टि जे विराट् आदिक छे तेओनुं अने पोतपोतानी जे त्रिपुटी छे तेओ सर्वनुं ग्रहण जाणवुं. जे प्राज्ञ-रूप मकारविषे उकार लय कर्यो छे, ते मकारने तुरीय रूप जे ॐकारनुं परमार्थरूप अमात्र छे, तेनेविषे लीन करे. केमके ॐकारना परमार्थ स्वरूपनो तुरीयसाथे अभेद छे, ते तुरीय ब्रह्मरूप छे. अने शुद्ध(ब्रह्म)विषे ईश्वर प्राज्ञ बंने कल्पित छे. 'जे जेने विषे कल्पित होय छे, ते तेनुं स्वरूप होय छे.' एथी ईश्वरसहित प्राज्ञरूप जे मकार तेनो लय (शुद्धब्रह्ममां) बने छे ए रीतिए जे ॐकारना परमार्थस्वरूप अमात्रविषे सर्वनो लय कर्यो छे **'ते हुं छुं'** (सोऽहं अथवा सोऽहमस्मि) एवुं, एकाग्रचित्त थईने चिन्तन करे. स्थावरजंगमरूप अने असंग, अद्वय, असंसारी, नित्यमुक्त, निर्भय, ब्रह्मरूप ॐकारनुं परमार्थस्वरूप 'ते हुं छुं' एवुं चिन्तन कर्याथी ज्ञान उदय थाय छे; एथी ज्ञान-द्वारा मुक्तिरूप फलनुं देवावाळुं ए ॐकारनुं निर्गुण उपासन छे, ते सर्वथी उत्तम छे.

२९४. (ॐकारचिन्तनमां केवळ परहंसनो अधिकार)

जे पूर्वरीतिए ॐकारना स्वरूपने जाणे छे ते मुनि छे, जे नथी जाणतो ते मुनि नहि. केमके 'मुनि' नाम मनन करवावाळानुं छे ए ॐकारनुं चिन्तन मननरूप छे. जेने ॐकारनुं चिन्तनरूप मनन नहि ते मुनि नहि. ए मांडूक्यउपनिषद्नी रीतिए संक्षेपथी ॐकारनुं चिन्तन कह्युं छे. अन्य पण नृसिंहतापनी आदिक उपनिषदोमां पण एनो प्रकार छे. ए 'ॐकारनु चिन्तन परमहंसोनुं गोप्य धन छे.' बहिर्मुख पुरुषनो एविषे अधिकार नथी, अत्यंत अंतरमुखनो अधिकार छे. गृहस्थनो एमां अधिकार नथी. धन, पुत्र, स्त्रीसंगादिकरहित परमहंसनो अधिकार छे.

२९५. (ॐकारना ध्याननुं फल)

पूर्व प्रकारे ॐकारनु ब्रह्मरूपथी ध्यान कर्याथी ज्ञानद्वारा मोक्ष थाय छे. परंतु जे पुरुषनी आ लोकना भोगोमां अथवा ब्रह्मलोकना भोगोमां कामना होय, तीव्र वैराग्य नहि होय, अने हठेकरी कामनाने रोकीने, धनपुत्रादिकोने त्यागीने, परमहंसगुरुना उपदेशेकरी ॐकाररूप ब्रह्मनु ध्यान करे, तेने भोगनी कामना ज्ञानमां प्रतिबंध छे, एथी ज्ञान नथी थतुं, किन्तु ध्यान करतां ज, शरीरत्यागथी अनंतर अन्य शरीरनी प्राप्ति थाय. जो आ लोकमां भोगनी कामना रोकीने ध्यानमां लाग्यो होय, तो आ लोकमां अत्यंत विभूतिवाळा पवित्र सत्संगिकुलमां जन्म थाय छे. त्यां पूर्वकामनाना विषय सर्व भोग प्राप्त थाय छे, अने पूर्वजन्मना ध्यानना संस्कारोथी पुनः विचारमां अथवा ध्यानमां प्रवृत्ति थाय छे; तेथी ज्ञान थईने मोक्ष थाय छे.

२९६. अने ब्रह्मलोकना भोगोनी कामना रोकीने ॐकार-

रूप ब्रह्मना ध्यानमां लाग्यो होय तो शरीर त्यागीने ब्रह्म लोक प्रति जाय छे. त्यां मनुष्योने, पितृओने, अने देवोने, दुर्लभ जे स्वतंत्रता छे तेना आनंदने भोगवे छे. जेटली हिरण्यगर्भनी विभूति छे ते सर्व सत्यसंकल्पादिक विभूति पने प्राप्त थाय छे.

२९७. (ब्रह्मलोक प्रति जवाना मार्गनो क्रम.)

जे मार्गे ब्रह्मलोक प्रति जाय छे ते मार्गनो क्रम आ छेः-जे पुरुष ब्रह्मनी उपासनामां तत्पर छे, तेना मरणसमये, इन्द्रिय, अंतःकरण सर्व यद्यपि मूर्च्छित छे, कांई जवामां समर्थ नथी, अने यमदूत तेना समीप आवे नहि, जे तेनां लिंगशरीरने लई जाय; परंतु अग्निनी अभिमानिनी देवता, तेने मरणसमये शरीरथी कहाडीने पोताना लोक प्रति लई जाय छे. ते अग्निलोकथी दिननी अभिमानिनी देवता लई जाय छे. त्यांथी शुक्लपक्षनी अभिमानिनी देवता पोताना लोकमां लई जाय छे. त्यांथी आगळ उत्तरायण जे षट्मास छे, तेओनी अभिमानिनी देवता लई जाय छे. त्यांथी आगळ संवत्सरनी अभिमानिनी देवता लई जाय छे. त्यांथी आगळ देवलोकनी अभिमानिनी देवता लई जाय छे. त्यांथी आगळ वायुनी अभिमानिनी देवता लई जाय छे. त्यांथी आगळ चंद्रदेवता लई जाय छे. त्यांथी आगळ सूर्यदेवता लई जाय छे. त्यांथी आगळ विजळी(विद्युत)नी अभिमानिनी देवता पोताना लोक प्रति लई जाय छे. त्यां विजळीलोकमां ते उपासकना सामा,—हिरण्यगर्भनी आज्ञाए दिव्यपुरुष हिरण्यगर्भलोकवासी हिरण्यगर्भसमानरूप तेने लेवाने आवे छे, ते पुरुष विजळीना लोकथी वरुणलोकमां लई जाय छे. विजळीनी अभि-

---

१७६. ए मार्गनो क्रम, यजुर्वेदना बृहदारण्यकउपनिषद्ना अ० ६-२-१४-१५ लख्यो छे.

मानिनी देवता साथे आवे छे. वरुण लोकथी इन्द्रलोक प्रति लई जाय छे. अने वरुणदेवता पण इन्द्रलोकसुधी हिरण्यगर्भलोकवासी पुरुष अने उपासकनी साथे रहे छे. त्यांथी आगळ इन्द्रदेवता प्रजापतिना लोकसुधी बंनेनी साथे रहे छे. त्यांथी आगळ (दक्ष)प्रजापति तेओ बंनेनी साथे ब्रह्मलोक प्रति लई जवाविषे समर्थ नथी, एथी ब्रह्मलोकमां ते दिव्यपुरुषनी साथे ते उपासक प्राप्त थाय छे. ब्रह्मलोकना अधिपति हिरण्यगर्भ छे. सूक्ष्मसमष्टिनुं अभिमानी चेतन **हिरण्यगर्भ** कहेवाय छे. तेने ज **कार्यब्रह्म** कहे छे. कार्यब्रह्मना निवासस्थानने ब्रह्मलोक कहे छे.

२९८ (सायुज्यमोक्ष.)[१७७]

यद्यपि पूर्व रीतिए ॐकारनी उपासना शुद्धब्रह्मरूपे करीने कही छे; (अने) शुद्धब्रह्मना उपासकने शुद्धब्रह्मनी प्राप्ति जोईये; तथापि शुद्धब्रह्मनी प्राप्ति ज्ञानथी ज थाय छे. अने कामनारूप प्रतिबंधेकरी, जेने ज्ञान थयुं नहि, तेने कार्यब्रह्मनी सायुज्य(मुक्ति)रूप मोक्ष थाय छे. ब्रह्मलोकमां प्राप्त जे उपासक छे, तेने हिरण्यगर्भना समान विभूति प्राप्त थाय छे. (ते) सत्यसंकल्प थाय छे. जेवा शरीरनी इच्छा करे तेवुं ज तेनुं शरीर थाय छे, जे भोगोनी इच्छा करे ते सर्व

---

१७७. सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥

भागवत ३ स्कंध. २९ अध्याय.

ईश्वरना लोकमां प्रजारूपे रहेवुं ए 'सालोक्य'; ईश्वरना युवराजरूपे रहेवुं ए 'सार्ष्टि' (वा सायुज्य), ईश्वरना सेवकरूपे तेनी समीपमां रहेवुं ए 'सामीप्य' ईश्वरना अनुजरूपे तेना समानरूपनी प्राप्ति ए 'सारूप्य', अने एकत्व पण, मोक्ष छे. ते आपाय तोपण मारी सेवा विना लोक लई शकता नथी, एम भगवान् वदे छे.

भोग संकल्पथी ज प्राप्त थाय छे. जो एक समय हजार शरीरोए जूदा जूदा भोगनी इच्छा करे तो ते ज समय हजार शरीर अने तेओना भोगोनी जूदी जूदी सामग्री उपजे छे. अने वह्‌ शुं कहिये ! जे कंई संकल्प करे ते सिद्ध थाय छे. परंतु जगतनी उत्पत्ति, पालन, संहार, ए विना अन्य सर्व विभूति ईश्वरना समान थाय छे. एने ज **सायुज्यमोक्ष** कहे छे. एवा हिरण्यगर्भना समान थये सते बहुकाल संकल्पसिद्ध दिव्यपदार्थोने भोगवीने, प्रलयकालमां ज्यारे हिरण्यगर्भना लोकनो नाश थाय त्यारे, ज्ञान थइने उपासकने विदेहमोक्षनी प्राप्ति थाय छे.

२९९. (अहंग्रहध्याने ज सत्त्वगुणी ब्रह्मलोकनी प्राप्ति थाय छे.)

जेम ॐकाररूप ब्रह्मनी उपासना करवावाळा ब्रह्मलोकनी प्राप्तिद्वारा मोक्षने प्राप्त थाय छे, तेम उपनिषदोमां ब्रह्मनी अन्या पण उपासना कही छे, तेओथी ए ज फल थाय छे. परंतु **अहंग्रहउपासना** विना अन्यउपासनाथी ब्रह्मलोकनी प्राप्ति थाय नहि. ए वार्त्ता सूत्रकारे अने **भाष्यकारे (शारीरकना)** चतुर्थ अध्यायमां प्रतिपादन करी छे. जेम **नर्मदेश्वरनुं शिवरूपे**, अने **शालग्रामनुं विष्णुरूपे** ध्यान कह्युं छे, ते प्रतीकध्यान छे, अहंग्रह नहि; अने मननुं ब्रह्मरूपे, आदित्यनुं ब्रह्मरूपे, ध्यान कह्युं छे, ते पण प्रतीकध्यान छे, अहंग्रह नहि. तेओनाथी ब्रह्मलोकनी प्राप्ति थाय नहि. सगुण अथवा निर्गुण ब्रह्मने पोतासाथे अभेद करीने चिन्तन करे, तेने अहंग्रह ध्यान कहे छे. तेथी ज ब्रह्मलोकनी प्राप्ति थाय छे.

३००. पूर्व कह्यो जे मार्ग छे तेने 'उत्तरायणमार्ग' कहे छे, अने 'देवमार्ग' पण कहे छे. ते देवमार्गे जे उपासक ब्रह्म-

लोक प्रति जाय छे, तेओने फरी संसार थतो नथी, किन्तु ज्ञान थईने विदेहमुक्तिने प्राप्त थाय छे. त्यां ज्ञाननां साधन जे गुरुउपदेशादिक छे, तेओनी पण अपेक्षा नथी, किन्तु ब्रह्म लोकमां गुरुउपदेशादि साधन विना ज ज्ञान थाय छे. केमके ब्रह्मलोकमां तमोगुण रजोगुणनो तो लेश पण नथी. केवल सत्त्वगुणप्रधान ए लोक छे, तमोगुण नहि, एथी जडता आलस्यादिक नहि, रजोगुण नहि, एथी कामक्रोधादिरूप रजोगुणनु कार्य, विक्षेप नहि, केवल सत्त्वगुण छे, एथी सत्त्वगुणनु कार्य, ज्ञानरूप प्रकाश ते लोकमां प्रधान छे.

३०१. (आत्मानु परमार्थरूप.)

ॐकारनी ब्रह्मरूपे पूर्व जे उपासना करी छे, त्यारे ॐकारनी मात्रानो अर्थ आ रीतिए चिन्तन कर्यो छे.–'स्थूल उपाधिसहित विराट् विश्व चेतन, अकारनु वाच्य छे. सूक्ष्मउपाधिसहित हिरण्यगर्भ तैजस चेतन उकारनु वाच्य छे. कारणउपाधिसहित ईश्वर प्राज्ञ चेतन मकारनु वाच्य छे.' एवा अर्थ जे पूर्व चिन्तन कर्यो छे, तेनी ब्रह्मलोकमां स्मृति थाय छे, अने सत्त्वगुणप्रभावथी आवु विवेचन थाय छे –स्थूल, उपाधिएकरीने चेतनमां विराट्पणु अने विश्वपणु प्रतीत थाय छे, स्थूलसमष्टि(उपाधि)नी दृष्टिए विराट्पणु छे, अने स्थूल व्यष्टि(उपाधि)नी दृष्टिए विश्वपणु छे. अने समष्टि व्यष्टि-स्थूल-(उपाधि)नी दृष्टि विना, विराट्भाव अने विश्वभाव प्रतीत थाय नहि, किन्तु चेतनमात्र ज प्रतीत थाय छे. तेम सूक्ष्मउपाधि सहित हिरण्यगर्भ तेजस चेतन उकारनु वाच्य छे त्यां समष्टि सूक्ष्मउपाधिनी दृष्टिए चेतनमा हिरण्यगर्भता, अने व्यष्टिसूक्ष्म उपाधिनी दृष्टिए तैजसता प्रतीत थाय छे. सूक्ष्मउपाधिनी दृष्टि विना हिरण्यगर्भता अने तेजसता प्रतीत थाय नहि.

तेम मकारनुं वाच्य ईश्वर-प्राज्ञ(चेतन) छे. त्यां समष्टि-अज्ञान(=कारण)उपाधिनी दृष्टिए चेतनमां ईश्वरता, अने व्यष्टि-अज्ञानउपाधिनी दृष्टिए चेतनमां प्राज्ञता प्रतीत थाय छे. अज्ञानउपाधिनी दृष्टि विना, ईश्वरता अने प्राज्ञता प्रतीत थाय नहि. **जे वस्तु, जेनाविषे, अन्यनी दृष्टिथी, प्रतीत थाय, ते तेनाविषे परमार्थरूरी होय नहि.** (अर्थात् जे 'वस्तु' नाम विराट्, हिरण्यगर्भ अने ईश्वर, तथा विश्व, तैजस अने प्राज्ञ, 'जेनाविषे' नाम चेतननाविषे, 'अन्यनी दृष्टिथी' नाम स्थूल सूक्ष्म अने अज्ञान अथवा कारणनी दृष्टिथी प्रतीत थाय छे, ते परमार्थरूरी चेतनविषे नथी.) जे जेनुं रूप, अन्यनी दृष्टि विना, प्रतीत थाय, ते तेनुं **परमार्थरूप होय** छे. जेम एक पुरुषमां पितानी दृष्टिथी पुत्रता अने पितामहनी दृष्टिथी पौत्रतादिरूप भान थाय छे, ते परमार्थरूरी नथी. पुरुषनो पिंड ज परमार्थ छे, तेम स्थूलसूक्ष्म-कारण-उपाधिनी दृष्टिथी जे विराट् विश्वादिकरूप भान थाय छे, ते मिथ्या छे; चेतनमात्र ज सत्य छे. ते चेतन सर्व-भेदरहित छे. केमके विराट् अने विश्वनो जे भेद छे, ते बंनेना उपाधि तो यद्यपि 'स्थूल' छे, तथापि 'समष्टिउपाधि' विराट्नो अने 'व्यष्टिउपाधि'विश्वनो-ते 'समष्टि-व्यष्टि'उपाधिथी तेओनो भेद छे; पण स्वरूपे भेद नथी. तेम तैजसनो हिरण्यगर्भथी भेद पण 'समष्टि-व्यष्टि'उपाधिए छे; स्वरूपथी नथी. तेम ईश्वरथी प्राज्ञनो भेद पण 'समष्टि-व्यष्टि'उपाधिना भेदथी छे; स्वरूपथी नथी. एम प्राज्ञनो ईश्वरसाथे अभेद, अने तैजसनो हिरण्यगर्भसाथे अभेद, तथा विश्वनो विराट्साथे अभेद छे. ए प्रकारे स्थूलउपाधिवाळानो सूक्ष्मउपाधिवाळाथी वा कारणउपाधिवाळाथी भेद

नथी. केमके स्थूलसूक्ष्मकारणउपाधिनी दृष्टि त्यागवेथी, चेतनस्वरूपमां कशा प्रकारनो भेद प्रतीत थाय नहि. अने अनात्मासाथे पण चेतननो भेद नथी. केमके अनात्मा देहादिक अविद्याकालमां प्रतीत थाय छे, परमार्थेकरी नथी; तेओनो पण चेतनथी भेद बने नहि. एम सर्व भेदरहित असंग, निर्विकार, नित्यमुक्त, ब्रह्मरूप आत्मा, ॐकारनो लक्ष्य, स्वयंप्रकाशरूप, ते उपासकने भान थाय छे. तेथी हिरण्यगर्भलोकवासीने संसार थाय नहि. (अने ज्ञानद्वारा अन्ते विदेहमुक्तिने प्राप्त थाय छे.)

३०२. (ॐकार अने महावाक्यना अर्थनी एकता.)—

यद्यपि महावाक्यना विवेक विना ज्ञान थाय नहि; तथापि ॐकारनो विवेक ज महावाक्यनो विवेक छे. स्थूलउपाधिसहित चेतन, अकारनुं वाच्य (छे): स्थूलउपाधिने त्यागीने चेतनमात्र अकारनुं लक्ष्य (छे). तेम सूक्ष्मउपाधिसहित चेतन उकारनुं वाच्य (छे): सूक्ष्मउपाधिने त्यागीने चेतनमात्र (उकारनुं) लक्ष्य (छे). कारणउपाधिसहित चेतन मकारनुं वाच्य (छे): कारणउपाधिने त्यागीने चेतनमात्र (मकारनुं) लक्ष्य (छे). ए रीतिए उपाधिसहित विश्वादि, अकारादि मात्राना वाच्य; अने उपाधिसहित चेतन ॐकारवर्णनुं वाच्य छे, अने तेम नामरूप सकल उपाधिसहित चेतन ॐकारवर्णनुं वाच्य छे, अने नामरूप सकल उपाधिरहित चेतन ॐकारवर्णनुं लक्ष्य छे. एम ॐकारनो अने महावाक्योनो अर्थ एक ज छे. एथी ॐकारना विवेकथी अद्वैतज्ञान थाय छे.

ए रीतिए आचार्यना मुखथी श्रवण करीने **अदृष्टि** नामे जे मध्यम शिष्य ते उपासनमां प्रवृत्त थईने ज्ञानद्वारा परमपुरुषार्थ मोक्षने प्राप्त थयो. १६८.

२०३. निर्गुणउपासनामां जेनो अधिकार नथी तेने कर्तव्य कहे छे.

सवैया.

जो य निर्गुण ध्यान थाय नहि, (तो) सगुणईश कर मननुं धाम;
सगुणउपासन थाय ज नहि तो, करी निष्काम कर्म, भज राम;
जो निष्काम कर्म पण थाय न, तो कराय शुभ कर्म सकाम;
जो नव थाय सकाम कर्म पण, तो शठ ! वारंवार मरी जाम. १६९.

दुहो.

ॐकारनो अर्थ लही, थयो कृतार्थ अदृष्टि;
आ तरंग भणनारने, दादु करो सुदृष्टि. १७०.

इति श्रीविचारसागरे गुरुवेदादिव्यावहारिकप्रतिपादन-
मध्यमाधिकारिसाधनवर्णनं नाम पंचमस्तरंगः
समाप्तः ५

---

१७८. मोक्षनो उपाय तो महावाक्यजन्यविचार किंवा सर्वाधिष्ठानरूप निरुपाधिक सच्चिदानंद ब्रह्मनो साक्षात्कार छे. कोई प्रतिबंधथी तेना विचारमां प्रवृत्ति बनी शके नहि तो, पछी निर्गुणउपासना करवी. ते निर्गुणउपासना पण जो बने नहि तो, पछी सगुण ईश्वरमां मननो निवास करवो. ते सगुणउपासना पण जो न बने तो निष्काम कर्म करी, राम भजवा. ते निष्काम कर्म पण थाय नहि तो, सकाम शुभकर्म करवां अने अनुक्रमे उपरनां लेवां जो ते सकामकर्म पण थाय नहि तो पछी, कहे छे के—हे शठ ! वारंवार जन्म—मरणनी महादुःखदायक घटमाळमां फर्या कर.

श्रीगणेशाय नमः

अथ श्रीविचारसागरस्य

षष्ठतरंगप्रारंभः



अथ गुरुवेदादिसाधनमिथ्यावर्णनं.

३०४. उपोद्घात. दुहो.

"चेतनभिन्न अनात्म सउ, मिथ्या स्वप्नसमान."
एम सुणी बोलयो त्रीजो, तर्कदृष्टि मतिमान्. १.

टीकाः-चतुर्थ तरंगमां उत्तमअधिकारीने उपदेशनो प्रकार कह्यो, पंचम तरंगमां मध्यम(अधिकारी)ने (उपदेशनो प्रकार) कह्यो। आ (षष्ठ) तरंगमां कनिष्ठअधिकारीने उपदेशनो प्रकार कहे छे. जेने शंका बहु उपजे, तेनी यद्यपि बुद्धि तीव्र होय छे तथापि ते कनिष्ठ अधिकारी छे. आ तरंग युक्तिप्रधान छे; पथी सांभळेला अर्थमां जेने कुतर्क उपजे तेने आ तरंगनो उपयोग छे. कुतर्कदूषितबुद्धि कनिष्ठ अधिकारी होय छे, तेने उपदेशनो प्रकार आ तरंगमां छे. पूर्व तरंगमां प्रणवउपासना अने जगत्नी उत्पत्तिनिरूपणथी पूर्वे आम कह्युंः "चेतनथी भिन्न जे अज्ञान अने तेनुं कार्य अनात्मा कहेवाय छे, ते अनात्मपदार्थ सर्व स्वप्ननी पेठे मिथ्या छे." ए वार्त्ताने सांभळीने बंने भ्राता(तत्त्वदृष्टि अने अदृष्टि)ने प्रश्नथी उपराम देखीने,

तर्कदृष्टि प्रश्न करे छे.

३०५. दुहो.

प्रथम ज्ञात ज वस्तुनी, स्मृति स्वप्नमां होय;
जाग्रतमां अज्ञात अति, तेने जुवे न कोय. २.

टीकाः-पूर्वे जे अत्यंत अज्ञात पदार्थ छे तेनुं स्वप्नमां ज्ञान थाय नहि; किन्तु जाग्रत्‌मां जेनुं अनुभवज्ञान होय तेनी स्वप्नमां स्मृति थाय छे. पथी स्मृतिज्ञानना विषय जाग्रतना पदार्थो सत्य होवाथी तेओनुं स्वप्नमां स्मृतिरूप ज्ञान पण सत्य छे. पथी स्वप्नना दृष्टान्तथी जाग्रत्‌ना पदार्थोने मिथ्या कहेवा संभवे नहि.

अन्यप्रकारथी स्वप्नज्ञानना विषयपदार्थोनी सत्यता(ने) प्रतिपादन करे छे.

३०६. दुहो.

अथवा स्थूल त्यजी, लिंग ते, बहिर् जोवा जाय,
गिरि, समुद्र, वन, वाजि, गज, ते मिथ्या कयम थाय. ३.

टीकाः-'अथवा' नाम अन्य प्रकारथी स्वप्नतुं ज्ञान अने तेना विषयपदार्थ सत्य छे, मिथ्या नथी. केमके स्वप्नावस्थामां स्थूलशरीरने त्यागीने, लिंगशरीर बहिर् निकळीने, साचा गिरिसागरादिकोने देखे छे, पथी स्वप्न मिथ्या नहि.

३०७. (तर्कदृष्टिना उपरना प्रश्ननां उत्तर,
अंक ३०७ थी ३२८ पर्यन्त.)

(स्वप्नतुं ज्ञान स्मृतिज्ञान नथी.)

दुहो.

आ हस्ती आगळ उभो, एवुं थाये ज्ञान;
स्वप्नमां ज, स्मृतिरूप ते केम थाय? सुजान. ४.

टीकाः-पूर्वकालसंबंधि पदार्थनुं ज्ञान 'स्मृति' (ज्ञान)

होय छे. जेम पूर्वे दीठेला हस्तीनी 'ते हस्ती' एवी स्मृति थाय छे. अने 'आ हस्ती संमुख स्थित छे' एवुं ज्ञान (ते) स्मृति नहि, किन्तु प्र त्य क्ष कहेवाय छे, अने स्वप्नमां तो 'आ हस्ती आगळ स्थित छे, आ पर्वत छे, आ नदी छे;' एवुं ज्ञान थाय छे. एथी जाग्रत्मां दीठेला पदार्थोनी स्वप्नमां स्मृति नथी, किन्तु हस्ती आदिकनुं प्रत्यक्षज्ञान थाय छे.

(प्रत्यक्षज्ञानना बे प्रकार–अभिज्ञारूप प्रत्यक्ष अने प्रत्यभिज्ञारूप प्रत्यक्ष.)

अने जो आम कहेः–'जाग्रत्मां जाणेला पदार्थोनुं ज स्वप्नमां ज्ञान थाय छे. अज्ञात पदार्थनुं ज्ञान थाय नहि. एथी जाग्रत् पदार्थोना ज्ञानना संस्कारोथी स्वप्नना ज्ञाननी उत्पत्ति थाय छे. संस्कारजन्यज्ञान स्मृति कहेवाय छे. एथी स्वप्ननुं ज्ञान स्मृतिरूप छे.' ते शंका बने नहि. केमके, प्रत्यक्षज्ञान बे प्रकारनुं होय छे. एक **अभिज्ञारूप** प्रत्यक्ष होय छे अने बीजुं **प्रत्यभिज्ञारूप प्रत्यक्ष** होय छे. केवल इंद्रियसंबंधथी जे ज्ञान थाय ते अभिज्ञाप्रत्यक्ष कहेवाय छे. जेम नेत्रना संबंधथी हस्तीनुं–'आ हस्ती छे,' एवुं ज्ञान (ते) अभिज्ञाप्रत्यक्ष (ज्ञान) छे. अने पूर्वज्ञानना संस्कारथी अने इन्द्रियसंबंधथी जे ज्ञान थाय ते 'प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष (ज्ञान), कहेवाय छे. जेम पूर्वे दीठेला हस्तीनुं–'ते हस्ती आ छे,' एवुं ज्ञान थाय, ते 'प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष' (ज्ञान) कहेवाय छे. त्यां पूर्व हस्तीना ज्ञानना संस्कार, अने हस्तीसाथे नेत्रनो संबंध, प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षनो हेतु छे. एथी 'संस्कारजन्य ज्ञान स्मृतिरूप ज होय छे' ए नियम नथी; किन्तु प्रत्यभिज्ञा-प्रत्यक्ष पण संस्कारजन्य होय छे. परंतु इंद्रियसंबंध विना

१७९. 'उद्भूत-संस्कार मात्र-जन्य ज्ञान' ए स्मृतिनुं पूर्ण लक्षण गणाय छे.

केवल संस्कारजन्य ज्ञान होय ते स्मृतिज्ञान कहेवाय छे. स्वप्नमां हस्तीआदिकनुं ज्ञान केवल संस्कारजन्य नथी, किन्तु निद्रारूप दोषजन्य छे. अने हस्तीआदिकनीपेठे स्वप्नमां कल्पित इन्द्रिय पण छे, एथी इन्द्रियजन्य छे. यद्यपि स्वप्नना पदार्थ साक्षिभास्य छे, इन्द्रियजन्य ज्ञानना विषय नथी, तथापि अविवेकीनी दृष्टिथी स्वप्ननुं ज्ञान इन्द्रियजन्य कहेवाय छे. ए रीतिए स्वप्ननुं ज्ञान जाग्रतना पदार्थनी स्मृति नथी.

अने निद्राथी जागीने पुरुष आम कहे छे.-'हुं स्वप्नमां 'हस्तीआदिकोने देखतो हतो.' जो हस्तीआदिकोनी स्वप्नमां स्मृति होय, तो जागीने आवुं कहेवुं जोइये-'हुं स्वप्नमां हस्तीआदि-'कोनुं स्मरण करतो हतो,' (पण) एवुं कोई नथी कहेतुं. एथी जाग्रतना पदार्थोनी स्वप्नमां स्मृति नथी.

अने 'जाग्रतमां जे दीठा सांभळ्या पदार्थ छे तेमनुं ज स्वप्नमां 'ज्ञान थाय,' ए नियम नथी. किन्तु जाग्रतमां अज्ञात पदार्थनुं पण स्वप्नमां ज्ञान थाय छे. कदाचित् स्वप्नमा एवा विलक्षण पदार्थ प्रतीत थाय छे जे आखा जन्मविषे कदि दीठा सांभळ्या होय नहि. एथी ते(स्वप्न)नुं ज्ञान स्मृति (ज्ञान) नथी.

यद्यपि-'आ जन्मना पदार्थोना ज्ञानना संस्कार ज स्मृतिना 'हेतु छे,' ए नियम नथी, किन्तु अन्यजन्मना ज्ञानना संस्कारथी पण स्मृति थाय छे. केमके अनुकूल ज्ञानथी प्रवृत्ति थाय छे. अनुकूल ज्ञान विना प्रवृत्ति थाय नहि. एथी बालकनी स्तनपानमां जे प्रथमप्रवृत्ति थाय छे, तेनो हेतु, बालकने पण 'स्तनपान मने अनुकूल छे,' एवुं ज्ञान होय छे. त्यां अन्यजन्मविषे स्तनपानमां जे अनुकूलता अनुभव करी छे, तेना संस्कारोथी बालकने प्रथम अनुकूलतानी स्मृति थाय छे. एथी जन्मान्तरना ज्ञानसंस्कारथी पण स्मृति थाय छे. तेम

आ जन्मविषे अज्ञातपदार्थोनी पण अन्यजन्मना ज्ञानना संस्कारोथी स्वप्नविषे स्मृति संभवे छे. तथापि कोई पदार्थ स्वप्नमां एवा प्रतीत थाय छे, जेओनुं जाग्रत्मां कोई जन्मविषे ज्ञान संभवे नहि. जेम पोताना मस्तकछेदनने पोते नेत्रोए करी स्वप्नमां देखे छे. त्यां जाग्रत्मां पोतानुं मस्तकछेदन नेत्रोए करी देखे नहि. एथी जाग्रत् पदार्थोना ज्ञानना संस्कारोथी स्वप्नमां स्मृति नथी. एवा स्वप्नने स्मृतिरूप (कहेवुं तेना) खंडनमां अनेक युक्तिओ, ग्रंथकारोए कही छे. परंतु स्वप्नने स्मृति मानवामां पूर्वउक्त दूषण अतिप्रबल छे जे,–स्मृतिज्ञाननो विषय संमुख प्रतीत थाय नहि; अने स्वप्नना हस्तीआदिक स्वप्नकालमां संमुख प्रतीत थाय छे. एथी हस्तीआदिकोनी स्वप्नमां स्मृति नथी.

३०८. '(स्वप्नमां) लिंगशरीर बहिर् नीकळीने साचा गिरि-'समुद्रादिकोने देखे छे,' एवुं वादीए कह्युं हतुं एनुं उत्तरः–

(स्वप्नमां लिंगशरीर बहिर् जतुं नथी.)

दुहो.

बहिर लिंग जो नीकळे, देह अमंगल थाय;
प्राणसहित सुंदर लसे, एथी लिंग जणाय. ५.

टीकाः-जो स्थूलशरीरथी नीकळीने लिंगशरीर, बहिर् साचा गिरिसमुद्रादिकोने देखे तो, लिंगशरीरना नीकळवाथी जेम मरणअवस्थामां शरीर भयंकररूप प्रतीत थाय छे, तेम स्वप्नअवस्थाविषे पण लिंगशरीरना अभावथी स्थूलशरीर अमंलग' नाम भयंकर थयुं जोइये; अने प्राणरहित मृतकसमान थयुं जोइये. अने स्वप्नअवस्थमां एवुं थाय नहि; किन्तु स्वप्नअवस्थामां स्थूलशरीर प्राणसहित होय छे. अने जाग्रत्नी पेठे 'सुंदर' नाम मंगलरूप होय छे. एथी स्थूलशरीरना बहिर् लिंगशरीर स्वप्नावस्थामां नीकळतुं नथी.

अने जो आम कहेः–

'स्वप्नावस्थामां प्राण तो जाय नहि, किन्तु अंतःकरण अने '(ज्ञान)इन्द्रिय बहिर् पर्वतादिकोमां जइने तेओने देखे छे. 'प्राण बहिर् जाय नहि पथी स्थूलशरीर मरणअवस्थाना स'मान भयंकर थाय नहि. अने प्राणने बहिर् जवानुं कंई प्र'योजन पण नहि. केमके प्राणमां ज्ञानशक्ति नथी, किन्तु 'क्रियाशक्ति छे; पथी बहिरना पदार्थोना ज्ञाननुं जेमां सा'मर्थ्य छे ते ज जाय छे. ज्ञानशक्ति, अंतःकरण अने ज्ञान'इन्द्रियमां छे. प्राणनी पेठे कर्मइन्द्रियमां पण ज्ञानशक्ति नथी, 'क्रियाशक्ति छे पथी प्राण अने कर्मइन्द्रिय शरीरमां रहे छे. 'पथी मरणनिमित्तथी (थता) दाहआदिकोथी रक्षा थाय छे. 'अने बहिर् अंतःकरण (अने) ज्ञानइन्द्रिय जाय छे. ते 'साथा पर्वतादिकोने देखीने, प्राण अने कर्मइन्द्रियनी समीप '(पाछां) आवे छे.'

ते पण बने नहि. केमके स्थूलसूक्ष्मसमाजमां सर्वनो स्वामी प्राण छे. प्राण विना शरीरने देखीने क्षणमात्र पण रहेवा नथी देता. बहिर् लई जाय छे, दाह करे छे, (अने) स्पर्शथी स्नान करे छे. पथी स्थूलशरीरनो सार प्राण छे, तेम सूक्ष्मशरीरमां पण प्रधान प्राण छे.

(इन्द्रियोमां प्राण प्रधान छे.)

प्राण इन्द्रियादिके, परस्पर श्रेष्ठताविवाद करीने, प्रजापतिना समीप जईने कह्युं:-'हे भगवन्! अमाराविषे कोण 'श्रेष्ठ छे?' त्यारे प्रजापतिए कह्युं-'तमे सर्व स्थूलशरीरमां 'प्रवेश करीने एक एक नीकळतां जाओ. जेना नीकळवाथी

---

१८०. बृहदारण्यक उपनिषद्ना षष्ठाध्यायनुं प्रथम ब्राह्मण, एमां आ प्रसंग छे. प्राण अने इन्द्रिय शब्दे तेओनी अभिमानिनी देवतानुं ग्रहण करवानु छे.

'शरीर अमंगलरूप थईने पडी जाय ते तमारामां श्रेष्ठ छे.' प्रजापतिना वचनथी नेत्रादिक इन्द्रियोना एकएकना अभावथी अंधादिरूप शरीरनी स्थिति दीठी, अने प्राणे नीकळवानो उद्योग करतां ज शरीर पडवा लाग्युं. त्यारे सर्वेए आम निश्चय कर्यो.–'अमारो सर्वनो स्वामी प्राण छे.' ए कारणथी त्यांसुधी शरीरमां प्राण रहे छे त्यांसुधी सर्वे रहे छे. शरीरमांथी प्राणने नीकळी जतां ज सर्व नीकळी जाय छे. एथी सूक्ष्मसमाजनो, राजानी पेठे, प्राण ज प्रधान छे. तेना नीकळ्या विना अंतःकरण ज्ञानइन्द्रिय बहिर् नीकळे नहि.

किंवा अंतःकरण अने ज्ञानइन्द्रिय, भूतोना सत्त्वगुणनां कार्य छे. तेओमां ज्ञानशक्ति छे, क्रियाशक्ति नथी. प्राणमां क्रियाशक्ति छे तेना बळथी मरणसमये लिंगशरीर आ स्थूलने त्यागीने लोकान्तर प्रति जाय छे. अने प्राणना ज बळथी इन्द्रियद्वारा अंतःकरणनी वृत्ति बहिर् घटादिकोना समीप जाय छे. अने प्राणना सहाय विना अंतःकरणादिकनुं बहिर्गमन संभवे नहि ए कारणथी योगशास्त्रमां कह्युं छेः– 'प्राणनिरोध विना मननो निरोध थाय नहि. प्राणना संचार-'थी मननो संचार थाय छे. प्राणना निरोधथी मननो नि-'रोध थाय छे.' एथी मनना निरोधरूप जे राजयोग तेनी जेने इच्छा होय, ते प्राणनिरोधरूप 'हठयोगनुं' अनुष्ठान करे. एथी पण प्राणने अधीन अंतःकरणनुं गमन छे. तेना नीकळ्याविना अंतःकरण (अने) ज्ञानइन्द्रिय बहिर् नीकळे नहि. अने स्वप्नअवस्थामां स्थूलशरीर प्राण समेत प्रतीत थाय छे. एथी 'बहिर् जईने साचा पदार्थने स्वप्नमां देखे छे,' ए संभवे नहि.

किंवा कोई पुरुष पोताना संबंधीने स्वप्नमां मळीने जो

व्यवहार करे तो जाग्याने ते संबंधी मळे त्यारे आम नथी कहेता जेः-'रात्रिये आपणे मळ्या हता, अने अमुक व्यवहार 'कर्यो हतो' अने पूर्वपक्षीनी रीतिए तो, बहिर नीकळीने ते संबंधीने मळीने, व्यवहार साचो कर्यो छे, ते मळवानुं अने व्यवहारनुं ज्ञान संबंधीने होवुं जोइये; अने मळे त्यारे संबंधीए कहुं जोइये. अने सिद्धान्तमां तो संबंधी अने तेनो मीलाप सर्व अंतर् ज कल्पित छे.

किंवा जो बहिर् जइने साचा पदार्थोने देखे, तो रात्रिमां सूतेलो पुरुष, हरिद्वारमां मध्याह्नना सूर्यथी तपेलो महल गंगाथी पूर्वे अने नीलपर्वत गंगाथी पश्चिमे देखे छे. त्यां रात्रिमां मध्याह्ननो सूर्य नथी, गंगाथी पूर्व दिशामां हरिद्वार-पुरी नथी, अने गंगाथी पश्चिम नीलपर्वत नथी. एथी पण साचा पदार्थोनुं देखवुं स्वप्नमां असंभव छेः अने जाग्रतनी स्मृति (१). अने बहिर नीकळीने ईश्वररचित पर्वतादिकोनुं स्वप्नमां ज्ञान थाय छे (२), ए बंने पक्षनुं निराकारण कर्युं.

३०९ सिद्धान्त कहे छे. दो.

(स्वप्नमां सर्व त्रिपुटी उत्पन्न थाय छे.)
एथी अंतर् उपजे, त्रिपुटी सकल समाज;
वेद कहे ए अर्थने सहु प्रमाण शिरताज. ६.

टीकाः—जाग्रतना पदार्थोनी स्मृति, अने लिंग(शरीर)नुं बहिर् नीकळवुं (ए पूर्वोक्त बे पक्ष) तो संभवे नहि. तथापि जाग्रतनी पेठे ज्ञाता, ज्ञान (अने) ज्ञेय (ए) त्रिपुटी स्वप्नमां प्रतीत थाय छे; एथी कंठनी नाडीना अंतर् ज सर्व कंई उत्पन्न थाय छे. 'सर्व प्रमाणनो शिरताज' नाम प्रधान जे वेद छे तेणे एम कहुं छे. उपनिषद्‌मां आ प्रसंग छेः-'जाग्रतना 'पदार्थ स्वप्नमां प्रतीत नथी थता. किन्तु रथ अने घोडा तथा

'मार्ग, तेम ज रथमां बेसवावाळा, स्वप्नमां नवीन उत्पन्न थाय 'छे.' एथी पर्वत, समुद्र, नदी, वन, ग्राम, पुरी, सूर्य, चंद्र, जे कंई स्वप्नमां देखाय छे, ते नवीन उपजे छे. जो स्वप्नमां पर्वतादि न होय तो तेओनुं प्रत्यक्षज्ञान स्वप्नमां थाय छे, ते नहि थवुं जोइये. केमके विषयसाथे इन्द्रियनो संबंध; वा अंतःकरणनी वृत्तिनो संबंध, प्रत्यक्ष ज्ञाननो हेतु छे. एथी पर्वतादिक विषय, अने तेओना ज्ञाननां साधन इन्द्रिय तथा अंतःकरण, सर्व अंतर उत्पन्न थाय छे.

यद्यपि स्वप्नना पदार्थ शुक्तिरजतादिकोनी पेठे, साक्षिभास्य छे; अंतःकरण इन्द्रियनो स्वप्नना ज्ञानमां उपयोग नथी एथी, ज्ञेय जे पर्वतादिक छे, तेओनी ज उत्पत्ति स्वप्नमां मानवी योग्य छे; ज्ञाता (अंत.करण) ज्ञान अने इन्द्रियोनी उत्पत्ति मानवी योग्य नथी. तथापि जेम स्वप्नमां पर्वतादिक प्रतीत थाय छे, तेम इन्द्रिय अंतःकरण प्राणसहित स्थूलशरीर पण स्वप्नमां प्रतीत थाय छे, एथी तेओनी पण उत्पत्ति मानवी जोइये.

किंवा स्वप्नना पदार्थोविषे नेत्रादिकोनी विषयता भान थाय छे. ते (जाग्रत्‌नां) 'व्यावहारिक' नेत्रादिकोनी विषयता तो स्वप्नना 'प्रातिभासिक' पदार्थोविषे बने नहि. केमके,– 'स म स त्ता वा ळा प दा र्थ ज पो त पो ता मां सा ध क बा ध क 'हो य छे.' ए पंचम तरंगमां प्रतिपादन कर्युं छे. एथी व्यावहारिक नेत्रादिक शरीरमां छे पण तेओथी स्वप्नना (प्रातिभासिक) पदार्थनी विषमसत्ता होवाथी, तेओना ज्ञाननी विषयता स्वप्नना पर्वतादिकोने बने नहि. किंवा व्यावहारिक जे इन्द्रिय छे ते पोतपोताना गोलकने त्यागीने कार्य करवामां समर्थ थाय नहि. अने स्वप्न अवस्थामां (सूतेलाना)

हस्त, पाद, वाक्‌नां गोलक तो निश्चल अन्यने देखाय छे, अने हस्तमां द्रव्यग्रहण करीने (स्वप्नमां ते सूतेलो) पोकारतो धावन करे छे. एथी स्वप्नमां इन्द्रियोनी उत्पत्ति अवश्य मानवी जोइये. तेम सुखदुःख अने तेओनुं ज्ञान, तथा सुख-दुःखज्ञानना आश्रय-प्रमाता, स्वप्नमां प्रतीत थाय छे. विना-थयेला पदार्थनी प्रतीति थाय नहि. एथी सर्व त्रिपुटी-समाज स्वप्नमां उत्पन्न थाय छे.

अनिर्वचनीय ख्यातिनी आ रीति छेः-'जेटलां भ्रम ज्ञान 'छे तेओना विषय सर्व अनिर्वचनीय उत्पन्न थाय 'छे. विषय विना कोई ज्ञान थाय नहि.' ए सिद्धान्त छे. अन्य शास्त्रना मतमां तो, 'अन्य पदार्थनुं अन्य रूपथी भान 'थाय ते **भ्रम** कहेवाय छे.' सिद्धान्तमां तो **'जेवो पदार्थ 'होय तेवुं ज ज्ञान थाय छे.'** एथी भ्रमस्थलमां पण विषयनी उत्पत्ति अवश्य थाय छे विषय विना ज्ञान थाय नहि. ए रीतिए स्वप्नमां त्रिपुटीनी प्रतीति होवाथी सर्व समाज उत्पन्न थाय छे. ६.

३१०. एनेविषे आवी शंका थाय छेः-स्वप्नना जे पदार्थ प्रतीत थाय छे, तेओनी उत्पत्ति अंगीकार थाय तो, जेम स्वप्न-दृष्टान्तथी जाग्रत्‌ना पदार्थ मिथ्या सिद्धान्तमां कह्या छे, तेम जाग्रत्‌ना पदार्थोनी पेठे उत्पत्तिवाळा होवाथी स्वप्नना पदार्थ पण सत्य थया जोइये. अने स्वप्नना प्रतीत पदार्थनी उत्पत्ति न मानिये तो ए दोष (आवतो) नथी. केमके जाग्र-त्‌ना पदार्थ तो उत्पन्न थई प्रतीत थाय छे, अने स्वप्नमां पदार्थ (उत्पन्न) थयाविना प्रतीत थाय छे. एथी स्वप्नमां (उत्पन्न) थयाविनाना पदार्थोनुं ज्ञान भ्रमरूप होय छे, तेओनी उत्पत्ति मानवी योग्य नथी.

३११. ए शं का नुं स मा धा न.

दुहो.

साधनसामग्री विना उपजे, ते जुठुं होय;
सामग्रीविन उपजे, जे ते मिथ्या सोय. ७.

टीकाः–जे वस्तुनी उत्पत्तिमां जेटली देशकालादिसामग्री 'साधन' नाम कारण छे, एटली सामग्री विना उपजे ते **मिथ्या** कहेवाय छे. अने स्वप्नना हस्ती आदिकोनी उत्पत्तिने योग्य देशकाल छे नहि. बहुकालमां अने बहुदेशमां उपजवायोग्य हस्तीआदि क्षणमात्र कालमां अने सूक्ष्म कंठदेशमां उपजे छे, एथी मिथ्या छे. यद्यपि स्वप्नअवस्थामां काल देश पण अधिक प्रतीत थाय छे, तथापि अन्य पदार्थोनी पेठे स्वप्नमां अधिक काल अने अधिक देश पण अनिर्वचनीय, प्रातिभासिक उत्पन्न थाय छे. केमके विषय विना प्रत्यक्षज्ञान थाय नहि. अने स्वप्नमां अधिक देशकालनुं ज्ञान थाय छे. व्यावहारिक देशकाल न्यून छे. एथी प्रातिभासिक (देशकाल) उत्पन्न थाय छे. परंतु स्वप्नअवस्थामां उपज्या जे प्रातिभासिक देशकाल, ते स्वप्नअवस्थाना हस्तीआदिकोना, कारण नथी. केमके कारण होय ते पहेलां उपजे छे, अने कार्य पछी उपजे छे. स्वप्नमां देशकाल अने हस्तीआदिक एक ज समयमां थाय छे. एथी तेओनो (हस्तीआदि अने देशकालनो) कार्यकारणभाव बने नहि. अने व्यवहारिक देशकाल न्यून छे, हस्तिआदिकोने योग्य नथी; एथी देशकालरूप सामग्री विना उपजे छे, एथी स्वप्नमां पदार्थ मिथ्या छे. माताआदि लईने बीजी पण हस्तीआदिकोनी सामग्री स्वप्नमां छे नहि. यद्यपि स्वप्नमां प्राणिपदार्थना मातापिता पण प्रतीत थाय छे. तथापि स्वप्नना मातापिता पुत्रनी उत्पत्तिना

कारण नथी. केमके मातापिता अने पुत्र एक क्षणमां साथे उपजे छे. एथी तेओनो कार्यकारणभाव नथी. जे निद्रा सहित अविद्याए स्वप्नना पदार्थ उपजे छे, ते ज अविद्या ते पदार्थो-विषे, मातापणु, पितापणु, अने पुत्रपणु उपजावे छे, ए रीतिए स्वप्नना पदार्थनी उत्पत्तिमां बीजी कोई सामग्री नथी, किन्तु अविद्या ज निद्रारूपदोषसहित कारण छे. दोषस हित अविद्याथी जे जन्य होय, ते शुक्तिरजतनी पेठे मिथ्या होय छे. एथी स्वप्नना पदार्थ सत्य नथी, मिथ्या छे.

तेओनुं उपादानकारण अंतःकरण छे, अथवा साक्षात् अविद्या ज तेओनु उपादानकारण छे. पहेला पक्षमां साक्षि चेतन स्वप्ननु अधिष्ठान छे. बीजा पक्षमां ब्रह्मचेतन स्वप्ननु अधिष्ठान छे ए रीतिए अंतःकरणनो अथवा अविद्यानो परिणाम, अने चेतननो विवर्त स्वप्न छे

३१२. एनाविषे आवी शंका थाय छे —बीजा पक्षमां ब्रह्म चेतन स्वप्ननु अधिष्ठान कह्यु, अने अविद्या उपादानकारण कही, त्या अधिष्ठानना ज्ञाने, कल्पितनी निवृत्ति थाय छे अने स्वप्ननु अधिष्ठान ब्रह्म छे, एथी ब्रह्मज्ञान विना अज्ञानीने जाग्रत्‌मां स्वप्ननी निवृत्ति न थइ जोइये.

---

१८१. त्रिविध जीव. स्थूल सूक्ष्म देहद्वय अवच्छिन्न कूटस्थचेतनरूप 'पार-'मार्थिक' जीव (१), मायाए आवृत कूटस्थविषे कल्पित अन्तःकरणमा चिदाभास रूप अने देहद्वयमां अभिमाननो कर्ता 'व्यावहारिक' जीव (२), अने निद्रारूप मायाए आवृत व्यावहारिक जीवरूप अधिष्ठानमां कल्पित 'प्रातिभासिक' जीव (३), एवा भेदथी जीव त्रण प्रकारना छे तेना वादी विद्यारण्यस्वामीआदि छे तेओए, स्वप्ननु अधिष्ठान व्यावहारिक जीव अने व्यावहारिक जगत् कह्यु छे. तेमां स्वप्नना जीव(द्रष्टा)नु अधिष्ठान जाग्रत्‌नो जीव छे, अने स्वप्नना जगत्-(दृश्य)नु अधिष्ठान जाग्रत्‌नु जगत् छे, अने स्वप्नअध्यासनुं उपादान, व्यावहा-रिक जीव जगत्‌नु आवरक निद्रारूप अवस्थाअज्ञान (तूलअज्ञान) छे

× × × × × × × पं. पी. पु.

३१३. अन्य शंकाः–जेम स्वप्ननुं अधिष्ठान ब्रह्म, अने उपादानकारण अविद्या छे; तेम वेदान्तसिद्धान्तमां जाग्रत्‌ना व्यावहारिक पदार्थनुं पण अधिष्ठान ब्रह्म छे, अने उपादानकारण अविद्या छे. एथी जाग्रत्‌ना पदार्थने 'व्या व हा रि क' कहे छे, अने स्वप्नने 'प्रा ति भा सि क' कहे छे, एवो भेद न थवो जोइये केमके, बंनेनुं अधिष्ठान ब्रह्म छे, अने उपादानकारण अविद्या छे; एथी जाग्रत् स्वप्न बंने व्यावहारिक थवां जोइये; अथवा बंने प्रातिभासिक थवां जोइये.

३१४ (उ प र नी बे शं का नुं स मा धा न.)

ते बने नहि. केमके प्रथमशंकानुं आ समाधान छे,–निवृत्ति बे प्रकारनी होय छे, ए पूर्वे (चतुर्थ तरंगमां अंक १४२ विषे) ख्यातिनिरूपणमां कही छे. कारणसहित कार्यना विनाशरूप **अत्यन्तनिवृत्ति** तो स्वप्ननी जाग्रत्‌मां ब्रह्मज्ञान विना, बने नहि. परंतु दंडना प्रहारथी जेम घटनो मृत्तिकामां लय थाय छे तेम स्वप्ननो हेतु जे निद्रादोष तेना नाशथी, वा स्वप्ननी विरोधिनी जाग्रत्‌नी उत्पत्तिथी, अविद्यामां ल य रू प नि वृ त्ति स्वप्ननी ब्रह्मज्ञान विना संभवे छे.

३१५. (जाग्रत्‌ना पदार्थ व्यावहारिक छे, स्वप्नना प्रातिभासिक छे)

अन्य जे शंका करीः–'जाग्रत् स्वप्न बंने *समान* थवां जोइये, ते बने नहि. केमके, जाग्रत्‌ना देहादिक पदार्थोनी उत्पत्तिमां तो अन्यदोषरहित केवल *अनादिअविद्या* ज उपादानकारण छे; अने स्वप्नना पदार्थोमां तो सादिनिद्रादोष पण अविद्यानो सहायक छे. एथी अन्यदोषरहित केवल अविद्याजन्य (जाग्रत्‌ना पदार्थ) व्यावहारिक कहेवाय छे. अने

सादिदोषसहित (तुला)अविद्याजन्य (स्वप्नना पदार्थ अने रज्जु सर्पादिक) 'प्रातिभासिक' कहेवाय छे. स्वप्नना पदार्थ निद्रादोषसहित अविद्याजन्य होवाथी प्रातिभासिक छे, अने जाग्रत्‌ना पदार्थ अन्यदोषरहित अविद्याजन्य होवाथी 'व्यावहारिक' कहेवाय छे. ए रीतिए स्वप्नना पदार्थोमां जाग्रत्‌पदार्थथी विलक्षणता छे. परंतु ए संपूर्ण त्रण प्रकारनी सत्ता मानीने, स्थूलदृष्टिये, कही छे. विचारदृष्टिए तो त्रण प्रकारनी सत्ता बने नहि, अने जाग्रत् स्वप्ननी परस्पर विलक्षणता पण बने नहि.

(ईश्वररचित अने जीवसंकल्परचित एवा बे प्रकारना पदार्थ.)

३१६. यद्यपि वेदान्तपरिभाषादिक ग्रंथोमां पूर्वप्रकारथी 'व्यावहारिक' अने 'प्रातिभासिक' पदार्थोनो भेद कह्यो छे, एथी त्रणे सत्ता मानी छे; तेम विद्यारण्यस्वामीए पण त्रण सत्ता मानी छे; केमके आ प्रसंग तेओए लख्यो छेः-बे प्रकारना देहादिक पदार्थ छे;-एक तो ईश्वररचित छे, ते बाह्य छे; अने बीजा, जीवना संकल्परचित छे, ते मनोमय कहेवाय छे ने आं त र छे. ते बेमां जीवसंकल्पथी रचित आंतरमनोमय साक्षिभास्य छे; अने ईश्वररचित बाह्य छे, ते प्रमाताप्रमाणना विषय छे. अने आं त र म नो म य दे हा दि क जी व ने सु ख दुः ख ना हे तु छे. अने बाह्य जे ईश्वररचित छे ते सुखदुःखना हेतु नथी, एथी मनोमय पदार्थोनी निवृत्ति मुमुक्षुने अपेक्षित छे. अने बाह्यप्रपंच सुखदुःखना हेतु नथी एथी तेनी निवृत्ति अपेक्षित नथी.

जेम बे पुरुषोना बे पुत्र विदेशमां गया होय, तेमांथी एकनो पुत्र मरी जाय; (अने) एकनो जीवतो होय. ते जीवतो पुत्र मोटी विभूतिने प्राप्त थईने, कोई पुरुषद्वारा, पोताना

पिताने पोतानी विभूतिप्राप्तिना, अने बीजाना मरणना, समाचार मोकले. त्यां समाचार सुणाववावाळो दुष्ट होय पथी जीवता पुत्रना पिताने कहे,-'तारो पुत्र मरी गयो,' अने मरेला पुत्रना पिताने कहे,-'तारो पुत्र शरीरथी नीरोग छे, मोटी विभूतिने प्राप्त थयो छे, (अने) थोडा कालमां हस्ति-आरूढ मोटा समाजथी आवशे.' ते वंचकवचनने सुणीने जीवता पुत्रनो पिता रुवे छे; (अने) महत् दुःखनो अनुभव करे छे; अने मरेला पुत्रनो पिता महत् हर्षने प्राप्त थाय छे.

ए रीतिए देशान्तरविषे ईश्वररचित पुत्र जीवे छे, तोपण मनोमय पुत्र मरी गयो पथी दुःख थाय छे, ईश्वररचित जीवतानुं सुख थाय नहि. तेम बीजानो ईश्वररचित पुत्र मरी गयो छे, तेनुं दुःख थाय नहि, मनोमय पुत्र) जीवे छे, तेनुं सुख थाय छे. पथी जीवसृष्टि ज सुखदुःखनो हेतु छे, ईश्वर-सृष्टि सुखदुःखनो हेतु नथी. ए रीतिए विद्यारण्य स्वामीए (पंचदशीमां) जीवसृष्टि अने ईश्वरसृष्टि बे प्रकारनी(सृष्टि) कही छे. त्यां जीवसृष्टि प्रातिभासिकी छे, अने ईश्वरसृष्टि व्यावहारिकी छे. *एम अन्यग्रंथकारोए पण सत्ता त्रण प्रकार*नी कही छे. चेतननी **परमार्थसत्ता** छे. अने चेतनथी भिन्न जडपदार्थोनी बे प्रकारनी सत्ता छे. एक व्यवहारिक सत्ता अने बीजी प्रातिभासिकसत्ता. सृष्टिना आदिकालमां ईश्वरसंकल्पथी उपज्यां जे केवल अविद्यानां कार्य-पंचभूत अने तेओनां कार्य-नी व्यावहारिकसत्ता छे. दोषसहित अविद्यानां कार्य-स्वप्न शुक्तिरजतादिकोनी प्रातिभासिकसत्ता छे. ए रीतिए जाग्रत् पदार्थोनी व्यावहारिकसत्ता अने स्वप्ननी प्रातिभासिकसत्ता कही छे.

(जाग्रत् स्वप्नना पदार्थमां विलक्षणता सिद्ध थती नथी.)
(दृष्टिसृष्टिवाद. ३१७ थी ३२९ पर्यन्त.)

३१७. तथापि अनात्मपदार्थोनी सर्वनी प्रातिभासिकी ज सत्ता छे, पथी बे प्रकारनी ज सत्ता छे. चेतननी परमार्थसत्ता, अने चेतनथी भिन्न सकल अनात्मानी प्रातिभासिकी ज सत्ता छे. जाग्रत्स्वप्नना पदार्थोनी किञ्चित् मात्र पण विलक्षणता सिद्ध थाय नहि. ए उत्तम सिद्धान्तनुं प्रतिपादन करे छे.

चोपाई.

सामग्री विना उपजे पथी, स्वप्नसृष्टि सहु मिथ्या तेथी;
देशकालनो लेश न जेमां, सर्व जगत् उपजे छे तेमां. ८.
स्वप्नसमान जुठुं जगत् जाणो, लेश सत्य तेने मा मानो;
जाग्रत्मां ज स्वप्न नहि जेम, स्वप्नमां ज जाग्रत् नहि तेम.९.

टीकाः—देशकालसामग्री विना स्वप्नना हस्ती पर्वतादिक उपजे छे, पथी 'मिथ्या' कहेवाय छे. तेम आकाशादि प्रपंचनी सृष्टि (उत्पत्ति) ब्रह्मथी थाय छे, ते ब्रह्मविषे देशकालनो लेश पण छे नहि. स्वप्नविषे हस्तिपर्वतादिकोना योग्य तो देशकाल नथी, तथापि अल्पदेशकाल छे; तेम आकाशादिकोनी सृष्टिमां अल्पदेशकाल पण छे नहि, केमके देशकालरहित परमात्माथी आकाशादिकोनी सृष्टि कही छे. ए कारणथी तैत्तिरीयश्रुतिमां आकाशादिकोनी क्रमथी सृष्टि कही छे, देशकालनी सृष्टि कही नहीं. अने सूत्रकारभाष्यकारे पण देशकालनी सृष्टि नथी कही. ['सृष्टि' नाम उत्पत्तिनुं छे.] त्यां तैत्तिरीयश्रुतिनो अने सूत्रकारभाष्यकारनो आ ज अभिप्राय छेः—आकाशादिक प्रपंचनी उत्पत्ति देशकालसामग्री विना थाय छे, पथी आकाशादिक स्वप्ननी पेठे मिथ्या छे.

३१८. यद्यपि मधुसूदनस्वामीए देशकालने साक्षात् अविद्यानां कार्य कह्यां छे. एथी मायाविशिष्ट परमात्माथी, प्रथम मायाना परिणाम देशकाल थाय छे, तेथी अनन्तर आकाशादिकोनी उत्पत्ति थाय छे; एथी योग्यदेशकालथी आकाशादिक प्रपंचनी उत्पत्ति संभवे छे. (एम कोई कहे.)

तथापि मधुसूदनस्वामीनो आ अभिप्राय नथी जे,-देशकाल प्रथम थाय छे अने आकाशादिक उत्तर थाय छे. केमके, अतीत (भूत) कालमां होय ते 'प्रथम' अथवा 'पूर्व' कहेवाय छे. अने भविष्यत्कालमां थाय ते 'उत्तर' कहेवाय छे. [जेने 'पछी' पण कहे छे.] आकाशादिकोनी उत्पत्तिथी प्रथम (पूर्व) देशकाल उपजे छे, ए कहेवाथी आकाशादिकोनी उत्पत्ति कालथी पूर्वकालउपहितपरमात्मा, देशकालनुं अधिष्ठान छे, ए सिद्ध थशे. एथी देशकालनी उत्पत्तिमां पूर्वकालनी अपेक्षा थवानी. अने कालनी उत्पत्ति विना पूर्वकाल असिद्ध छे. एथी आकाशादिकोथी पूर्वकालमां देशकालादिक होय छे, ए कहेवुं बने नहि.

किन्तु मधुसूदनस्वामीनो आ अभिप्राय छेः-जेम भूतभौतिकप्रपंच प्रतीत थाय छे, तेम देशकाल पण प्रतीत थाय छे. अने आत्माथी भिन्न कोई नित्य छे नहि, एथी देशकाल नित्य नथी. अने विनाशयेलानी प्रतीति थाय नहि, एथी आकाशादिकोनी पेठे देशकालनी पण उत्पत्ति थाय छे. ते देशकाल मायाना परिणाम छे अने चेतनना विवर्त छे. जे विवर्त होय ते कारणुं कारण होय नहि एथी आकाशादिक प्रपंचनी उत्पत्तिमां देशकालने कारणता बने नहि, किंवा कारण प्रथम होय छे, (अने) कार्य उत्तर होय छे. आकाशादिक प्रपंचथी देशकाल प्रथम होय छे ए कहेवुं बने

नहि, ए वार्त्ता पाछे ज कही आव्या छिये, तेथी पण देश कालने आकाशादिक प्रपचनी कारणता बने नहि किन्तु स्वप्नना पितापुत्रनी पेठे, देशकाल सहित आकाशादिक प्रपच मायाविशिष्ट परमात्माथी उत्पन्न थाय छे अने कोई पदार्थ कोई देशमा अने कोई कालमा उपजे छे, अन्यदेशमा अन्यकालमा नथी उपजता ए रीतिए सर्व पदार्थ प्रलयकालमा नथी उपजता, सृष्टिकालमा उपजे छे, एथी देशकालने कारणता प्रतीत पण थाय छे, तोपण जे मायाथी-देशकालसहित प्रपचनी उत्पत्ति थाय छे, ते मायाथी ज, देशकालसहित प्रपचनी उत्पत्ति थाय छे, ते मायाथी ज, देश कालमा कारणता अने अन्य प्रपचमा कार्यता, प्रतीत थाय छे.

३१९ अने आकाशादिक प्रपचना देशकाल कारण नथी एमानिये (वादीने) आवी शका थाय छे -विनाशयेला पदार्थोनी तो प्रतीति थाय नहि, अने सिद्धान्तमा अगीकार नथी जो विनाशयेलानी प्रतीति मानिये तो असतख्यातिनो अगीकार थशे, अने विनाशयेला वध्यापुत्र शशशृगादिकानी प्रतीति थई जाइए, (पण ते थती नथी) एथी विनाशयेलानी प्रतीति थाय नहि एथी देशकालमा कारणता न होय तो, देशकालमा सब पदार्थोनी कारणता मायाना बलथी पण प्रतीत न थवी जाइए अने कारणता देशकालमां प्रतीत थाय छे एथी देशकाल सर्व प्रपचना कारण छे

अने (वादी कहे छे के) जो सिद्धान्ती आम कहे,-'सर्व प्रपच 'नु कारण ब्रह्म छे ब्रह्मनी कारणता देशकालमा प्रतीत 'थाय छे, अने देशकालमा कारणता नथी' ते पण बने नहि केमके, जेम देशकालनु अधिष्ठान ब्रह्म छे, तेम सर्व प्रपचनु अधिष्ठान ब्रह्म छे. देशकालमा ज ब्रह्मनी कारणता प्रतीत थाय, अन्यमा नहि ए कहेवामां कोइ हतु नथी एथी अधि-

ज्ञानब्रह्मनी कारणता देशकालमां प्रतीत थाय तो, ब्रह्म सर्व प्रपंचनुं अधिष्ठान छे एथी, सर्व प्रपंचमां कारणता प्रतीत थवी जोईए. कोईमां कारणता, कोईमां कार्यता, एवा भेद न जोईये. किंवा देशकालमां कारणता छे नहि अने ब्रह्ममां कारणता छे, ते ब्रह्मनी कारणता देशकालमां प्रतीत थाय छे, ए कहेवाथी अन्यथाख्यातिनो अंगीकार थशे. केमके अन्यवस्तुनी अन्यरूपथी प्रतीतिने 'अन्यथाख्याति' कहे छे. देशकाल कारण नथी, एथी कारणथी अन्य अकारण छे, तेओ(अकारणरूप देशकाल)नी अन्यरूपथी नाम कारणरूपथी प्रतीति मानवामां अन्यथाख्यातिनो अंगीकार थशे. अने सिद्धान्तमां अन्यथाख्यातिनो अंगीकार नथी. जो आ स्थानमां अन्यथाख्याति मानिये तो, शुक्तिमां अनिर्वचनीयरूप्यनी उत्पत्ति सिद्धान्तमां मानी छे ते निष्फल थशे. केमके अन्यथाख्यातिमां बे मत छेः—एक तो अन्यदेशमां स्थितपदार्थनी अन्यदेशमां प्रतीति (ते) अन्यथाख्याति,—जेम कान्ताना करमां स्थित रजत(रूपा)नी संमुख शुक्तिदेशमां प्रतीति अन्यथाख्याति. अथवा अन्यपदार्थनो अन्यरूपथी प्रतीति अन्यथाख्याति,—जेम शुक्तिनी ज रजतरूपथी प्रतीति अन्यथाख्याति. एम सर्व भ्रमस्थलमां अन्यथाख्यातिए निर्वाह संभवे छे. अनिर्वचनीय रजतादिकोनी उत्पत्तिकथन असंगत थशे.

अने सिद्धान्ती आम कहे,—'विषयना समानाकार ज्ञान 'थाय छे. अन्यवस्तुनुं अन्यरूपथी ज्ञान संभवे नहि. एथी 'रजताकार ज्ञाननो विषय पण अनिर्वचनीय रजत उत्पन्न थाय 'छे.' ए अद्वैतसिद्धान्तमां कारणथी अन्य जे देशकाल तेमांविषे ब्रह्मनी कारणतानुं ज्ञान संभवे नहि. एथी देशकालमां कारणता जे प्रतीत थाय छे, ते (कारणता) विनाशयेलनुं.

अथवा ब्रह्ममां स्थित(कारणता)नुं, भान संभवे नहि; किन्तु देशकालमां ज कारणता छे, तेनुं भान थाय छे. ए रीतिए 'आकाशादिक प्रपंचनां कारण देशकाल नहि' ए कथन असंगत छे. (एम वादी कहे छे.)

३२०. (सिद्धान्ती कहे छे के) ते शंका बने नहि. केमके ब्रह्मनी कारणता देशकालमां प्रतीत थाय छे. जेम जपापुष्पसंबंधी स्फटिकमां पुष्पनी रक्तता प्रतीत थाय छे; (अने) अधिष्ठाननी सत्यता स्वप्नकालमां मिथ्या हस्तिपर्वतादिकोमां प्रतीत थाय छे; त्यां स्फटिकमां अनिर्वचनीयरक्तताना उत्पत्तिनो अंगीकार नथी किन्तु पुष्पनी रक्तता स्फटिकमां प्रतीत थाय छे; एथी श्वेतस्फटिकनी रक्तरूपथी प्रतीति थवाथी, रक्तताना ज्ञानमां अन्यथाख्याति ज मानी छे; (अने) तेम स्वप्नमां मिथ्या पदार्थोविषे सत्यता प्रतीता थाय छे त्यां 'अनिर्वचनीयसत्यता ते पदार्थोविषे उत्पन्न थाय छे,' ए कथन तो **'सत्य मिथ्या छे.'** ए (वदतोव्याघातदोषवाळा) वचननी पेठे संभवे नहि. अने विनाशयेलनी प्रतीति थाय नहि. किन्तु स्वप्नना अधिष्ठानचेतननी सत्यता, मिथ्यापदार्थोमां प्रतीता थाय छे; एथी मिथ्यापदार्थोनी सत्यरूपे प्रतीति होवाथी, सत्यताना ज्ञानमां अन्यथाख्याति ज मानी छे. तेम अधिष्ठानब्रह्मनी कारणता, देशकालमां अन्यथाख्यातिप्रकरी, प्रतीता थाय छे.

३२१. (वे पदार्थना संबंधथी एकना धर्म बीजामां प्रतीत थाय त्यां ज अन्यथाख्याति संभवे छे.)

अने जो आम कहिये,-'एटला स्थानमां अन्यथा-ख्याति मानिये तो सर्व भ्रम(स्थान)मां अन्यथाख्याति ज मानवी जोइये,' ते शंका बने नहि. केमके, शुक्तिरजतादिकमां अन्य

थाख्याति मानवामां आ दोष कह्यो छे;–"विषयथी विलक्षण "ज्ञान बने नहि." अने ज्यां स्फटिकमां रक्तातुं ज्ञान थाय, त्यां रक्तपुष्पनो स्फटिकसाथे संबंध छे, पथी स्फटिकसंबंधी पुष्पनी रक्तता स्फटिकमां प्रतीत थाय छे; केमके अंतःकरणनी वृत्ति ज्यारे रक्तपुष्पाकारा थाय छे, ते ज (अंतःकरणनी)वृत्तिनो विषय रक्तपुष्पसंबंधी स्फटिक छे, पथी पुष्पनी रक्तता स्फटिकमां प्रतीता थाय छे. अने शुक्तिनुं तो रजतरूपे ज्ञान संभवे नहि. केमके शुक्तिदेशमां अनिर्वचनीय तथा व्यावहारिक रजत तो अन्यमतमां छे नहि, किन्तु शुक्ति छे. ते शुक्तिना संबंधे शुक्तिना समानाकार ज अंतःकरणनी वृत्ति थशे, रजताकार अंतःकरणनी वृत्ति थाय नहि. पथी अविद्यानुं परिणाम चेतननुं विवर्त अनिर्वचनीय रजत अने तेनुं ज्ञान बंने उत्पन्न थाय छे. अने स्फटिकमां रक्तता प्रतीता थाय त्यां वृत्तिनो संबंध, स्फटिक अने रक्तपुष्प बंनेनो साथे थाय छे. रक्तपुष्पना संबंधथी रक्ताकारा वृत्ति थाय छे, ते वृत्तिनो स्फटिकसाथे पण संबंध छे, अने स्फटिकमां रक्तातानो छाया छे, पथी पुष्पनो धर्म रक्तता स्फटिकमां ते ज वृत्तिनो विषय छे. प रीतिप ज्यां बे पदार्थनो संबंध छे, त्यां पकना धर्मनो बीजामां प्रतीति संभवे छे, त्यां अन्यथाख्याति ज संभवे छे. ज्यां बंने पदार्थोनो संबंध नहि त्यां अन्यथाख्याति नहि, किन्तु अनिर्वचनीयख्याति छे.

जेम पुष्पसंबंधी स्फटिकमां पुष्पनी रक्तता प्रतीता थाय छे, तेम स्वप्नना हस्तिपर्वतादिकोनो पण अधिष्ठानचेतन साथे संबंध छे, पथी चेतननो धर्म-सत्यता-पण, चेतनसंबंधी हस्तिपर्वतादिकमां प्रतीता थाय छे, ते अन्यथाख्याति छे. तेम

अधिष्ठानचेतननो धर्म-कारणता-,अधिष्ठानचेतनसंबंधी देशकालमां, प्रतीत थाय छे.

३२२. अने जे पूर्व शंका करीः-'अधिष्ठानचेतननो संबंध 'सर्व प्रपंच साथे छे. जो संबंधीनो धर्म, अन्वयाव्यातिए-'करी, अन्यमां प्रतीत थाय, तो चेतननी कारणता सर्व 'प्रपंचमां प्रतीता थयी जोइये'. ते शंका वने नहि. केमके, जेम स्वप्नमां वे शरीर उत्पन्न थाय छे, (तेमांथी) एक शरीर पितृरूप प्रतीत थाय छे अने बीजुं शरीर पुत्ररूप प्रतीत थाय छे. त्यां बंने शरीरोनो स्वप्नना अधिष्ठानचेतनसाथे संबंध पण छे, तथापि पितृशरीरमां अधिष्ठानचेतननी कारणता प्रतीता थाय छे, अने पुत्रशरीरमां कारणता प्रतीता थाय नहि; किन्तु पितृजन्य पुत्र छे, ए रीतिए पुत्रशरीरमां कार्यता प्रतीता थाय छे. ए रीतिए अधिष्ठानचेतनसाथे संबंध तो सर्वनो छे, तथापि देशकालमां चेतनधर्म-कारणता-नी प्रतीति थाय छे, (अने) अन्यमां कार्यतानी प्रतीति थाय छे.

अथवा अधिष्ठानचेतन असंग छे, ते कोईनुं परमार्थतः कारण नथी. मायामां आभास यद्यपि कारण छे, तथापि आभासनुं स्वरूप मिथ्या होय छे. जे पोते ज मिथ्या होय ते बीजानुं कारण वने नहि. जो परमात्माविषे प्रपंचनी कारणता होय, तो तेनी देशकालमां, भ्रमथी, प्रतीति संभवे. ते परमात्माविषे कारणता छे नहि,-परमात्मा कारणतादिक धर्मरहित असंग छे-तेनी कारणता देशकालमां प्रतीता थाय छे, ए कहेवुं संभवे नहि. किन्तु मायाकृत अनिर्वचनीय देशकाल अनिर्वचनीय कारणतावाळा थाय छे, अने परमार्थेकरी देशकाल कारण नथी. जेम पुत्रहीन पुरुष स्वप्नमां पुत्र-पौत्र बंनेने देखे, त्यां पुत्रपौत्रशरीर अनिर्वचनीय होय छे,

अने पुत्रशरीरमां पौत्रशरीरनी अनिर्वचनीयकारणता होय छे. त्यां परमार्थेकरी, पुत्रशरीर अने पौत्रशरीरनो परस्पर कारणकार्यभाव हतो नथी. तेम अनिर्वचनीय कारण-देश-काल-प्रतीत थाय छे. परमार्थथी देशकाल अने आकाशादिक प्रपंचनो कारणकार्यभाव छे नहि. परीतिए देशकालसामग्री विना जाग्रत् प्रपंचनी उत्पत्ति थाय छे, एथी स्वप्ननी पेठे जाग्रत् पण मिथ्या छे. अने जेम स्वप्नमां स्त्रीपुत्रादिक स्वप्ननां ज सुखदुःखना हेतु छे, जाग्रत्मां तेओनो अभाव छे, तेम जाग्रतना पदार्थोनो स्वप्नमां अभाव होय छे. (ए) बंने सम छे.

३२३. (जाग्रतपदार्थ स्वप्नपदार्थथी विलक्षण नथी)

अने जो आम कहे-'जाग्रत्थी स्वप्न थईने पुनः जाग्रत् 'थाय, त्यां पहेला जाग्रत्ना जे पदार्थ छे, ते ज स्वप्नव्यव-'हित (स्वप्नरूप अन्तरायवाला) बीजा जाग्रत्मां रहे छे; अने 'प्रथम स्वप्नना पदार्थ बीजा स्वप्नमां रहेता नथी, एथी 'स्वप्नना पदार्थोथी जाग्रत्ना पदार्थ विलक्षण छे.'

ते शंका पण सिद्धान्तना अज्ञानी मूढनी दृष्टिथी थाय छे. केमके मूर्खोनी दृष्टि आवी छे,-'संसारप्रवाह अनादि छे. 'तेमां जीवोने जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति थाय छे. जाग्रत्काल-'मां, स्वप्न-सुषुप्ति नष्ट थाय छे, अने स्वप्नकालमां जाग्रत् 'सुषुप्ति नष्ट थाय छे, तेम सुषुप्तिकालमां जाग्रत् स्वप्न नष्ट 'थाय छे. परंतु स्वप्न सुषुप्ति होय त्यारे जाग्रत्कालनां स्त्री-'पुत्रपशुधनादिक दूर थाय नहि, किन्तु बन्यां रहे (छे अने) 'तेओनुं ज्ञान ज दूर थाय छे. पुनः जाग्रत् थाय त्यारे प्रथम 'जाग्रत्ना विद्यमान पदार्थोनु ज्ञान थाय छे.' ए अज्ञानी मूर्खोनी दृष्टि छे.

३२४. (जाग्रत्‌ना पदार्थो अने तेओनुं ज्ञान बन्ने साथे ज उत्पन्न थाय छे अने साथे ज नष्ट थाय छे.)

अने सिद्धान्त तो आ छे.-सर्व पदार्थ चेतनना विवर्त छे (अने) अविद्याना परिणाम छे. एथी शुक्तिरजतनी पेठे जे कालमां जे पदार्थ प्रतीत थाय ते कालमां अधिष्ठानचेतनआश्रितअविद्यानो द्विविध परिणाम थाय छे.-अविद्याना तमोगुणअंशनो घटादिविषयरूप परिणाम थाय छे, अने अविद्याना सत्त्वगुण(अंश)नो ज्ञानरूप परिणाम थाय छे. यद्यपि चेतनने 'ज्ञान' कहे छे, एथी सत्त्वगुणनो परिणाम ज्ञान छे ए कहेवुं बने नहि. तथापि सर्वव्यापक चेतन ज्ञान नथी, किन्तु साभासवृत्तिमां आरूढचेतनने ज्ञान कहे छे, एथी चेतनमां ज्ञानव्यवहारनी संपादकवृत्ति छे. ए रीतिए चेतनमां ज्ञानपणानी 'संपादका' वृत्ति छे, (अथवा) ए रीतिए चेतनमां ज्ञानपणानो 'उपाधि' वृत्ति छे, तेनेविषे पण ज्ञानशब्दनो प्रयोग थाय छे. जेम लोकमां कहे छेः-'घटनुं ज्ञान 'उत्पन्न थयुं, पटनुं ज्ञान नष्ट थयुं.' त्यां वृत्तिमां आरूढ चेतननो तो उत्पत्ति नाश संभवे नहि, वृ त्ति नो उत्पत्ति नाश थाय छे, अने 'ज्ञा न नो उत्पत्ति नाश' (लोक) कहे छे. एथी वृत्तिमां पण ज्ञानशब्दनो प्रयोग थाय छे. ते वृत्तिरूप ज्ञान सत्त्वगुणनो परिणाम छे, ए कहेवुं संभवे छे. ते वृत्तिरूप परिणाममां चेतननो आभास होय छे, घटादिकविषयरूप परिणाममां चेतननो आभास थाय नहि. केमके यद्यपि विषय अने वृत्ति बंने अविद्याना परिणाम छे, तथापि घटादिक विषय तो अविद्याना तमोगुणनो परिणाम छे, एथी मलिन छे, तेमां आभास थाय नहि; अने वृत्ति, सत्त्वगुणनो परिणाम, स्वच्छा छे, तेमां आभास थाय छे. ए रीतिए वृत्तिने चेतनना

आभासग्रहणनी योग्यता होवाथी वृत्तिअवच्छिन्नचेतनने ज्ञा न कहे छे, अने सा क्षी कहे छे. घटादिविषयने आभासग्रहणनी योग्यता नथी, ए कारणथी विषयअवच्छिन्नचेतन 'ज्ञान' नहि, अने 'साक्षी' पण नहि. ए रीतिए जाग्रत्‌ना पदार्थ अने तेनुं ज्ञान बंने साथे ज उत्पन्न थाय छे, अने साथे ज नष्ट थाय छे. ए वेदनो गूढ सिद्धान्त छे. एथी जाग्रत्‌ना पदार्थ बीजी जाग्रतमां रहे छे ए कहेवुं संभवे नहि.

३२५. यद्यपि स्वप्नथी जागेला पुरुषने आवी प्रत्यभिज्ञा थाय छेः-'जे पूर्व पदार्थ हता ते ज आ पदार्थ छे,' एथी जाग्रत्‌ना पदार्थोनो, ज्ञानना समकाले, उत्पत्ति नाश नथी थतो, किन्तु ज्ञानथी प्रथम विद्यमान होय छे अने ज्ञानना नाशथी अनंतर पण रहे छे. तथापि जेम स्वप्नना पदार्थ ते ज क्षणमां उत्पन्न थाय छे, अने आवा प्रतीत थाय छेः-'मारा 'जन्मथी पण प्रथम उपजेला आ पर्वत समुद्रादिक छे.'-त्यां तत्काल उपजेला पदार्थमां बहुकाल-स्थिरतानी भ्रान्ति थाय छे. एथी जे अविद्याए मिथ्यापर्वतसमुद्रादिक उपजाव्यां छे, ते ज अविद्याएकरी बहुकाल-स्थिरता अने स्थिरतानी प्रतीति अनिर्वचनीया उपजे छे. तेम जाग्रत्‌ना पदार्थोविषे पण अनेक दिन स्थिरता छे नहि, किन्तु अविद्यावडे मिथ्यास्थिरता पण ते पदार्थोनीसाथे उपजीने प्रतीत थाय छे.

अने जो एम कहे केः-'स्वप्नना पदार्थ सा क्षा त् अविद्याना 'परिणाम छे; अने जाग्रत्‌ना पदार्थ साक्षात् अविद्याना परि'णाम नथी, किन्तु घटनी उत्पत्ति दंडचक्र-कुलालेकरी थाय

१८२. जाग्रत्‌ना पदार्थोनुं-'पूर्वे जाग्रत्‌विषे जे दीठेला ते पदार्थ आ छे' एवा आकारवाळुं प्रत्यभिज्ञाज्ञान, निद्राथी उठेला मनुष्यने थाय छे ते ज्ञान,-नदीप्रवाह किंवा दीपशिखा तेओना प्रत्यभिज्ञाज्ञान जेवुं-भ्रमरूप छे. पं. पी. पुं.

'छे, तेम सर्व पदार्थोनी उत्पत्ति पोतपोतानां कारणथी थाय 'छे, साक्षात अविद्याथी नहि. जो साक्षात् अविद्याना परि- 'णाम होय तो आकाशादिक क्रमथी पंचभूतोनी उत्पत्ति, 'अने (तेओनुं) पंचीकरण, (थई) तेओएकरी ब्रह्माण्डनी 'उत्पत्ति श्रुतिमां कही छे, ते असंगत थवानी. पयी ईश्वर 'सृष्टि-जाग्रतना पदार्थ-पोतपोताना उपादानना परिणाम 'छे, अविद्याना साक्षात परिणाम नहि. स्वप्नना तो सर्व 'पदार्थ अविद्याना परिणाम छे. तेओनुं एक अविद्या उपादान 'होवाथी, ते पदार्थोनी अने तेओना ज्ञाननी, एक अविद्याए 'एक कालमां उत्पत्ति संभवे छे. जाग्रतना पदार्थ भिन्नभिन्न 'कारणथी उत्पन्न थाय छे. कार्यथी पहेलुं कारण होय छे. 'अने कारणमां कार्यनो लय थाय छे. पयी घटनी उत्पत्तिथी 'प्रथम अने घटनाश पछी मृत्पिण्ड रहे छे. ए रीतिए कोई 'पदार्थ अल्पकाल स्थिर अने कोई अधिक काल स्थिर कार्य 'कारण छे. तेम स्वप्नना नथी.'

३२६. ते शंका बने नहि. केमके, जाग्रत्‌ना पदार्थोनी पेठे स्वप्नना पदार्थोविषे पण कार्यकारणभाव प्रतीत थाय छे. जेम कोईने आवुं स्वप्न थायः-'मारी गायने वाछडुं थयुं छे. 'अथवा मारी स्त्रीने पुत्र थयो छे' त्यां गाय अने स्त्रीविषे कारणतानी प्रतीति अने बहुकालस्थायितानी प्रतीति थाय छे। वाछडुं अने पुत्रविषे कार्यता अने अल्पकालस्थिरता प्रतीत थाय छे, अने सर्व समकाल छे, कोई कोईनुं कारण नथी; किन्तु गाय, वाछडुं स्त्री आदिकोनुं अविद्या ज उपादान छे. तेम जाग्रत्‌विषे पण कोई अधिककालस्थायी कारणरूपथी, (अने कोई न्यूनकालस्थायी कार्यरूपथी, स्वप्ननी पेठे, प्रतीत थाय छेः कोईकोईनुं परस्पर कार्यकारण नथी परंतु साक्षात् अविद्यानां कार्य छे.

३२७. अने श्रुतिविषे जे क्रमथी सृष्टि कही छे, त्यां सृष्टिप्रतिपादनमां श्रुतिनो अभिप्राय नथी, किन्तु अद्वैतबोधनमां अभिप्राय छे. सर्व पदार्थ परमात्माथी उपजे छे एथी तेना विवर्त छे, जे जे नो वि व र्त होय ते ते नु ज स्व रू प हो य छे. एथी सर्व नामरूप, ब्रह्मथी पृथक् नथी, ब्रह्म ज छे. ए अर्थ बोधन करवाने सृष्टि कही छे. सृष्टिनु अन्य प्रयोजन नथी. त्यां क्रमनु जे कथन छे, ते स्थूलदृष्टिने विपरीत क्रमथी लयचिन्तनना निमित्त छे, तेनु पण अद्वैतबोध ज प्रयोजन छे. एथी क्रमकथनमां पण अभिप्राय नथी. सृष्टिमां क्रम छे नहि. किन्तु सर्व पदार्थ एक अविद्याएकरी उपजे छे, तेओनो परस्पर कारणकार्यभाव अने पूर्वउत्तरभाव, अविद्याकृत स्वप्ननी पेठे, मिथ्या प्रतीत थाय छे अने श्रुतिए तेमनी पोतपोतामां कार्यकारणता, अने पूर्वउत्तरता कही छे, ते लयचिन्तनना निमित्त कही छे. ध्यानमां आवा नियम नथी.-जेवु स्वरूप होय तेवु ज ध्यान थाय. एथी जाग्रतना पदार्थोनो पोतपोतामां कारणकार्यभाव नथी.

(दृष्टिसृष्टिवादनु स्वरूप).

३२८. किन्तु सर्व पदार्थ साक्षात् अविद्यानां कार्य छे. शुक्तिरजतनी पेठे वा स्वप्ननी पेठे अविद्यानी वृत्ति-उपहित साक्षीथी तेओनो प्रकाश थाय छे, एथी सर्व पदार्थ साक्षिभास्य छे. अने ज्ञानाकार अने ज्ञेयाकार अविद्यानो परिणाम

---

१८३. दृष्टिरेव भवेत्सृष्टिर्दृष्टिसृष्टिमते, तथा ।
दृष्टिकालीनसृष्टिस्तु दृष्टिसृष्टिर्मतान्तरे ॥

वेदान्तसिद्धान्तादर्श.

सिद्धान्तमुक्तावलिकारना मतमां दृष्टि ए ज सृष्टि थाय छे अन्य मतमां 'दृष्टि' नाम अविद्यानी वृत्तिरूप ज्ञान, तेना समकालमां ज 'सृष्टि' नाम प्रपचनी उत्पत्ति तेनो 'वाद' नाम कथन.

एक ज कालमां उपजे छे, (अने) साथे ज नष्ट थाय छे. एथी ज्यारे पदार्थनी प्रतीति थाय छे, त्यारे ज प्रतीतिनो विषय-पदार्थ-थाय छे. अन्य कालमां नथी थतो. एने ज **दृष्टि-सृष्टिवाद** कहे छे.

ए पक्षमां पदार्थनी अज्ञातसत्ता नथी, ज्ञातसत्ता छे. अद्वैत-वादमां ए सिद्धान्तपक्ष छे. ए पक्षमां बे (प्रातिभासिक अने पारमार्थिक) सत्ता छे, त्रीजी (व्यावहारिकसत्ता) नथी. केमके अनात्मपदार्थ सर्व स्वप्ननी पेठे प्रातिभासिक छे. प्रतीति कालथी भिन्नकालमां अनात्मानी सत्ता नहि, एथी त्रीजी-व्यावहारिकी सत्ता नहि. ए पक्षमां सर्व अनात्मपदार्थ साक्षि-भास्य छे, प्रमाता प्रमाणना विषय कोई पण नथी. केमके अंतःकरण अने इन्द्रियें तथा घटादिक, सर्व त्रिपुटी अने ज्ञान, स्वप्ननी पेठे एक कालमां उपजे छे; तेओनो विषयवि-षयिभाव बने नहि. जो घटादिक विषय अने नेत्रादिक इन्द्रिय, तेम अंतःकरण, ए ज्ञानथी प्रथम होय, तो नेत्रादिक-द्वारा, अंतःकरणनी वृत्तिरूप ज्ञान, प्रमाणजन्य होय. ते अंतः-करण, इन्द्रिय, अने विषय त्रणे ज्ञानना पूर्वकालमां छे नहि, किन्तु ज्ञानसमकाल ज, स्वप्ननी पेठे, त्रिपुटी उपजे छे; एथी त्रिपुटीजन्य ज्ञान कोई पण नथी. तथापि ज्ञानविषे स्वप्ननी पेठे त्रिपुटीजन्यता प्रतीत थाय छे. एथी जाग्रतना पदार्थ साक्षिभास्य छे; प्रमाणजन्य ज्ञानना विषय नथी, एथी पण स्वप्नना समान मिथ्या छे. किंवा जाग्रत्मां (रज्जुसर्पा-दिक) केटलाक पदार्थोने मिथ्यारूप करीने जाणे छे, अन्यने (घटादिकने) सत्यरूप करीने आम जाणे छे,-'अनादिकालना पदार्थ छे, तेओमांथी कोई नष्ट थाय छे, अन्य तेना समान उत्पन्न थाय छे. एम प्रपंचधारानो उच्छेद कदा थाय नहि.

जेने ज्ञान थाय छे, तेने (अधिष्ठानथी भिन्न) प्रपंचनी प्रतीति थती नथी, अन्यने प्रपंचनी प्रतीति थाय छे. ते ज्ञाननां साधन वेद-गुरु छे, तेओथी परमसत्यनी प्राप्ति थाय छे.' एवी प्रतीति जाग्रत्‌मां थाय छे. त्यां कोई पदार्थमां मिथ्यापणुं, कोईमां नाश, कोईमां उत्पत्ति, वेद्‌गुरुथी परमपुरुषार्थनी प्राप्ति; ए सर्व अविद्याकृत स्वप्ननी पेठे मिथ्या छे. (योग) वासिष्ठमां एवा अनंत इतिहास कह्या छे. क्षणमात्रना स्वप्नमां बहुकाल प्रतीत थाय. अने जाग्रत्‌नी पेठे स्थायी पदार्थ प्रतीत थाय, अने तेओथी बहुकाल भोग थाय एथी जाग्रत पदार्थनी स्वप्नथी किञ्चित् विलक्षणता नथी; किन्तु आत्मभिन्न सर्व मिथ्या छे

३२९. शिष्य उवाच.

दुहा.

(संसार ज नथी तो बंध न होय. तेम थये श्रवणादि साधन निष्फल थशे.)

लाख हजारो कल्पनो आ उपज्यो संसार;
एथी ज्ञानी मुक्त छे, बांध्या अज्ञ हजार. १०.
जूठो स्वप्न समान जो, क्षण घरिका के याम;
बद्ध कोण, को मुक्त छे; श्रवणादिनुं शुं काम ? ११.

टीकाः-ईश्वरसृष्टि अनंतकल्पथी अनादि छे. तेमां ज्ञानी मुक्त थाय छे (अने) अज्ञानीने बंध रहे छे. (ते सृष्टि) जो स्वप्नसमान होय तो स्वप्न एक क्षण, घडी, तथा पहोर सुधी थाय छे, तेम संसार पण क्षण अथवा घडी या प्रहरकाल वा किंचित् अधिक काल थशे. स्वप्ननी पेठे स्वल्पकालस्थायी संसार होय तो अनादि कालनो बंध नहि थशे. (एटले) बंधनिवृत्तिरूप मोक्षना निमित्त श्रवणादिक साधन निष्फल थशे.

[यद्यपि एवं उक्त सिद्धान्तमां, बंध, मोक्ष, वेद, गुरु

अंगीकार नथी. किन्तु चेतन नित्यमुक्त छे, अविद्याना परिणाम, चेतनमां नाना विवर्त, थाय छे, तेथी आत्मस्वरूपनी किञ्चित्‌मात्र पण हानि नहि. आत्मा सदा असग एकरस छे. आजसुधी कोई मुक्त थयो नथी, आगळ थशे नहि, किन्तु चेतन नित्यमुक्त छे. अविद्या अने तेना परिणामनो चेतन साथे कोई काळमां संबध नथी, एथी वंध अने वेद-गुरु, श्रवणादिक, अने समाधि तथा मोक्ष, एओनी प्रतीति पण स्वप्ननी पेठे अविद्याजन्य छे, एथी मिथ्या छे. एओविषे बहुकालस्थायिता पण अविद्याजन्या छे. तथापि सिद्धान्तने न जाणीने स्थूलदृष्टि(वान)नो ए प्रश्न छे.]

३३०. गुरुवाक्य. दुहो

(अगृधदेव नाम इच्छारहित देवनुं स्वप्न.)
अगृधदेवने स्वप्नमां, भ्रम उपज्यो जे रीति,
शिष्य ! तुने ए उपजी, बध मोक्ष प्रतीति १२.

टीका.—हे शिष्य ! जेम निद्रादोषथी स्वप्नमां, अध्यापक, अध्ययन, वेदशास्त्र, पुराण, धर्मशास्त्र, अने अध्ययनकर्त्ता, कर्म, अने तेमनु फल प्रतीत थाय छे, अने ते सर्व पदार्थोमां सत्यनी भ्रान्ति थाय छे, तथापि ते स्वप्नना सर्व पदार्थ मिथ्या छे, तेम जाग्रत्‌ना सर्व पदार्थ मिथ्या छे तेओविषे सत्यतानी प्रतीति भ्रम छे. [दुहामां 'वध मोक्ष'ना ग्रहणथी (=लक्षणु छे तेथी) सर्व अनात्मानु ग्रहण छे.] जेम तने अमे गुरु प्रतीत थईये छिये, वेदअर्थनो वंधविघातक उपदेश करिये छिये, ते तुने मिथ्या प्रतीति छे, जेम अगृधदेवने स्वप्नमा मिथ्या प्रतीतिना विषय, गुरुवेदादिक अनिर्वचनीय उपज्या हता, तेम तारी प्रतीतिनेविषे माराथी आदिलईने सर्व अनिर्वचनीय मिथ्या छे

३३१. ते अगृधदेवनुं आवुं स्वप्न थयुं छेः—एक अगृध नामे देवता अनादिकालनो निद्रामां सूतो सतो स्वप्न(संसार)-नें देखतो हवो. ते स्वप्नमां ते पुरुषने आवी प्रतीति थईः

'हुं चंडाल (देहाभिमानी जीव) छुं, अने महादुःखी छुं, 'अने अस्थि, मज्जा, रुधिर, त्वचा, मांस, मेद, वीर्यरूप सप्त 'धातुए मारुं मुख भर्युं छे. अने महाघोर भयंकर सर्पहस्ती 'आदिके युक्त जे वन (जगत्) तेनाविषे हुं भ्रमण करुं छुं.' ते देव भ्रमण करतो सतो ते वनमां अनंत स्थान देखतो हवो.

(नरकनुं वर्णन.)

कहिं नाना भयंकर प्राणी संमुख, भक्षण करवाने, धावन करे छे. अने कहिं राधि(परु) रुधिरना भरेला कुंड छे, तेओमां पडेलां प्राणी हाहाकार शब्द करे छे. अने कहिं लोढाना तप्तस्तंभ छे. तेओए बांधेला पुरुष रुवे छे. अने कहिं तप्तवालु(रेती)युक्त मार्ग थईने उघाडे पगे पुरुष जाय छे, अने ते पुरुषोने राजभट लोहमय दंडेकरी ताडना करे छे. ए रीतिए नाना जे भयंकर स्थान छे, तेओने ते देव देखतो हवो. अने कदाचित् पोते पण अपराध करीने, स्वप्नमां ते दुःखोने प्राप्त थतो हवो.

---

१८४. 'गृधा' नाम इच्छा, तेथी 'अ' नाम रहित, अने 'देव नाम स्वप्रकाश एवुं जे शुद्धचेतन ते इहां 'अगृधदेव' पदनो गूढ अर्थ छे. तेने जाग्रत्स्वप्नरूप विलक्षणताथी रहित अनादिनिद्राएकरी कल्पित आ प्रतीयमान प्रपंचरूप स्वप्न थयुं छे. ते प्रपंचनी विलक्षणताना अभावथी जाग्रदादि अवस्थाना भेदनो अभाव छे. एथी ते एक ज प्रपंचने दृष्टान्तरूपता अने दार्ष्टान्तरूपता यद्यपि बने नहिं, तथापि ग्रंथकारे ते अर्थने गोप्य राखीने एक ज चेतनमां दृष्टान्तदार्ष्टान्तनो आरोप कर्यो छे. ए गोप्य अर्थनी प्रकटता आगल पण टिप्पणीविषे प्रसंगोपात्त अमे करीशुं. पं. पी. पु.

(स्वर्गलोकनुं वर्णन.)

अने कहिं दिव्यस्थान देखतो हवो. ते स्थानोमां उत्तम देव विराजे छे. ते देवोना दिव्यभोग छे; अमृतना दर्शनमात्रे करी तेमने तृप्ति रहे छे, क्षुधातृषानी बाधा ते देवोने थाय नहि. अने मलमूत्ररहित जेओनुं प्रकाशमान शरीर छे, अने उत्तम विमानमां स्थित थईने कोई देव रमण करे छे. ते विमान ते देवनी इच्छाने अनुसार गमन करे छे. अने कहिं रंभा-उर्वशीथी आदिलईने अप्सराओ नृत्य करे छे. तेओनां संपूर्ण अंग दोषरहित छे, अने संपूर्ण स्त्रीगुणयुक्त छे. कामनो प्रकाशक उत्तम सुगंध तेमना शरीरथी आवे छे. अने कहिं तेमनीसाथे देव रमण करे छे. अने कदाचित् पोते (अगृध-देव) पण देवभावने प्राप्त थईने तेओ साथे बहुकाल रमण करे छे. अने कदाचित् ते अप्सराओ साथे दिव्यस्थानमां रमण करतो सतो (पुण्य क्षीण थये) अकस्मात् रुधिरमलपूरित जे कुंड छे तेओविषे (पाप भोगववा) मज्जन करे छे.

अने एक स्थानमां सर्वनो अधिपति पुरुष (धर्मराजा) स्थित छे. तेना आज्ञाकारी अनुचर (यमदूत) तेनी आगळ स्थित छे. केटलाक (पुण्यवन्त) पुरुषोने ते अधिपति अने तेना अनुचर सौम्यरूप प्रतीत थाय छे, अने केटलाक (पापी) पुरुषोने महाभयंकररूप प्रतीत थाय छे अने ते वनमां स्थित पुरुषोने कर्मने अनुसार फल दे छे.

ए रीतिए अगृधनामे देवता, स्वप्नकालमां, नाना जे स्थान छे तेओने देखतो हवो.

(मृत्युलोकगत भरतखंडनुं वर्णन.)

अने कहिं अन्यस्थानमां ब्राह्मण वेदनो ध्वनि करे छे, अने कहिं यज्ञशालामां उत्तम कर्म करे छे. अने कहिं उत्तम

नदीओ वहे छे, तेओमां पुण्यना निमित्त कोई स्नान करे छे. अने कहिं ज्ञानवान् आचार्य शिष्योने ब्रह्मविद्यानो उपदेश करे छे, ते ब्रह्मविद्याने प्राप्त थइने ते वनथी नीकळी जाय छे.

ए रीतिए स्वप्नमां अगृधनामे देव क्षणमात्रमां नाना आश्चर्यरूप पदार्थ ते (संसारना) वनमां देखतो हवो. तेने स्वप्नमां एवी प्रतीति थई जे,–'हुं अनंतकालनो आ वनमां 'स्थित छुं. आ वननो कदि उच्छेद थाय नहि. कदाचित् 'वननो माली (ईश्वर) चारे मुखथी नाना बीज (जीवोनं 'प्रारब्ध) कहाडीने वननी उत्पत्ति करे छे; अने जलसिंचनथी '(सुखदुःखादि भोग दई) पालन करे छे; अने कदाचित घोर 'हास्य करीने मुखथी अग्नि कहाडीने वननो दाह (संहार) 'करे छे. वननी उत्पत्ति साथे मारी उत्पत्ति थाय छे, अने 'वनना दाह साथे मारो दाह थाय छे. अने सर्व वननो दाह 'करीने ते वनमाली (ईश्वर) एक ज रहे छे. तेना शरीरमां 'वननां बीज रहे छे.' ए प्रतीति, स्वप्नवेदना श्रवणथी, ते अगृधदेवताने स्वप्नविषे ज थई.

३३२. (अगृधदेवनो स्वप्नमां गुरुसह मिलाप.)

त्यारे वारंवार पोतानुं जन्ममरण सांभळीने तेणे विचार कर्यो जे,–कोई प्रकारे वननी बहिर् नीकळी जाउं, अने वननी बहिर् नहि पण नीकळुं, तोपण मारो चंडाल(जीव)भाव दूर थई जाय, अने देव(ब्रह्म)भाव सदा बन्यो रहे. ते अन्य तो कोई उपाय, वनथी नीकळवानो छे नहि. ब्रह्मविद्यानो उपदेश करवावाळा आचार्य पोताना शिष्यांने वननी बहिर् कहाडे छे. ए विचारीने स्वप्नकालमां ज ते अगृधदेव आचार्यने प्राप्त थयो. ते विधिपूर्वक प्राप्त थयो जे शिष्य, तेने आचार्य, देववाणीरूप मिथ्याग्रंथ, उपदेश करता हवा.

३३३. (अगृवदेवअर्थ नवीन ग्रंथ. ३३३ थी ४५२ पर्यन्त.)

जे संस्कृतग्रंथ, मिथ्याआचार्ये, मिथ्याशिष्यने उपदेश कर्यो, ते ग्रंथने भाषा करीने लखिये छिये.

संस्कृत ग्रंथनी भाषा करवामां मंगल(आचरण) करिये छिये. केमके मंगलाचरण करवाथी, ग्रंथनी समाप्तिनां प्रतिबंधक जे विघ्न छे, तेओनो नाश थाय छे. [विघ्न नाम पापनुं छे.] पापथी शुभकार्यनी समाप्ति थाय नहि. ते पापनो मंगलथी नाश थाय छे. अने जे पापरहित होय छे ते पण ग्रंथना आरंभमां मंगल अवश्य करे. केमके, जो ग्रंथारंभमां मंगल न कर्युं होय तो, ग्रंथकर्ताविषे, पुरुषोने नास्तिकभ्रान्ति थईने ग्रंथमां प्रवृत्ति थाय नहि.

ते मंगल त्रण प्रकारनां छे. एक वस्तुनिर्देशरूप छे, अने बीजुं नमस्काररूप छे, अने त्रीजुं आशीर्वादरूप छे. सगुण अथवा निर्गुण जे परमात्मा ते वस्तु कहेवाय छे, तेना कीर्तननुं नाम **वस्तुनिर्देश** कहेवाय छे. पोतानुं अथवा शिष्योनुं जे वांछित वस्तु तेनी प्रार्थनानुं नाम **आशीर्वादरूप मंगल** कहेवाय छे. ते पोताना वांछितनुं प्रार्थन (नीचेना) चतुर्थ दुहामां स्पष्ट छे; शिष्यना इष्टनुं प्रार्थन पंचम दुहामां स्पष्ट छे.

३३४. गणेश अने देवीने ईश्वरता पुराणमां प्रसिद्ध छे. एथी अनीश्वरनुं चिंतन नथी. अने पुराणमां गणेशनो जे जन्म छे ते जीवनी पेठे कर्मनुं फल नथी. किन्तु रामकृष्णादिकनी पेठे भक्तजनना अनुग्रहसारू परमात्मानो ज आविर्भाव होय छे. ए व्यासभगवानno परम अभिप्राय छे. आ स्थानमां आ रहस्य छेः—परमार्थदृष्टिए जीव पण परमात्माथी भिन्न नथी. परंतु जन्ममरणादिक बंधनो आत्माविषे जे

अध्यास ते जीवनुं जीवत्व छे. ते जन्मादिक बंध गणेशादिकने आत्मामां प्रतीत थाय नहि. एथी (तेओ) जीव नहि. ए रीतिए गणेशादिकने ईश्वरता छे. एथी ग्रंथना आरंभमां तेओनुं चिन्तन योग्य छे. नानारूप ईश्वरनुं जे कथन छे, ते सर्वने ईश्वरताद्योतन करवा सारू छे. अने ईश्वरभक्ति अने गुरुभक्ति विद्यानी प्राप्तिनुं मुख्य साधन छे, ए अर्थने पण द्योतन करवासारू छे.

(मिथ्या शिष्यने मिथ्या आचार्ये उपदिष्ट मिथ्या ग्रंथ.)

३३५. अथ निर्गुणवस्तुनिर्देशरूप मंगल. दुहो.
जे विभु सत्य प्रकाशथी, प्रकाशे ज रवि चंद्र;
ते साक्षी हुं बुद्धिनो, शुद्धरूप आनंद. १.
अथ सगुणवस्तुनिर्देश मंगल. दुहो.
नाशे विघ्न समूलथी, श्रीगणपतिनु नाम;
जे चिन्तन विण थाय नहि, देवो पेरू काम २.
अथ नमस्काररूप मगल. सोरठो.
असुरसंहारक राम, लक्ष्मीपार्वतीपति;
तेने मुज प्रणाम, भक्तोने संतत भजे. ३.
अथ स्ववांछित प्रार्थनरूप आशीर्वाद मंगल. दुहो.
जे शक्तिनी शक्ति लई, करे ईश आ साज,
वसो ते ज मुज वाणीमां, ग्रंथसिद्धिने काज. ४.
अथ शिष्यवांछित प्रार्थनरूप आशीर्वाद. दुहो.
बंधहरण, सुखकरण, श्री दादू दीनदयाल;
भणे सुणे जे ग्रंथ आ, तेनो हरो जंजाल. ५.

[१८५. टीका, त्रिपुरवधमां ए वार्ता प्रसिद्ध छे.] मयदानवरचित 'त्रिपुर'ना नाशसारू महादेव प्रवृत्त थया, परंतु तेमां जय थयो नहि. पछी सर्वदेवसहित महादेवे विघ्नहर गणपतिने पूज्या. त्यारे महादेवनो विजय थई देवकार्य सिद्ध थयुं. इत्यादि पुराणमां कथा छे.

३३६. अथ वेदान्तशास्त्रकर्ता आचार्यने नमस्कार.

कवित.

वेदवादवृक्षवन, भेदवादी वायु आवी,
पकडी हलावी क्रिया-कंटक पसारीने;
सरल सुशुद्ध शिष्य कंज वळी तोडी पाडी
शूलोमां भ्रमावे, भ्रमे पोते तेने फाडीने;
देखी सुपथिक भगवान; जाणी अनुचित,
अंकमां उठावे, ध्याये, कृपासरूप धारीने;
सूतनो वनावी जाल वननो विभाग कर्यो
करे छे प्रणाम तेने, निश्चल पोकारीने. ६.

टीकाः—जेम वायु वनमां पेसीने वृक्षोने हलावीने तेओना कंटक प्रसारीने सुंदर कमलोनां पुष्पोने स्वस्थानथी तोडीने कंटकोविषे भ्रमावे छे. ते भ्रमतां पुष्पोने देखीने पथिक(वटेमार्गी)ना मनमां आम आवे जेः—ए सुंदर कमल आ स्थानने योग्य नथी, किन्तु उत्तम स्थान योग्य छे. ए विचारीने ते

१८६. आचार्यशब्दार्थ अने लक्षण,—

आम्नायतत्त्वविज्ञानात् चराचरसमानतः ।
यमादियोगसिद्धत्वात् आचार्य इति कथ्यते ॥

आम्नाय (वेद)ना तत्त्वविज्ञानथी, चरअचर समानथी, अने यमादि योगना सिद्धत्वथी 'आचार्य' एम कहेवाय छे.

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेत् द्विजः ।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥ मनुः ॥

जे द्विज शिष्यने उपवीतसंस्कार करीने, संकल्प (वैदिकविधानज्ञापक शास्त्र-सहित) सरहस्य वेद शिखवे छे, तेने आचार्य कहे छे.

आचिनोति च शास्त्रार्थमाचारे स्थापयत्यपि ।
स्वयमाचरते यस्मादाचार्यस्तेन कथ्यते ॥

अर्थः—जे (गुरु) शास्त्रना अर्थने (पोते)परिपूर्ण जाणे छे. अने (लोकोने) (शास्त्रोक्त) आचारविषे स्थापे पण छे, अने पोते पण (शास्त्रोक्त आचारने) आचरे छे, तेणेकरी आचार्य कहेवाय छे. ए लक्षण वेदान्तना आचार्यनुं छे.

पुष्पोने उठावी ले, अने फरी विचार करे जे, आगळ पण पवन, पुष्पोने तोडीने कंटकोविषे भ्रमण करावशे, एथी एवो उपाय करूं, जेथी वायु पुनः पुष्पोने कंटकोमां भमावे नहि एम विचारीने सूत्रना जालथी कंटकयुक्त वृक्षोनो विभाग करी दे. ते जालथी पुष्पनो कंटकोमां प्रवेश थाय नहि.

३३७. तेम भेदवादी आचार्यरूप जे वायु छे, ते वेदरूपी वनमां 'वाद' नाम अर्थवादरूप जे कंटकसहित वृक्ष छे ते-उपरथी सकामकर्मरूप कंटक प्रवृत्त करीने, 'सरल' नाम कपटरहित अने 'सुशुद्ध' नाम अतिशुद्ध-रागादि दोषरहित जे शिष्यरूप कमलपुष्प तेओने शमादिरूप जे स्वस्थान त्यांथी तोडीने, सकामकर्मरूप कंटकोविषे भ्रमावतां जोईने, पथिक-समान व्यापक विष्णुए विचार कर्यो जे, ए शुद्ध पुरुष आस्थान योग्य छे नहि, किन्तु मारा स्वरूपने प्राप्त थवा योग्य छे. एवुं विचारीने व्यासरूप धारीने, ते शिष्योने उपदेश-रूप अंकमां (खोळामां) स्थापन कर्या. जेम पुरुषना अंकमां स्थित पुष्पने पवन उडाववाविषे समर्थ नथी, तेम ब्रह्मनिष्ठ आचार्यना उपदेशमां स्थित पुरुषोने भेदवादी वहेकाववामां समर्थ नथी. एथी उपदेश ज 'अंक' नाम खोळो छे. पुनः व्यासभगवाने विचार कर्यो जे, आगल पण अन्य पुरुषोने सकामकर्मरूप कंटकोमां भेदवादी भ्रमावशे; एथी एवो उपाय थाय के जेथी आगळ शिष्य भ्रमे नहि. ए विचारीने सूत्ररूपी जालथी (वा फोटथी) वेदनां वाक्यरूप वृक्षोना विभाग करी दीधा.

जेम वनमां बे प्रकारना वृक्ष होय,-सकंटक अने कंटक-रहित,-तेओनो जालथी विभाग करी दे, अने (ते) जालथी, पुष्पनो, कंटकसहित वृक्षमां, प्रवेश थाय नहि. तेम वेदमां बे

प्रकारनां वाक्य छे,-एक तो कर्मनी स्तुति करीने कर्मविषे बहिर्मुख पुरुषनी प्रवृत्ति करावे छे, अने बीजां कर्मना फलने अनित्य बोधन करीने पुरुषनी निवृत्ति करावे छे.

३३८. ते वाक्योनो **वेदव्यासे** विभाग करीने सूत्रोथी आ बोधन कर्युं जे,—**सर्व वाक्योनुं निवृत्तिमां तात्पर्य छे, प्रवृत्तिमां कोई वाक्यनुं पण तात्पर्य नथी.** जे प्रवृत्तिबोधक वाक्य छे, तेओनुं पण,—स्वाभाविक अने निषिद्ध जे प्रवृत्ति छे, तेमांथी निवृत्ति करीने, विहितप्रवृत्तिए अंतःकरण शुद्ध थईने, (पछी) तेनाथी पण निवृत्त थईने, ज्ञाननिष्ठ पुरुष थाय, ए रीतिए-निवृत्तिमां तात्पर्य छे. अने अर्थवादवाक्ये जे कर्मनुं फल बोधन कर्युं छे, ते गुड जिह्वान्यायथी कर्युं छे. फलमां तेओनुं तात्पर्य नथी, ए अर्थ सूत्रोपकरी व्यासजीए बोधन कर्यो छे. ते अर्थने सूत्रोए जाणीने पुरुषनी सकामकर्ममां प्रवृत्ति थाय नहि. जेम सूतरनो जाल पुरुषोनो कंटकोथी निरोध करे छे, तेम व्यासभगवाननां सूत्र सकामकर्मथी निरोध करे छे; एथी जालरूप कह्यां.

३३९. दुहा.

कोईक शिष्य उदारमति, गुरुने शरणे झूकी,
प्रश्न कर्यो कर जोडीने, पादपद्म शिर मूकी. ७.

[शिष्य उवाच]

भो भगवन् ! हुं कोण (१)? आ संसृति कोणथी छे य(२)?
हेतु मुक्तिनो ज्ञान, वा कर्म उपासन बेय. (३)? ८.

टीका.—हे भगवन् ! हुं कोण छुं-देहस्वरूप छुं अथवा देहथी

१८७. कोई बाळकने रोग मटाडवा औषध पावु होय तेने गोळ के साकरथी जीभ उपर मधुररसनी बुद्धि उपजावी कटु औषध पाई दे छे तेम.

भिन्न छुं ? हुं मनुष्य छुं, अने मारुं शरीर छे, ए ये प्रतीति थाय छे. एथी मने संशय छे. अने देहथी भिन्न एम जो आप कहो तो, हुं कर्ता-भोक्ता छुं, अथवा अक्रिय छुं ? जो अक्रिय कहो तो पण, सर्व शरीरविषे एक छुं अथवा नाना छुं ? ए (दुहामांना) प्रथम प्रश्ननो अभिप्राय छे.

अने (बीजो प्रश्न) आ संसृति नाम संसार तेनो कर्ता कोण छे ? एनो आ अभिप्राय छेः-आ संसारनो कोई कर्ता छे अथवा पोते ज थाय छे ? जो कर्ता कहो तो पण कोई जीव कर्ता छे अथवा ईश्वर छे ? जो ईश्वर कहो तो पण एक देशमां ते ईश्वर स्थित छे अथवा व्यापक छे ? जो व्यापक छे तो पण, जेम व्यापक आकाशथी जीव भिन्न छे तेम, ते ईश्वरथी जीव भिन्न छे अथवा अभिन्न छे ?

अने (त्रीजो प्रश्न) मुक्तिनो हेतु ज्ञान छे, अथवा कर्म छे, अथवा उपासना छे ? अथवा बे छे ? जो बे कहो तो पण, ज्ञान (अने) कर्म छे, अथवा ज्ञान (अने) उपासना छे, अथवा कर्म (अने) उपासना छे ?

२४०. श्रीगुरुरुवाच. अर्ध दुहो.

(प्रथम प्रश्न.-हुं कोण छुं तेनुं उत्तर. २४० थी २६९ पर्यन्त.)

सत चित आनंद एक तुं ब्रह्म अजन्म असंग;

टीकाः—शिष्ये जे प्रथम प्रश्न कर्यो तेनुं उत्तर कहे छेः— 'तुं सत् चित् आनंदरूप छुं.' ए कहेवाथी (तेने) देहथी भिन्न कर्यो. केमके देह असत्‌रूप छे, अने जडरूप छे, अने दुःखरूप छे.

अने कर्ता भोक्ता पण नथी केमके, जेनाविषे दुःख थाय ते दुःखनी निवृत्ति अने सुखनी प्राप्तिअर्थ क्रिया करे ते कर्ता कहेवाय छे. ते ताराविषे दुःख छे नहि, एथी

दुःखनी निवृत्तिसारु (तुं) क्रियानो कर्त्ता नहि. तुं आनंदस्वरूप छे, पथी सुखनी प्राप्तिना निमित्त पण तुं क्रियानो कर्त्ता नहि. जे कर्ता होय ते ज भोक्ता होय छे. तुं कर्ता नहि पथी भोक्ता पण नहि. पुण्यपापनुं जनक जे कर्म छे तेनो कर्ता अने सुखदुःखनो भोक्ता स्थूलसूक्ष्मसंघात छे, तुं नथी. तुं संघातनो साक्षी छुं.

३४१. पथी ज आत्मा एक छे, नाना नथी. जो आत्मा कर्ता भोक्ता होय, तो तो नाना होय; केमके कोई सुखी छे, कोई दुःखी छे. अने कर्ता भोक्ता एक ज अंगीकार थाय, तो एकने सुख थवाथी तथा दुःख थवाथी, सर्वने सुख तथा दुःख थवुं जोइये. पथी भोक्ता नाना छे; अने आत्मा भोक्ता छे नहि पथी एक छे.

३४२. (आत्माविषे सांख्यमतनो सिद्धान्त.)

सांख्यना मतमां आत्माने कर्ता भोक्ता अंगीकार नहि करीने, नाना पुरुषने जे अंगीकार कर्या, ते अत्यंत विरुद्ध छे. केमके सांख्यनो आ सिद्धान्त छेः–सत्त्व रज तम· गुणनी समअवस्थानुं नाम प्रधान (सांख्यमां) कहे छे. ते 'प्रधान' प्रकृति छे, विकृति नथी. [प्रकृति नाम उपादानकारणनुं छे, अने विकृति नाम कार्यनुं छे] ते 'प्रधान,' महत्तत्त्वनुं उपादान कारण छे, पथी प्रकृति छे; अने अनादि छे, पथी विकृति नथी. अने महत्तत्त्व, अहंकार, पंचतन्मात्रा, ए सात 'प्रकृति-विकृति' छे. उत्तर, उत्तरनी, प्रकृति छे, अने पूर्व, पूर्वनी विकृति छे. तन्मात्रा पण (पंचीकृत पंचमहा)भूतोनी प्रकृति छे. ए रीतिए सात 'प्रकृतिविकृति' छे, अने पंचभूत अने दश इन्द्रियो अने मन ए सोळ 'विकृति' छे, प्रकृति नहि. अने पुरुष प्रकृतिविकृति नथी. केमके

जो (ते पुरुष) कोई पदार्थनो हेतु होय, तो प्रकृति होय; अने कार्य होय, तो विकृति होय. ते पुरुष कोईनो हेतु नथी, एथी प्रकृति नथी; अने कार्य नथी, एथी विकृति नथी. एथी पुरुष असंग छे. ए रीतिए सांख्यमतमां पंचविंश तत्त्व छे. [तत्त्व नाम पदार्थनुं छे.] सांख्यमतमां ईश्वरनो अंगीकार नथी. (ए मतमां) स्वतंत्र प्रकृति जगत्नुं कारण छे. अने पुरुषना भोगमोक्षने निमित्त, प्रकृति ज प्रवृत्त थाय छे, पुरुष नहि. प्रकृतिना विषयरूप परिणामथी पुरुषने भोग थाय छे; अने बुद्धिद्वारा प्रकृतिना विवेकरूप परिणामथी मोक्ष थाय छे. यद्यपि पुरुष असंग छे तेनाविषे भोगमोक्ष बने नहि; तथापि ज्ञान, सुखदुःख, रागद्वेषथी आदि लईने बुद्धिना परिणाम छे, ते बुद्धिनो आत्मासाथे अविवेक छे, विवेक नथी; एथी आत्मामां आरोपित बंधमोक्ष छे, परमार्थथी नथी. अविवेक-सिद्ध जे आत्मामां भोग तेथी ज सांख्यमतमां आत्माने भोक्ता कहे छे. अने परमार्थथी आत्मा भोक्ता नथी, बुद्धि ज भोक्त्री छे; बुद्धि आत्माथी भिन्न छे;-ए ज्ञाननुं नाम विवेक छे. (अने) तेना अभावनुं नाम अविवेक छे. ए रीतिए सांख्यमतमां आत्मा असंग छे. अने सुखादिक बुद्धिना परिणाम छे, एथी बुद्धिना धर्म छे, अने आत्मा नाना छे.

(अवे सिद्धान्ती कहे छे के) ए वार्त्ता अत्यंत विरुद्ध छे. जो सुखदुःख आत्माना धर्म होय तो, सुखदुःखनो प्रति-शरीर भेद होवाथी, आत्मानो भेद होय. ते सुखदुःख आत्माना धर्म तो छे नहि. किन्तु बुद्धिना धर्म छे, एथी सुखदुःख-ना भेदथी बुद्धिनो ज भेद सिद्ध थाय छे, आत्मानो भेद सिद्ध थाय नहि. जेम एक ज व्यापक आकाशमां नाना उपाधिना धर्म, उपाधि अने आकाशना अविवेकथी प्रतीत

थाय छे, तेम एक ज व्यापक आत्मामा, नाना बुद्धिना धर्म, अविवेकथी प्रतीत थाय छे ए वात्ता सांख्यमतमा अंगीकार करवी उचित छे आत्माने असंग मानीने नाना अगीकार करवा (ए) निष्फल छे अने कोई आत्मा मुक्त छे, अन्याने बध छे, एवी रीतिए बधमोक्षना भेदथी आ आत्माना भेद अगीकार करे तो ते पण बने नहि केमके जो बधमोक्ष आत्मामा अगीकार करे तो बधमोक्षना भेदथी आत्माना भेद सिद्ध थाय ते बधमोक्ष साख्यमतमा असग आत्मामा अगी॰ कार कर्या नथी किन्तु बुद्धिना अविवेकथी बध अगीकार कर्या छे, अने बुद्धिना विवेकथी बधनो मोक्ष अगीकार कर्यो छे जे वस्तु अविवेकथी थाय, अने विवेकथी दूर थाय ते वस्तु, रज्जुसर्पनी पेठे, मिथ्या होय छे आत्माविषे पण बुद्धिना अविवेकथी बध छे, अने (ते) विवेकथी दूर थाय छे एथी बध मिथ्या छे जेम बध मिथ्या छे, तेम आत्माना मोक्ष पण मिथ्या छे जेमा बध सत्य होय तेना ज मोक्ष सत्य होय छे, अने आत्मामा बध मिथ्या छे एथी मोक्ष पण मिथ्या ज छे ए रीतिए मिथ्या जे बधमोक्ष ते आकाशनी पेठे (उपाधिने लीधे) एक आत्मामा पण बने छे, तेओना भेदथी आत्माना भेद सिद्ध थाय नहि एथी सांख्यमतमा आत्माना भेद असगत छे

३४३ (आत्माविषे न्यायनु मत)

तेम न्यायमतमा पण आत्माना भेद असगत छे केमके न्यायना सिद्धान्त आ छे—सुख, दु ख, ज्ञान, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, ज्ञानना सस्कार, सख्या, परिमाण, पृथक्त्व, सयोग, विभाग, ए चतुर्दश (१४) गुण जीवरूप आत्मा विषे छे सख्या, परिमाण पृथक्त्व, सयोग विभाग,

ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न, ए अष्ट (८) गुण ईश्वरमां छे. (तेमां) आटलो भेद छेः-ईश्वरनां ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न, नित्य छे; अने जीवनां (ए) त्रणे अनित्य छे, ईश्वर व्यापक छे अने नित्य छे; जीव नाना छे अने संपूर्ण व्यापक छे, नित्य छे. अने जीवनु ज्ञान अनित्य छे, एथी ज्यारे ज्ञानगुण होय त्यारे तो जीव चेतन छे, अने ज्ञानगुणनो नाश थाय त्यारे जडरूप रहे छे. ईश्वर (अने) जीवनी पेठे, आकाश, काल, दिशा, मन, नित्य छे.

अने पृथ्वी जल तेज वायुना परमाणु, नित्य छे. जालियामां जे सूक्ष्म रज प्रतीत थाय छे, तेना छट्ठा भागनुं नाम **परमाणु** छे. ते परमाणु आत्मानी पेठे नित्य छे. अन्य पण जातिथी आदि लईने केटलाक पदार्थ न्यायमतमां नित्य छे. वेदविरुद्ध सिद्धान्तनु बहु लखवानो जिज्ञासुने उपयोग नहि एथी लख्यु नथी. 'हु मनुष्य छुं, ब्राह्मण छुं,' एवी जे देहविषे आत्मभ्रान्ति, तेथी रागद्वेष थाय छे, ते रागद्वेषथी धर्मअधर्मना निमित्त (पुरुष) प्रवृत्त थाय छे, तेओथी शरीरना संबंध(जन्म) द्वारा सुखदुःख थाय छे. ए रीतिए न्यायमतमां आत्माने ससारनो हेतु भ्रान्तिज्ञान छे.

ते भ्रान्तिज्ञान **तत्त्वज्ञान**थी दूर थाय छे. ['देहादिक सपूर्ण पदार्थोथी आत्मा भिन्न छे,' ए निश्चयनुं नाम 'तत्त्वज्ञान' छे] ते तत्त्वज्ञाने 'हु ब्राह्मण छु, मनुष्य छु' ए भ्रान्ति दूर थाय छे भ्रान्तिना नाशथी रागद्वेषनो अभाव थाय छे, तेओना अभावथी धर्मअधर्मना निमित्त प्रवृत्तिनो अभाव थाय छे, प्रवृत्तिना अभावथी शरीरसबधरूप जन्मनो अभाव थाय छे. अने प्रारब्धना भोगथी नाश थाय छे. [शरीरसबधना अभावथी एकविंश दुःखनो नाश थाय छे.] ते **दुःखना**

नाशरूप ज न्यायमतमां मोक्ष छे. एक शरीर (१), अने श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, रसना, घ्राण, मन, ए षट् इन्द्रिय (६), अने ए षट् इन्द्रियना विषय (६), अने षट् इन्द्रियनां ज्ञान (६), अने सुखदुःख (२)=२१, ए एकवीस दुःख छे. शरीरादिक पण दुःखनां जनक छे, एथी दुःख कहेवाय छे. अने स्वर्गादिकनुं सुख पण नाशना भयथी दुःखनो हेतु छे एथी दुःख कहेवाय छे.

यद्यपि न्यायमतमां श्रोत्र अने मन नित्य छे, तेओनो नाश बने नहि. तथापि जे रूपेकरीने, श्रोत्र मन दुःखना हेतु छे, ते रूपनो नाश थाय छे. (जे) पदार्थोना ज्ञाननी उत्पत्ति करीने (तेओ) दुःखनां हेतु छे, ते पदार्थोना ज्ञान मोक्षकालमां श्रोत्र अने मन करे नहि. केमके, कर्णगोलकमां स्थित जे आकाश छे, ते श्रोत्र कहेवाय छे, ते कर्णगोलकनो मोक्षकालमां अभाव छे, एथी आकाशरूप श्रोत्रइन्द्रिय छे खरी, परंतु गोलकना अभावथी ज्ञान थाय नहि ए रीतिए ज्ञाननुं जनक जे श्रोत्रइन्द्रियनुं स्वरूप ते ज दुःख छे अने तेनो ज नाश थाय छे.

अने आत्मानीसाथे मनना संयोगथी ज्ञान थाय छे, ते मननो संयोग, न्यायसिद्धान्तमां, एकनी क्रियाथी अथवा बेनी क्रियाथी थाय छे. जेम बाज (पक्षी) अने वृक्षनो संयोग एक पक्षीनी क्रियाथी थाय छे, अने बे मेष(घेटाओ)नो संयोग बेनी क्रियाथी थाय छे; तेम विभु आत्मामां तो क्रिया कदापि थाय नहि, अने मोक्षकालमां मनमां पण क्रिया थाय नहि. एथी संयोगवत् मननो ज मोक्षकालमां अभाव थाय छे.

२४४. अने कोई (न्यायनो) एकदेशी त्वचानीसाथे मनना संयोगने ज्ञाननो हेतु कहे छे, आत्माना संयोगने नहि. सुषुप्तिमां पुरीतत नामनी नाडीविषे मन प्रवेश करे छे, त्वचा-

साथे मननो संयोग छे नहि, पथी सुषुप्तिमां ज्ञान थाय नहि. तेओना मतमां त्वचासाथे संयोगवाळुं मन ज ज्ञानद्वारा, दुःखनो हेतु होवाथी. दुःख छे, केवल मन नहि. मोक्षमां त्वचानो नाश होवाथी तेनीसाथे संयोग छे नहि, पथी ज्ञान थाय नहि. मोक्षकाळमां मन छे खरूं, परंतु दुःखनो हेतु जे ज्ञाननुं जनक, त्वचासाथे संयोगवाळुं मन, ते(ज्ञानजनक मन)नो, संयोगना नाशथी, नाश थाय छे. ए रीतिए मोक्षकालमां, परमात्माथी भिन्न ज, दुःखरहित थईने, व्यापक आत्मा जडरूप स्थित थाय छे. केमके (जे) ज्ञानगुणथी आत्मानो प्रकाश थाय छे, ते जीवनुं ज्ञान सपूर्ण इन्द्रियजन्य ज छे, नित्य छे नहि. ते इन्द्रियजन्य ज्ञाननो मोक्षकालमां नाश थाय छे पथी प्रकाशरहित जडरूप थईने आत्मा, मोक्षकालमां, स्थित थाय छे. ए **न्यायनो सिद्धान्त** छे.

३४५. अने न्यायमतमां पूर्वउक्त प्रकारे सुखदुःख अने बंधमोक्ष आत्माने थाय छे, पथी आत्मा नाना छे, अने संपूर्ण व्यापक छे. सर्व अल्प पदार्थोसाथे जे संयोग ए ज न्यायमतमां **व्यापकनुं** लक्षण छे; अने स्वजातीय, विजातीय, अने स्वगतभेदनो अभाव (ए) व्यापकनुं लक्षण नथी. केमके न्यायमतमां यद्यपि आत्मा निरवयव छे, पथी स्वगतभेदनो तो तेविषे अभाव छे खरो, परंतु सजातीय अने विजातीय भेदनो अभाव नथी. किन्तु सजातीय जे बीजो आत्मा, तेनो भेद आत्मामां छे; अने विजातीय घटादिकनो भेद पण आत्मामां छे. पथी स्वजातीयविजातीयस्वगतभेदनो अभाव व्यापकनुं लक्षण नहि; किन्तु सर्व अल्प पदार्थोसाथे संयोग ज व्यापकनुं लक्षण छे.

१८८. देशकालवस्तुकृत अंतथी रहित ए लक्षण पण व्यापकनुं छे.

एविषे कोई शंका करे छे:-न्यायमतमां आत्मानी पेठे आकाश, काल, दिशा, पण व्यापक छे; अने परमाणु सूक्ष्म छे, निरवयव छे; तेओनी साथे सर्व व्यापकपदार्थोनो संयोग बने नहि. केमके, जो परमाणु सावयव होय त्यारे तो कोई देशमां आत्मानो संयोग थाय, अने कोई देशमां अन्य व्यापक पदार्थोनो संयोग थाय. ते परमाणु सावयव छे नहि किन्तु निरवयव छे, अने अतिसूक्ष्म छे. तेओनीसाथे एक ज देशमां सर्वव्यापक पदार्थनो संयोग थशे,-ते बने नहि. केमके एकना संयोगथी जे स्थान निरुद्ध (रोकायलुं) छे, ते देशमां अन्य पदार्थनो संयोग बने नहि. एथी नाना पदार्थोने व्यापकता बने नहि. एक ज कोई पदार्थ व्यापक बने छे.

ए शंका बने नहि. (एम न्यायमतवाळा कहे छे.) केमके सावयव वस्तुनो जे संयोग छे, ते तो अन्यना संयोगनो विरोधी छे.-जेम जे पृथ्वीदेशमां हस्तनो संयोग थाय, ते (पृथ्वी) देशमां पादनो संयोग थाय नहि. अने निरवयवनो संयोग स्थानने रोके नहि, एथी अन्यना संयोगनो विरोधी नहि, ए वार्त्ता अनुभवसिद्ध छे. जेम घटना जे देशमां आकाशनो संयोग छे, ते देशमां ज कालनो अने दिशानो संयोग पण छे. जो कोई घटनो (एक) देश, आकाशकालदिशाथी बहिर् होय; तो ते देशमां, आकाशकालदिशानो संयोग थाय नहि; ते बहिर् तो कोई देश छे नहि, किन्तु सर्व पदार्थोना सर्व देश, आकाशकालदिशामां ज छे, एथी सर्व पदार्थोना सर्व देशोविषे आकाशकालदिशानो संयोग छे. ए रीतिए परमाणुविषे पण एक ज देशमां नाना निरवयव विभुनो संयोग बने छे, कोई दोष नथी. एथी आत्मा नाना छे, अने संपूर्ण (सर्व) व्यापक छे.

३४६. (न्यायमतनुं खंडन.)

'सर्वेनो सर्व पदार्थो साथे'[१८९] संयोग छे, ए न्यायनो सिद्धान्त छे, ते समीचीन नथी. केमके जो व्यापक आत्मा नाना अंगीकार करिये तो सर्व शरीरमां सर्व आत्मानो संबंध अंगीकार करवो पडशे, पथी कोण शरीर कोनुं छे ए निश्चय नहि थशे, किन्तु एक एक आत्मानां सर्व शरीर थवां जोइये. जो एम कहेः-'जेना कर्मथी जे शरीर उत्पन्न थयुं छे, ते आत्मानुं ते शरीर छे'-ते पण बने नहि. केमके जे शरीरथी कर्म थाय छे, ते कर्म करवावाळा पूर्व शरीरमां पण सर्व आत्मानो संबंध छे, एथी कर्म पण सर्व आत्मानां ज थशे, एकनां नहि. अने एम कहेः-जे आत्मानुं मनसहित शरीर छे, ते आत्मानुं ते शरीर छे,-ते पण बने नहि. केमके शरीरनी पेठे मननीसाथे पण सर्व आत्मानो संबंध छे. तेविषे आ निश्चय थाय नहि जे कियुं मन किया आत्मानुं छे, किन्तु सर्व आत्मानां सर्व मन थवां जोइये. तेम इन्द्रिय पण सर्व आत्मानां सर्व ज थशे. बहिरना पदार्थोविषे 'आ मारूं छे, आ अन्यनुं छे,' एवो व्यवहार पण शरीरनिमित्तक छे. ते शरीर सर्व आत्मानां सर्व छे, एथी बहिरना पदार्थ पण सर्व आत्मामां सर्व थया जोइये.

अने जो (न्यायमतवाळा) एम कहेः-'जे आत्माने जे शरीर'मां अहंबुद्धि अने ममबुद्धि होय, ते ज आत्मानुं ते शरीर 'छे. ते अहंबुद्धि अने ममबुद्धि एक छे, एथी सर्व आत्मामां 'रहे नहि, किन्तु एक धर्म एक ज धर्मीविषे रहे छे. एथी 'एक ज आत्मानुं शरीर छे. जे आत्मानुं जे शरीर छे, ते

१८९. 'सर्व आत्मानो व्यापक वस्तुथी भिन्न परिच्छिन्न सर्व देह इन्द्रिय मन परमाणु आदिक वस्तुसाथे संयोग छे.' एवो ए वाक्यनो अर्थ छे. पं. पी. पु.

'शरीरना संबंधी मन इन्द्रिय अने बहिरना पदार्थ ते आत्माना 'छे. एथी व्यापक नाना आत्मा अंगीकार करवामां पण 'दोष नथी.'

ते वार्त्ता पण बने नहि केमके, यद्यपि अहंबुद्धि एक देहमां एक ज आत्माने थाय छे, तथापि ते न्यायमतमां बने नहि; किन्तु सर्व आत्माने एक देहमां अहंबुद्धि थई जोइये केमके, न्यायमतनां बुद्धिनाम 'ज्ञान'नुं छे. ते ज्ञान आत्मा अने मनना संयोगथी थाय छे. ते मननीसाथे संयोग सर्व आत्मानो छे. एथी मनना संयोगथी जेम एक देहमां एक आत्माने अहंबुद्धि थाय छे, तेम एक देहमां सर्व आत्माने अहंबुद्धि थई जोइये. जो आम कहेः—यद्यपि मननो संयोग तो सर्व आत्मासाथे छे, तथापि जे आत्मामां ज्ञाननुं जनक अदृष्ट छे, ते आत्माने ज अहंबुद्धि थाय छे. तो पण सर्वने ज ज्ञान थवुं जोइये. केमके, जो व्यापक नाना आत्मा अंगीकार करिये, तो एकशरीरनी शुभअशुभक्रियाथी, शरीरमां स्थित सर्व आत्मामां ज अदृष्ट थवां जोइये. ए वार्त्ता पूर्वे कही आव्या. एथी व्यापक जो नाना आत्मा अंगीकार करिये तो एक देहमां सर्वने सुखदुःखनो भोग थयो जोइये. एथी 'व्यापक 'नाना कर्ताभोक्ता आत्मा छे.' ए न्यायनो सिद्धान्त समीचीन नथी.

३४७. (एविषे वेदान्तनुं मत.)

अने अमारा सिद्धान्तमां तो कर्ताभोक्ता अंतःकरण छे. ते अंतःकरण नाना छे, (अने) व्यापक अने अणु नथीः किंतु शरीरना समान ते अंतःकरणनुं परिमाण छे. दीपकना प्रकाशनी पेठे महत् शरीरने प्राप्त थाय त्यारे अंतःकरणनो विकास थाय छे, अने न्यून शरीरमां संकोच थाय छे. ए वार्ता

(शंकराचार्यकृत) 'चिदानन्ददशश्लोकी' वा 'निर्वाणदशक' उपरि सिद्धान्त(तत्त्व)बिन्दुनामे व्याख्यानमां मधुसूदनस्वामीए प्रतिपादन करी छे. जे अंतःकरणनो जे शरीरसाथे संबंध छे, ते अंतःकरणने ते शरीरेकरी भोग थाय छे.

जो अंतःकरणने व्यापक अंगीकार करिये, तो सर्व शरीर सर्वनां थाय, अने भोग पण सर्वने थाय. (पण) व्यापक अंतःकरण नथी एथी ते दोष नथी. अने अंतःकरणने अणु अंगीकार करिये तो, शरीरना एक देशमां अंतःकरण रहे छे एवुं अंगीकार करवुं पडशे. ते वार्त्ता बने नहि. केमके, जो एक कालमां ज पाद अने मस्तकमां कंटकवेध थाय तो बंने स्थानमां एक ज काले पीडा थाय छे, ते न थवी जोइये. केमके, जो अंतःकरण अणु होय तो, एक ज स्थानमां एक कालमां रहे; एथी जे स्थानमां अंतःकरण होय, ते स्थानमां ज पीडा थई जोइये, बंने स्थानमां नहि. (पण तेम थाय छे) एथी अंतःकरण व्यापक अने अणु नथी. किन्तु शरीरना समान छे. एथी कोई दोष नथी. [अणु अने व्यापकथी विलक्षण जे छे तेने ज **मध्यम परिमाण** कहे छे.]

३४८. (*आत्माविषे नवीन न्यायमत.*)

अने न्यायमतमां कोई नवीने आवुं अंगीकार कर्युं छेः- आत्मा नाना छे, कर्त्ताभोक्ता छे, व्यापक नथी, एथी भोगनो संकर (गोळमेळ) नथी. अणु पण नथी, एथी बे स्थानमां पीडानो असंभव पण नथी. किन्तु जेम वेदान्तमतमां अंतःकरण मध्यमपरिमाण छे, तेम आत्मा पण मध्यमपरिमाण छे. तेविषे चतुर्दश (१४) गुण रहे छे.

३४९. (नवीनमतनुं खंडन.)

ते पण समीचीन नथी. केमके, जो आत्माने संकोच-

विकासवाळो अंगीकार करिये तो दीपकनी प्रभानी पेठे आत्मा विकारी, अने विनाशवाळो थशे पछी मोक्षप्रतिपादक शास्त्र अने साधन निष्फल थशे. अने मध्यमपरिमाण अंगीकार करीने, संकोच विकास अगीकार नहि करिये तो, किया शरीरना समान आत्माने अंगीकार करिये ए निश्चय थाय नहि जो मनुष्यशरीरना समान अंगीकार करिये तो ज्यारे आत्मा हस्तीना शरीरने प्राप्त थाय त्यारे (ते हस्तीना) सर्व शरीरमां आत्मा नहि होवाथी. पछी जे देशमां हस्तीने आत्मा छे नहि ते देशमां पीडा नहि थई जोइये. अने हस्तीना शरीरना समान अंगीकार करिये तो तेथी अन्यशरीर महोटां छे तेओना एक देशमां पीडा न थवी जोइये. अने सर्वथी महोटुं कोईनुं शरीर छे नहि, जेना समान आत्मा अंगीकार करिये. अने सर्वथी महोटुं विराट्नुं शरीर छे, तेना समान जो आत्मा अंगीकार करे तो विराट्ना शरीरना अंतर्भूत सर्व शरीर छे, पछी सर्व आत्मानो सर्व शरीरसाथे संबंध थशे. तेनाविषे पूर्वे दोष कह्या ज छे. अने आ नियम छेः-'जे मध्यमपरि-'माण वस्तु होय ते शरीरनी पेठे अनित्य होय छे' पछी आत्मा पण अनित्य थशे. अने अंतःकरणनो तो अमारा (सिद्धान्तीना) मतमां ज्ञानथी नाश थाय छे, पछी अनित्य छे. (ते अंतःकरणनुं) मध्यमपरिमाण अंगीकार कर्याथी दोष नथी. ए रीतिए नवीन तार्किकनुं मत पण समीचीन नथी.

३५०. अने जो कोई आम कहे,-'आत्मा नाना छे अने 'अणु छे' ते वार्त्ता पण बने नहि. केमके, जो आत्माने कर्ता-भोक्ता अंगीकार करिये, तो अंतःकरणना अणुपक्षमां जे दोष कह्यो, ते दोष थशे; अने कर्ताभोक्ता अंगीकार नहि करिये तो नानाआत्माअंगीकार निष्फल थशे. एक ज व्यापक

(आत्मा) सर्व शरीरमां अंगीकार करवा योग्य छे. अने कर्ता-भोक्ता अंगीकार नहि करिये तो (अणुवादीना) पोताना सिद्धान्तनो पण त्याग थशे. केमके अणुवादीनो आ सिद्धान्त छे:-ज्ञानसुखदुःखधर्मथी आदिलईने आत्माना धर्म छे. एथी जो आत्माने अणु अंगीकार करिये तो जे शरीरना देशमां आत्मा छे नहि ते (शरीर)देश मृत समान छे तेविषे पीडादिक नहि थवां जोइये.

३५१. अने जो आम कहेः-'यद्यपि आत्मा तो शरीरना 'एकदेशमां छे, परंतु कस्तूरीना गंधनी पेठे तेनु ज्ञान सर्व 'शरीरमां व्याप्त छे. एथी सर्व शरीरविषे अनुकूलप्रतिकूलना 'संबंधने (आत्मा) अनुभव करे छे.'

ते पण बने नहि केमके आ नियम छेः जेटला देशमां गुणवाळो रहे तेनी बहिर् गुण रहे नहि, किन्तु गुणीमां ज गुण रहे छे. जेम रूप, घटादिकनी बहिर् रहे नहि, तेम आत्माथी बहिर् ज्ञान पण बने नहि. अने कस्तूरीना सूक्ष्म-भाग जेटला देशमां व्याप्त होय एटला देशमां ज गंध व्याप्त होय छे. एथी कस्तूरीनुं दृष्टान्त पण बने नहि. एथी 'आत्मा 'अणु छे' ए पक्ष पण बने नहि.

अने कहिं श्रुतिमां आत्मा अत्यंत अणुथी पण अणु कह्यो छे, ते दुर्विज्ञेय छे एथी कह्यो छे. जेम अत्यंतअणुवस्तुनुं मंद-दृष्टि पुरुषने ज्ञान थाय नहि, तेम बहिर्मुख पुरुषने आत्मानुं पण ज्ञान थाय नहि. एथी अणुना स मा न छे, ए श्रुतिनो अभिप्राय छे अने 'आत्मा अणु छे,' एवो (श्रुतिनो) अभिप्राय नथी. केमके बहु स्थानमां (आत्माने) व्यापकरूप पोते वेदे ज प्रतिपादन कर्यो छे; एथी अणु नथी. ए रीतिए 'व्यापक 'तथा मध्यमपरिमाण अथवा अणु आत्मा नाना छे' ए कहेवुं संभवे नहि.

३५२. परिशेषथी एक व्यापक आत्मा छे, तेविषे धर्म-अधर्म, सुखदुःख, अने बंधमोक्ष जो अंगीकार करिये, तो कोईने सुख अने कोईने दुःख, कोईने बंध अने कोईने मोक्ष एवो व्यवहार नहि थशे. एथी (सिद्धान्ती कहे छे के) धर्मादिक बुद्धिना धर्म छे. यद्यपि बुद्धि जड छे एथी तेविषे पण सुखादिक धर्म बने नहि; तथापि आत्माना धर्म नथी, ए अभिप्रायथी बुद्धिना धर्म कह्या छे; अने बुद्धिना धर्म छे, एनाविषे अभिप्राय नथी. बुद्धि अने सुखादिक आत्मामां अध्यस्त (आरोपित-कल्पित) छे. जे वस्तु जेमां अध्यस्त होय, ते तेमां परमार्थथी होय नहि. जेम सर्प रज्जुमां अध्यस्त छे ते (सर्प) परमार्थथी रज्जुमां छे नहि; तेम बुद्धि अने सुखादिक आत्मामां छे नहि. अने अध्यस्तवस्तु पण कोईनो आश्रय थाय नहि; एथी (अध्यस्त) बुद्धि पण सुखादिकनो आश्रय छे नहि. परंतु अज्ञान तो, शुद्ध चेतनमां अध्यस्त छे; अने अंतःकरण, अज्ञान-उपहित(चेतन)मां अध्यस्त छे; अने अंतःकरणउपहित(चेतन)मां धर्म-अधर्म, सुख-दुःख, बंध-मोक्ष, अध्यस्त छे. ए रीतिए आत्मामां धर्मादिकोनी अधिष्ठानतानो अंतःकरण उपाधि छे. एथी अंतःकरणना धर्म कहेवाय छे.

३५३. (धर्मादिक अंतःकरणउपहित चेतनमां अध्यस्त छे, **विशिष्ट**मां नथी.)

जो अंतःकरणविशिष्टमां धर्मादिक अध्यस्त कहिये तो बने नहि. केमके, विशेषणयुक्तनुं नाम **विशिष्ट** छे. धर्मादिक अध्यासनुं अधिष्ठान जे आत्मा, तेनुं अंतःकरण जो विशेषण अंगीकार करिये तो अंतःकरण पण धर्मसुखादिकनुं अधिष्ठान थशे. ते वार्त्ता बने नहि. केमके, मिथ्यावस्तु (=अंतःकरण) अधिष्ठान थाय नहि. एथी आत्मामां धर्मादिकोना

अध्यासनुं अंत.करण **विशेषण** नहि, किन्तु **उपाधि** छे. **उपाधिनो** आ स्वभाव छे.–पोते तटस्थ हइने जेटला देशमां पोते होय तेटला देशमां स्थित वस्तुने जणावे. अने **विशेषणनो** आ स्वभाव छे'–जेटला देशमां पोते होय तेटला देशमां स्थित वस्तुने पोतानासहित जणावे. [विशेषणवान्‌ने **विशिष्ट** कहे छे. अने उपाधिमान्‌ने **उपहित** कहे छे] ए रीतिए अंत करणविशिष्टमां जो धर्मादिक अध्यस्त कहिए तो जेटला देशमां अंत करण छे ते देशमां स्थित चेतनभाग अने अंत करण बंनेने अधिष्ठानता थशे, ते अंत करण पोते पण अध्यस्त छे, एथी अधिष्ठान बने नहि. ए अभिप्रायथी अंत.करणउपहितमां धर्मादिक अध्यस्त कह्या. एथी जेटला देशमां अंत.करण छे तेटला देशमां स्थित चेतनभागमात्रमां अधिष्ठानता छे, अंत.करणमां नथी, ए वार्त्ता बने छे.

३५४. तेम अंत करण पण अज्ञानउपहित(चेतन)मां अध्यस्त छे, अज्ञानविशिष्टमां नहि. ए रीतिए अध्यस्त जे धर्मादिक तेओनुं अधिष्ठान आत्मा छे. (चेतनमां धर्मादिकना) अध्यासनी अधिष्ठान अंत.करण उपाधि छे, एथी (धर्मादिकने) बुद्धिना धर्म कहे छे. अने अविवेकेकरी, अंत.करण (अने) आत्मा बनेविषे प्रतीति थाय छे, एथी अंत करणविशिष्ट जे प्रमाता (जीव) तेना धर्म कहे छे. धर्मादिक अंत करणना धर्म होय, अथवा अंतःकरणविशिष्टप्रमाताना धर्म होय, अथवा (अध्यस्त) रज्जुसर्प, स्वप्नना पदार्थ, गधर्वनगर, नभनीलतानी पेठे कोईना धर्म न होय, (एवा प्रकारोमांथी गमे तेम हो पण) सर्वप्रकारे आत्माना धर्म नथी. यद्यपि आत्मामां अ ध्य स्त छे, तथापि जे वस्तु जेमां अध्यस्त होय, ते तेमां परमार्थथी होय नहि. [अध्यस्त नाम कल्पितनुं छे.]

एथी रागद्वेष, धर्मअधर्म, सुखदुःख, बंधमोक्षथी रहित एक व्यापक आत्मा छे.

३५५. (आत्मा सत् छे)

ते आत्मा **सत्** छे. जे वस्तुनो ज्ञानथी अभाव थाय ते **असत्** कहेवाय छे. जेनी निवृत्ति कोई कालमां पण थाय नहि ते **सत्** कहेवाय छे. सर्व पदार्थोनुं अने तेओनी निवृत्तिनुं अधिष्ठान आत्मा छे. जो आत्मानी निवृत्ति थाय तो तेनुं अन्य अधिष्ठान कहुं जोइये. केमके शून्यमां निवृत्ति थाय नहि जो आत्मा अने तेनी निवृत्तिनुं अन्य अधिष्ठान अंगीकार करिये, तो तेनुं पाछुं बीजुं अधिष्ठान अंगीकार करवुं पडशे. ए रीतिए अनवस्था थशे. अने आत्मानी निवृत्ति जे अंगीकार करे तेने आ पूछिये छिये जे.–'आत्मानी निवृत्ति 'कोइए अनुभव करी छे अथवा नहि ?' जो आम कहे.–'अनुभव करी छे.' (तो) ते बने नहि. केमके, जे अनुभव करवावाळो छे, ते ज आत्मा छे अने पोतानुं स्वरूप छे, तेनी निवृत्तिनो अनुभव पोताना मस्तकच्छेदनना अनुभवसमान छे. एथी आत्मानी निवृत्तिना अनुभव बने नहि. अने आम कहे जे आत्मानी निवृत्ति तो थाय छे, परंतु तेनी निवृत्तिनो अनुभव कोईने नथी तो ए वात्ता सिद्ध थई जे – आत्मानी निवृत्ति तो थाय नहि; केमके जे वस्तु कोईए अनुभव नथी करी, ते वंध्यापुत्रना समान होय छे एथी आत्मानी निवृत्ति थाय नहि. एथी ज आत्मा सत् छे

३५६. (आत्मा चित् छे)

आत्मा **चित्** छे. (अलुप्त) प्रकाशरूप जे ज्ञान ते **चित्** कहेवाय छे जो अप्रकाशरूप आत्मा अंगीकार करिये, तो अनात्मजडवस्तुनो प्रकाश कदी थाय नहि. जो अतःकरण

अने इन्द्रियोथी पदार्थोनो प्रकाश कहिये तो बने नहि केमके, अंतःकरण अने इन्द्रियो परिछिन्न छे, एथी कार्य छे जे परिछिन्न होय ते घटनी पेठे कार्य होय छे, अने अंतःकरण (अने)इन्द्रिय पण परिछिन्न छे, तेथी कार्य छे. [देशकालथी जेनो अंत थाय ते परिछिन्न कहेवाय छे.] जे कार्य होय ते जड होय छे अंतःकरण अने इन्द्रिय पण जड छे तेआथी कशी वस्तुनो प्रकाश बने नहि एथी जे आत्मा सर्वना प्रकाश करे छे ते प्रकाशरूप छे

३५७ अने जे आम कहे –'आत्मा प्रकाशरूप नथी, 'किन्तु आत्मा तो जड छे, अने तेनेविषे ज्ञानगुण छे, ते 'ज्ञानथी आत्मा अने अनात्मानो प्रकाश थाय छे' तेने आ पूछिये छिये आत्मानो ज्ञानगुण नित्य छे अथवा अनित्य छे? जो नित्य कहे तो आत्मानु स्वरूप ज ज्ञान सिद्ध थशे केमके आ नियम छे–जे आत्माथी भिन्न होय ते अनित्य होय छे जो ज्ञानने आत्माथी भिन्न अंगीकार करिये तो (ज्ञान) अनित्य ज थशे एथी (ज्ञानने) नित्य मानीने आत्माथी भिन्न ज्ञान छे एम कहेवु बने नहि अने (ज्ञानने) अनित्य अंगीकार करिये तो घटादिकनी पेठे जड थशे (केमके) जे अनित्य वस्तु होय ते जड होय छे एथी 'ज्ञान 'अनित्य छे ए कहेवु बने नहि, किन्तु ज्ञान नित्य ज छे ते नित्यज्ञान आत्मस्वरूप ज छे जो अनित्य अंगीकार करिये तो कदाचित् आत्मामा ज्ञान होय, अने कदाचित् नहि (होय), एथी आत्माथी भिन्न पण ज्ञान थाय अने नित्य अंगीकार कर्याथी तो भिन्न थाय नहि जे गुण होय ते गुणवान्विषे कदाचित् रहे अने कदाचित् न पण रहे जेम वस्त्रना नील-पीत गुण कदाचित् रहे अने कदाचित् नहि रहे एथी जे

गुण होय ते आगमापायी होय छे. अने ज्ञानने नित्यता होवाथी आगमापायी छे नहि, पणी आत्मानुं स्वरूप ज ज्ञान छे.

३५८. अने ज्ञानने अनित्य कहिये तो इन्द्रिय अथवा अंतःकरणेकरी ज्ञान उत्पन्न थाय छे, ए कहेवुं पडशे. ते बने नहि. केमके, सुषुप्तिमां इन्द्रियादिक तो छे नहि, अने सुखनुं ज्ञान थाय छे, ते नहि थवु जोइये. जो सुषुप्तिमां सुखनु ज्ञान अंगीकार न करे तो जागीने 'हु सुखे सूतो हतो)' ए सुषुप्तिना सुखनी स्मृति थाय छे, ते नहि थवी जोइये. जे वस्तुनुं पूर्वज्ञान होय तेनी स्मृति थाय छे, अने अज्ञात वस्तुनी स्मृति थाय नहि. अने सुषुप्तिना सुखनी जागीने स्मृति थाय छे, पणी सुषुप्तिमां सुखनुं ज्ञान थाय छे, ते ज्ञाननां जनक इन्द्रियादिक सुषुप्तिमां छे नहि, पणी (ज्ञान) नित्य छे. ज्ञानने त्यागीने आत्मा कदापण रहे नहि, पणी ज्ञान आत्मानुं स्वरूप छे. जेम उष्णताने त्यागीने अग्नि कदापण रहे नहि, पणी उष्णता वह्निनुं स्वरूप छे, तेम ज्ञान पण आत्मानुं स्वरूप छे. जे 'आगमापायी' होय ते गुण होय छे. उष्णता अने ज्ञान आगमापायी छे नहि, पणी अग्नि अने आत्मानां (ते) स्वरूप छे. [जे वस्तु कदाचित् होय अने कदाचित् न होय ते 'आगमापायी' कहेवाय छे]

३५९. उत्पत्ति अने विनाश अंत:करणनी वृत्तिनां थाय छे, ज्ञाननां नहि. आत्मस्वरूप जे ज्ञान छे, ते विशेषव्यवहारनो हेतु नथी; किन्तु ज्ञानसहित वृत्ति अथवा वृत्तिमां आरूढ ज्ञान व्यवहारनो हेतु छे. ए 'अवच्छेदवादनी' रीति छे. अने 'आभासवादमां' आभाससहित वृत्तिए व्यवहार थाय छे. आभासद्वारा अथवा साक्षात् वृत्तिद्वारा आत्मस्वरूपज्ञानेकरी ज सर्व व्यवहार सिद्ध थाय छे, नहि तो थाय नहि. ए

रीतिए सर्वनो प्रकाशक ज्ञानस्वरूप आत्मा छे, एथी (ते आत्मा) **चित्** छे.

३६०. (आत्मा आनंदरूप छे.)

अने आत्मा **आनंदरूप** छे. जो आत्मा आनंदरूप न होय तो विषयसंबंधेकरी स्वरूप आनंदनु भान थाय छे ते नहि थवुं जोइये. 'विषयमां आनंद नथी' ए वार्त्ता पूर्वे (चतुर्थ तरंगमां) कही छे. जो विषयमां आनंद होय तो जे विषयथी एक पुरुषने सुख थाय तेथी ज अन्यने दुःख थाय छे जेम अग्निना स्पर्शथी अग्निकीटने अने सर्प सिंहनु रूप देखेथी सर्पिणी सिंहिणीने आनंद थाय छे अने अन्य पुरुषने (=जीवने) दुःख थाय छे-ते नहि थवु जाइये. अने सिद्धान्तमां तो अग्निकीटने अग्निस्पर्शनी इच्छा थाय छे त्यारे चचलबुद्धिमां स्वरूपानंदनु भान थाय नहि, अग्निसंबधथी क्षणमात्र इच्छा दूर थईने निश्चलबुद्धिमां स्वरूपानंदनु भान थाय छे अन्य पुरुषोने अग्निसंबधनी इच्छा छे नहि, किन्तु अन्यपदार्थोनी इच्छा छे; ते पदार्थोनी इच्छा अग्निसबंधेकरी दूर थाय नहि, एथी चचल अंतःकरणमां अग्निसबधेकरी आनंद थतो नथी.

३६१. एनाविषे आ शका थाय छे.-इच्छारूप अंतःकरणनी जे वृत्ति छे, ते ता विषयप्राप्तिएकरी नाशने प्राप्त थई गई अने वृत्तिनुं कोई निमित्त छे नहि, एथी उत्पत्ति थई नहि, अने वृत्ति विना स्वरूपानंदनु भान थाय नहिः एथी विषयमां ज आनद छे.

ते शका बने नहि केमके, यद्यपि इच्छारूप तो अतःकरणनी वृत्तिनो अभाव छे, [त इच्छारूप वृत्ति होय तोपण तेनेविषे आनन्द प्रकाश थाय नहि केमके, इच्छारूप वृत्ति

राजसी छे अने आनंदनो प्रकाश सात्त्विकवृत्तिमां थाय छे.] तथापि वाञ्छितपदार्थ जे मळ्यो छे; तेना स्वरूपने विषय करवाने माटे जे ज्ञानरूप अंत:करणनी वृत्ति छे ते सात्त्विकी छे, (केमके-'सत्त्वगुणथी ज्ञान थाय छे;'-ए नियम छे.] ते सात्त्विकवृत्तिमां आनंदनुं भान थाय छे. परंतु ते ज्ञानरूप वृत्ति बहिर्मुख छे, तेना पृष्ठभागमां स्थित जे अंत:करणउपहितचेतनस्वरूपआनंद, तेनुं ते वृत्तिएकरी ग्रहण थाय नहि; एथी विषयउपहितचेतनरूप आनंदनुं भान थाय छे. ते विषयउपहितचेतन आत्माथी भिन्न नथी, एथी आत्मानंदनुं ज विषयमां भान कहेवाय छे. ते ज्ञानरूप वृत्तिविषे विषयनी साथे नेत्रादिकनो संबंध निमित्त छे.

अथवा ज्ञानरूप जे बहिर्मुखवृत्ति तेथी अन्या, अंतर्मुखवृत्ति थाय छे, तेविषे अंत:करणउपहितचेतनरूप आनंदनुं ज भान थाय छे. ए उत्तम सिद्धान्त छे. ते (अन्तर्मुख) वृत्तिनी उत्पत्तिमां इच्छादिकोनो अभाव ज निमित्त छे. जेम इच्छादिकोथी रहित जे एकान्तमां उदासीन पुरुष स्थित छे, तेने बहिर्मुखज्ञानरूपथी कोई वृत्ति थाय नहि, आनंदनुं भान थाय छे, एथी इच्छादिकोना अभावरूप निमित्तथी अंतर्मुखवृत्ति आनंद ग्रहण करवावाळी थाय छे; तेथी वाञ्छितविषयना लाभेकरी, इच्छादिकोनो अभाव होवाथी, ज्ञानथी अनंतर, अंतर्मुखवृत्ति थाय छे, तेणेकरी अंत:करणउपहित आनंदनुं ज ग्रहण थाय छे. ते स्वरूपानंदनुं ग्रहण, अने विषयनुं ज्ञान, अत्यंत अव्यवहित छे, एथी पुरुषने एवी भ्रान्ति थाय छे-'में विषयमां आनंद अनुभव कर्यो छे' (विषयाकार वृत्तिएकरी विषयउपहितचेतनरूप आनंदनुं भान थाय छे ए) प्रथमपक्षथी (अन्तर्मुखवृत्तिविषे इच्छादिकोना

अभावेकरी अन्तःकरणउपहितचेतनरूप आनन्दनुं भान थाय छे) ए पक्ष उत्तम छे, केमके, जे विषयना ज्ञानरूप वृत्ति छे, तेथी अंत.करणउपहित आनंदनुं तो भान बने नहि; पथी विषयउपहित आनंदनुं भान थशे. तो मार्गमां वृक्षना ज्ञानरूप जे वृत्ति छे, ते पण सात्त्विकी छे, तेथी पण वृक्षउपहितचेतनस्वरूप आनंदनुं भान थवुं जोइये; तेम सर्व ज्ञानथी ज्ञेय(विषय) उपहितचेतनरूप आनंदनुं भान थवुं जोइये. (पण तेम थतुं नथी) पथी अनात्मवस्तुना ज्ञानरूप जे बहिर्मुखवृत्ति तेथी (बहिर् ज्ञेयउपहितचेतनस्वरूपआनंदनुं ग्रहण थाय नहि. ए रीतिए विषयना संबंधे करी आत्मस्वरूपानंदनुं भान थाय छे. जो आत्मा आनंदरूप न होय, तो विषयसंबंधेकरी आनंदनुं भान बने नहि. पथी **आत्मा आनंदरूप छे.**

३६२. अने आत्माना संबंधि जे वस्तु छे, तेनेविषे प्रेम थाय छे, तेथी सन्निहितमां (समीपमां स्थितविषे) अधिक प्रेम थाय छे. ए रीतिए बहिर् बहिरना पदार्थोनी अपेक्षाथी अंतर् अंतरना पदार्थोमां अधिक प्रीति छे. परंपराथी आत्माना संबंधी जे पुत्रनो मित्र तेमां प्रीति थाय छे. पुत्रना मित्रनी अपेक्षाथी पुत्रमां अधिक प्रीति छे; अने पुत्रथी पण स्थूलसूक्ष्मशरीरमां अधिकप्रीति छे. अने 'स्थूलसूक्ष्मशरीरमां पण स्थूलथी सूक्ष्ममां अधिक प्रीति छे. पूर्वपूर्वथी उत्तरउत्तर आत्माने समीप छे. आत्मानो आभास सूक्ष्मशरीरमां छे, अन्यमां नथी. पथी आभासद्वारा आत्मानो सूक्ष्मशरीरसाथे संबंध छे, अन्य साथे नथी. सूक्ष्मशरीरनो स्थूलशरीरसाथे संबध छे, पथी सूक्ष्मशरीरद्वारा आत्मानो स्थूलशरीरसाथे संबंध छे. अने स्थूलशरीरद्वारा पुत्रसाथे संबंध छे; अने पुत्र-

द्वारा पुत्रना मित्रसाथे संबंध छे. ए रीतिए उत्तर उत्तर जे आत्माने समीप, तेनाविषे अधिका प्रीति छे. जे आत्माना संबंध होवाथी पदार्थमां प्रीति थाय, ते आत्मामां ज मुख्य प्रीति छे, अने पदार्थमां नथी. जेम पुत्रना मित्रमां पुत्रना संबंधथी प्रीति छे, एथी पुत्रमां ज प्रीति छे, पुत्रना मित्रमां नथी. तेम आत्माना अधिक समीपमां अधिका प्रीति थाय छे. एथी आत्माविषे ज सर्वनी प्रीति छे.

ते प्रीति आनंदमां अने दुःखना अभावमां होय छे, अन्यमां नहि. अन्य पदार्थमां जे प्रीति थाय, ते आनंद अने दुःखना अभावना निमित्त थाय छे; एथी आनंद अने दुःखना अभावथी अन्यमां प्रीति नथी. एथी सर्वनी प्रीतिनो विषय जे आत्मा, ते आनंदरूप छे, अने दुःखना अभावरूप छे. कल्पितनो अभाव अधिष्ठानरूप होय छे. जेम सर्पनो अभाव रज्जुरूप छे. एथी कल्पित जे दुःख तेनो अभाव पण आत्मारूप छे. ए रीतिए आ त्मा आ नं द रू प छे.

३६३. अने न्यायमतमां आत्मानो आनंद गुण छे ते समीचीन नथी. केमके, जो आनंदगुणने नित्य अंगीकार करिये तो (आनंद) आगमापायी नहि थाय, एथी आत्मानुं स्वरूप ज आनंद सिद्ध थशे. अने नित्यआनंद न्यायमतमां छे पण नहि. अने अनित्य जो कहिये, तो अनुकूलविषय अने इन्द्रियना संबंधेकरी आनंदनी उत्पत्ति अंगीकार करवी पडशे; एथी सुषुप्तिमां आनंदनुं भान नहि थवुं जोइये. केमके, सुषुप्तिमां विषयनो अने इन्द्रियनो संबंध छे नहि. एथी आत्मानो आनंद गु ण नथी, किन्तु आत्मा आनंदस्वरूप छे. ए रीतिए आत्मा, सत्-चित्-आ नं द रूप छे.

३६४. (सत्-चित्-आनन्द परस्पर भिन्न नथी.)

ते सत्, चित्, आनंद, परस्पर भिन्न नहि. किन्तु एक ज छे. जो (तेओ) आत्माना गुण होय तो परस्पर भिन्न पण होय, पण आत्मस्वरूप छे एथी भिन्न नथी. एक ज आत्मा निवृत्ति(बाध)रहित छे एथी **सत्** कहेवाय छे. अने जडथी विलक्षण प्रकाशरूप छे एथी **चित्** कहेवाय छे. अने दुःखथी विलक्षण मुख्यप्रीतिनो विषय छे एथी **आनंद** कहेवाय छे. जेम उष्ण(रक्त)-प्रकाशरूप अग्नि छे, तेम सत्, चित्, आनंदरूप आत्मा छे. अने सत्-चित्-आनंद-स्वरूप ज शास्त्रमां ब्रह्म कह्युं छे, एथी ब्रह्मस्वरूप आत्मा छे. अने ब्रह्म नाम व्यापकनुं छे. [देशथी जेनो अंत नहि होय ते **व्यापक** कहेवाय छे.] तेथी आत्मा जो भिन्न होय तो देशथी अंतवाळो थशे. जेनो देशथी अंत होय, तेनो कालथी पण अंत होय छे, ए नियम छे, एथी (आत्मा) अनित्य थशे. [जेनो कालथी अंत थाय ते **अनित्य** कहेवाय छे.] एथी ब्रह्मथी भिन्न आत्मा नथी. अने आत्माथी भिन्न जो ब्रह्म होय तो (ब्रह्म) अनात्म थशे. अनात्मा जे घटादिक छे ते जड छे, एथी आत्माथी भिन्न ब्रह्म पण जड ज थशे. एथी आत्माथी भिन्न ब्रह्म पण नथी, किन्तु ब्रह्मस्वरूप ज आत्मा छे.

३६५. एक ज चेतन, सर्व प्र पं च अ ने मा या नुं, अधिष्ठान छे, एथी ब्रह्म कहेवाय छे; अ वि द्या अ ने व्य ष्टि देहादिकोनुं अधिष्ठान छे एथी **आत्मा** कहेवाय छे. तत्पदनो लक्ष्य ब्रह्म कहेवाय छे अने त्वंपदनो लक्ष्य आत्मा कहेवाय छे. ईश्वरसाक्षी तत्पदनो लक्ष्य छे, अने जीवसाक्षी त्वंपदनो लक्ष्य छे. व्यष्टिसंघातउपहितचेतन **जीवसाक्षी** छे, अने समष्टिसंघातउपहितचेतन **ईश्वरसाक्षी** कहेवाय

छे यद्यपि जीवनी अने ईश्वरनी एकता बने नहि, तथापि जीवसाक्षी अने ईश्वरसाक्षीना, उपाधिना भेदथी, भेद छे, अने स्वरूपथी एक ज छे जेम मठमा स्थित जे घटाकाश अने मठाकाश तेओनो उपाधिना भेद विना स्वरूपेकरी भेद नथी, तेम आत्मा अने ब्रह्मनो उपाधिभेद विना भेद नथी, एक ज वस्तु छे

३६६ (ते ब्रह्मरूप आत्मा अजन्मा छे)

ते ब्रह्मरूप आत्मा अजन्मा नाम जन्मरहित छे. जो आत्माना जन्म अंगीकार करिये, तो अनित्य थशे ते वार्ता परलोकवादी जे आस्तिक छे तेओना इष्ट नथी केमके, जो आत्मा उत्पत्तिनाशवान् होय तो, प्रथमजन्मविषे पूर्वकर्म विना ज सुखदु खनो भोग (=अकृताभ्यागम), अने कर्या कर्मनो भोग विना नाश (=कृतविप्रणाश), थशे एथी कर्ता भोक्ता जो आत्मा अंगीकार करिये तोपण जन्मनाशरहित ज अंगीकार करवा पडशे अने आत्मानु जन्म जो अंगीकार करिये तो, हेतु विना तो कोई वस्तुना जन्म थाय नहि, एथी काई हेतुथी ज जन्म कहेवा पडशे, ते बने नहि केमके, जे आत्माना हेतु छे ते आत्माथी भिन्न ज कहेवा पडशे ते आत्माथी भिन्न सपूर्ण, आत्मामा कल्पित छे, एथी आत्माना हेतु बने नहि जेम रज्जुमा कल्पित सर्प रज्जुना हेतु नहि, तेम आत्मामा कल्पित वस्तु आत्मानो हेतु बने नहि

३६७ जेम एक रज्जुविषे नानापुरुषोने, सर्प, दड, पृथिवी रेखा, जलधारानी भ्रान्ति थाय छे, ते भ्रान्तिमा बे अश छे,-एक तो सामान्य 'इद (नाम आ) अश छे, अने एक सर्पादिक विशेषअश छे ते सामान्य 'इद'अश, सर्पादिकविशेषअश मा सर्वत्र व्यापक छे 'आ सर्प छे, आ दड छे, आ

पृथिवीनी रेखा छे, आ जळनी रेखा छे,' एवी रीतिए सर्पादिक विशेषअंशमां इदं (आ) अंश सर्वत्र व्यापक छे. ते व्यापक सामान्य इदंअंश रज्जुस्वरूप छे. ते सामान्य इदं अंशना ज्ञानने ज, भ्रान्तिनो हेतु, रज्जुनुं सामान्यज्ञान कहे छे. ते सामान्य इदंअंश सत्य छे. केमके, रज्जुनुं ज्ञान थयेथी अनन्तर पण ते इदंअंशनी प्रतीति थाय छे. जेम भ्रान्तिकालमां 'आ सर्प छे,'–ए रीतिए सर्पादिकसाथे मळीने 'इदं'(आ)अंशनी प्रतीति थाय छे; तेम भ्रान्तिनी निवृत्तिथी अनन्तर पण 'आ रज्जु छे' ए रीतिए रज्जुनी साथे मळीने इदं(आ)अंशनी प्रतीति थाय छे.' जो इदंअंश पण मिथ्या होय तो सर्पादिकोनी पेठे भ्रान्तिनी निवृत्तिथी अनन्तर तेनी पण प्रतीति न थई जोईये. (पण ते थाय छे) एथी सर्पादिकभ्रान्तिमां व्यापक जे इदंअंश ते सत्य छे अने अधिष्ठान रज्जुरूप, छे, अने परस्पर व्यभिचारी जे सर्पादिक ते कल्पित छे.

३६८. (पदार्थमात्रमां पांच अंश, तेमां त्रण सत्य अने बे व्यभिचारी.)

तेम सर्व पदार्थमां पांच अंश छेः–एक नाम अने रूप अने अस्ति तथा भाति अने प्रिय, (एक घट लइये तेमां) 'घट' ए बे अक्षर **नाम** (अंश), अने 'गोल' (आकार) **रूप** (अंश) छे. अने घट छे, ए **अस्ति** (अंश छे). अने घट प्रतीत थाय छे ए **भाति** (अंश छे), अने घट प्रिय छे, ए **प्रिय** (आनंदअंश छे.) [सर्पादिक पण सर्पिणी आदिकोने प्रिय छे.] ए रीतिए सर्व पदार्थोमां पांच अंश छे. तेओमां

१९०. अस्तिभातिप्रियं रूपं नाम चेत्यंशपंचकं।
आद्यत्रयं ब्रह्मरूपं मायारूपं ततो द्वयं ॥ २० ॥
दृगृदृश्यप्रकरणं वा दृगृदृश्यविवेको वा वाक्यसुधा वा।

अस्ति, भाति, प्रिय, त्रण अंश सर्व पदार्थोमां व्यापक छे; अने नाम, रूप (ए बे अंश) व्यभिचारी छे. [जे वस्तु कहिं होय अने कहिं न होय ते **व्यभिचारी** कहेवाय छे.] घट-नाम अने गोलरूप, पटविषे छे नहि; (अने) पटनाम अने तेनुं रूप घटविषे छे नहि; ए रीतिए सर्व पदार्थोविषे नाम-रूपअंश व्यभिचारी छे; अने अस्तिभातिप्रियरूप (अंश) सर्व-विषे अनुगत छे. जेम सर्पदंडादिकोमां अनुगत 'इदं'अंश सत्य अने अधिष्ठान छे; तेम सर्व पदार्थोमां अनुगत अस्ति-भातिप्रियरूप (त्रण अंश) सत्य छे, अने अधिष्ठानरूप छे अने सर्पदंडादिकनी पेठे व्यभिचारी, नामरूप (ए बे अंश) कल्पित छे. अने अस्ति, भाति, प्रिय,=सत्, चित्, आनंदरूप छे, एथी आत्मस्वरूप छे. ए रीतिए सच्चिदानंदरूप आत्मा-विषे, संपूर्ण नामरूपप्रपंच कल्पित छे. ते कल्पित पदार्थ कोई आत्माना जन्मनो हेतु बने नहि. एथी **आत्मा अजन्मा** छे. जे वस्तुनो जन्म थाय, तेनां ज सत्ता, वृद्धि, परिणाम, अपक्षय, अने विनाशरूप पांच अन्य विकार होय छे. आत्मानो जन्म थाय नहि. एथी उत्तर पांच विकार पण थाय नहि. ए रीतिए **अजन्मा** नाम जन्मादिक षड्विकार-थी रहित आत्मा छे. [सत्ता नाम प्रकटवानुं छे अने अप-क्षय नाम घटवानुं छे.]

३६९. (आत्मा असंग छे.)

ते आत्मा असंग छे. संग नाम संबंधनुं छे. ते (संबंध)

---

१९१. उत्पत्तियुतपदार्थ वा कार्यमात्रने षड् भावविकार थाय छे. (१) जनी (जन्म,कार्यनो आद्यक्षणसाथे–सत्तारूप संबंध.),(२) सत्ता वा अस्तित्व (प्रक-टता–क्षण अवस्थान.),(३) वृद्धि वा वर्धन (शरीरनो बहु अवयवसाथे संबंध.), (४) परिणाम (पूर्वरूपनो अपाय थये छते रूपान्तरप्राप्ति.),(५) अपक्षय (बहु अव-यवथी वियोग.), (६) विनाश (अन्त्यशरीर अने प्राणना संयोगनो ध्वंस.)

सजातीय-विजातीय-स्वगत पदार्थेकरी थाय छे. जेम घटनो घटसाथे जे संबंध (छे) ते **सजातीयसाथे** संबंध छे; अने घटनो पटसाथे जे संबंध (छे) ते **विजातीय** साथे संबंध छे. **स्वगत** नाम अवयवनुं छे एथी पटनो तंतुसाथे जे संबंध ते **स्वगत**साथे संबंध छे, आत्मा बे अथवा अनंत होय. तो सजातीयसाथे आत्मानो संबंध थाय. ते आत्मा एक छे, एथी सजातीयआत्मासाथे आत्मानो संबंध नथी. अने आत्माथी विजातीय अनात्मा छे, ते मृगतृष्णाना जलनी पेठे आत्मामां कल्पित छे. ते कल्पितथी आत्मानो संबंध बने नहि. [जेम मृगतृष्णाना जलसाथे पृथिवीनो संबंध थाय नहि; जो संबंध होय तो उषरभूमि ते जलथी भीनी थई जोइये.] जेम मृगतृष्णाना जलथी उषरभूमिनो संबंध नथी, तेम आत्मामां कल्पित जे विजातीय अनात्मा, ते साथे आत्मानो संबंध नथी. जो आत्माना अवयव होय तो, आत्मानो स्वगतसाथे संबंध थाय. (पण) आत्मा नित्य छे तेथी निरवयव छे, तेनो स्वगतसाथे संबंध बने नहि. ए रीतिए *सजातीयविजातीयस्वगतसंबंध आत्माविषे नथी, एथी (आत्मा)* असंग छे. ए रीतिए, हे शिष्य ! सच्चिदानंद, ब्रह्मरूप, जन्मादिक विकाररहित, असंग आत्मा छे, ते तुं छुं. ए प्रथमप्रश्ननुं अर्धदुहाथी आचार्ये उत्तर कह्युं. (ते अर्धदुहो,—

सत, चित, आनंद एक तूं, ब्रह्म अजन्म असंग;)

३७०. ('जगतनो कर्ता कोण छे ?'

ए द्वितीय प्रश्ननुं उत्तर अर्धदुहाए कहे छे.)

अर्धदुहोः-विभु चेतन, माया करे, जगदुत्पत्तिभंग, ९.

टीकाः-विभु नाम व्यापक जे चेतन तेने आश्रित अने तेने विषय करनारी माया नाम सत्असत्थी विलक्षण

अद्भुतशक्तिरूप अज्ञान, तेथी जगतनी उत्पत्ति (अने) भंग थाय छे. [उत्पत्ति अने भंग कहवाथी स्थितिनुं ग्रहण अर्थथी थाय छे.] एथी आ अर्थ सिद्ध थयोः–मायायुक्त जे चेतन ते ईश्वर कहेवाय छे. ते ईश्वर जगतनी उत्पत्ति, पालन, अने नाशनो हेतु छे. ए कहेवाथी 'जगतनो कोई कर्ता छे अथवा पोतानी मेळे थाय छे?' (ए शिष्यनो प्रश्न हतो) एनुं उत्तर कह्युं 'अने जगत्नो कर्ता कोई जीव छे अथवा ईश्वर छे?' एनुं पण उत्तर कह्युं.

३७१. (जगत्नो कर्ता ईश्वर छे.)

जगत्नो कर्ता ईश्वर छे, (जगत) पोतानी मेळे थाय नहि, जो कर्ता विना जगत् थाय, तो कुलाल (कुंभार) विना घट थयो जोइये. एथी जगतनो कोई कर्ता छे. ते कर्ता सर्वज्ञ छे. केमके कार्यनो जे कर्ता होय ते ते कार्यने अने तेना उपादानने जाणीने करे छे. एथी जगत्नो कर्ता पण जगत्ने अने जगतना उपादानने जाणीने करे छे. ए रीतिए जगत्नो कर्ता जगत्ने अने जगतना उपादानने जाणे छे, एथी सर्वज्ञ छे. अने सर्वशक्तिमान् छे. केमके जे अल्पशक्तिवाळा, जीव छे, तेओए आ जगत्नी रचना मनेकरी पण चिन्तन थाय नहि. एथी अद्भुतजगत्नो कर्ता अद्भुतशक्तिमान् छे. ए रीतिए जगत्नो कर्ता सर्वशक्तिमान् छे अने (कर्ता) स्वतंत्र छे. केम के, जे न्यूनशक्तिवाळो होय ते पराधीन होय छे, अने सर्वशक्तिवाळो पराधीन होय नहि. एथी स्वतंत्र छे. ए

---

१९२. क्रियानिष्पादक. क्रियामां स्वतन्त्र. उपादान अने कार्यनुं अपरोक्षज्ञान. चिकीर्षा नाम करवानी इच्छा, कृतिमत्त्व नाम प्रयत्न, अने सामर्थ्य, एटली शक्ति कर्तामां होय छे. ईश्वररूप कर्ता कर्तुं अकर्तुं-अन्यथाकर्तुं-समर्थ छे,

रीतिए जगत्नो कर्ता, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, स्वतंत्र छे. तेने ज ईश्वर कहे छे.

३७२. अने अल्पज्ञ, अल्पशक्तिमान् पराधीनने जीव कहे छे. यद्यपि अल्पज्ञतादिक जीवमां पण परमार्थथी नथी, तथापि अविद्याकृत मिथ्या अल्पज्ञतादिक जीवमां प्रतीत थाय छे एथी जीवमां कहेवाय छे. अविद्याकृत अल्पज्ञतादिकोनी जे भ्रान्ति तेज जीवता छे. ते अल्पज्ञतादिकोनी भ्रान्ति ईश्वरमां छे नहि, किन्तु मायाकृत सर्वज्ञतादिक ईश्वरमां छे. ए वार्ता विस्तरथी आगळ प्रतिपादन करीशुं. ए रीतिए जगत्नो कर्ता जीव नथी, ईश्वर छे.

३७३. (ईश्वर सर्वत्र व्यापक छे अने नित्य छे.)
(आत्माश्रयादि षड्दोष.)

ते ईश्वर एकदेशमां स्थित नथी, किन्तु सर्वत्र व्यापक छे. जो एकदेशमां अंगीकार करिये, तो जे वस्तुनो देशथी अन्त होय ते(वस्तु)नो कालथी पण अंत होय छे, एथी अनित्य थशे जे अनित्य होय ते कर्ताथी जन्य होय छे, एथी ईश्वरनो पण कर्ता अंगीकार करवो पडशे. ते ईश्वरनो कर्ता बने नहि. केमके, पोते तो पोतानो कर्ता बने नहि. जो पोतानो कर्ता पोते ज अंगीकार करिये तो आत्माश्रय दोष थशे. पोते ज क्रियानो कर्ता (आश्रय) अने पोते ज क्रियानुं कर्म (विषय) थाय त्यां आत्माश्रयदोष थाय छे. जेम कुलाल (कुंभार) क्रियानो कर्ता छे, अने घट कर्म छे, तेम क्रियानो कर्ता अने कर्म भिन्न होय छे, एक बने नहि. एथी आत्माश्रयदोष छे. [कर्म नाम कार्यनुं छे, अने कार्यना विरोधीनुं नाम दोष छे.] आत्माश्रय कार्यनो विरोधी छे, एथी दोष छे. एथी ईश्वरनो कर्ता अन्य अंगीकार करवो पडशे. ते अन्य

पण प्रथमकर्तानी पेठे कर्ताजन्य ज कहेवो पडशे. ते ते(अन्य)नो कर्ता पण प्रथमनी पेठे तेथी भिन्न ज कहेवो पडशे. ते प्रथम जे ईश्वर छे, तेने द्वितीयकर्तानो कर्ता अंगीकार करिये, तो **अन्योन्याश्रयदोष** थशे; पछी तृतीयकर्ता अन्य अंगीकार करवो पडशे. ते तृतीयनो कर्ता जो द्वितीय मानिये, त्यारे तो अन्योन्याश्रयदोष थाय, अने प्रथम मानिये, तो **चक्रिकादोष** थशे. जेम चक्रनुं भ्रमण थाय छे, तेम प्रथमकर्ता द्वितीयजन्य, अने द्वितीयकर्ता तृतीयजन्य, अने तृतीय (कर्ता) प्रथमजन्य, ते प्रथम पुनः द्वितीयजन्य, ए रीतिए कार्यकारणभावनुं भ्रमण थशे. चक्रिकास्थानमां कोई पण सिद्ध थाय नहि, सर्वनी परस्पर अपेक्षा छे, अन्योन्याश्रयमां बेनी परस्पर अपेक्षा छे. एकनी सिद्धि थया विना अन्यनी सिद्धि थाय नहि. पछी जेम कुलाल(कुंभार)नो कर्ता पोते (कुंभार) नथी, किन्तु तेनो पिता छे, तेम प्रथमईश्वर-कर्तानो अन्य कर्ता छे. अने कुलालनो पिता पोताना पुत्रथी उत्पन्न थाय नहि, किन्तु अन्य पिताथी उत्पन्न थाय छे, तेम द्वितीयकर्ता प्रथमकर्ताथी उत्पन्न थाय नहि, किन्तु अन्य कर्ताथी ज (उत्पन्न थयो) कहेवो पडशे. अने कुलालनो पितामह कुलाल अने तेना पिताथी उत्पन्न थाय नहि, किन्तु चतुर्थ (चोथी पेढिये) जे कुलालनो प्रपितामह तेथी उत्पन्न थाय छे. तेम तृतीयकर्ता (पितामह) पण प्रथम अने द्वितीय कर्ताथी उत्पन्न थाय नहि; पछी चोथो कर्ता अन्य अंगीकार करवो पडशे. ते चतुर्थनो कर्ता अन्य पंचम मानवो पडशे. पछी **अनवस्थादोष** थशे. धारानुं (प्रवाह-चालतुं रहेवुं-तेनुं) नाम 'अनवस्था' छे. जो कर्तानी धारा अंगीकार करिये, तो-कियो कर्ता जगत् करे छे-ए निर्णय

नहि थशे. (आगळ चालती संख्यामांथी गमे ते) कोईएकने जगत्नो कर्ता मानवामां कोई युक्ति नथी. ते युक्तिना अभावनुं नाम ज **विनिगमनविरह** (नाम एकनी निश्चायक-युक्तिनो अभाव) कहे छे. अने धारानो कहिं विश्रान्ति अंगीकार करिये, तो जे कर्तामां धारानो अन्त अंगीकार कर्यो, ते ज जगत्नो कर्ता मानवा योग्य छे; पूर्वना सर्व निष्फल थशे. एनुं नाम ज **प्राग्लोप** कहे छे. [पाछलांना अभावनुं नाम प्राग्लोप छे.] ए रीतिए ईश्वरनो देशथी अंत अंगीकार करिये तो उत्पत्ति अंगीकार करवी पडशे. अने उत्पत्ति अंगीकार करिये तो आत्माश्रयादि **षड्दोष** थशे. एथी ईश्वरनो देशथी अन्त नथी, किन्तु व्यापक छे; एथी ज नित्य छे.

३७४. (जीवईश्वरमां केवा प्रकारे भेद छे.)

(अवच्छेद, आभास, अने बिंबप्रतिबिंबवाद.)

ते व्यापक ईश्वरनो अने जीवनो स्वरूपे भेद छे नहि, किन्तु उपाधिए भेद छे. केमके, **अवच्छेदवाद**मां मायाविशिष्टचेतनने **ईश्वर** कहे छे; अने अविद्याविशिष्टचेतनने जीव कहे छे. (पंचदशीकार विद्यारण्यमुनिना **आभासवाद**मां माया अने आभासविशिष्टचेतनने **ईश्वर** कहे छे; अने आभाससहित अविद्याविशिष्टचेतनने **जीव** कहे छे. आभासवादमां आभाससहित अविद्या अने (आभाससहित) मायानो भेद छे; चेतननो नथी; तेम अवच्छेदवादमां पण अविद्या अने मायानो भेद छे, स्वरूपेकरी चेतननो भेद नथी. अने (पद्मपादाचार्यनी पंचपादिकाउपर विवरणकार प्रकाशात्मचरणना **बिंबप्रतिबिंबवाद**मां) अज्ञानमां चेतननुं **प्रतिबिंब जीव** छे, अने **बिंब** (शुद्धब्रह्म) **ईश्वर** छे. ए पक्षमां पण चेतननो स्वरूपेकरी भेद नथी, किन्तु एक ज चेतनमां जीवत्व

अने ईश्वरतत्त्व आरोपित छे. ए वार्ता आगळ (४३८ थी ४४३ पर्यन्त) कहीशुं. ए रीतिए जगत्‌नो कर्ता, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, स्वतंत्र, ईश्वर छे. ते ईश्वर व्यापक छे, तेनो अने जीवनो विशेषणमात्रेकरी भेद छे, अने स्वरूपेकरी अभेद छे. ए द्वितीय प्रश्ननुं उत्तर थयुं.

"मोक्षनुं साधन ज्ञान छे, अथवा कर्म छे, अथवा उपासना छे, अथवा त्रे छे?" (ए प्रश्न शिष्ये कर्यो हतो.) तेनुं उत्तर गुरु कहे छे.

३७५. (मोक्षनुं साधन ज्ञान छे. ३७५ थी ४०६ पर्यन्त.)

दुहो.

ज्ञान ज हेतु मोक्षनो, नहि कर्म, नहि ध्यान
नाशे रज्जुसर्प तव, थाय रज्जुनुं ज्ञान.　　　　१०.

टीकाः-मुक्तिनो हेतु कर्म अने 'ध्यान' नाम उपासना नहि, किन्तु ज्ञान ज हेतु छे. केमके, जो आत्मामां बंध सत्य होय, तो तेनी निवृत्तिरूप मोक्ष, ज्ञानेकरी थाय नहि, किन्तु कर्म अथवा उपासनाए थाय. ते बंध आत्मामां सत्य छे नहि, किन्तु रज्जुसर्पनी पेठे मिथ्या छे. ते मिथ्यानी निवृत्ति अधिष्ठानज्ञानेकरी ज बने छे, कर्म अथवा उपासनाएकरी नहि. जेम रज्जुनो सर्प कोई क्रियाएकरी दूर थाय नहि, केवल रज्जुना ज्ञानेकरी दूर थायः तेम आत्माना अज्ञानेकरी प्रतीत जे थाय छे बंध, ते बंधनी प्रतीति अने अज्ञान, आत्माना ज्ञानेकरी ज दूर थाय छे.

३७६. जो कर्मनुं फल मोक्ष होय तो मोक्ष अनित्य थशे. केमके आ नियम छे.-कृषिआदि कर्मनुं फल जे अन्नादि छे, ते अनित्य छे, अने यज्ञादिक कर्मनुं फल स्वर्गादिक पण अनित्य छे. जो मोक्ष पण कर्मनुं फल अंगीकार करिये, तो अनित्य

थशे, एथी कर्मनुं फल मोक्ष नथी. तेम उपासनानुं फल (मोक्ष) जो अंगीकार करिए, तो पण मोक्ष अनित्य थशे. केमके उपासना पण मानस कर्म ज छे. अने कर्मनुं फल अनित्य होय छे, एथी उपासनारूप कर्मनुं फल पण मोक्ष नहि.

३७७. (कर्मना पांच उपयोग अथवा फल.)

अने कर्मकर्ताने कर्मेकरी पांच प्रकारना उपयोग (फल) थाय छेः–पदार्थनी उत्पत्ति तथा नाश, अथवा पदार्थनी प्राप्ति वा पदार्थनो विकार, [अन्यरूपनी प्राप्तिनुं नाम **विकार** छे.] तेम संस्कार. **संस्कार** बे प्रकारना होय छेः–मलनी निवृत्ति, अने गुणनी उत्पत्ति. ए पांच प्रकारनो कर्मथी उपयोग थाय छे. ते मुमुक्षुने कोई पण बने नहि. एथी ज्ञाननां साधन श्रवणादिकविषे ज मुमुक्षु प्रवृत्त थाय, अने कर्ममां नहि. जेम कुलालना कर्मथी कुलालने घटनी उत्पत्ति (रूप) उपयोग (इष्टसिद्धिसाधन) थाय छे; तेम मुमुक्षुने कर्मथी मोक्षनी उत्पत्ति (रूप) उपयोग बने नहि केमके, अनर्थनी निवृत्ति अने परमानंदनी प्राप्तिरूप जे **मोक्ष** छे, ते अनर्थनी निवृत्ति, आत्मामां, नित्यसिद्ध छे; जेम रज्जुमां सर्पनी निवृत्ति नित्यसिद्ध छे. अने आत्मा परमानंदस्वरूप छे, एथी परमानंदनी प्राप्ति पण नित्यसिद्ध छे. ए रीतिए स्वभावसिद्ध मोक्षनी कर्मेकरी उत्पत्ति बने नहि. जे वस्तु आगळ सिद्ध न होय तेनी कर्मथी उत्पत्ति थाय छे. अने सिद्ध वस्तुनी उत्पत्ति थाय नहि.

(१. पदार्थनी उत्पत्तिरूप उपयोग.)

३७८. अने वेदान्तश्रवण पण मोक्षनी उत्पत्तिनुं निमित्त नथी कह्युं, किन्तु 'आत्मा नित्यमुक्त छे, किंचित्मात्र पण कर्तव्य नथी' ए वार्त्ताने जाणवा अर्थे श्रवण छे. ए

जाणीने कर्तव्यभ्रान्ति दूर थाय छे. अने वेदान्तश्रवणथी अनंतर पण जेओने कर्तव्यप्रतीति थाय छे, तेओए तत्त्व जाण्युं नथी. ए कारणथी नित्यनिवृत्त जे अनर्थ, तेनी निवृत्ति, अने नित्यप्राप्त आनंदनी प्राप्ति, वेदान्त श्रवणनुं फल देवगुरुए (सुरेश्वराचार्ये) नैष्कर्म्यसिद्धिमां कह्युं छे. एथी मोक्षनी उत्पत्तिरूपकर्मनो उपयोग मुमुक्षुने बने नहि.

(२. पदार्थना नाशरूप उपयोग.)

३७९. जेम दंडना प्रहाररूप कर्मनो, घटना नाशरूप उपयोग (फल) थाय छे, तेम मुमुक्षुने कर्मथी कोई पदार्थना नाशरूप उपयोग पण बने नहि. केमके, अन्य पदार्थनो नाश तो मुमुक्षुने वाञ्छित छे नहि कर्मथी बंधनो नाश ज, उपयोग कहेवो पडशे ते बंध आत्मामां छे नहि मिथ्या प्रतीत थाय छे ते मिथ्याप्रतीतिनो नाश कर्मेकरी बने नहि, अने आत्माना यथार्थ ज्ञानेकरी तो मिथ्याप्रतीतिनो नाश बने छे. एथी मुमुक्षुनो पदार्थना नाशरूप उपयोग पण कर्मेकरी बने नहि.

(३. प्राप्तिरूप उपयोग)

जेम गमनरूप कर्मेकरी ग्रामनी प्राप्ति थाय छे, तेम मोक्षनी प्राप्तिरूप उपयोग कर्मेकरी बने नहि केमके, जे आत्मा नित्यमुक्त छे तेने मोक्षनी प्राप्ति कहेवी बने नहि. जेने बंध होय तेने मोक्षनी प्राप्ति कहेवी बने छे, अने आत्मामां बंध छे नहि एथी मोक्षनी प्राप्तिरूप कर्मना उपयोग मुमुक्षुने बने नहि

(४ विकाररूप उपयोग)

जेम पाकरूप कर्मेकरी अन्ननो विकाररूप उपयोग, पाचकने (रसोईआने) थाय छे, तेम मुमुक्षुने कर्मेकरी विकार-

रूप उपयोग पण बने नहि केमके, अन्य तो कोई विकार बने ज नहि. जो आत्मामां प्रथम वध अंगीकार करिये, अने मोक्षदशामां चतुर्भुजादिक विलक्षण रूपनी प्राप्ति अंगीकार करिये, तो अन्यरूपनी प्राप्तिरूप विकार, कर्मनो उपयोग मुमुक्षुने बने ते अन्यरूपनी प्राप्ति आत्मामां अंगीकार नथी पथी कर्मेकरी विकाररूप उपयोग पण मुमुक्षुने बने नहि

(५ निवृत्तिरूप अने उत्पत्तिरूप सस्कार.)

जेम वस्त्रना क्षालनरूप कर्मनो, मलनी निवृत्तिरूप सस्कार थाय छे, तेम मलनी निवृत्तिरूप सस्कार पण मुमुक्षुने कर्मेकरी उपयोग नथी केमके, अन्यना मलनी निवृत्ति तो मुमुक्षुने वाञ्छित छे नहि, आत्माना मलनी निवृत्ति कहेवी पडशे. ते आत्मा नित्यशुद्ध छे, तेविषे मल छे नहि पथी **मलनी निवृत्तिरूप संस्कार** बने नहि. अने अंतःकरण विषे पापरूप जे मल छे तेनी निवृत्ति (रूप) उपयोग जो कर्मेकरी कहिये, तो ए वार्त्ता सत्य छे परतु **शुद्धअंतःकरणवाळा** जे मुमुक्षु छे तेनो विचार (अत्र) करिये छिये. तेना (मुमुक्षुना) अंतःकरणमां पण पाप छे नहि पथी पापरूप मलनी निवृत्तिरूप सस्कार पण मुमुक्षुने कर्मेकरी उपयोग बने नहि. अने अज्ञानने जो मल कहिये, तो अज्ञान आत्मामां छे खरू. परतु तेनी निवृत्ति कर्मेकरी थाय नहि केमके अज्ञाननु विरोधि ज्ञान छे, कर्म नथी. पथी मलनी निवृत्तिरूप सस्कार मुमुक्षुने कर्मेकरी उपयोग बने नहि.

जेम वस्त्रना कुसुवामा मज्जनरूप कर्मनो रक्तगुणनी **उत्पत्तिरूप संस्कार उपयोग** थाय छे, तेम गुणनी उत्पत्तिरूप संस्कार मुमुक्षुने कर्मेकरी उपयोग बने नहि केमके अन्यविषे ते गुणनी उत्पत्ति कहेवी बने नहि, आत्माविषे ज

कहेवी पडशे. ते आत्मा निर्गुण छे, तेविषे गुणनी उत्पत्ति बने नहि, एथी, गुणनी उत्पत्तिरूप संस्कार पण मुमुक्षुने कर्मनो उपयोग बने नहि. [आ प्रकरणमां उपयोग नाम फलनुं छे.] कर्मनुं पांच ज प्रकारनुं फल थाय छे, अन्य नहि. ते पांच प्रकारनुं कर्मनुं फल मुमुक्षुने बने नहि. एथी कर्मने त्यागीने ज्ञाननां साधन श्रवणविषे ज मुमुक्षु प्रवृत्त थाय. उपासना पण मानसकर्म ज छे, एथी तेना खंडनमां पृथक् युक्ति नथी कही. ए रीतिए केवल कर्म अथवा उपासना मोक्षनां हेतु नथी, किन्तु केवल ज्ञान छे.

२८०. (समुच्चयवाद.)

कोई कर्मउपासनासहित ज्ञानने मोक्षनां हेतु अंगीकार करे छे. अने तेविषे युक्ति दृष्टान्त पण कहे छे. जेम आकाशमां पक्षीनुं एक पक्षेकरी गमन थाय नहि, किन्तु बे पक्षेकरी गमन थाय छे; तेम मोक्ष(रूप)लोक प्रति पण एक ज्ञानरूप पक्षेकरी गमन थाय नहि; किन्तु एकपक्ष तो उपासनासहित कर्म छे, अने द्वितीयपक्ष ज्ञान छे. [उपासना पण मानसकर्म ज छे, एथी एक ज पक्ष छे.]

अन्य दृष्टान्तः—

२८१. जेम सेतुना (सेतुबंधरामेश्वरना) दर्शनेकरी पापनो नाश थाय छे, ते सेतुनुं दर्शन पण प्रत्यक्षरूप ज्ञान छे अने श्रद्धाभक्तिसहित गमनादि नियमनी अपेक्षा करे छे. श्रद्धादिकरहित जे पुरुष होय तेने सेतुदर्शनेकरी फल थाय नहि. जेम सेतुनुं प्रत्यक्षज्ञान, श्रद्धानियमादिकोनी, फलनी उत्पत्तिमां, अपेक्षा करे छे, तेम ब्रह्मज्ञान पण, मोक्षरूप फलनी उत्पत्तिमां, कर्मउपासनानी अपेक्षा करे छे.

(क्रमसमुच्चयवाद)

अने केवलज्ञानेकरी जे मोक्ष अगीकार करे छे, ते पण ज्ञाननो हेतु तो कर्मउपासना माने छे शुद्ध अने निश्चल अत करणमा ज्ञान थाय छे ते अत करण शुभकर्मेकरी शुद्ध थाय छे अने उपासनाएकरी निश्चल थाय छे ए रीतिए अत करणनी शुद्धि अने निश्चलताद्वारा कर्मउपासना ज्ञानना हेतु अगीकार कर्या छे

३८२ जेम ज्ञानना हेतु कर्मउपासना अगीकार कर्या, तेम ज्ञानना फल (मोक्ष ते) मोक्षना हेतु पण (कर्मउपासना) अगीकार करवा योग्य छे दृष्टान्त –जेम जलनु सेचन वृक्षनी उत्पत्तिनो हेतु छे, अने वृक्षना फ ल नी उत्पत्तिनो पण हेतु छे वनना वृक्षनां जे फल, जलसेचन विना थाय छे ते पण वृक्षना मूलमा नीचे जलनो सबध छे, एथी फल थाय छे अने जलना सबध विना वृक्ष ज सूकाई जाय, फल थाय नहि तेम कर्मउपासना ज्ञाननी उत्पत्तिना हेतु छे, अने ज्ञाननु फल जे मोक्ष तेना पण हेतु छे ए रीतिए कर्म, उपासना, ज्ञान, ए त्रणे मोक्षना हेतु छे. एथी ज्ञानवान् पण कर्म करे.

(समसमुच्चयवाद)

३८३ अथवा कर्मउपासना ज्ञाननी रक्षाना हेतु छे केमके, जो कर्मउपासनानो ज्ञानवान् त्याग करे, तो उत्पन्न थयु ज्ञान पण, जलविनाना वृक्षनी पेठे, नष्ट थई जशे केमके शुद्ध अत करणमां ज्ञान थाय छे अने शुभकर्म नहि करे तो ज्ञानवान्ने पाप थशे अने उपासनाना त्यागेकरी अंत करण पुन चचल थई जशे ते मलिन अने चचल अतःकरण

मां ज्ञान रहे नहि. जेम सूकी भूमिमां उत्पन्न थयो वृक्ष पण रहे नहि.

अन्य दृष्टान्तः—जेम संस्कारेकरी शुद्ध करेला स्थानमां वेदपाठी ब्रह्मचारी निवास करे छे, अने शुद्ध करेलुं स्थान पण कोई निमित्ते फरी मलिन थई जाय तो ते स्थानने त्यागी दे छे; तेम कर्मना त्यागे मलिन अने उपासनाना त्यागे चंचल थयुं जे अंतःकरण तेविषे ज्ञान रहे नहि. एथी कर्म अने उपासना ज्ञाननी रक्षाना हेतु छे. ए रीतिए कर्म, उपासना, ज्ञान, त्रणे मोक्षनां हेतु अंगीकार करिये. तथा ज्ञाननी रक्षाना हेतु कर्मउपासना अंगीकार करिये, अने केवल ज्ञान, मोक्षनां हेतु अंगीकार करिये. एने प्रकारे ज्ञानवान्ने कर्म-उपासना कर्तव्य छे. एने समुच्चयवाद कहे छे.

३८४. (समसमुच्चयवादनुं खंडन.)

(सिद्धान्ती कहे छे केः-) ए (समुच्चयवाद) समीचीन नथी. केमके, देहथी भिन्न आत्मा जे नहि जाणे, तेणे-करी कर्म थाय नहि. केमके, जन्मान्तरना भोगने निमित्त कर्म करे छे, अने देहनो अग्निविषे दाह थाय छे, तेथी (देहथी) जन्मान्तरना भोग बने नहि. एथी शरीरथी भिन्न-आत्मानुं ज्ञान, कर्मनो हेतु छे, ते पण शरीरथी भिन्न-आत्मानुं कर्ताभोक्तारूपे करीने ज्ञान, कर्मनो हेतु छे. 'हुं पुण्यपापनो कर्ता छुं अने पुण्यपापनुं फल मने थशे.' एवुं जेने ज्ञान छे ते कर्म करे छे. अने ज्ञानवान्ने एवुं आत्मानुं ज्ञान छे नहि; किन्तु 'पुण्यपाप अने सुखदुःखथी रहित असंग ब्रह्मरूप आत्मा छे,' एवुं वेदान्तवाक्ये ज्ञान थाय छे; ते ज्ञान, कर्मनो हेतु नथी, उलटुं विरोधि छे. एथी ज्ञानवानेकरी कर्म थाय नहि. अने कर्ता, कर्म अने फलनुं

भेदज्ञान, कर्मनो हेतु छे. ते कर्ता, कर्म अने फलनी, ज्ञानवान्‌ने, आत्माथी भिन्न प्रतीति थाय नहि, संपूर्ण आत्मस्वरूप ज प्रतीत थाय छे, एथी पण ज्ञानवाने कर्म थाय नहि. अने भाष्यकारे बहु प्रकारे ज्ञानवान्‌ने कर्मनो अभाव प्रतिपादन कर्यो छे. कर्मनो अने ज्ञाननो फलेकरी विरोध छे. एथी पण ज्ञानकर्मनो समुच्चय बने नहि. कर्मनुं फल अनित्यसंसार छे, अने ज्ञाननुं फल नित्यमोक्ष छे.

३८५. जेने आत्मामां जाति (वर्ण), आश्रम अवस्था (बाल युवादि)नो अध्यास कर्मनो हेतु छे. केमके, जाति, आश्रम, अवस्थाने योग्य, भिन्न भिन्न कर्म कह्यां छे, एथी जाति आदिकोनो अध्यास कर्मनो हेतु छे. यद्यपि जाति, आश्रम, अवस्था, देहना धर्म छे, अने कर्मीने देहमां आत्मबुद्धि छे नहि, किन्तु देहथी भिन्न कर्ता-आत्मा, कर्मी जाणे छे. ए वार्त्ता पूर्वे कही, एथी जाति-आश्रम अवस्थानी प्रतीति आत्मामां कर्मीने पण बने नहि। तथापि देहथी भिन्न आत्मानुं कर्मीने अपरोक्ष ज्ञान नथी, किन्तु शास्त्रेकरी परोक्ष ज्ञान छे, अने देहमां आत्मज्ञान अपरोक्ष छे. जो देहथी भिन्न आत्मानुं अपरोक्षज्ञान होय, तो देहमां अपरोक्षआत्मज्ञाननुं ते विरोधि थाय. अने अपरोक्षज्ञाननो अपरोक्षज्ञानथी विरोध नथी. एथी देहथी भिन्न कर्ता-आत्मानुं ज्ञान, अने देहमां आत्मबुद्धि, ए बंने एकने बने छे. दृष्टान्तः–मूर्तिमां ईश्वरज्ञान शास्त्रेकरी परोक्ष छे, अने पाषाणबुद्धि अपरोक्ष छे, तेओनो विरोध नथी. बंने एकने थाय छे. अने रज्जुमां जेने, सर्पथी अपरोक्षभेदज्ञान छे, तेने अपरोक्ष सर्पभ्रान्ति दूर थाय छे. एथी आ नियम सिद्ध थयो.–**अपरोक्षभ्रान्तिनो अपरोक्षज्ञानसह** विरोध छे, **परोक्ष** (ज्ञान) सह नहि.

पथी देहथी भिन्न आत्मानुं परोक्षज्ञान, अने देहमां अपरोक्ष-ज्ञान बने छे. ते बंने कर्मना हेतु छे. देहथी भिन्न पण कर्तारूपेकरीने आत्मानुं ज्ञान, कर्मनो हेतु छे. ते कर्तारूपे-करीने आत्मानुं ज्ञान भ्रान्तिरूप छे. अने भ्रान्ति विद्वानने छे नहि, पथी (तेने) कर्मनो अधिकार नथी.

अने देहमां अपरोक्ष आत्मबुद्धि (देह हुं छुं एवी बुद्धि) होय, त्यारे देहना धर्म,—जाति, आश्रम, अवस्था,—प्रतीत थाय. ते देहमां आत्मबुद्धि पण विद्वानने छे नहि, किन्तु ब्रह्मरूपेकरीने आत्मानुं अपरोक्षज्ञान छे. पथी जाति, आश्रम, अवस्थानी भ्रान्तिना अभावथी पण विद्वान्ने कर्मनो अधि-कार नथी. अने उपासना पण 'हुं उपासक छुं, देव उपास्य 'छे,' ए बुद्धिपकरी थाय छे ते विद्वान्ने उपास्यउपासक-भाव प्रतीत थाय नहि. 'देहादिक संघात तो मारो अने 'देवनो स्वप्ननी पेठे. कल्पित छे. अने चेतन एक छे.' ए विद्वाननो निश्चय छे. पथी ज्ञाननो उपासनासाथे विरोध छे.

३८६. अने पक्षीना गमननुं दृष्टान्त बने नहि. केमके, पक्षीना तो बे पक्ष एक कालमां रहे छे तेओनो परस्पर विरोध नथी. अने ज्ञाननो तो कर्मउपासनासाथे विरोध छे एक कालमां बे बने नहि.

३८७. अने सेतुना ज्ञाननुं दृष्टान्त पण बने नहि. केमके सेतुनुं दर्शन दृष्टफलनो हेतु नथी, किन्तु अदृष्टफलनो हेतु छे. [प्रत्यक्ष जे फल प्रतीत थाय ते दृष्टफल कहेवाय छे.] जेम भोजननुं फल तृप्ति प्रत्यक्ष छे, पथी भोजन दृष्टफलनो हेतु छे; तेम सेतुना दर्शनथी प्रत्यक्षफल प्रतीत थाय नहि, किन्तु पापना नाशरूप फल शास्त्रेकरी जाण्युं जाय छे. [शास्त्रे-करी जे फल जाणिये, अने प्रत्यक्ष प्रतीत थाय नहि; ते

अदृष्टफल कहेवाय छे.] पथी जेम यज्ञादिक कर्म स्वर्गादिक अदृष्टफलना हेतु छे, तेम सेतुनुं दर्शन पण पापना नाशरूप अदृष्टफलनो हेतु छे. जे अदृष्टफलनो हेतु होय छे, ते तो फलनी उत्पत्तिमां शास्त्रे जेटली साहाय्य बोधन कर्यो छे, ते सहित फलनो हेतु थाय छे, केवल नहि. पथी श्रद्धानियमादिकसहित सेतुनुं दर्शन पापनाशरूप फलनो हेतु छे, श्रद्धानियमादिकरहित (फलनो) हेतु नथी. केमके, सेतुना दर्शनथी प्रत्यक्ष तो कोई फल प्रतीत थतुं नथी, केवल शास्त्रेकरी जाण्युं जाय छे. ते शास्त्र श्रद्धादिकसहित सेतुना दर्शनेकरी फल बोधन करे छे. केवल दर्शनेकरी फलनी उत्पत्तिमां पंइ प्रमाण नथी. पथी सेतुनुं दर्शन, फलनी उत्पत्तिमां, श्रद्धानियमभक्तिनी अपेक्षा करे छे.

३८८. अने ब्रह्मविद्या, पोताना फलनी उत्पत्तिमां, कर्मउपासनानी अपेक्षा करे नहि. केमके, जो ब्रह्मविद्यानुं फल पण, स्वर्गनी पेठे, लोकविशेष, अदृष्ट होय, अने ते लोकविशेष पण, केवलब्रह्मविद्याएकरी, शास्त्रे बोधन कर्यो न होय, किन्तु कर्मउपासनासहितेकरी बोधन कर्यो होय, तो ब्रह्मविद्या पण, सेतुना दर्शननी पेठे, फलनी उत्पत्तिमां कर्मउपासनानी अपेक्षा करे. ते ब्रह्मविद्यानुं फल मोक्ष, स्वर्गनी, पेठे लोकविशेषरूप अदृष्ट तो छे नहि, किन्तु मोक्ष नित्यप्राप्त छे. अने भ्रान्तिए बंध प्रतीत थाय छे. ते भ्रान्तिनो निवृत्ति ज ब्रह्मविद्यानु फल छे. ते भ्रान्तिनी निवृत्ति केवल ब्रह्मविद्याएकरी अमने प्रत्यक्ष छे. अने रज्जुज्ञाने सर्पभ्रान्तिनी निवृत्ति सर्वने प्रत्यक्ष छे, पथी अधिष्ठानज्ञाननुं भ्रान्तिनी निवृत्ति (ए) दृष्टफल छे. दृष्टफलनी उत्पत्ति जेटली सामग्रीए प्रत्यक्ष प्रतीत थाय छे ते सामग्री दृष्टफलनो हेतु कहेवाय

छे. जेम *तुरी, तंतु,† अने वेमेकरी‡ पटनी उत्पत्ति प्रत्यक्ष छे, पथी तुरी, तंतु, वेम, पटना हेतु छे. अने केवल भोजनेकरी तृप्तिरूप फल प्रत्यक्ष प्रतीत थाय छे, पथी केवलभोजन तृप्तिनो हेतु छे; तेम केवलअधिष्ठानज्ञानथी भ्रान्तिनी निवृत्ति प्रत्यक्ष प्रतीत थाय छे, पथी केवलअधिष्ठाननुं ज्ञान ज भ्रान्तिनी निवृत्तिनो हेतु छे. जेम रज्जुनुं ज्ञान, भ्रान्तिनी निवृत्तिमां, अन्यनी अपेक्षा करे नहि; तेम बंध-भ्रान्तिनुं अधिष्ठान जे नित्यमुक्तआत्मा तेनुं ज्ञान पण बंध-भ्रान्तिनी निवृत्तिमां कर्मउपासनानी अपेक्षा करे नहि.

३८९. अने ज्ञाननां फल मोक्षने, स्वर्गनी पेंठे, लोकविशेष अदृष्ट, जे अंगीकार करे छे ते वेदवाक्यथी विरुद्ध छे. केमके, ज्ञानवानना प्राण कांई लोक प्रति गमन नथी करता, ए वेदमां कह्युं छे. अने लोकविशेष अंगीकार करवाथी, स्वर्गनी पेंठे, मोक्ष अनित्य थशे. पथी लोकविशेषरूप मोक्ष नथी. अने लोकविशेष मोक्ष जे अंगीकार करे, तेने पण केवलज्ञाने ज मोक्षलोकनी प्राप्ति अंगीकार करवी योग्य छे. केमके, शास्त्रे प्रतिपादन करेलो जे अर्थ होय, ते शास्त्रने अनुसार ज अंगीकार कराय छे. ते शास्त्र केवलज्ञानेकरी मोक्ष कहे छे, पथी केवलज्ञान मोक्षनो हेतु छे; कर्म उपासना ज्ञान, त्रणे नथी.

३९०. अने वृक्षनुं दृष्टान्त पण बने नहि. केमके, यद्यपि जलनुं सेचन, वृक्षनी उत्पत्ति अने रक्षामां, हेतु छे; तथापि वृक्षना फलनी उत्पत्तिमां नथी. (बाल अने) वृद्ध जे वृक्ष छे, तेविषे जलनुं सेचन वृक्षनी रक्षाने निमित्त छे, फलने निमित्त नहि. जलेकरी पुष्ट जे वृक्ष, ते ज फलनो हेतु छे,

* साल. वस्त्र वणवानुं साच, † सूत्र. ‡ वस्त्र वणवानो दंड.

जलसेचन नहि ते कर्मउपासनानो पण ज्ञाननी उत्पत्तिमां उपयोग छे, मोक्षमां नथी. एथी ज्ञाननी उत्पत्तिथी पूर्वे ज अंत.करणनी शुद्धि अने निश्चलताना निमित्त, कर्मउपासना करे. ज्ञानथी अनंतर मोक्षना निमित्त नहि.

ज्ञाननी उत्पत्तिथी पूर्वे पण ज्यांसुधी अंतःकरणमां मल अने विक्षेप होय त्यांपर्यन्त ज करे. शुद्ध अने निश्चल अंतःकरण जेनुं होय, ते जिज्ञासु श्रवणनां विरोधी कर्मउपासनानो त्याग करे. मलनाम पापनुं छे, ते अशुभ वासनानो हेतु छे. ज्यांपर्यन्त मल होय त्यांपर्यन्त अशुभवासना होय छे. ज्यारे अशुभवासना होय नहि, त्यारे मलनो अभाव निश्चय करे. अंतःकरणनी चंचलता अने एकाग्रता अनुभवसिद्ध छे. एथी उत्तम जिज्ञासु अने विद्वान्ने कर्मउपासना निष्फल छे.

३९१. अने पूर्वे जे कह्युं-'ज्ञाननो रक्षाने निमित्त कर्म-'उपासना करे. जेम जलथी उत्पन्न थयो जे वृक्ष तेनी जले-'करी रक्षा थाय छे. जो जलनो संबंध न होय तो वृद्ध वृक्ष 'पण सूकाई जाय छे, तेम कर्मउपासनाए उत्पन्न थयुं जे 'ज्ञान, तेनी कर्मउपासनाए रक्षा थाय छे. जो ज्ञानी कर्म-'उपासना नहि करे तो, अंतःकरण मलिन अने चंचल पुनः 'थई जशे. ते मलिन अने चंचल अंतःकरणमां, सूकी भूमिमां 'वृक्षनी पेठे, उत्पन्न थयुं ज्ञान पण नष्ट थई जशे. एथी 'ज्ञान-'वान् पण कर्मउपासना करे.'

(सिद्धान्ती कहे छे-) ए बने नहि. केमके आभाससहित अथवा चेतनसहित अंतःकरणनी-'हुं असंग ब्रह्म छुं' ए वृत्ति ते, वेदान्तनुं फलरूप ज्ञान छे. तेनो कर्मउपासना विना नाश थशे, अथवा चेतनस्वरूप ज्ञाननो नाश थशे ? जो एम

कहियेः-स्वरूपज्ञान तो नित्य छे, एथी तेनो तो नाश अने रक्षा बने नहि; परंतु वेदान्तनुं फल जे ब्रह्मविद्यारूप ज्ञान छे, तेनी कर्मउपासनाए उत्पत्ति थाय छे अने कर्मउपासनाना त्यागे, उत्पन्न थई विद्या पण नष्ट थई जशे. एथी तेनी रक्षाने निमित्त कर्मउपासना करे. ते बने नहि. केमके एक वार उत्पन्न थई जे अंतःकरणनी ब्रह्माकारवृत्ति तेणे-करी, अज्ञान अने भ्रान्तिना नाशरूप फल, ते ज समये (समकाले)सिद्ध थाय छे. अज्ञान अने भ्रान्तिना नाशथी अनन्तर पुनः वृत्तिनी रक्षानो उपयोग नथी. अने अंतःकरणनी वृत्तिनी रक्षा, कर्मउपासनाए बने पण नहि केमके, ज्यारे कर्मउपासनानुं अनुष्ठान करशे त्यारे कर्मउपासनानी सामग्रीनुं ज वृत्तिरूप ज्ञान थशे, ब्रह्मनुं ज्ञान बने नहि, अन्यवृत्ति थयाथी प्रथमवृत्ति रहे नहि. एथी कर्मउपासना, ज्ञाननी उत्पत्तिना तो परंपराथी हेतु छे, अने उत्पन्नवृत्तिनां विरोधी छे एथी कर्मउपासनाए ज्ञाननी रक्षा थाय नहि

३९२. अने पूर्व जे कह्युंः-'ज्ञानवान्‌ने कर्म त्यागेथी पाप 'थाय छे.' ते वार्त्ता बने नहि. केमके, जे शुभकर्मनो त्याग छे ते पापनो हेतु नथी, किन्तु निषिद्धकर्मनुं अनुष्ठान ज पापनो हेतु छे,ए वार्त्ता भाष्यकारे बहु प्रकारे प्रतिपादन करी छे. एथी कर्मना त्यागेकरी पाप थाय नहि. अने ज्ञानवान्‌ने तो सर्व प्रकारे पापनो असंभव छे. केमके पुण्यपाप अने तेओनो आश्रय अंतःकरण, परमार्थथी, छे नहि, अविद्याएकरी मिथ्या प्रतीति थाय छे. ते अविद्या अने मिथ्या प्रतीति ज्ञानवान्‌ने छे नहि. एथी ज्ञानवान्‌ने शुभकर्मना त्यागेकरी अथवा अशुभना अनुष्ठानेकरी पाप बने नहि.

३९३. (मंद अने दृढ बे प्रकारनुं ज्ञान.)

ए स्थानमां आ सिद्धान्त छेः-मंद अने दृढ बे प्रकारनुं ज्ञान छे. संशयादिकसहित जे ज्ञान, ते **मंदज्ञान** कहेवाय छे, अने संशयादिकरहित (जे ज्ञान ते) **दृढज्ञान** कहेवाय छे. जेने दृढज्ञान होय तेने किञ्चित्मात्र पण कर्तव्य नथी. एक वार उत्पन्न थयुं जे संशयादिकरहित अंतःकरणनी वृत्तिरूप ज्ञान ते ज अविद्यानो नाश करी दे छे. ते ज्ञान पोते पण दूर थई जाय, तोपण भला प्रकारथी जाणेला आत्मामां पुनः भ्रान्ति थती नथी. केमके, भ्रान्तिनुं कारण जे अविद्या छे ते अविद्या एक वार उत्पन्न थयेला ज्ञानेकरी नष्ट थई गई. एथी भ्रान्ति अने अविद्याना अभावथी वृत्तिज्ञाननी आवृत्तिनो कंई उपयोग नथी. अने जीवन्मुक्तिना आनंदअर्थे जो वृत्तिनी आवृत्ति अपेक्षित होय, तो वारंवार वेदान्तना अर्थनुं चिन्तन ज करे.

वेदान्तना अर्थचिन्तनेकरी ज वारंवार ब्रह्माकारवृत्ति थाय छे. अने कर्मउपासनाए नहि. केमके, कर्म अने उपासनानो अंतःकरणनी शुद्धि अने निश्चलताद्वारा ज ज्ञानमां उपयोग छे, अन्या रीतिए नथी. अने **विद्वान्ना** अंतःकरणमां **पाप अने चंचलता छे नहि.** रागद्वेषद्वारा पाप अने चंचलतानो हेतु अविद्या छे. ते अविद्यानो ज्ञानेकरी नाश थाय छे. एथी विद्वान्ने पाप अने चंचलताना अभावथी कर्मउपासनानो उपयोग नथी.

३९४ अने जो कदाचित् एम कहियेः-'रागद्वेषादिक 'अंतःकरणनो सहज धर्म छे. ज्यांसुधी अंतःकरण छे त्यांसुधी 'ज्ञानवान्ने पण रागद्वेषनो सर्वथा नाश थाय नहि. ते राग- 'द्वेषथी ज्ञानवान्नुं पण अंतःकरण चंचल थाय छे. एथी चं- 'चलता दूर करवासारू ज्ञानवान् पण उपासना करे.'

'यद्यपि ज्ञानवानने अंतःकरणनी चंचलताथी विदेहमोक्षमां (भावि जन्मना अभावमां) हानि नथी, तथापि चंचल 'अंतःकरणमां स्वरूपआनंदनुं भान थाय नहि; एथी चंचलता 'जीवन्मुक्तिनी विरोधिनी छे, एथी जीवन्मुक्तिना निमित्त 'चंचलता दूर करवानेअर्थे उपासना करे.'

(सिद्धान्ती कहे छे केः-) ते बने नहि. केमके, यद्यपि दृढ बोध जेना अंतःकरणमां थयो छे, तेने समाधि अने विक्षेप समान छे. एथी अंतःकरणनी निश्चलताना निमित्त कोई यत्ननो आरंभ विद्वान्ने बने नहि.

(वेदान्तशास्त्रना विचारथी ज दृढज्ञानीने, मन निश्चल थई, ब्रह्माकार वृत्ति होय छे.)

तथापि विद्वानना प्रवृत्ति अने निवृत्ति प्रारब्धने अधीना छे. सर्वनां प्रारब्धकर्म विलक्षण छे. कोई विद्वाननुं प्रारब्ध जनकादिकोनी पेठे भोगनो हेतु छे, अने कोईनुं प्रारब्ध शुकदेव वामदेव आदिकोनी पेठे निवृत्तिनो हेतु छे. जेने प्रारब्ध, भोगनो हेतु छे, तेने तो प्रारब्धेकरी भोगनी इच्छा अने भोगनां साधननो यत्न थाय छे; अने जेने प्रारब्ध निवृत्तिनो हेतु होय, तेने जीवन्मुक्तिना आनंदनी इच्छा थाय छे, अने भोगमां ग्लानि थाय छे. जेने जीवन्मुक्तिना आनंदनी इच्छा होय ते ब्रह्माकारवृत्तिनी आवृत्तिना निमित्त वेदान्त अर्थनुं चिन्तन ज करे, उपासना नहि केमके, अंतकरणनी निश्चलतामात्रथी, ब्रह्मानंदनुं विशेषरूपे भान थाय

---

१९३. शरीरसहित सते बन्धभ्रान्तिनी निवृत्ति. जीवन्मुक्तनुं एक लक्षणः—

ब्रह्मानन्दरसास्वादासक्तचित्ततया यतेः ।
अन्तर्बहिरविज्ञानं जीवन्मुक्तस्य लक्षणं ॥ ४३८ ॥

विवेकचूडामणिः ।

नहि; किन्तु ब्रह्माकारवृत्तिए ज थाय छे. ते ब्रह्माकारवृत्ति वेदान्तचिन्तने ज थाय छे, उपासनाए नहि. अने अंत.करणनी चंचलता पण विद्वानने वेदान्तना चिन्तने ज दूर थई जाय छे. एथी अंत.करणनो निश्चलताना निमित्त पण उपासनामां प्रवृत्ति थाय नहि. ए रीतिए दृढबोध जेने थयो छे, तेनी कर्मउपासनामां प्रवृत्ति थाय नहि.

३९५. अने जेने मंदबोध छे ते पण मनन अने निदिध्यासन ज करे, कर्मउपासना नहि. केमके मंदबोध जेने थयो छे ते उत्तमजिज्ञासु छे. ते उत्तमजिज्ञासुने मनननिदिध्यासन विना अन्य कर्तव्य नथी. ए वार्ता शारीरकमां सूत्रकार अने भाष्यकारे प्रतिपादन करी छे. अने विद्वान्ने मनननिदिध्यासन पण कर्तव्य नथी. जे विद्वान् जीवन्मुक्तिना आनंदसारू मनननिदिध्यासनमां प्रवृत्त थाय छे, ते पण पोतानी इच्छाए प्रवृत्त थाय छे. अने 'हु वेदनी आज्ञा 'नहि करूं तो मने जन्ममरणससार थशे,' एवी बुद्धिए जे क्रिया करे ते कर्तव्य कहेवाय छे. ते जन्मादिकोनी बुद्धि विद्वानने होय नहि. एथी पोतानी इच्छाए जे विद्वान् मनननिदिध्यासन करे; ते कर्तव्य नहि. ए रीतिए मंदबोध अथवा दृढबोध जेने थयो छे, तेने कर्मउपासना कर्तव्य नथी.

३९६. अने जेने बोध थयो छे नहि, किन्तु आत्माने जाणवानी तीव्रइच्छा छे, भोगनी नहि, तेनु अंत.करण शुद्ध छे. एथी ते पण उत्तम ज जिज्ञासु छे, तेने पण बोधना अर्थे श्रवणादिक ज कर्तव्य छे, कर्मउपासना नहि. केमके, जे कर्मउपासनानु फल छे ते तेने सिद्ध छे अने ज्ञाननी सामान्य इच्छाथी जे श्रवणमां प्रवृत्त थयो छे, अने अंत.करण भोगोमां आसक्त छे, ते मंदजिज्ञासु छे ते पण श्रवणने त्यागीने पुनः

कर्मउपासनामां प्रवृत्त थाय नहि. कर्मउपासनानुं फल जे अंतःकरणनी शुद्धि अने निश्चलता छे, ते तेने श्रवणेकरी ज थई जशे. श्रवणनी आवृत्तिथी अंतःकरणना दोष दूर थईने आ जन्मविषे अथवा अन्य जन्मविषे अथवा ब्रह्मलोकविषे ज्ञान थाय छे. [आवृत्ति नाम वारंवारनुं छे.] अने श्रवणने त्यागीने ज कर्मउपासनामां प्रवृत्त थाय छे, ते **आरूढपतित** (ऊंचे चडी पडेलो) कहेवाय छे. ए रीतिए ज्ञानवान् अने उत्तमजिज्ञासुनो कर्मउपासनाविषे अधिकार नहि. अने मंदजिज्ञासु पण जे वेदान्तश्रवणमां प्रवृत्त थयो छे, तेनो अधिकार नहि. अने ज्ञाननी जेने इच्छा तो छे परंतु भोगमां बुद्धि आसक्त छे, एथी श्रवणमां प्रवृत्त होय नहि एवो जे मंदजिज्ञासु, तेने निष्कामकर्म अने उपासनामां अधिकार छे. अने जेनी भोगविषे ज आसक्ति छे, ज्ञाननी इच्छा नथी, एवो जे बहिर्मुख छे, तेनो सकामकर्मविषे पण अधिकार छे. एथी ज्ञानवान्‌ने कर्मउपासनानो अधिकार नहि. कर्मउपासनानुं ज्ञान विरोधी छे.

३९७. (ज्ञान जगतना व्यवहारनुं विरोधी नथी, अने जगत्‌नो व्यवहार ज्ञाननो विरोधी नथी.)

अने कर्मउपासना पण अंतःकरणनी शुद्धि अने निश्चलताद्वारा ज्ञाननी उत्पत्तिना तो हेतु छे, परंतु ज्ञाननी उत्पत्तिथी अनंतर जो कर्मउपासना करे, तो उत्पन्न थयुं ज्ञान नष्ट थई जशे. एथी ज्ञानना विरोधी छे, रक्षाना हेतु नथी. केमके 'हुं कर्ता छुं, अने यज्ञादिक मारे कर्तव्य छे, अने 'यज्ञादिकोनुं स्वर्गादि फल छे,' ए भेदबुद्धिए कर्म थाय छे. अने 'हुं उपासक छुं. देव उपास्य छे, ए भेदबुद्धिए उपासना थाय छे. ए बंने प्रकारनी बुद्धि "सर्व ब्रह्म छे" ए

बुद्धिले दूर करीने थाय छे. एथी कर्मउपासना ज्ञाननां विरोधी छे. यद्यपि ज्ञानवान् आत्माने असंग जाणे छे, तोपण देहनो भोजनादिक व्यवहार, अथवा जनकादिकोनी पेठे अधिक राज्यपालनादिक व्यवहार करे छे. ते व्यवहारनुं ज्ञान विरोधी नथी; अने व्यवहार ज्ञाननो पण विरोधी नथी. केमके, जे आत्मस्वरूप ज्ञानेकरी असंग जाण्युं छे, ते आत्माविषे, जो व्यवहार प्रतीत थाय, तो व्यवहारनुं विरोधी ज्ञान, तथा ज्ञाननो विरोधी व्यवहार थाय. ते विद्वानने आत्माविषे व्यवहार प्रतीत थाय नहि; किन्तु संपूर्ण व्यवहार देहादिकोने आश्रित छे, अने आत्माविषे व्यवहारसहित देहादिकोने संबंध छे नहि, ए बुद्धिए संपूर्ण व्यवहार (विद्वान्) करे छे. ए ज कारणथी विद्वान्नी प्रवृत्ति पण निवृत्ति ज कही छे.

(दृढज्ञानने आभासरूप कर्मउपासना पण विरोधी नथी.)

३९८. जेम अन्य व्यवहार ज्ञाननो विरोधी नथी, तेम कर्मउपासना पण अन्य बहिर्मुखपुरुषोने कराववा अर्थे आत्माने असंग जाणीने, अने देह, वाक्, अंतःकरणने आश्रिता क्रिया जाणीने, जो कर्मउपासना करे, तो ज्ञानना विरोधी नथी. केमके विद्वाने जे आत्मा असंग जाण्यो छे, तेने कर्ता जाणीने जो कर्मउपासना करे, तो ज्ञानना विरोधी थाय. विद्वान्नो ते आत्माना असंगरूप दृढनिश्चय, कर्मउपासनाए दूर थाय नहि. एथी आभासरूप कर्म अने उपासना, दृढज्ञानना विरोधी नथी. ए कारणथी जनकादिकोए आभासरूप कर्म कर्यां छे. विद्वान, आत्माने असंग जाणीने, अन्य व्यवहारनी पेठे देहादिकना धर्म जाणीने जे *शुभक्रिया* करे, ते **आभासरूप कर्म** कहेवाय छे. तेनो ज्ञान साथे विरोध नथी. अने भाष्यकारे कर्मउपासनानो ज्ञानथी जे विरोध कह्यो छे, ते

आत्मामां कर्ताबुद्धिए जें कर्मउपासना करे छे, तेनो विरोध कह्यो छे; अने आभासरूपे (करे तेनो) नहि.

३२९. (बोधनी उत्पत्तिपूर्वे कर्मउपासना करवां, पछी नहि.)

तथापि आभासरूप कर्म अने आभासरूप उपासना पण मंदबोधना विरोधी छे. केमके जे संशयादिक-सहित बोध छे, ते **मंदबोध** कहेवाय छे. जेना अंतःकरणमां 'आत्मा असंग छे, अथवा (असंग) छे नहि' एवो कदाचित् संशय थाय, ते पुरुष जो वारंवार, 'आत्मा असंग छे, मारे किञ्चित् मात्र पण कर्तव्य नथी,' ए अर्थनुं चिन्तन करे, त्यारे तो संशय दूर थईने दृढबोध थई जाय. अने (ते मंद-बोधवान्) जो कर्मउपासना करशे तो मंदबोध जे उत्पन्न थयो छे ते दूर थईने 'हुं कर्ता-भोक्ता छुं' ए विपरीत निश्चय थई जशे. एथी मंदबोधनी उत्पत्तिथी पूर्वे ज कर्मउपासना करे, अने अनंतर नहि. जो मंदबोधवान् कर्मउपासना करशे, तो उत्पन्न थयेलो बोध नष्ट थई जशे.

दृष्टान्तः-जेम पक्षी पोतानां अंडो(ईंडां)ने पक्षनी उत्प-त्तिथी पूर्वे सेवन करे छे, अने पक्षनी उत्पत्तिथी अनंतर नहि. जो पक्षनी उत्पत्तिथी अनंतर पण अंडोनुं सेवन करे तो बालकपक्षीना ते अंडोना अलेकरी पक्ष गली जायः तेम ज्ञाननी उत्पत्तिथी पूर्व ज कर्मउपासनानुं सेवन करे, अने ज्ञाननी उत्पत्तिथी अनंतर नहि. जो ज्ञाननी उत्पत्तिथी अनं-तर पण कर्मउपासनानुं सेवन करे तो बालकपक्षीनी (पांखनी) पेठे, मंदज्ञान नाश थई जाय. अने वृद्धपक्षीने जेम अंडोना संबंधथी हानि थाय नहि, तेम दृढबोधनो तो हानि थाय नहि. अने वृद्धपक्षीनी पेठे दृढबोधने कर्मउपासनाएकरी उपयोग पण नथी. ए रीतिए ज्ञानवान्ने मोक्षना निमित्त किंचित्मात्र

पण कर्तव्य नथी. ए तृतीय प्रश्ननुं उत्तर कह्युं.

४००. आचार्ये शिष्यने जे उत्तर कह्यां, ते वेदने अनुसार कह्यां, एथी यथार्थ छे, ए वार्ता कहे छे.

दुहो.

शिष्य ! कह्यो जे में तुने सर्व वेदनो सार,
अनायास ते जाणतां, संसृति जाय अपार. ११.

टीकाः-हे शिष्य ! मे तुं ने जे कह्यो ते सर्व वेदनो सार छे, एथी एविषे विश्वास कर. अने एना जाणवाथी 'अनायास' नाम खेद विना अपार जे 'संसृति' नाम जन्ममरणरूप संसार तेनो नाश थाय छे.

४०१. (आ अंकमां हिन्दुस्थानी भाषाना संप्रदायविषे,-गुरुनो लघु, लघुनो गुरु गणवा लखवा; 'क्ष' ने स्थले 'छ,' 'श' ने स्थले 'स' आदि लखाय छे ते विषे थोडी पंक्तिओ छे. ते अत्र आ गुर्जर भाषामां लागु नथी पडती तेथी लखी नथी.)

४०२. (पूर्वोक्त अर्थनो संग्रह.)

'जगतनो कर्ता ईश्वर छे, ते तुंथी भिन्न नहि, अने सत, 'चित, आनंदरूप ब्रह्म तुं छुं' ए आचार्ये कह्युं, ते ज कृपाथी पुनः कहे छे.

कवित.

दीनताने त्यागी नर, पोतानुं स्वरूप देख,
तुं तो शुद्धब्रह्म अज दृश्यनो प्रकाशी छुं;
पोताना अज्ञानथकी, सर्व जगत तुं ज रचे,
सर्वनो संहार करे, पोते अविनाशी छुं;
मिथ्या प्रपंच देखी, दुःख रखे आणुं मन,
देवोकेरो देव तुं तो, सर्व सुखराशि छे;
जीव जगत ईश थई मायाए प्रभासुं तुं ज,
जेम रज्जु सर्प, सीपरूप थै प्रभासी छे. १२.

अर्थ स्पष्ट.

४०३. (ज्ञाननां साधन.) कवित.

राग वाली, लोभ टाली, द्वेष मारी, मार वारी,
वारंवार मृगवारि पारावार पेखिये;
ज्ञानभानु आणि, तमतम टाली भागत्यागे,
जीव-शिव-भेद छेदी, वेदन सुलेखिये;
वेदनो विचार सार, पोताने संभारी थार;
टाली दासपाश, आश ईशनी न देखिये;
निश्चल ! तुं चल न, अचल, चलदल छल,
नभ नील तलमल, तेथी न विशेखिये. १३.

टीकाः-ज्ञाननां साधन कहे छे. हे शिष्य ! 'राग' (नाम) पदार्थमां जे दृढआसक्ति छे तेने वालीने, लोभने 'टालीने' नाम नाश करीने, द्वेषने मारीने, 'मार' नाम कामने 'वारी' नाम दूर करी दे. राग, लोभ, द्वेष, कामना ग्रहणथी, सर्व राजसी तामसी वृत्तिनुं ग्रहण छे; एथी सर्व राजसी तामसी वृत्तिनो नाश कर, ए अर्थ सिद्ध थयो. राजसीवृत्ति अने तामसीवृत्ति ज्ञाननी विरोधिनी छे. तेओना नाश विना ज्ञान थाय नहि, एथी तेओनी निवृत्ति जिज्ञासुने अपेक्षित छे. विवेक, वैराग्य, शमादि षट्संपत्ति, मुमुक्षुता; ए चारे जे ज्ञाननां साधन छे, तेओमां विवेक प्रधान छे. केमके, विवेकथी वैराग्यादि उत्पन्न थाय छे एथी

विवेकनो उपदेश आचार्य करे छे.

हे शिष्य ! पारावार जे संसार छे, तेने वारंवार 'मृगवारि' नाम मृगतृष्णाना जलसमान मिथ्या जाण. [पारावार नाम संसारनुं छे अने अपारावार नाम आत्मानुं छे.] पारावार मिथ्या छे एम कहेवाथी अपारावार मिथ्या नहि;

किन्तु सत्य छे, ए वार्त्ता अर्थथी कही. जेम वाजीगर(मायावी)नो तमाशो (खेल) देखता पुत्रने पिता कहे के 'हे पुत्र! 'आ आम्रवृक्षने आदिलोने जे वाजीगरे बनाव्या छे, ते 'मिथ्या छे.' ए कहेवायाथी वाजीगरने मिथ्या नथी जाणतो, पण सत्य जाणे छे. तेम जगत्‌ने मिथ्या कह्याथी आत्माने सत्य जाणी लेशे, ए अभिप्रायथी आचार्ये वारावार मिथ्या कह्युं. ए रीतिए जगत् मिथ्या छे, अने आत्मा सत्य छे. ए विवेकनो उपदेश कर्यो. ते विवेके अन्यसाधन पोते ज उत्पन्न थाय छे. एथी विवेकना उपदेशथी सर्व साधननो उपदेश अर्थेकरी कह्यो. ज्ञाननां बहिरंग साधन कह्यां. अंतरंग साधन, श्रवण कहे छेः—

हे शिष्य! ज्ञानरूपी जे भानु छे, तेने 'आणी' नाम श्रवणथी संपादन करीने, 'तम' नाम अज्ञानरूपी जे 'तम' [अंधकार] छे तेने 'टाली' नाश करी दे. [तम नाम अंधारानुं अने अज्ञाननुं छे.]

[अंधारूं उपमान छे अने अज्ञान उपमेय छे. प्रथम जे 'तम' शब्द छे ते उपमेयनो वाचक छे अने बीजो ('तम' शब्द) उपमाननो वाचक छे.

दुहो.

जेने उपमा आपिये, ते उपमेय ज जाण;
जेनी उपमा आपिये, ते कहिये उपमान.]

४०४. (महावाक्यने अनुसार ज्ञाननुं स्वरूप.)

ज्ञाननुं स्वरूप अन्यशास्त्रमां नानाप्रकारनुं अंगीकार कर्युं छे. एथी महावाक्यने अनुसार ज्ञाननुं स्वरूप कहे छे. हे शिष्य! जीव अने ईश्वरविषे अविद्या अने मायाभागने त्यागीने, तेओनो जे भेद प्रतीत थाय छे तेने 'छेदी' नाम दूर

करी, अने जीव-ईश्वरमां जे 'चेतन' नाम चेतन भाग छे तेने भेदरहित जाण.

एम कहेवाथी आ वार्त्ता कही:-महावाक्यमां, भागत्यागलक्षणाथी, जीवईश्वरनी एकता जाण. (कवितना बीजा पादनो अर्थ ए प्रमाणे छे.) [तृतीयपादनो अर्थ स्पष्ट छे.]

[पूर्वे कहेला अर्थने संक्षेपमां चोथा पादेकरी कहे छे.]

हे शिष्य! 'चल' नाम विनाशी जे देहादिक संघात, ते तुं नहि; किन्तु 'अचल' नाम अविनाशी जे ब्रह्म, ते तुं छुं. अने 'चलदल' नाम (पीपळाना) वृक्षरूप जे संसार ते 'छल' नाम मिथ्या छे. जेम नभविषे नीलता अने 'तलमल' नाम कडाहरूपता (कढाईजेवुं गोळपणुं) छे नहि, किन्तु मिथ्या प्रतीत थाय छे, तेम संसार पण आत्माविषे छे नहि, मिथ्या प्रतीत थाय छे. वृक्षरूप करीने संसार श्रुतिस्मृतिमां कह्यो छे, एथी वृक्षना वाचक 'चलदल' शब्दनो संसारमां प्रयोग कर्यो छे. १३

---

१९४. संसारने वृक्षरूपे शास्त्रोमां वर्ण्यो छे:-

सर्वथी उत्कृष्ट होवाथी उच एवुं मायाविशिष्ट परब्रह्म छे मूल जेनुं, अने महत्तत्त्व छे अंकुर जेनुं, अने अहंकार छे स्कंद जेनो, अने पंचतन्मात्रा छे शाखा जेनी, एवो संसाररूप वृक्ष छे.

पूर्वोक्त महत्तत्त्वादिक सर्व, कार्यताए करी निकृष्ट होवाथी तेनी शाखा नीची कहेवाय छे. अने वेदआदि जे शास्त्र-छे ए प्ररोचनरूप वाक्योए एना अनित्यतादि दोषोने ढांके छे, एथी वेदशास्त्र जेनां पर्ण (पांदडां) छे, अने चार पुरुषार्थरूप जेनो रस छे, अने धर्मअधर्मरूप जेनां पुष्प छे, अने जन्ममरण आदि दुःख जेनुं फल छे, अने अज्ञजीवरूप पक्षी जेना भोक्ता छे, अने वैराग्येकरी तीक्ष्ण थयेल ज्ञानरूप कुठार (कुवाडो) जेनो छेदक छे, एवो ए संसाररूप वृक्ष छे. इत्यादि अनेक प्रकारे संसाररूप वृक्षनुं शास्त्रमां वर्णन छे. पं. पी. पु.

४०५ मोक्षनुं साधन ज्ञान छे, ए अर्थने अन्य प्रकारे कहे छे.

कवित.

बंध मोक्ष गेह, देहवान, ज्ञानवान्, जाण,
राग ने विराग ए बे ध्वजा फरके ज छे;
विषयमां सत्यभ्रम भ्रममति वात, तात !
हलावे छे प्रात रात घडी न ठरे ज छे;
साक्ष्य साक्षी पूतली अनुजलीने उजली बे,
देखो रागी त्यागी जन ललचाई जाय छे;
चंचल अचल भ्रम ब्रह्म निजरूप लक्षी,
दुःखकूप आनंदस्वरूपमां समाय छे. १४.

टीकाः—हे शिष्य ! 'देहवान्' नाम देहअभिमानी अज्ञानी अने ज्ञानवान्, बंध अने मोक्षनां 'गेह' नाम धाम छे. अज्ञानी तो बंधनुं धाम छे, अने ज्ञानी मोक्षनुं धाम छे. राग अने विराग ते(धामो)नी ध्वजा छे जेम ध्वजा राजाना नगरनुं चिह्न होय छे, तेम राग अने विराग तेओनां चिह्न छे. अज्ञानीनुं राग चिह्न छे अने ज्ञानीनुं विराग चिह्न छे. अज्ञानीविषे पण विराग होय छे एथी ज्ञानीनो अज्ञानीथी विलक्षण विराग कहे छे. हे तात ! विषय जे शब्दादिक छे तेओविषे *'सत्यभ्रम'* नाम सत्यत्वनी भ्रान्ति, अने *'भ्रममति'* नाम रज्जुसर्पनी पेठे विषय भ्रमरूप छे, ए जे मति [निश्चय] ते वातनी (पवननी) पेठे राग अने विराग (रूपी ध्वजाओने) हलावे छे. जेम वायु ध्वजानी चंचलता करे छे तेम विषयमां सत्यबुद्धि अने भ्रमबुद्धि राग अने विरागने चंचल करे छे; शिथिल थवा देता नथी. विषयमां सत्यबुद्धिएकरी रागनी शिथिलता दूर थाय छे, अने विषयमां भ्रमबुद्धिएकरी विरागनी शिथिलता दूर थाय छे.

४०६. विषयो असत्य छे एथी तेओमां सत्यबुद्धि भ्रान्तिरूप छे, ए वार्त्ताने जणाववाने कवितमां 'सत्य भ्रम' कह्यो, सत्य बुद्धि नहि कही. भ्रान्तिज्ञान अने भ्रान्तिज्ञाननो विषय जे मिथ्या वस्तु ते बंने भ्रम कहेवाय छे. ए कहाथी अज्ञानीना विरागथी ज्ञानीना विरागनो भेद कह्यो. केमके, जे अज्ञानीनो विराग छे ते विषयमां मिथ्याबुद्धिएकरी उत्पन्न नथी थयो, एथी मंद छे. विषय मिथ्या छे, ए बुद्धि अज्ञानीने होय नहि. यद्यपि शास्त्रयुक्तिए अज्ञानी पण मिथ्या जाणे छे, तथापि विषय मिथ्या छे, ए अपरोक्षमति ज्ञानवान्ने ज होय छे, अज्ञानीने नहि. एथी अज्ञानीने विषयमां परोक्ष जे मिथ्याबुद्धि, तेणेकरी अपरोक्षसत्यभ्रान्ति दूर थाय नहि. ए रीतिए अज्ञानीने विषयमां ज्यारे विराग थाय छे, ते कालमां परोक्षमिथ्याबुद्धि छे खरी, परंतु परोक्षमिथ्याबुद्धिथी प्रबला अपरोक्षसत्यबुद्धि छे, एथी अज्ञानीनी परोक्षमिथ्याबुद्धि विरागनो हेतु नथी, किन्तु प्रबला जे सत्यबुद्धि तेणेकरी विषयमां राग ज थाय छे. अने जो विराग थाय तोपण (ते) मिथ्याबुद्धिए नहि, किन्तु विषयमां दोषदृष्टिएकरी थाय छे. अने ज्ञानवान् सर्वप्रपंचने अपरोक्षरूपेकरीने मिथ्या जाणे छे. ते अपरोक्षमिथ्याबुद्धिए, अपरोक्षसत्यबुद्धि दूर थाय छे. एथी रागनो हेतु विषयमां सत्यबुद्धि तो ज्ञानीने छे नहि. विरागनो हेतु विषयमां मिथ्याबुद्धि ज्ञानवान्ने छे. जो ज्ञानीने विषयमां सत्यबुद्धि पुनः थाय, तो राग पण पुनः थाय, अने विराग दूर थाय. ते अपरोक्षरूपे मिथ्या जाणेला पदार्थमां पुनः सत्यबुद्धि थाय नहि. जेम अपरोक्षरूपे मिथ्या जाण्यो जे रज्जुमां सर्प, तेनाविषे सत्यबुद्धि पुनः थाय नहि; तेम ज्ञानीने पुनः सत्यबुद्धि थाय नहि. ए रीतिए रागनी

आदि वेय नहि संभवे, महावाक्यमां तात!
भागत्यागथी रूप निज ब्रह्मरूप देखात. १६.

अर्थ स्पष्ट.

४०८. शिष्य उवाच.

अर्धशंकर छंद.

अव लक्षणा प्रभु! कहे कोने यह यो समजावी,
वळी भेद तेना त्रण, तेनां लक्षणो दरशावी. १७.

टीकाः-सामान्यज्ञानथी अनंतर विशेषनुं ज्ञान थाय छे. जेम ब्राह्मणनुं सामान्य ज्ञान थयाथी अनंतर सारस्वतआदि विशेषनुं ज्ञान थाय छे. तेम लक्षणासामान्यनुं ज्ञान थाय तो जहतीआदिक विशेषरूपोनुं ज्ञान थाय. लक्षणानुं सामान्यरूप जाण्या विना जहतीआदिक विशेषरूपोनुं ज्ञान थाय नहि. ए अभिप्रायथी शिष्य कहे छेः-हे प्रभो! लक्षणा कोने कहे छे, ए हुं नथी जाणतो, एथी लक्षणानुं सामान्यरूप देखाडो, तेथी अनन्तर जे जहती आदिक लक्षणाना त्रण भेद नाम विशेष(रूप) छे तेनां जूदां जूदां लक्षण देखाडो.

४०९. गुरुवाक्य.

शंकर छंद.

श्रुति चित्त निज एकाग्र करी, शिष्य सुण मम वाणी,
ज्यम लक्षणाने भेद तेना, लेउ सुरीते जाणी,
सुण, वृत्ति छे द्विविध पदनी, शक्ति तेमां एक,
त्यां लक्षणा वळी जाण बीजी, सुण ते सविवेक. १८.

टीकाः-पदनो जे अर्थसाथे संबंध ते वृत्ति[१९५] कहेवाय छे

---

१९५. 'वृत्ति' शब्दना अनेक अर्थ छेः—वर्त्तन, स्थिति, विवरण, जीविका, नाटकरचनाना भेदमां रसानुसार—कैशिकी, सात्त्वती, भारती, आरभटी नामे वृत्तिओ होय छे. वेदान्तशास्त्रमां भखिलव्यवहारना हेतु जाग्रत्स्वप्नमां अन्तःकरणना परिणाम अने सुषुप्तिमां अविद्याना परिणामने वृत्ति कहे छे. पदनो अने अर्थनो

ते वृत्ति बे प्रकारनी छे. ते बे प्रकारमां एक शक्तिवृत्ति छे.

परस्पर संबंध तेने वृत्ति कहे छे. ए अन्त्यअर्थमां 'वृत्ति' शब्दनो अत्र नियोग छे. ए विषय निश्चलदासजी पोते 'वृत्तिप्रभाकर' ग्रंथमां लखे छे के —

'वृत्ति बे प्रकारनी छे'—(१) एक 'शक्ति'रूप वृत्ति छे, (२) 'लक्षणा'-रूप वृत्ति छे.

(शक्तिरूपवृत्ति.) मीमांसकना मतमां 'शक्ति' नाम कोई भिन्न पदार्थ छे. व्याकरणना मतमां अने पातंजल मतमां वाच्यवाचकभावनुं मूल जे पद अर्थनो तादात्म्यसंबंध ते ज 'शक्ति' छे अने विचारसागरमां योग्यतारूप 'शक्ति' व्याकरणना मते लखी छे, ते भूषणकारनुं मत छे. व्याकरणना मंजूषा ग्रंथमां योगभाष्यनी रीतिए वाच्यवाचकभावनुं मूल तादात्म्यसंबंध ज 'शक्ति' कही छे. अने अद्वैतसिद्धान्तमां पोताना सर्व कार्य करवानुं सामर्थ्य ज 'शक्ति' छे जेम तंतुमां पट करवाना सामर्थ्यरूप 'शक्ति' छे, वह्निमां दाह करवानुं ज सामर्थ्य ते 'शक्ति' छे. तेम पदोमां पोताना अर्थना ज्ञाननुं सामर्थ्य ज 'शक्ति' छे. परंतु आटलो भेद छे —वह्निआदिक पदार्थोमां जे सामर्थ्यरूप शक्ति तेना ज्ञाननी अपेक्षा नथी.—शक्ति ज्ञाता होय अथवा अज्ञाता होय—बने स्थानमां वह्नि-आदिकेकरी दाहादिक कार्य थाय छे. अने पदनी शक्तिनुं ज्ञान होय त्यारे तो अर्थनी स्मृतिरूप कार्य थाय छे, (पदनी) शक्तिनुं ज्ञान होय नहि त्यारे अर्थनी स्मृतिरूप कार्य थाय नहि एथी पदना सामर्थ्यरूप शक्ति ज्ञाता होय त्यारे पदार्थनी स्मृतिरूप कार्य थाय छे —++++ जे पदनुं ज्ञान जे अर्थनी स्मृतिमां समर्थ होय ते पदनी ते अर्थमां 'शक्ति' कहेवाय छे.

'ए रीतिए शक्तिसहित पदज्ञानथी पदार्थनी स्मृति थाय छे जेटला पदार्थोनी स्मृति थाय एटला पदार्थोना संबंधनुं ज्ञान अथवा संबंधसहित सकलपदार्थोनुं ज्ञान 'वाक्यार्थज्ञान' कहेवाय छे तेने ज 'शाब्दीप्रमा' कहे छे

(लक्षणारूपवृत्ति)

'जे अर्थमां जे पदनी वृत्ति होय ते अर्थनी ते पदेकरी प्रतीति थाय छे 'शक्ति' अने 'लक्षणा' भेदथी ते वृत्ति बे प्रकारनी छे ईश्वरनी इच्छा अथवा वाच्यवाचकभावसंबंधमूल तादात्म्य अथवा पदार्थबोधहेतुसामर्थ्यने 'शक्ति' कहे छे जे अर्थमां पदनी शक्ति होय ते अर्थ पदनो शक्य (अर्थ) कहेवाय छे शक्यसंबंधने 'लक्षणा' कहे छे. जेम 'गंगा' पदनी शक्ति प्रवाहमां छे, एथी गंगापदनो शक्यअर्थ प्रवाह छे ते साथे संयोगसंबंध तीरनो छे. ए रीतिए 'पदनो अर्थसाथे परंपरा जे संबंध ते 'लक्षणा' छे.' जेम गंगापदनो नीरसाथे

अने अन्य लक्षणावृत्ति छे. तेने 'सविवेक' नाम विवेकसहित ('गुण' नाम) एनो अर्थ लक्षणसहित सांभळ.

४१० अथ शक्तिलक्षण.

(न्यायशास्त्र प्रमाणे.)

दुहो.

जे पदथी जे अर्थनी, सुणतां थाय प्रतीति.
पवी इच्छा ईशनी, शक्ति न्यायनी रीति.　　　१९.

टीकाः-जे पदथी नाम 'घट' पदथी, जे अर्थनी नाम 'कलश' अर्थनी, सांभळतां ज 'प्रतीति' नाम ज्ञान सर्व पुरुषने थाओ, एवी जे ईश्वरनी इच्छा, तेने न्यायशास्त्रमां शक्ति कहे छे.

४११. अथ स्वरीतिए शक्तिलक्षण.

अर्धशकर छंद

सामर्थ्य पदनी शक्ति जाणो, वेदमत अनुसार,
ते वह्निमां ज्यम दाहनी छे शक्तिस्यम निर्धार　　　२०.

परंपरासंबंध छे ते ज, तीरमां गंगापदनी लक्षणा कहेवाय छे, कारण के साक्षात् संबंधवाळासाथे जे संबंध ते 'परंपरासंबंध' कहेवाय छे. गंगापदनो शक्तिरूप संबंध प्रवाहसाथे छे ते साथे संयोग तीरनो छे, एथी स्वशक्यसंयोगरूप गंगापदनो तीर-साथे परंपरासंबंध छे. ते ज लक्षणा कहेवाय छे. एथी आ सिद्ध थयुं —जे अर्थ साथे जे पदनो शक्तिरूप साक्षात्संबंध होय ते अर्थ ते पदनो 'शक्य' (अर्थ) कहेवाय छे. जे अर्थसाथे जे पदना शक्यनो संबंध होय ते अर्थ ते पदनो 'लक्ष्य' (अर्थ) कहेवाय छे. जेम गंगापदनो शक्य जे प्रवाह तेनो तीररूप अर्थसाथे संयो-गसंबंध छे एथी गंगापदनो शक्य (अर्थ) प्रवाह छे, अने लक्ष्य (अर्थ) तीर छे.

ए रीतिए वृत्ति द्विविध छे. जे पदनी वृत्ति जे पुरुषने अज्ञात होय ते पदनी ते पुरुषने साक्षात्कार थये पण पदार्थनी स्मृति अने शब्दबोध थाय नहि. एथी 'शक्ति लक्षणा रूप वृत्तिनुं ज्ञान पदार्थनी स्मृति अने शब्दबोधनो हेतु छे.' ++

पदना शक्य(अर्थ) साथे संबंधने 'लक्षणा' कहे छे. एथी पदना परंपरासंबंध रूप लक्षणा छे. केमके पदनो साक्षात् संबंध शक्य(अर्थ)साथे थाय छे. ते शक्य-(अर्थ)नो संबंध लक्ष्य (अर्थ) साथे थाय छे. एथी शक्यद्वारा पदनो संबंध होवाथी परंपरासंबंधरूप 'लक्षणावृत्ति' छे.

टीकाः–'घट'पदना श्रोताने, कलशरूप अर्थनुं ज्ञान करवानुं जे घटपदविषे सामर्थ्य, ते ज घटपदमां शक्ति छे. तेम 'पट'पदना श्रोताने, वस्त्ररूप अर्थनुं ज्ञान करवानुं जे पटपदविषे सामर्थ्य ते ज पटपदमां शक्तिवृत्ति छे. एम सर्व पदनां जाणी लेवुं. दृष्टान्तः–जेम वह्निमां पोतासाथे मळतां ज वस्तुने दाह करवानी सामर्थ्यरूप शक्ति छे, तेम श्रोताना कर्णने मळतां ज वस्तुनुं ज्ञान करवानुं जे पदविषे सामर्थ्य, ते शक्ति कहेवाय छे. [सामर्थ्य नाम समर्थपणानुं छे. जेने समर्थाई कहे छे, अने बल पण कहे छे, अने जोर पण कहे छे.] जेम अग्निमां दाहनी शक्ति छे, तेम जलविषे भीनुं करवानुं, तृषा दूर करवानुं, पिण्ड बांधवानुं, जे सामर्थ्य छे, ते शक्ति छे. ए प्रकारे सर्व पदार्थोविषे पोतपोतानुं कार्य करवानुं सामर्थ्य छे, ते ज शक्ति छे, ए वेदनो सिद्धान्त छे. तेने 'निर्धार' निश्चय कर. अने न्यायनी रीति त्यागवाने योग्य छे.

४१२. शिष्य उवाच.

शंकर छंद.

ननु वह्निमां नहि शक्ति भासे, वह्निविण बिजी कोई,
छे हेतुता जे दाहनी ते वह्निमांही ज सोई.
इम पदोमां वर्णो विना कोई शक्ति भासे नाहि.
ए हेतुथी जे ईशइच्छा शक्ति ते मतिमांहि. २१.

टीकाः—ननु [ए शब्द संदेहनो वाचक छे] वह्नि(अग्नि)मां तेना स्वरूपथी जुदी शक्ति भासे नाम प्रतीता थाय नहि. अने पूर्वे कह्यो दाहनो हेतु जे वह्निमां सामर्थ्य, ते ज वह्निमां शक्ति छे, ते बने नहि. केमके दाहनी हेतुता नाम जनकता–कारणपणुं–केवळ वह्निमां ज छे. अप्रसिद्धसामर्थ्य

वह्निमां मानीने तेनाविषे हेतुता मानवानुं, अने प्रसिद्ध वह्निमां हेतुता त्यागवानुं कंइ प्रयोजन नथी. जेम दृष्टान्तमां (वह्निमां) शक्ति नथी संभवती, 'इम' नाम ए रीतिए, पदोनेविषे पण वर्ण(अक्षर)नो समुदाय जे पदोनुं स्वरूप तेथी जुदी शक्ति भासे नहि. अने तेनुं प्रयोजन पण नथी. ए हेतुथी ईश्वरनी इच्छारूप जे न्यायनी रीतिए शक्ति, ते ज मारी मतिमां पण भासे छे.

४१२. गुरुरुवाच. शंकर छंद.

प्रतिबंध होतां वह्निथी नहि दाह उपजे, अंग !
धरतां ज उत्तेजक समीप फरी दहे वह्नि स्वसंग;
वह्निमां होय हेतुता तो दाह थाय सहुकाल.
वह्निसते जे जाय उपजे, हेतुशक्ति स थाल !　　२२.

टीकाः–हे अंग ! (नाम) प्रिय ! प्रतिबंध होय तो अग्निथी दाह थाय नहि. अने उत्तेजक समीप धरे त्यारे 'स्वसंग' नाम अग्निसाथे मळेलो जे पदार्थ, तेनो दाह प्रतिबंध सते पण थाय छे. जो शक्ति विना केवळ अग्निने दाहनी हेतुता होय तो, सर्वकाले नाम उत्तेजकसहित प्रतिबंधकाले, अने प्रतिबंधरहित काळनी पेठे उत्तेजकरहित प्रतिबंधकालमां पण दाह थवो जोइये. केमके दाहनो हेतु केवल अग्नि (तारा मत प्रमाणे होय तो ते तो) ते काळमां पण छे. अने स्वमतमां तो ए दोष नथी. केमके, स्वमतमां अग्निनी शक्ति, अथवा शक्तिसहित अग्नि दाहनो हेतु छे, केवल अग्नि नथी. ज्यां प्रतिबंध छे त्यां यद्यपि प्रतिबंधकरी अग्निनो तो नाश वा तिरोधान (ढंकावुं) न पण थाय, तथापि अग्निनी शक्तिनो नाश वा तिरोधान थाय छे. एथी दाहनो हेतु शक्तिनो

अथवा शक्तिसहित अग्निनो अभाव होवाथी दाह थाय नहि. अने जे स्थानमां प्रतिबंधना समीप उत्तेजक आव्युं छे, त्यां प्रतिबंधे तो अग्निनी शक्तिनो नाश वा तिरोधान करी दीधुं, परंतु उत्तेजके पुनः शक्तिनी उत्पत्ति वा प्रादुर्भाव कर्यो छे, एथी प्रतिबंधना सते पण उत्तेजकना माहात्म्यथी दाहनो हेतु शक्ति वा शक्तिसहित अग्निना होवाथी दाह थाय छे. (छंदना) चतुर्थ पादनो अक्षरार्थ आ छे. हे बाल ! [नाम अज्ञात-तत्त्व] जे प्रतिबंधथी 'जाय' नाम नाशने प्राप्त थाय, अने उत्तेजकथी उपजे 'स' नाम ते शक्ति दाहनो हेतु छे. [कार्यनुं जे विरोधि ते **प्रतिबंध** किंवा **प्रतिबंधक** कहेवाय छे. अने प्रतिबंधक सते कार्यनुं साधक (ते) **उत्तेजक** कहेवाय छे.]

अग्निना स्थान (संबंधमां) प्रतिबंधक अने उत्तेजक मणि, मंत्र, अने औषध छे. जे मणि, वा मंत्र, वा औषधना सन्निधानेकरी दाह थाय नहि, ते प्रतिबंधक; अने जे मणि, मंत्र, औषधना सन्निधाने, प्रतिबंध सते पण, दाह थाय, ते उत्तेजक छे.

४१४. अर्धशंकर छंद.

शिष्य ! ए रीति सहु वस्तुमां तुं शक्ति ले ज पिछानी।
शक्ति विना कई कार्य थाय न ए ज निश्चय मानी. २३.

टीकाः–हे शिष्य ! वह्निनी पेठे जल आदिक सर्व पदार्थो-विषे तुं शक्ति ओळखी ले. शक्ति विना कोई हेतुए कोई कार्य थाय नहि. सार्धशंकर (छंदे) शक्तिनुं प्रयोजन कह्युं.

पूर्व शिष्ये जे प्रश्न कर्यो हतोः–'शक्ति' वह्निथी भिन्न प्रतीत थाय नहि, तेनुं समाधान करवाने अर्धशंकर (छंदे) शक्तिनो अनुभव देखाडे छे.

मूळ अर्थशंकर छंद. (विना अंकनुं संधान.)

ते शक्ति आमां छे न बीजी शक्ति उपजी स्वचीत;
ए शक्तिनो अनुभव प्रसिद्ध ज लोपिये कई रीत ?　　२४.

अर्थ स्पष्ट. (जेमके केरीनी खटाशशक्ति गई. अने मिठाशशक्ति थई एवो केरीविषे सर्वने अनुभव थाय छे.) सिद्धान्तनी रीतिए शक्तिनुं स्वरूप अने शक्तिमां प्रमाणनिरूपण कर्युं.

४१५. अन्यमतनी शक्ति खंडन करे छे.

अर्थशंकर छंद.

जे शक्ति इच्छा ईशनी ते पदनें न नजीक,
मत न्यायनो अन्याय ए विधि शक्ति जाण्य अलीक. २५.

टीकाः–जे ईश्वरनी इच्छारूप पदशक्ति कही ते बने नहि. केमके ईश्वरनी इच्छा ईश्वरनो धर्म छे, एथी ईश्वरमां रहे. (ईश्वरनी जे इच्छा ते पदनी शक्ति छे ए कहेवुं बने नहि; जो पदनो धर्म शक्ति होय तो पदनी शक्ति छे ए कहेवुं बने. एथी पदना सामर्थ्यरूप ज पदनी शक्ति छे. ईश्वरनी इच्छा पदनी समीपे पण नथी, ते पदनी शक्ति छे ए कहेवुं बने नहि. [अलीक नाम जूठुं.]

४१६. अथ वैयाकरणरीतिशक्तिलक्षण.

(हरिकारिका अथवा वैयाकरणभूषणना मत प्रमाणे.)

अर्थशंकर छंद.

योग्यता जे अर्थनी पदमां ज शक्ति सु छे ज,
वैयाकरणभूषण लखी हरिकारिका छे ए ज. २६.

टीकाः–पदनाविषे जे 'अर्थनी योग्यता' नाम अर्थना ज्ञाननी हेतुता-हेतुपणुं-ते पदमां शक्ति छे. जेम घटपदविषे कलशरूप अर्थना ज्ञाननी हेतुतारूप योग्यता छे, ते ज शक्ति छे.

ए रीतिए वैयाकरणभूषण ग्रंथमां हरिनी कारिका प्रमाण लखीने **शक्ति** कही छे. अथवा वैयाकरणना जे भूषण नाम उत्तमवैयाकरण, ते हरिनी 'कारिका' नाम श्लोकने देखीने कहे छे.

४१७. अर्धश्वर छंद.

(वेयाकरणरीतिनी शक्तिनुं खंडन.)

सुण शिष्य ! वैयकरणमतमां प्रबल दूषण एक,
सामर्थ्य पदमां छे, न, वा, ए पूछ तेथी विवेक;
जो 'छे' कहे तो शक्ति मानो, ते ज लोकप्रसिद्ध,
कहे 'नहि ज' तो असमर्थ पद, ने योग्य छे, ए सिद्ध. २७.
असमर्थ छे पद, अर्थयोग्य (ए) कहेतां ज सविरोध,
जो अन्य दूषण देखवां तो ग्रंथ **दर्पण** शोध. २८.

टीकाः-प्रथमपाद स्पष्ट. हे शिष्य ! 'अर्थज्ञाननी हेतुतारूप योग्यताने' जे शक्ति माने छे, तेने आ विवेक पूछः- 'तारा मतमां पदविषे सामर्थ्य छे अथवा नथी?' प्रथमपक्ष कहे तो (नाम 'हा छे,' एम कहे तो) अमारा मतनी शक्ति, बलथी सिद्ध थाय छे. ए तृतीयपादेकरी कहे छे. 'कहे जो छे तो' इति, एनो अन्वय-जो ते कहे के, 'छे,' तो लोकप्रसिद्ध शक्ति तेने मान. अर्थः-जो वैयाकरणी कहे पदमां सामर्थ्य छे, तो लोकमां प्रसिद्ध जे सामर्थ्यरूप शक्ति छे, ते ज पदमां पण मानवी. पदमां अर्थज्ञाननी जनकतारूप शक्ति मा मान.

अभिप्राय आ छेः-पदमां सामर्थ्य जे अंगीकार करे, तेणे सामर्थ्यथी भिन्नरूप शक्तिनुं मानवुं योग्य नथी; किन्तु सामर्थ्यरूप ज शक्ति छे, ए मानवुं योग्य छे. केमके, सामर्थ्य, बल, शक्ति, जोर, ए चारे नाम एक वस्तुनां लोकमां प्रसिद्ध छे. जोरहीनने लोक कहे छे के -आ सामर्थ्यहीन छे, बलहीन

छे, शक्तिहीन छे. अने भर्जित (शेकेला) अन्नने कहे छे के-एनेविषे अंकुर उत्पत्तिनुं सामर्थ्य छे नहि, बल छे नहि, शक्ति छे नहि, जोर छे नहि. ए रीतिए सामर्थ्य अने शक्तिनी एकता लोकमां प्रसिद्ध छे. अने वह्निमां पण सामर्थ्यरूप ज शक्ति निर्णीता छे. एथी पदमां सामर्थ्यरूप ज शक्ति मानवी योग्य छे. अने पदमां सामर्थ्य मानीने, तेथी भिन्न योग्यताने शक्ति कहेवानुं, लोकप्रसिद्धिना विरोध विना, अन्य फल नथी. केवल लोकप्रसिद्धिनुं विरोध ज फल छे.

४१८. अने जो आम कहेः-'सामर्थ्यने' ज अमे योग्यता कहिये छिये, तो अमारुं ज मत सिद्ध थाय छे. अने आम कहे-'अमे सामर्थ्य अंगीकार करिये तो, सामर्थ्यरूप शक्ति 'पदमां संभवे, ते सामर्थ्यनो अंगीकार ज नथी करता, एथी, 'अर्थज्ञाननी जनकतारूप योग्यता ज पदमां शक्ति छे.' तेने आ पूछवुं जोइयेः-सामर्थ्यनो अभाव केवल पदमां ज अंगीकार करो छो, अथवा वह्निआदिक सर्व पदार्थमां सामर्थ्यनो अभाव अंगीकार करो छो? जो अंत्य पक्ष कहे तो, वह्नि आदिक पदार्थोमां सामर्थ्यरूप शक्तिना प्रतिपादनमां उक्त जे युक्ति तेओथी खंडित छे. अने प्रथमपक्ष कहे तो, तेविषे अंत्यपक्षउक्त दोष तो यद्यपि नथी. केमके 'जो वह्निआदि 'सर्व पदार्थोमां सामर्थ्यरूप शक्ति न माने तो प्रतिबंधकथी, 'दाहनो अभाव बने नहि.' ए अंत्यपक्षमां दोष छे, ते दोष प्रथमपक्षमां नथी. केमके वह्निआदिक सर्व पदार्थोमां तो सामर्थ्यरूप शक्ति छे, एथी प्रतिबंधकथी दाहना अभावनो असंभव नथी. परंतु पदनेविषे अर्थज्ञाननी जनकतारूप योग्यताथी भिन्न सामर्थ्यरूप शक्ति नथी; किन्तु पदमां अर्थनी

योग्यता ज शक्ति छे, ए प्रथमपक्ष छे तेविषे प्रतिबंधकथी दाहनो असंभवरूप दोष तो नथी. तथापि पदविषे पण वह्निनी पेठे सामर्थ्यनो अंगीकार अवश्य करवो जोइये, ए शंकर (छंद) ना ये पादथी प्रतिपादन करे छे. "कहे नहि ज' तो "असमर्थ पद" इत्यादिथी ते 'सविरोध' पर्यंत. अर्थः-'नहि ज' नाम पदमां सामर्थ्यनो अंगीकार नहि तो, जे असमर्थ पद 'ते योग्य छे' नाम अर्थज्ञाननुं जनक छे, 'ए सिद्ध' नाम मतनो निश्चय छे, ते असंगत छे.; केमके, पद 'असमर्थ' छे, अने 'अर्थयोग्य नाम 'अर्थज्ञाननुं जनक छे,' ए वाक्य, नपुंसकनुं अमोघ (सफल) वीर्य छे, ए वाक्यनी पेठे, कहेतां ज 'सविरोध' छे, [विरोधसहित छे.] [सामर्थ्यसहितनुं नाम **समर्थ** छे, अने सामर्थ्यरहितनुं नाम **असमर्थ** छे.] असमर्थे करी कोई कार्य थतुं नथी, ए लोकमां प्रसिद्ध छे. एथी असमर्थ पदथी पण अर्थना ज्ञानरूप कार्य बने नहि. एथी पदमां सामर्थ्य मानवुं योग्य छे. ज्यारे पदमां सामर्थ्य अंगीकार कर्युं, त्यारे *पदमां शक्ति पण सामर्थ्यरूप ज मानवी योग्य छे.* ए रीतिए *अर्थज्ञाननी जनकतारूप योग्यता* पदमां शक्ति नथी, किन्तु सामर्थ्यरूप ज शक्ति छे. जो वैयाकरणमतमां अन्य दूषण देखवां होय तो शक्तिना निरूपणमां **दर्पण** (नामना) ग्रंथने 'शोध' नाम जो. दूषण क्लिष्ट छे, एथी दर्पणउक्त दूषण (अत्र) लख्यां नथी.

४१९. अथ भट्ट (मीमांसा) रीतिए शक्तिलक्षण.

(पदनुं अर्थ साथे भेद अभेद रूप तादात्म्य.)

अर्धशंकर छंद.

संबंध पदनो अर्थसह तादात्म्य शक्ति सु वेद.
ए भट्टना अनुसारी कहे, छे ते ज भेदाभेद. २९.

टीकाः-पदनो अर्थसाथे जे तादात्म्यसंबंध तेने भट्टना अनुसारी शक्ति कहे छे. ते 'वेद' नाम तुं जाण. 'ते ज' नाम ते तादात्म्यने भेदाभेदरूप कहे छे. तेओनो अभिप्राय आ छेः-अग्निपदनो अंगार(रूप) अर्थसाथे अत्यंत भेद नथी. जो अत्यंत भेद होय तो जेम अग्निपदथी अत्यंत भिन्न जल आदिक छे, तेओनी अग्निपदेकरी प्रतीति थाय नहि, तेम अग्निपदे अंगाररूप अर्थनी प्रतीति नहि थशे. पदथी अत्यंत भिन्न अर्थनी प्रतीति थाय नहि. जेम पदनो पोताना अर्थ साथे अत्यंत भेद नथी, तेम अत्यंत अभेद पण नथी. जो वाच्यवाचकनो अत्यंत अभेद होय तो, जेम अग्निपदना 'वाच्ये' अंगारेकरी मुखनो दाह थाय छे, तेम अंगारना 'वाचक' अग्निपदनुं उच्चारण कर्याथी पण मुखनो दाह थवो जोइये. अने (अग्नि)पदना उच्चारणेकरी दाह थाय नहि, यथी अत्यंत अभेद पण नथी. किन्तु अग्निपदनो, अंगाररूप अर्थसाथे, भेदसहित अभेद छे. भेद छे यथी दाह थाय नहि, अने अभेद छे यथी अग्निपदे जलआदिकोनी पेठे अंगार नी प्रतीतिनो असंभव पण नथी. जेम अग्निपदनो अंगार-रूप अर्थसाथे भेदसहित अभेद छे, तेम, उदक, वन, जल, दक, जीवन, पदोनो, पाणीरूप अर्थसाथे, भेदसहित अभेद छे. जो अत्यंत भेद होय तो, जेम उदक आदिक पदोथी अत्यंत भिन्न अग्निआदिक छे तेओनी, उदक आदिकपदोथी प्रतीति थाय नहि; तेम पाणीरूप अर्थनी पण उदकआदिक पदोथी प्रतीति नहि थशे. (पण प्रतीति थाय छे) यथी अत्यंत भेद नथी. अने अत्यंत अभेद पण नथी. जो अत्यंत अभेद होय तो, जेम, पाणीथी मुखमां शीतलता थाय छे, तेम उदकआदिक पदोना उच्चारणथी मुखमां शीतलता थवी जोइये,

अने पदोथी शीतलता थाय नहि, एथी अत्यंत अभेद नथी. किन्तु भेदसहित अभेद होवाथी बंने दोष नथी. ए रीतिए सर्वत्र ज पोतपोताना वाच्यसाथे, वाचकपदोनो भेदसहित अभेद छे. ते भेदसहित अभेदने ज, भट्टना अनुसारी **तादात्म्यसंबंध** कहे छे, अने **भेदाभेद** कहे छे. ते भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंध ज सर्वपदोमां पोतपोताना अर्थनी 'शक्ति' छे. तादात्म्यसंबंधथी जूदी सामर्थ्यरूप शक्ति नथी. भेदाभेदमां युक्ति कही, अवे प्रमाण कहे छे.

४२०. अर्धसंकर छंद.

आ ॐअक्षर ब्रह्म छे ए कहत वेद अभेद;

वळी वाणीमां पद, अर्थ बहिर ज, देखिये ए भेद. ३०.

टीकाः—**मांडूक्य**(उपनिषद्) आदिक वेदवाक्योमां 'ॐअक्षर ब्रह्म छे.' एम कह्युं छे. त्यां व्याकरणनी रीतिए, प्रकाशरूप सर्वनी रक्षाकर्ता, (एवो) ॐअक्षरनो अर्थ छे. एवुं ब्रह्म छे. एथी ॐअक्षर ब्रह्मनो वाचक छे, अने ब्रह्म वाच्य छे. जो वाच्यवाचकनो पोतामां अत्यंत भेद हो, वाचक ॐअक्षरनो अने वाच्य ब्रह्मनो, **मांडूक्यआदिकोमां**, अभेद न कहत. अने 'ॐअक्षर ब्रह्म छे' ए रीतिए अभेद कह्यो छे; एथी वाच्यवाचकना अभेदमां वेदवचन प्रमाण छे. अने सर्व लोकनी प्रतीतिए वाच्यवाचकनो भेद सिद्ध छे. केमके, अग्निआदिक पद वाणीमां छे, अने अंगारआदि तेओनो अर्थ वाणीथी बहिर चूलाआदिकोमां छे; तेम ॐअक्षररूप पद वाणीमां छे, अने तेनो अर्थ ब्रह्म वाणीमां नथी, किन्तु वाणीथी बहिर नाम पोताना महिमामां छे. यद्यपि ब्रह्म व्यापक छे एथी वाणीमां ब्रह्मनो अभाव नथी, तथापि (व्यापक)ब्रह्ममां वाणी छे, अने वाणीमां ब्रह्म नथी. ए रीतिए सर्व लोकोने

'पद' वाणीमां अने 'अर्थ' वाणीथी बहिर् प्रतीत थाय छे. एथी पदनो अने अर्थनो भेद लोकमां प्रसिद्ध छे. ए रीतिए वाच्यवाचकना भेदमां सर्व लोकनो अनुभव प्रमाण छे; अने तेओना अभेदमां वेदवचन प्रमाण छे. एथी पदनो अर्थसाथे भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंध अप्रमाण नथी, किन्तु प्रमाणसिद्ध छे.

४२१. प्रसंगथी अन्यस्थानमां पण भेदाभेदरूप तादात्म्य संबंध देखाडे छे.

अर्थशंकर छंद.

जे गुण गुणी, ने जाति व्यक्ति, क्रिया ने तद्वान्,
संबंध लखि तादात्म्य एनो कार्यकारण सान. ३१.

टीकाः-रूप, रस, गंध आदिक **गुण** छे, तेओनो आश्रय **गुणी** कहेवाय छे; जेम रूप आदिकोनो आश्रय भूमि गुणी छे. अनेकोमां रहे जे एक धर्म ते **जाति** कहेवाय छे. जेम सर्व ब्राह्मणशरीरोनामां एक ब्राह्मणत्व छे; अने सर्व शूद्रमां शूद्रत्व छे; अने सर्व जीवोमां जीवत्व छे; पुरुषोमां पुरुषत्व छे; सर्व घटोमां घटत्व छे. जेने लोकमां ब्राह्मणपणुं, शूद्रपणुं, जीवपणुं, पुरुषपणुं, घटपणु कहे छे, ते ज ब्राह्मणआदि शरीरोमां ब्राह्मणत्व आदिक जाति छे. जातिनो आश्रय जे ब्राह्मण आदिक ते **व्यक्ति** कहेवाय छे. गमन आगमन आदिक **क्रिया** कहेवाय छे; अने 'तद्वान' नाम ते(क्रिया) वाळा [अर्थ आः-क्रियाना आश्रय] एटला पदार्थोनो तादात्म्यसंबंध छे. ए 'लखि' नाम जाण, अने कारणकार्यने 'सान' नाम गुणगुणी आदिकविषे मेळव. अभिप्राय आ छेः-कारणकार्यनो पण गुणगुणीनी पेठे तादात्म्यसंबंध छे. गुणनो अने गुणीनो पोतपोतामां तादात्म्यसंबंध छे. जातिनो अने

व्यक्तिनो पोतपोतामां तादात्म्यसंबंध छे. तेम क्रिया अने क्रियावान्नो (पोतपोतामां) तादात्म्यसंबंध छे. कारणनो अने कार्यनो पण (परस्परमां) तादात्म्यसंबंध छे. [तादात्म्य नाम भेदसहित अभेदनुं छे.]

यद्यपि निमित्तकारणनुं अने कार्यनुं तो भेदाभेदरूप तादात्म्य नथी, किन्तु अत्यंत भेद छे; तथापि उपादानकारणनो अने कार्यनो भेदाभेदरूप तादात्म्य ज संबंध छे. जेम घटनां निमित्तकारण कुलालदंडआदिक छे, तेओनो घटरूप कार्यथी अत्यंत भेद छे खरो, परंतु उपादानकारण मृत्तिकापिंड अने घटकार्यनो भेदसहित अभेद छे. जो मृत्तिकापिंडथी घट अत्यंत भिन्न होय, तो जेम मृत्तिकापिंडथी अत्यंत भिन्न तैलनी उत्पत्ति थाय नहि, तेम घटनी पण उत्पत्ति नहि थशे. अने उपादानकारणनो कार्यसाथे अत्यंत अभेद होय तोपण मृत्पिंडथी घटनी उत्पत्ति थाय नहि. केमके पोतानास्वरूपथी पोतानी उत्पत्ति थाय नहि. एथी उपादान कारणनो कार्यसाथे भेदसहित अभेद छे; एथी अत्यंत भेद पक्षनो दोष नथी; अने भेद छे एथी अभेदपक्षनो (पण) दोष नथी. ए रीतिए उपादानकारणनो कार्यसाथे भेदाभेद युक्तिसिद्ध छे. अने प्रतीतिथी पण उपादानसाथे कार्यनो भेदाभेद ज सिद्ध छे. आ मृत्पिंड छे, आ घट छे, ए रीतिनी भिन्नप्रतीतिए भेद सिद्ध थाय छे. अने विचारथी देखिये तो घटनी बहिर् अन्तर् मृत्तिकाथी भिन्न कोई वस्तु प्रतीत थाय नहि. किन्तु मृत्तिका ज प्रतीत थाय छे, एथी अभेद सिद्ध थाय छे. ए रीतिए उपादानकारणनो कार्यसाथे भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंध छे. तेम गुण अने गुणीनो पण भेदाभेद छे. जो घटना रूपनो घटथी अत्यंत भेद होय तो, जेम घटथी

पटनो अत्यंत भेद छे, ते पट घटने आश्रित नथी किन्तु स्वतंत्र छे, तेम घटनुं रूप पण घटने आश्रित नहि थशे. अने गुणगुणीनो अत्यंत अभेद होय तो पण घटनुं रूप घटने आश्रित बने नहि. केमके पोतानो आश्रय पोते थाय नहि, एथी गुणगुणीनो भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंध छे. ए युक्ति जाति अने व्यक्तिना, तथा क्रिया अने क्रियावान्‌ना भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंधमां जाणवी. अने जे मत खंडन करवानुं छे, तेविषे बहु युक्ति कहेवानुं प्रयोजन नथी. एथी अन्या युक्ति नथी लखी.

४२२. अथ भट्टमतखंडन.

दुहो.

एक वस्तुनो एकमां, भेदअभेद विरुद्ध।
युक्तियुक्त एथी कहे, ए मत सकल अशुद्ध. ३२.

टीकाः-अक्षरअर्थ स्पष्ट. अभिप्राय आ छेः-यद्यपि एक घटमां पोतानो अभेद छे अने पटनो भेद छे, तथापि जेनो अभेद छे तेनो भेद नथी; अने जेनो भेद छे तेनो अभेद नथी. ए अभिप्रायथी एक वस्तुनो भेदअभेद विरुद्ध कह्यो छे. तथा 'एक वस्तुनो' नाम घटनो ज पोतानामां अभेद अने पटमां भेद छे. परंतु जेमां अभेद छे तेमां भेद नथी, अने जेमां भेद छे तेमां अभेद नथी. ए अभिप्रायथी एक वस्तुनो भेदअभेद एकमां विरुद्ध कह्यो छे. भेदअभेद पोतामां विरोधी छे. एक वस्तुमां जेनो भेद होय तेनो अभेद, अने जेनो अभेद होय तेनो भेद विरुद्ध छे. एथी वाच्यवाचक, गुणगुणी, जातिव्यक्ति, क्रियाक्रियावान, उपादानकारण कार्य,-(एओ-)नो जे भेदाभेदरूप तादात्म्य अंगीकार कर्यो ते अशुद्ध छे,

४२३. पूर्वे वाच्यवाचकना भेदाभेदमां जे प्रमाण कह्युंः-

'वाणीमां वाचक अने बहिर् वाच्य एथी भेद अने श्रुतिमां 'ॐ अक्षर ब्रह्म कह्युं छे एथी अभेद.' तेनुं समाधान.

(ॐकार अने ब्रह्मना अभेदविषे समजण.)

दुहो.

'प्रणव'वर्ण ने ब्रह्मनो, वेदे कह्यो अभेद;
· तेमां अन्य रहस्य कहं, लह्यो भट्टे भेद. ३३.

टीकाः–'प्रणववर्ण' नाम ॐ अक्षर अने ब्रह्मनो जे वेदमां अभेद कह्यो छे, ते वेदवचननुं वाच्यवाचकना अभेदमां तात्पर्य नथी. किन्तु तेमां अन्य ज 'रहस्य' नाम गोप्य अभिप्राय छे. ते 'भेद' नाम अभिप्राय भट्टे जाण्यो नथी. ज्यां ॐ अक्षर ब्रह्म कह्युं छे, ते वाक्यनुं, ॐ अक्षर अने ब्रह्मना अभेदमां तात्पर्य नथी. किन्तु 'ॐ अक्षरने ब्रह्मरूपे करीने उपासना 'करे,' ए अर्थमां तात्पर्य छे. जेनी उपासना विधान करी छे, ते उपास्यना स्वरूपनो आ नियम नथीः–जेवी उपासना विधान करी होय तेवुं ज उपास्यनुं स्वरूप होय. किन्तु जेवुं वस्तुनुं स्वरूप छे तेने त्यागीने, अन्यस्वरूपनी पण तेनेविषे उपासना कराय छे. जेम शालग्राम अने नर्मदेश्वरनी विष्णुरूपे अने शिवरूपेकरीने उपासना कही छे; त्यां शंख, चक्र आदिकसहित चतुर्भुज मूर्ति शालग्रामनी छे नहीं; अने गंगाभूषित जटाजूट-डमरु-चर्म-कपालिकासहित भद्रामुद्राए शरणागतने त्रिगुणरहित आत्मानो उपदेश देवावाळी मूर्ति नर्मदेश्वरनी छे नहि; किन्तु बंने शिलारूप छे. अने शास्त्रनी आज्ञाथी ते शिलारूपनी दृष्टि त्यागीने, बंनेविषे क्रमथी विष्णुरूप अने शिवरूपनी उपासना कराय छे. एथी उपास्यस्वरूपने अधीन उपासना हती नथी, किन्तु विधिने अधीन छे. शास्त्रनुं वचन जेम विधान करे तेवी उपासना करे.

जेम छान्दोग्य उपनिषद्मां पंचाग्निविद्याप्रकरणमां, स्वर्गलोक, मेघ, भूमि, पुरुष, स्त्री, ए पंचपदार्थोनी अग्निरूपकरीने उपासना कही छे. अने श्रद्धा, सोम, वर्षा, अन्न, वीर्य, ए पंचपदार्थोनी पंचअग्निनी आहुतिरूप उपासना कही छे. त्यां स्वर्गआदिक अग्नि छे नहि, अने श्रद्धासोमआदि आहुति छे नहि. तथापि वेदनी आज्ञाथी स्वर्गलोकादिकोनी अग्निरूपथी, अने श्रद्धा आदिकोनी आहुतिरूपथी उपासना कराय छे. ए रीतिए ॐ अक्षरनी ब्रह्मरूपे करीने उपासना कही छे त्यां ॐ अक्षर ब्रह्मरूप छे नहि, तोपण ब्रह्मरूपे करीने उपासना बने छे.

उपासनावाक्यमां वस्तुना अभेदनी अपेक्षा नथी; किन्तु भिन्नवस्तुनी पण अभिन्नरूपथी उपासना थाय छे. अने विचारथी जोइये तो ब्रह्मनो वाचक जे ॐ अक्षर छे, तेनो तो पोताना वाच्य ब्रह्मसाथे अभेद बने पण छे.–घटआदि अन्यपदोनो पोतपोताना जडरूप अर्थसाथे अभेद बने नहि.— केमके, 'सर्व नामरूप ब्रह्ममां कल्पित छे. ब्रह्म अधिष्ठान छे,' ॐ अक्षर पण ब्रह्मनुं नाम छे, एथी ब्रह्ममां कल्पित छे. कल्पितवस्तु अधिष्ठानथी भिन्न होय नहि; किन्तु अधिष्ठानरूप ज होय छे, एथी ॐअक्षर ब्रह्मरूप छे. अने घटआदिकपदोनो जे जडरूप पोतानो अर्थ, ते अधिष्ठान नथी, किन्तु वाच्यसहित घटआदिकपद ब्रह्ममां कल्पित छे, अने ब्रह्म तेओनुं अधिष्ठान छे. एथी ब्रह्मसाथे तो सर्वनो अभेद बने पण छे. परंतु घटआदिक पदोनो पोताना जडरूप वाच्यअर्थसाथे अभेद कोई रीतिए बने नहि. एथी भट्टमतमां वाच्यवाचकनो अभेद असंगत छे.

४२४. अने वाच्यवाचकनो केवल भेद जे अंगीकार करे

छे तेओना मतमां भट्टे आ दोष कह्यो छेः–'जो घटपदनुं 'वाच्य घटपदथी अत्यंत भिन्न होय, तो जेम घटपदेकरी 'अत्यंत भिन्न वस्त्ररूप अर्थनी प्रतीति थाय नहि, तेम घटपदे- 'करी अत्यंत भिन्न कलशरूप अर्थनी प्रतीति पण नहि थशे. 'अने घटपदथी वाच्यने भिन्न मानीने, तेनी घटपदथी प्रतीति 'मानशो, तो जेम घटपदथी अत्यंत भिन्न कलशरूप अर्थनी 'प्रतीति थाय छे तेम अत्यंत भिन्न वस्त्रनी पण घटपदेकरी 'प्रतीति थवी जोइयेः' ए दोष पण जे सामर्थ्य अथवा इच्छा- शक्ति नहि माने, तेओना मतमां छे. जे शक्ति अंगीकार करे तेओना मतमां दोष नथी. केमके, घटपदनो वाच्य जे कलश अने तेनां अवाच्य वस्त्रादि ते बंने घटपदथी भिन्न छे; परंतु घटपदमां कलशरूप अर्थनुं ज्ञान करवानी शक्ति छे, अने अन्य अर्थनुं ज्ञान करवानी शक्ति नथी. एथी घटपदेकरी कलशरूप अर्थथी भिन्न अर्थनी प्रतीति थाय नहि. ए रीतिए जे पदमां जे अर्थनी शक्ति छे, ते ज अर्थनी ते पदेकरी प्रतीति थाय छे, अन्य अर्थनी नहि. एथी वाच्यवाचकना अत्यंत भेदमां दोष नथी. तेओनो भेदसहित अभेदरूप तादात्म्यसंबंध बने नहि.

४२५. भेद अने अभेद पोतपोतामां विरोधी छे. तेम उपादानकारणनो कार्यसाथे भेदसहित अभेद नथी, केवल भेद

१९६. शक्तिवादी जे सिद्धान्ती तेना मतमां उपादानकारणनो कार्यथी केवल भेद नथी, किन्तु अनिर्वचनीय तादात्म्य छे. तथापि इहां कार्यकारणनो जे केवल भेद कह्यो छे ते 'प्रौढिवाद', छे.

प्रौढिवाद. 'प्रौढि' नाम पोतानी उत्कृष्टताने लीधे 'वाद' नाम कथन. तेनुं लक्षण आ छे.–प्रतिवादीनी उक्ति मानीने पण स्वमतमां दोषनो परिहार करे. इहां कार्यकारणना भेदपक्षमां भट्टे दोष कह्यो हतो ते भट्टउक्त दोषसहित पक्षने मानीने पण स्वमतमां दोषनो परिहार कर्यो छे. एथी ते 'प्रौढिवाद' छे.

पं. पी. पु.

छे. अने केवल भेदमां जे दोष कह्या छे, ते नैयायिक अने शक्तिवादीना मतमां नथी. केमके कारणकार्यना अत्यंत भेदमां आ दोष छेः—'जो मृत्पिंडथी अत्यंत भिन्न घटनी उत्पत्ति 'थाय, तो अत्यंत भिन्न तैलनी पण मृत्पिंडथी उत्पत्ति थई 'जोइये; अने अत्यंत भिन्न तैलनी उत्पत्ति नहि थाय तो 'अत्यंत भिन्न घटनी पण उत्पत्ति न थवी जोइये.'

४२६. ए दोष नैयायिकमतमां नथी (आवतो). केमके सर्व वस्तुनी उत्पत्तिमां नैयायिक प्रागभावने कारण माने छे. जेम घटनी उत्पत्तिमां दंड, चक्र, कुलाल कारण छे, तेम घटनो प्रागभाव पण घटनुं कारण छे. तेम सर्वनो प्रागभाव सर्वनी उत्पत्तिमां कारण छे. ते घटनो प्रागभाव घटनुं उपादानकारण मृत्पिंड तेमां रहे छे, अन्यमां नहि. तैलनो प्रागभाव तिलमां रहे छे, अन्यमां नहि. एम सर्व कार्योनो प्रागभाव पोतपोताना उपादानकारणमां रहे छे. जे पदार्थोमां जेनो प्रागभाव होय, ते पदार्थथी तेनी उत्पत्ति थाय छे, अन्यनी नहि. जेम मृत्पिंडमां घटनो प्रागभाव छे एथी मृत्पिंडथी घटनी ज उत्पत्ति थाय छे, तैलनी नहि; अने तैलनो प्रागभाव तिलमां रहे छे, तेथी तिलोथी तैलनी ज उत्पत्ति थाय छे, घटनी नहि. एम सर्व कार्यमां प्रागभाव कारण छे. एथी कार्यकारणनो अत्यंत भेद मानवाथी नैयायिकमतमां दोष नथी.

४२७. अने सामर्थ्यरूपशक्तिवादीना मतमां दोष नथी.

---

२९७. पूर्व अभाव—कार्यनी उत्पत्तिथी पूर्व समवायिकारणमां कार्यना संसर्गनो अभाव. शाब्दिको—कारणमां शक्तिरूप अवस्थानने 'प्राग् अभाव' कहे छे. ते 'प्राग् अभाव' अनादि सते कार्यनी उत्पत्ति थये सान्त थाय छे. नैयायिकना मतमां चार अभाव छेः—प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव अने अत्यंताभाव. तेमां अनादि सान्त जे अभाव ते 'प्राग् अभाव' छे.

केमके, मृत्पिंडमां घटनी सामर्थ्यरूप शक्ति छे, तैलनी नहि. अने तिलमां तैलनी सामर्थ्य(रूप शक्ति) छे, घटनी नहि. पयी मृत्पिंडथी घटनी ज उत्पत्ति थाय छे, अने तैलनी नहि. तेम तिलोथी तैलनी ज उत्पत्ति थाय छे, घटनी नहि. ए रीतिए उपादानकारणनो अने कार्यनो अत्यंत भेद मानवामां दोष नथी. भेदाभेद असंगत छे, अने भेदमां तथा अभेदमां जे दोष भट्टे कह्या छे, ते बंने पक्षना दोष भट्टना मतमां अवश्य रहे छे. केमके, भट्टे भेदसहित अभेद अंगीकार कर्यो छे. पयी आ अर्थ सिद्ध थयोः–कारणकार्यनो भेद पण छे, अने अभेद पण छे. भेद छे पयी भेदपक्षउक्त दोष थशे, अने अभेद छे पयी अभेदपक्षउक्त दोष थशे. जेम चोरीनो दोष अने द्यूतनो दोष जे एकएक करवावाळाने कह्यो छे, ते बंने व्यसन जेने होय तेने चोरीद्यूत बंनेना दोष थाय छे. तेम गुणगुणी आदिकोना भेदाभेद मानवाथी पण, भेदपक्ष अने अभेदपक्षना बंने दोष थशे. अने शक्तिवादीना मतमां केवल भेद अंगीकार करवाथी दोष नहि. केमके, गुणीमां गुणने धारवानी (धारण करवानी) शक्ति छे, अन्यनी नथी. पयी भेदपक्षमां जे दोष कह्यो हतो के:–'घटना रूपादिक जेम 'घटथी भिन्न छे, तेम पटआदिक पण घटथी भिन्न छे, रूपा- 'दिकोनी पेंठे पटआदिक पण घटमां रह्यां जोइये. अथवा 'पटादिकोनी पेंठे रूपादिक पण न रह्यां जोइये.' ते दोष शक्ति अंगीकार नहि करे तेना मतमां छे. शक्तिवादीना मतमां केवल भेद मानवाथी पण दोष नथी. उलटुं भट्टमतमां भेद-अभेद बंने मानवाथी बंने पक्षना दोष, उक्तदृष्टान्तेकरी छे. अने भेद-अभेदविरोधिधर्मनो असंभव दोष छे. तेम जातिव्यक्तिनो अने क्रियाक्रियावाननो पण केवल भेद छे. तथापि व्यक्तिमां

जातिने धारवानी शक्ति छे, अने क्रियावानमां क्रिया धारवानी शक्ति छे, अन्य धारवानी शक्ति नथी. ए रीतिए उपादान अने कार्यनो तथा गुणगुणी आदिकोनो भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंध असंगत छे. सर्वनो पोतामां भेद मानवामां भट्टउक्त दोषने, शक्ति ग्रसे छे. यद्यपि वेदान्तसिद्धान्तमां पण, कार्य, गुण, जाति, अने क्रियानो-उपादान, गुणी, व्यक्ति, अने क्रियावानथी,-अत्यंत भेद नहि, किंतु तादात्म्यसंबंध ज अंगीकार कर्यो छे. तथापि वेदान्तमतमां भेदाभेदरूप तादात्म्य(संबंध) नथी, किन्तु भेद अने अभेदथी विलक्षण (=कल्पितभेदसहित वास्तव अभेद) अनिर्वचनीयरूप, तादात्म्यसंबंध छे. भेदथी विलक्षण छे, यथी भेदपक्षना दोष नथी, अने अभेदथी विलक्षण छे, तेथी अभेदपक्षना दोष नथी ए. रीतिए भेदाभेदथी विलक्षण अनिर्वचनीय तादात्म्यसंबंध छे, परंतु भेदाभेदरूप तादात्म्य असंगत छे. यथी 'वाचकवाच्यनो भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंध ज शक्ति छे' ए भट्टअनुसारीनो पक्ष समीचीन नथी, किन्तु पदने सांभळतां ज अर्थनुं ज्ञान करवानुं पदमां जे सामर्थ्य, ते ज पदमां शक्ति छे.

इति शक्तिनिरूपण.

४२८. (शक्यनुं लक्षण.)

लक्षणाना ज्ञानमां शक्यनुं ज्ञान उपयोगि छे. केमके शक्यसंबंध लक्षणानुं स्वरूप छे, शक्य जाण्या विना शक्यसंबंधरूप लक्षणानुं ज्ञान थाय नहि. यथी शक्यनुं लक्षण कहे छे.

दुहो.

छे पदमां जे अर्थनी शक्ति, शक्य ते जाण;
[वळी] वाच्यअर्थ केह तेहने, वाचक पद ज पिछाण. २४.

टीकाः-जे पदमां जे अर्थनी शक्ति होय, ते पदनो ते अर्थ

शक्य जाणो. [अने शक्यअर्थने ज वाच्यअर्थ पण कहे छे. (एने ज अभिधेयअर्थ अने मुख्यअर्थ पण कहे छे).] जेम अग्निपदमां अंगाररूप अर्थनी शक्ति छे एथी अग्निपदनो अंगार **शक्यअर्थ** अने वाच्यअर्थ कहेवाय छे. अने वाच्यअर्थनुं बोधकपद वाचक कहेवाय छे.

४२९. अथ लक्षणा अने जहती आदिक भेदलक्षण.

कवित.

शक्यनो संबंध जे स्वरूप जाण लक्षणानुं,
लक्षणाए भान जेनुं लक्ष्य ते पीछाणिये,
वाच्यअर्थ सर्व त्यागी, वाच्यनो संबंध जहिं
थाय प्रतीति तहिं **जहती** वखाणिये,
वाच्ययुक्त वाच्यना संबंधीनुं जे ज्ञान थाय,
तेह स्थल लक्षणा **अजहती** ज मानिये;
एक वाच्य भाग त्याग थाय तहिं **भागत्याग**
अन्य नाम **जहती-अजहती** प्रमाणिये. ३०.

टीका:-'शक्य' नाम वाच्यअर्थनो जे 'संबंध' नाम मीलाप ते, *'लक्षणानुं स्वरूप' नाम लक्षण जाण.* अने जे अर्थनुं पदनी शक्तिए ज्ञान थाय नहि, किन्तु लक्षणाए 'भान' नाम ज्ञान थाय, (अने वक्ताना तात्पर्यनो विषय होय) ते पदनो **लक्ष्यअर्थ** कहेवाय छे. (कवितना एक पदेकरी लक्षणानुं स्वरूप कह्युं.

४३०. (जहतीलक्षणा.)

अवे लक्षणाना जहतीआदि त्रण भेदोनां लक्षण (कवितना) एक एक पादेकरी कहे छे. 'वाच्य' इत्यादिए ज्यां वाच्यअर्थने संपूर्ण त्यागीने, वाच्यअर्थना संबंधीनी प्रतीति थाय. त्यां **जहतीलक्षणा** कहेवाय छे. जेम कोइए कह्युं:—

'गंगामां ग्राम छे.' ए स्थानमां गंगापदनी तीरमां जहतीलक्षणा छे. केमके गंगापदनो वाच्यअर्थ देवनदीनो प्रवाह छे, तेनेविषे ग्रामनी स्थितिनो असंभव छे; एथी सर्व वाच्यअर्थने त्यागीने तीरविषे गंगापदनी जहतीलक्षणा छे. [वाच्यना संबंधनुं नाम लक्षणा छे.] आ स्थानमां गंगापदनुं वाच्य जे प्रवाह तेनो तीरसाथे **संयोगसंबंध** छे. एथी गंगापदना वाच्यनो जे तीरसाथे **(संयोग) संबंध ते लक्षणा.** अने वाच्यनो सर्व त्याग जहतीलक्षणा.

४३१. (अजहतीलक्षणा.)

'वाच्ययुक्त' इत्यादि तृतीय पादेकरी अजहतीलक्षणा देखाडे छे. वाच्ययुक्त नाम वाच्यअर्थसहित वाच्यना संबंधिनुं जे पदेकरी ज्ञान थाय, ते पदमां **अजहतीलक्षणा** मानिये. जेम कोइये कह्युं: 'शोण धावन करे छे.' (लाल दोडे छे) त्यां 'शोण' पदनी लालरंगवाळा अश्वविषे अजहतीलक्षणा (छे). केमके, शोण नाम लाल रंगनुं छे. एथी शोणपदनो वाच्य लाल रंग छे. ते केवल(लालरंग)मां धावननो असंभव छे. ए कारणथी शोणपदनो वाच्य जे लाल रंग तेसहित अश्वमां शोणपदनी अजहतीलक्षणा छे. गुणनो अने गुणीनो तादात्म्यसंबंध कहे छे. अने लाल पण, रूपनो भेद होवाथी गुण छे. एथी शोणपदनो वाच्य जे लाल गुण तेनो गुणी अश्वनीसाथे जे **तादात्म्यसंबंध ते लक्षणा** अने वाच्यनो त्याग नहि, (किन्तु) अधिकनुं ग्रहण, एथी अजहतीलक्षणा.

४३२. जहतीअजहती अथवा भागत्यागलक्षणा.

'एक वाच्य' इत्यादि (कवितना) चतुर्थ पादेकरी भागत्यागलक्षणा बतावे छे. ज्यां पदोना वाच्यअर्थमांथी एक

भागनो त्याग थाय (अने) एक भागनु ग्रहण थाय त्या **भागत्यागलक्षणा** कहेवाय छे ते भागत्यागने ज जहतीअजहतीलक्षणा पण कहे छे. जेम प्रथम दीठेला पदार्थने अन्य देशमा देखीने काइक कह्यु –'ते आ छे,' त्या भागत्यागलक्षणा छे, केमके अतीतकालमां अने अन्यदेशमा स्थितवस्तुने 'ते' कहे छे, एथी अतीतकालसहित अने अन्यदेशसहित वस्तु 'ते' पदना वाच्यअर्थ छे अने वर्तमानकाल (अने) समीप देशमा स्थित वस्तुने 'आ' कहे छे, एथी वर्तमानकालसहित अने समीपदेशसहित वस्तु 'आ'पदनो वाच्यअर्थ छे अने अतीतकालसहित अन्यदेशसहित जे वस्तु, ते ज वर्तमानकाल अने समीपदेशसहित छे. ए समुदायनो वाच्य अर्थ छे, ते सभवे नहि; केमके अतीतकाल अने वर्तमानकालनो विरोध छे, तथा अन्यदेशनो अने समीपदेशनो विरोध छे एथी बन्ने पदमा देशकाल (रूप) जे वाच्यभाग तेने त्यागीने वस्तुमात्रमा बन्ने पदनी भागत्यागलक्षणा

४३३. (तत्त्वमसिमहावाक्यनी लक्षणा.)

'तत्त्वमसि' (ते तु छु) (ए) महावाक्यमा लक्षणा देखाडवाने 'तत्'पद अने 'त्वम्'पदनो वाच्यअर्थ देखाडे छे

(अथ 'तत् पदवाच्यनिरूपण)

दुहो

सर्वशक्ति, सर्वज्ञ, विभु ईश, स्वतत्र, परोक्ष,

मायी, 'तत्पदवाच्य' ते, जेमा बध न मोक्ष ३६

टीका –'सर्वशक्ति' नाम जेमा सर्व सामर्थ्य (छे), 'सर्वज्ञ' नाम सर्व वस्तुने जाणवावाळो, 'विभु' नाम व्यापक, 'ईश' नाम सर्वनो प्रेरक, अने 'स्वतत्र' नाम कर्मने अधीन नहि, अने 'परोक्ष' नाम जीवना प्रत्यक्षनो विषय नहि 'मायी' नाम

माया जेने अधीना, अने बंधमोक्षरहित [जेमां बंध होय तेनो मोक्ष थाय छे. ईश्वर बंधरहित छे एथी ईश्वरमां मोक्ष पण नथी.] एटला धर्मवाळु ईश्वरचेतन 'तत्' पदनो वाच्यअर्थ छे.

४३४. अथ 'त्वम्'पदवाच्यनिरूपण.

दुहो.

कह्या धर्म जे ईशना सर्व तेथी विपरीत,
छे जे चेतन, जीव ते 'त्वंपदवाच्य' प्रतीत. ३७.

टीकाः–ईश्वरना जे धर्म कह्या, तेओथी विपरीत धर्म जेमां होय ते जीवचेतन, त्वंपदनु वाच्य 'प्रतीत' नाम जाण. एनो भाव आ छे–अल्पशक्ति, अल्पज्ञ, परिछिन्न, अनीश, कर्मने अधीन, अविद्यामोहित, अने बंधमोक्षवाळो, अने प्रत्यक्ष (जीव छे). केमके पोतानु स्वरूप कोईने परोक्ष नथी, प्रत्यक्ष ज होय छे. यद्यपि ईश्वरने पण पोतानुं स्वरूप प्रत्यक्ष छे, तथापि ईश्वरनु स्वरूप जीवने प्रत्यक्ष नथी, एथी 'परोक्ष' कहेवाय छे. अने जीवना स्वरूपने, जीव (अने) ईश्वर बन्ने जाणे छे, एथी'प्रत्यक्ष' कहेवाय छे. एटला धर्मवाळु जीव-चेतन 'त्वं'पदनुं वाच्य कहेवाय छे.

४३५. (वाच्यअर्थमां एकतानो विरोध अने लक्षणानी कर्तव्यता.)

दुहो.

महावाक्यमां एकता, थाय उभयनी मान,
ते न बने एथी सुमति, लक्ष्य लक्षणथी जाण. ३८.

टीकाः–सामवेदनी छान्दोग्यउपनिषद्(ना षष्ठ प्रपा-

१९८ यद्यपि जीव, पोतानु निजरूप–अहंपदनु लक्ष्य कूटस्थ मान–(ते)ने जाणतो नथी, तथापि अहंपदनु वाच्य जे अन्तःकरणविशिष्टचेतन–किंवा स्थूलसूक्ष्मसंघातविशिष्टचेतन–हुं छु एम जाणे छे. एथी जीवने विवेकज्ञानथी पूर्वे पण विशिष्टात्मरूपेकरी पोताना स्वरूपनु ज्ञान प्रत्यक्ष छे पं पी पु.

ठक)मां उद्दालकमुनिए पोताना पुत्र श्वेतकेतुने जगतनी उत्पत्ति करवावाळो ईश्वर बतावीने कह्युंः-'तत्त्वमसि' (ते तुं छुं) तेनो वाच्यअर्थ आ छेः-'तत्' नाम ते,-जगतनी उत्पत्ति करवावाळो, सर्वशक्ति, सर्वज्ञताआदि धर्मसहित ईश्वर-, 'त्वम्' नाम तुं,-अल्पशक्ति अल्पज्ञता आदि धर्मवाळो जीव,-'असि' नाम छुं. इहां 'ते तुं छुं' एम कह्याथी, ईश्वरजीवनी एकता वाच्यअर्थथी भान थाय छे, ते बने नहि. केमके सर्वशक्ति अने अल्पशक्ति, सर्वज्ञ अने अल्पज्ञ, विभु अने परिछिन्न, स्वतंत्र अने कर्मअधीन, परोक्ष अने प्रत्यक्ष, माया जेने अधीन अने अविद्यामोहित, एक छे, एम कहेवुं ते 'अग्नि शीतल छे' एम कहेवाना समान छे. एथी हे सुमते! 'लक्षणथी नाम लक्षणाथी लक्ष्यअर्थ जाण; 'वाच्यअर्थमां विरोध छे.'

दुहो.

आदि बे य नहि संभवे, महावाक्यमां तात!
भागत्याग एथी ग्रहो, थाय जथी कुशलात. ३९.

टीकाः-हे तात (शिष्य)! महावाक्यमां 'आदि बे य' नाम जहती-अजहती (लक्षणा) नहि संभवे. एथी भागत्यागलक्षणा महावाक्यमां 'ग्रहो' नाम जाणो, जेथी 'कुशलात' नाम विरोधनो परिहार थाय.

४३६. अथ जहती (लक्षणा) असंभवप्रतिपादन.

दुहो.

ज्ञेय साक्षी ने ब्रह्मचित, वाच्यमांहि ते लीन;
माने जहतीलक्षणा, थाय ज्ञेय नवीन. ४०.

टीकाः-संपूर्ण वेदान्तनुं ज्ञेय-साक्षिचेतन अने 'ब्रह्मचित' नाम ब्रह्मचेतन-छे. ते साक्षिचेतन अने ब्रह्मचेतन त्वंपद

अने तत्पदना वाच्यमां 'लीन' नाम प्रविष्ट छे. अने जहतीलक्षणा ज्यां होय, त्यां वाच्य संपूर्णनो त्याग करीने वाच्यनो संबंधी अन्य ज्ञेय होय छे. एथी महावाक्यमां जहतीलक्षणा मानिये तो वाच्यमां आवुं जे चेतन तेथी 'नवीन' नाम अन्य कांई ज्ञेय थशे. चेतनथी भिन्न असत्-जड-दुःखरूप छे. तेना जाणवाथी पुरुषार्थ सिद्ध थाय नहि. एथी महावाक्यमां जहतीलक्षणा नथी.

४३७. अथ अजहतीलक्षणाअसंभवप्रतिपादन.

दुहो.

वाच्यअर्थ सर्वे रहे, जहां अजहती मित्र!

वाच्यअर्थ सविरोध इम, तजो अजहती रीत. ४१.

टीकाः—हे मित्र-प्रिय! ज्यां अजहतीलक्षणा होय त्यां वाच्य-अर्थ सर्व रहे छे, अने वाच्यथी अधिकनुं ग्रहण थाय छे. महावाक्यमां अजहतीलक्षणा अंगीकार करिये तो वाच्यअर्थ सर्व रहेशे अने वाच्यअर्थ महावाक्यमां 'सविरोध' नाम विरोधसहित छे. विरोध दूर करवाने लक्षणा अंगीकार करी छे. अजहती मानिये तो महावाक्योमां विरोध दूर थाय नहि. एथी अजहतीनी रीति महावाक्योमां त्यजो.

४३८. अथ भागत्यागलक्षणाप्रकार.

दुहो.

त्यागी विरोधी धर्म सहु, चेतन शुद्ध असंग;

जाण लक्षणाथी सुमति, भागत्याग ए अंग! ४२.

टीकाः हे अंग (नाम) हे प्रिय! तत्पदनो वाच्य ईश्वर अने त्वंपदनो वाच्य जीव, तेओना परस्परमां विरोधी धर्म त्यागीने, शुद्ध-असंग-चेतन लक्षणाथी जाणो. ए भागत्याग-लक्षणा छे आ स्थानमां आ सिद्धान्त छेः—ईश्वरजीवनुं

स्वरूप अनेक प्रकारनुं अद्वैतग्रंथोमां कह्युं छे. विवरण-ग्रंथमां अज्ञानमां प्रतिबिंब 'जीव,' अने बिंब 'ईश्वर' कह्यो छे. अने विद्यारण्यना मतमां-शुद्धसत्त्वगुणसहित मायामां आभास 'ईश्वर,' अने मलिनसत्त्वगुणसहित जे अंतःकरणनुं उपादानकारण अविद्यानो अंश तेमां आभास 'जीव' कह्यो छे.

४३९. (आभासवाद.)

यद्यपि पंचदशीग्रंथमां विद्यारण्यस्वामीए अंतःकरणमां आभासने जीव कह्यो छे, तथापि अंतःकरणना आभासने जीव मानिये तो सुषुप्तिमां अंतःकरण रहे नहि, एथी जीवनो पण अभाव थयो जोइये अने प्राज्ञरूप जीव सुषुप्तिमां रहे छे. एथी विद्यारण्यस्वामीनो आ अभिप्राय छेः-अंतःकरणरूप परिणामने प्राप्त जे थाय अविद्यानो अंश तेमां आभास जीव छे. ते अविद्यानो अंश सुषुप्तिमां पण रहे छे. एथी प्राज्ञनो अभाव नथी. अने केवल आभासै ज जीव ईश्वर नथी, किन्तु मायानुं अधिष्ठानचेतन, अने मायासहित आभास, ईश्वर छे. अने अविद्याअंशनुं अधिष्ठानचेतन, अने अविद्याना अंशसहित आभास जीव छे. ईश्वर-

१९९. केवल चिदाभास ज जीव-ईश्वर नथी. कारण के पोताना तादात्म्यसंबंधेकरी अधिष्ठानसाथे अभिन्न थईने जे प्रतीत थाय ते आरोपित कहेवाय छे. आरोपितनी अधिष्ठानथी भिन्नताए करी प्रतीति थाय नहि. जेम रज्जुविषे सर्प आरोपित छे, एथी तेनी रज्जुथी भिन्नताएकरीने प्रतीति थाय नहि, किन्तु रज्जुसाथे अभिन्न थईने अने रज्जुना स्वरूपने ढांकीने सर्पनी प्रतीति थाय छे. तेम माया अविद्यामां जे आभास छे ते पण जेथी आरोपित छे तेथी तेओनी पोताना अधिष्ठान-कूटस्थ अने ब्रह्मथी भिन्नकरीने प्रतीति संभवे नहि. किन्तु ते बेनी पोतानुं अधिष्ठान-कूटस्थ तथा ब्रह्मसाथे तादात्म्यसंबंधरूप एकताने पामीने, तेओना स्वरूपने ढांकीने ज प्रतीति थाय छे. एथी अधिष्ठानचेतन अने उपाधिसहित चिदाभास जीव किंवा ईश्वर छे. पं. पी. पु.

ना उपाधिमां शुद्धसत्त्वगुण छे, पथी ईश्वरमां सर्वशक्ति-सर्वज्ञतादिक धर्म छे. अने जीवना उपाधिमां मलिनसत्त्वगुण छे, पथी जीवमां अल्पशक्ति अल्पज्ञतादिक धर्म छे. पने आभासवाद कहे छे.

४४०. (प्रतिबिंबवाद. अन्यनिष्ठनी अन्यत्र प्रतीतिनुं व्यवस्थापन.)

अने विवरणना मतमां यद्यपि जीव-ईश्वर बंनेनो उपाधि पक ज अज्ञान छे, पथी बंने अल्पज्ञ (वा सर्वज्ञ) थवा जोइये. तथापि जे उपाधिमां प्रतिबिंब होय तेनो आ स्वभाव होय छेः-प्र ति विं ब मां पो ता ना (उ पा धि ना) दो प क रे छे, विं ब मां न हि. जेम दर्पणरूप उपाधिमां मुखनुं प्रतिबिंब थाय छे, ग्रीवामां (डोकमां) स्थित मुख बिंब छे, त्यां दर्पणरूप उपाधिना श्याम, पीत, लघुतादिक अनेक दोष, प्रतिबिंबमां भान थाय छे. अने ग्रीवामां स्थित जे बिंब छे तेमां भान थाय नहि. तेम दर्पणस्थानीय जे अज्ञान तेविषे प्रतिबिंबरूप जीवमां, अज्ञानकृत अल्पज्ञतादि दोष छे, अने बिंबरूप ईश्वरमां नथी. पथी ईश्वरमां सर्वज्ञतादिक छे, अने जीवमां अल्पज्ञतादिक छे.

४४१. (आभास अने प्रतिबिंबवादनो भेद.)

आभास अने प्रतिबिंबनो आटलो भेद छेः-आभासपक्षमां तो आभास मिथ्या छे; अने प्रतिबिंबवादमां प्रति-

२००. यद्यपि प्रतिबिंबवादमां शुद्धब्रह्म ज ईश्वर छे तेमां सर्वज्ञतादि धर्म पण संभवे नहि, तथापि जीवना अल्पज्ञतादिक धर्मनी अपेक्षाए शुद्धब्रह्ममा बिंबता, ईश्वरता, सर्वज्ञता, आदि धर्मोनो आरोप थाय छे. वास्तवथी जीव ईश्वर उभय ब्रह्मरूप छे. तेमां कोई धर्मनो संभव नथी.　　पं. पी. पु.

बिंब मिथ्या नथी, किन्तु सत्य छे. केमके प्रतिबिंबवादीनो आ सिद्धान्त छेः-दर्पणमां जे मुखनुं प्रतिबिंब छे ते मुखनी छाया नथी. केमके छायानो आ स्वभाव छेः-जे दिशामां छायावान्नां मुख अने पृष्ठ (पीठ) होय, ए दिशामां छायानां मुख अने पृष्ठ होय छे. अने दर्पणना प्रतिबिंबनां मुख अने पीठ, बिंबथी विपरीत होय छे. एथी दर्पणमां छायारूप प्रतिबिंब नथी, किन्तु दर्पणने विषय करवानेसारु नेत्रद्वारा निकली जे अंतःकरणनी वृत्ति, ते दर्पणने विषय करीने तत्काल ज दर्पणथी निवृत्त थईने ग्रीवामां स्थित मुखने विषय करे छे. *जेम भ्रमणना वेगथी अलातनुं (अर्धदग्ध काष्ठ) चक्र* (जेवुं) भान थाय छे, अने चक्र छे नहि; तेम दर्पण अने मुखने विषय करवामां, वृत्तिना वेगथी मुख दर्पणमां स्थित (छे एम) भान थाय छे, अने मुख ग्रीवाविषे ज स्थित छे, दर्पणमां नथी, अने छाया पण नथी. वृत्तिना वेगथी दर्पणमां मुखनी जे प्रतीति, ते ज प्रतिबिंब छे. ए रीतिए दर्पणरूप उपाधिना संबंधथी ग्रीवामां स्थित मुख ज बिंबरूप अने प्रतिबिंबरूप भान थाय छे. अने विचारथी बिंबप्रतिबिंबभाव छे नहि. तेम अज्ञानरूप उपाधिना संबंधथी असंगचेतनमां बिंबस्थानीय ईश्वरभाव, अने प्रतिबिंबस्थानीय जीवभाव प्रतीत थाय छे. अने विचारदृष्टिए ईश्वरता जीवता छे नहि. अज्ञानथी चेतनमां जे जीवभावनी प्रतीति ते ज अज्ञानमां प्रतिबिंब कहेवाय छे, एथी बिंबता अने प्रतिबिंबता तो मिथ्या छे. अने स्वरूपे बिंबप्रतिबिंब सत्य छे. केमके बिंबप्रतिबिंबनुं स्वरूप, दृष्टान्तविषे तो मुख छे, अने दार्ष्टान्तविषे चेतन छे, ते मुख अने चेतन सत्य छे. ए रीतिए प्रतिबिंबने, स्वरूपथी सत्य होवाथी, सत्य कहे छे. अने आभासनुं स्वरूप छाया माने छे

एथी मिथ्या छे. एवो आभासवाद तथा प्रतिबिंबवादनो भेद छे.

२०१. (जड-जीव-ईश्वर-परमात्मा-विषय विचार.)

इहां कइंक विशेष छे: जलपूरित अनेक घटोविषे सूर्यनां अनेक प्रतिबिंब (आभास) थाय छे. तेओमां एक एक प्रतिबिंब व्यष्टि कहेवाय छे; अने सर्व मीळीने एक समष्टि प्रतिबिंब कहेवाय छे. तेओमां जे प्रतिबिंबनो जळना अभावे अभाव थाय तेनो सूर्यसाथे अभेद कहेवाय छे, अन्योनो नहि. एम ज्यारे सर्व प्रतिबिंबनो अभाव थाय त्यारे ते समष्टिप्रतिबिंबनो सूर्यसाथे अभेद कहेवाय छे. तेम ए उक्त आभासादिकना पक्षमां अनेकबुद्धि वा अविद्याअंशरूप जळविषे ब्रह्मनां अनेक प्रतिबिंब (आभास) तेओमा एक एक अनेक व्यष्टि कहेवाय छे. अने सर्व मीलीने एक समष्टिप्रतिबिंब कहेवाय छे. तेओमा अनेक व्यष्टिप्रतिबिंब जीवो छे, अने एक समष्टिप्रतिबिंब ईश्वर छे. तेओमाथी जे जीवनो उपाधिना अभावथी अभाव थाय तेनो ब्रह्मसाथे उपचारमात्र अभेद कहेवाय छे. एम ज्यारे सर्व जीवोनो अभाव थशे त्यारे ते समष्टिप्रतिबिंबरूप ईश्वरनो विदेहमोक्ष थशे. ए पक्षमां जगत् अने ब्रह्मना किंवा जीव अने ब्रह्मना अभेदनां बोधक श्रुतिवाक्योमां भागत्यागलक्षणानो स्वीकार नथी, किन्तु 'गंगामां ग्राम छे,' ए वाक्यनी पेठे सर्व वाच्य(अर्थ)नो त्याग अने तेना संबंधि ब्रह्मना ग्रहणथी जहतीलक्षणानो स्वीकार छे. ए अधिष्ठानकूटस्थने छोडीने केवल बुद्धिसहित वा अविद्यासहित आभासने जीव मानवावाळा कोई वेदान्तना एकदेशीआभासवादीनुं मत छे.

ए पक्षमां पुरुषार्थ मोक्ष-ने निमित्त प्रयत्न करवावाळा जीवनो मोक्षदशाविषे अभाव थाय छे. एथी 'धनवृद्धिनी वांछाए व्यापार करवावाळानु मूल धन पण नष्ट थयुं' एनी पेठे मोक्षनी प्राप्तिने निमित्त प्रयत्न करवावाळा जीवनु स्वरूप नष्ट थशे. (एवी शंकाए) ए अनर्थ जाणीने ए सिद्धान्तमा कोई मुमुक्षुनी प्रवृत्ति नहि थशे, एथी ए पक्ष समीचीन नथी (गणता).

पंचदशी अने आ विचारसागर आदिक ग्रंथोमां 'अधिष्ठानकूटस्थसहित' साभासबुद्धि वा अविद्याने जीव मान्यो छे. अने 'अधिष्ठान ब्रह्मसहित' साभासमायाने ईश्वर मान्यो छे.

एमां वाच्यभागना एकदेशना त्यागथी अने एकदेशना ग्रहणथी महावाक्य-आदिक स्थलमां सिद्धान्तसंमत भागत्यागलक्षणानो ज स्वीकार छे. ए पक्षमां मुख्य आकाशना दृष्टान्तनो ज अंगीकार छे. ते आकाशना दृष्टान्तनु सविस्तर वर्णन पंचदशीना चित्रदीपमां अने विचारसागरना चतुर्थ तरंगमां कर्यु छे. ए पक्षनो

रीतिए आकाशना किंवा मुखआदिकना प्रतिबिंबनुं अधिष्ठानरूप उपादान—घटाकाश अने दर्पणादिक छे, अने परिणामी उपादान—जळ अने अविद्याआदिक छे, अने निमित्त कारण—महाकाश अने मुखादिक बिंब अने उपाधिनो संनिधि छे. ते प्रतिबिंबनो, बाध करीने, पोताना बिंब मुखादिकसाथे अभेद थाय छे. तथापि ज्यांलगी जल-दर्पणआदिक अने बिंबना संनिधिरूप निमित्त होय त्यांलगी बाधितप्रतिबिंबनी पण अनुवृत्ति—प्रतीत—होय छे. एने बाधितानुवृत्ति कहे छे. तेम चिदाभासरूप जीवनुं अ धि ष्ठा न रू प उपादान कूटस्थ छे, अने प रि णा मि उपादान नानाबुद्धि किंवा अज्ञानअंश छे; अने प्रारब्ध निमित्तकारण छे. तेओमांथी जे चिदाभास, बुद्धि वा अज्ञानअंशरूप उपाधिसहित पोतानस्वरूपनो बाध करीने, अहं (हुं) आदिक जीववाचक पदनो लक्ष्यअर्थ जे कूटस्थअधिष्ठानरूप पोतानुं निजरूप-तेनुं अभिमान करीने ते अहंपदना लक्ष्य—कूटस्थनी बिंबरूप ब्रह्मसंगे पूर्वसिद्धएकता छे तेने जाणे छे—ते मुक्त थाय छे. अन्य बद्ध छे. यद्यपि उक्त 'अहं ब्रह्मास्मि' ए ज्ञानना समयमां ज अविद्यारूप उपादानना नाशेकरी तेमां कार्यजगत्‌सहित चिदाभासनो बाध थाय छे, तथापि ज्यांलगी प्रारब्धरूप निमित्त छे त्यांलगी बाध थये मिथ्या जाणे देहादि जगत्‌सहित चिदाभासनी अनुवृत्ति प्रतीति थाय छे. ज्यारे प्रारब्धना अन्त थाय छे त्यारे ते प्रतीतिनो अभाव थाय छे. ते ज तेनो वि दे ह मो क्ष छे.

पूर्वोक्त पक्षथी ए पक्ष उत्तम छे, अने बिंबप्रतिबिंबवादविषे प्रतिबिंबनुं अधिष्ठानरूप उपादान बिंब छे, अने परिणामिउपादान मुखआदिक बिंबनुं अज्ञान छे तेनुं निमित्तकारण दर्पण अने बिंबनो संनिधिआदिक छे. बिंबप्रतिबिंबना अभेद ज्ञानथी प्रतिबिंबभावनी निवृत्ति थाय छे. परंतु ज्यांलगी बिंब अने दर्पणना सन्निधिरूपउपाधि निमित्त होय त्यांलगी मिथ्या जाणेल प्रतिबिंबभावरहित प्रतिबिंबना स्वरूपनी प्रतीति थाय छे. ज्यारे दर्पण आदिकनुं अपसरण थाय त्यारे प्रतिबिंबनी प्रतीतिनो अभाव थाय छे. तेम एक ज अज्ञानेश्वरी शुद्धब्रह्मरूपबिंबमां जीवरूप प्रतिबिंबभाव प्रतीत थाय छे. तेनुं उ पा दा न अज्ञान छे, अने अधि ष्ठा न शुद्ध ब्रह्म छे, अने नि मि त्त कारण अदृष्ट छे. ज्यारे ते प्रतिबिंबने पोताना बिंबब्रह्मसंगे पोतानी एकता प्रतीत थाय छे, त्यारे तेनो प्रतिबिंबभाव—जीवभाव—निवृत्त थाय छे. परंतु ज्यांलगी प्रारब्धरूप उपाधि—निमित्त—छे, त्यांलगी बाधित थयेल जगत्‌सहित आ जीवना जीवभावरहित स्वरूपनी प्रतीति थाय छे. ज्यारे प्रारब्धनो अन्त थशे त्यारे ते प्रतीतिनो अभाव थईने केवल शुद्धब्रह्म

४४२. (अवच्छेदवाद).

अने केटलाक ग्रंथोमां शुद्धसत्त्वगुणसहित मायाविशिष्ट चेतन **ईश्वर** कहेवाय छे. अने मलिनसत्त्वगुणसहित अंतःकरण ना उपादान अविद्याना अंशविशिष्टचेतन **जीव** कहेवाय छे. एने **अवच्छेदवाद** कहे छे

(आभासवाद मुख्य छे.)

वेदान्तनी सर्वा ज प्रक्रिया अद्वैतआत्माने जणाववाने छे. एथी जेवी प्रक्रियाथी जिज्ञासुने बोध थाय ते ज तेने समीचीना छे. तथापि **वाक्यवृत्ति** अने **उपदेशसहस्रीमां**, **भाष्यकारे** आभासवाद ज लख्यो छे. एथी आभासवाद ज मुख्य छे. तेनी रीतिए, माया अने मायामां आभास; अने मायानुं अधिष्ठान जे चेतन, ते, सर्वशक्ति, सर्वज्ञतादिक धर्मसहित **ईश्वर** छे; ते ज तत्पदनो वाच्य छे. अने व्यष्टिअविद्या, तेमां आभास, अने तेनुं अधिष्ठानचेतन, (ते,) अल्पशक्ति अल्पज्ञतादिक धर्मसहित जीव छे, ते त्वंपदनो वाच्य छे. तेओ बन्नेनी 'तत्त्वमसि' वाक्ये एकता बोधन करी. अने (=पण ते बने नहि एथी आभाससहित माया अने मायाकृत सर्वशक्ति सर्वज्ञतादिक धर्म एटला वाच्यभागने त्यागीने, चेतनभागविषे तत्पदनी भागत्यागलक्षणा, तेम आभाससहितअविद्याअंश अने अविद्याकृत अल्पशक्ति अल्पज्ञतादिक धर्म जे त्वंपदनो वाच्यभाग तेने त्यागीने, चेतनभागमां त्वंपदनी भागत्यागलक्षणा (छे).

४४३. (चार महावाक्यो.)

ए रीतिए भागत्यागलक्षणाथी ईश्वर अने जीवना स्वरूपमां लक्ष्य जे चेतनभाग तेओनी एकता (सामवेदनी छांदोग्य-

अवशेष रहेशे, ते ज तेनो विदेहमोक्ष छे. ए पक्षमां स्वप्ननी पेठे मुख्य एक जीवनो अंगीकार छे. अने नानाजीव जे प्रतीत थाय छे ते जी व—आ भा स छे. एमां सत्तात्रयनो अंगीकार छे. एथी ए पण व्या व हा रि क प क्ष कहेवाय छे. परंतु अन्य सर्व व्यावहारिकपक्षोविषे ए पक्ष उत्तम छे. ए रीतिए आभास वाद अने प्रतिबिंबवादनो भेद छे.　　　प. पी. पु.

२०२. एने अवच्छिन्नवाद पण कहे छे. अन्तःकरण अवच्छिन्न चैतन्य=जीव, तेनो 'वाद' नाम व्यवस्थापन.

उपनिषद्गत) **'तत्त्वमसि'** (ते तुं छुं) (ए उपदेशक) महावाक्य बोधन करे छे. तेम (अथर्वणनी माण्डूक्यउपनिषद्गत) **'अयम् आत्मा ब्रह्म'** ए वाक्यमां 'आत्मा' पदनो जीव वाच्य छे, अने 'ब्रह्म' पदनो ईश्वर वाच्य छे. [ब्रह्मपदनो शुद्ध (ब्रह्म) वाच्य नथी, ईश्वर ज वाच्य छे. ए चतुर्थतरंगमां प्रतिपादन करी आव्या छिये.] पूर्वेनी पेठे बन्ने पदोनी लक्षणा छे. लक्ष्यअर्थ परोक्ष नथी, ए अर्थने जणाववा साद 'अयम्' पद छे. 'अयम्' नाम सर्वनो 'अपरोक्ष[२०३] आत्मा ब्रह्म 'छे,' ए वाक्यनो अर्थ छे. (यजुर्वेदनी बृहदारण्यकउपनिषद्गत) **'अहं ब्रह्मास्मि'** ए (अनुभवप्रदर्शक) महावाक्यमां 'अहं'-पदनो जीव वाच्य छे, अने 'ब्रह्म' पदनो ईश वाच्य छे. बन्ने पदनो चेतनभागमां लक्षणा (छे). 'हुं ब्रह्म छुं' ए वाक्यनो अर्थ छे. (ऋग्वेदनी ऐतरेयउपनिषद्गत) **'प्रज्ञानमानंदं ब्रह्म'** ए महावाक्यमां 'प्रज्ञानं' पदनो जीव वाच्य (अर्थ) छे, 'ब्रह्म' पदनो ईश (वाच्य अर्थ) छे. पूर्वोनी पेठे लक्षणा (छे). लक्ष्य जे ब्रह्मात्मा ते आनंदगुणवान् नहि किन्तु आनंदरूप छे, ए अर्थने जणाववाने 'आनंद' पद छे. 'आत्मा-'साथे अभिन्न ब्रह्म आनंदरूप छे.' ए वाक्यनो अर्थ छे. जेम महावाक्योमां भागत्यागलक्षणा छे, तेम अन्यवाक्योमां सत्य, ज्ञान, आनंद, (ए) पदो पण शुद्धब्रह्मने भागत्यागलक्षणाए ज बोधन करे छे. शक्तिए नहि. केमके शुद्धब्रह्म कोई पदनो वाच्य नथी, ए सिद्धान्त छे. एथी सर्व पद विशिष्टनां

---

२०३. अपरोक्ष बे प्रकारना छे. एक तो स्वयप्रकाश होवाथी बुद्धिरूप ज्ञाननो विषय जे आत्मानुं स्वरूप ते अपरोक्ष छे. बीजो प्रकार—'हुं स्वप्रकाश आत्मा छुं.' ए रीतिए बुद्धिवते अवलोकन करवु ते पण 'अपरोक्ष' कहेवाय छे. तेओमां प्रथम प्रकारनो अपरोक्ष नित्य—सदा विद्यमान—छे. अने बीजा प्रकारनो बुद्धिवृत्तिरूप अपरोक्ष अनित्य—कदाचित्—थवावाळो छे. पं. पी. पु.

वाचक छे, अने शुद्धनां लक्षक छे. मायानी आपेक्षिक सत्यता अने चेतननी नैरपेक्षिक सत्यता मलीने सत्यपदनुं वाच्य छे. नैरपेक्षिक सत्य लक्ष्य छे. बुद्धिवृत्तिरूपज्ञान, अने स्वयंप्रकाश (चेतनरूप)ज्ञान, बन्ने मली तो ज्ञान पदनुं वाच्य, अने स्वयंप्रकाशभाग लक्ष्य. विषयसंबंधजन्य सुखाकार सात्विक अंतःकरणनी वृत्ति, अने परमप्रेमनुं आस्पद स्वरूपसुख, (ए) बन्ने मली आनंदपदनुं वाच्य, अने वृत्तिभागने त्यागीने स्वरूप भाग लक्ष्य (छे). ए रीतिए सर्व पदनी शुद्धमां लक्षणा संक्षेपशारीरकमां प्रतिपादन करी छे.

४४४. अथ उक्तअर्थसंग्रह.

कवित.

'गंगामां ग्राम' जहतीलक्षणा ए स्थान जाणो,
'शोण धाय' लक्षणा अजहती जणावियें;
'ते ज आ वस्तु' इहां लक्षणा छे भागत्याग,
बीजुं नाम जहतीअजहती सुणावियें;
तत्वमसि' आदि महावाक्योमां भागत्याग-
लक्षणा, न जहती अजहती बतावियें;
'ब्रह्म कोई पदनो न वाच्य' ए वखाणे वेद,
एथी सर्व पदोमांहि रीति ए लक्षावियें. ४३.
मायामांहि सत्यता सापेक्ष रीतिए कहत,
ब्रह्ममां सत्यता निरपेक्ष रीत्या भाखियें;
बंने मली सत्यपदवाच्य मुनि भाखे छे,
'ब्रह्ममांहि सत्यता' ते लक्ष्यभाग राखियें;
'बुद्धिवृत्ति संवित् द्वे' मिले ज्ञानपदवाच्य,
'संवित् स्वरूप' लक्ष्य, बुद्धिवृत्ति नाशियें,

'आत्माऽने विषयसुख' वाच्यपद आनंदनुं,
विषयसुख त्यागी आत्मसुख लक्ष्य ओळिये. ४४.

४४५. (शंका:--बन्ने पदमां लक्षणा मानवी निष्फल छे.)

महावाक्योमां विरोध दूर करवाने बन्ने पदमां लक्षणा अंगीकार करी. त्यां कोई कहे छेः-एक पदमां लक्षणा अंगीकार कराये पण विरोध दूर थाय छे. बन्ने पदमां लक्षणा मानवानुं प्रयोजन नथी.

दुहो.

एक ज पदमां लक्षणा माने, नहि विरोध,
बे य पदोमां लक्षणा निष्फल कहे सुबोध. ४५.

टीका.-'सुबोध' नाम सुज्ञ बन्ने पदोमां लक्षणा निष्फल कहे छे. केमके एक ज पदमां लक्षणा मान्येथी विरोध दूर थई जाय छे. एनो भाव आ छेः-यद्यपि सर्वज्ञतादिविशिष्टनी, अल्पज्ञतादिविशिष्टनी साथे एकता नथी बनती, तथापि एक पदनो लक्ष्य(अर्थ) जे शुद्ध तेनी विशिष्टनी साथे एकता बने छे. दृष्टान्तः-जेम 'शूद्रमनुष्य ब्राह्मण छे.' ए रीतिए शूद्रत्वधर्मविशिष्ट मनुष्यनी, ब्राह्मणत्वधर्मविशिष्टनी साथे एकता कहेवी विरुद्ध छे; अने 'मनुष्य ब्राह्मण छे,' ए रीतिए शूद्रत्वधर्मरहित शुद्धमनुष्यने ब्राह्मणत्वविशिष्टता कहेवामां विरोध नथी. तेम अल्पज्ञतादिधर्मविशिष्ट चेतननी अने सर्वज्ञतादिधर्मविशिष्ट(चेतन)नी एकता विरुद्ध छे खरी, परंतु जीववाचक पद अने ईशवाचक पदनी चेतनमां लक्षणा करीने, चेतनमात्रनी, सर्वज्ञतादिधर्मविशिष्टनी साथे वा अल्पज्ञतादिधर्मविशिष्टनी साथे, एकता कहेवामां विरोध नथी, एथी बे पदमां लक्षणा मानवामां कोई युक्ति नथी.

---

१ कहिये.

४४६. (समाधानः-बंने पदमां लक्षणा मानवी योग्य छे.)

कवित.

लक्षणा जे कहे एक पदमां तेने आ पूछो,-
बे य पदोमध्येथी छे कियामांहि लक्षणा ?;
प्रथम वा द्वितीयमां कहे, तेने भाखो आ-
वाक्योनो विरोध थाशे, अहो मूढलक्षणा !
त्रणे वाक्यमां छे जीववाचक प्रथम पद
'तत्वमसि' मां आदिपद ईशलक्षणा.
प्रथम वा द्वितीयनो न बने नियम एथी
भागे बे य पदोमां ते लक्षणा सुलणा. ४६.

टीकाः-एक पदमां जे लक्षणा अंगीकार करे, तेने आ पूछोः-बन्ने पदमांथी किया पदमां लक्षणा छे ? जो आम कहेः-सर्व महावाक्योना प्रथमपदमां लक्षणा छे, द्वितीयमां नहि. यद्वा द्वितीयपदमां लक्षणा सर्व वाक्योमां छे, प्रथममां नहि. तेने हे शिष्य ! आम कहेः-हे मूढलक्षण ! प्रथम वा द्वितीय पदमां जो नियमेकरी लक्षणा सर्व वाक्योमां माने, तो वाक्योनो परस्पर विरोध थशे. केम के 'त्रणे वाक्यमां' नाम 'अहं ब्रह्मास्मि;' 'प्रज्ञानमानंदं ब्रह्म;' 'अयमात्मा ब्रह्म;' ए त्रण वाक्योमां जीववाचक पद, 'प्रथम' नाम पूर्व छे, अने 'तत्त्वमसि,' ए वाक्यमां 'आदि पद' नाम प्रथम पद 'ईशलक्षणा' नाम ईश्वरनुं बोधक छे. जो सर्वत्र पूर्वपदमां लक्षणा मानिये तो, त्रण वाक्यनो तो आ अर्थ थशेः-'चेतन' सर्वज्ञतादिविशिष्ट असंसारी ईश्वररूप छे; अने 'तत्त्वमसि' वाक्यनो आ अर्थ थशेः-'चेतन, अल्पज्ञतादिविशिष्ट संसारी जीवरूप छे.' केमके, त्रण वाक्यमां पूर्व (प्रथम) जीववाचक पद छे, तेनी चेतनभागमां लक्षणा, अने द्वितीय जे ईश्वरवाचकपद

तेना वाच्यनुं ग्रहण छे. अने 'तत्त्वमसि'मां आदि (प्रथम) ईशवाचक पद (छे), तेनी चेतनभागमां लक्षणा अने द्वितीय जीववाचक पद तेना वाच्यनुं ग्रहण (छे). ए रीतिए (आदिपदमां) लक्षणानो नियम करे तो वाक्योनो परस्पर विरोध थशे. तेम सर्व वाक्योना 'द्वितीयपद' नाम आगल्या (बीजा) पदमां लक्षणा मानिये तो, त्रणे वाक्योमां पूर्व जे जीवपद, तेना वाच्यनुं ग्रहण, अने उत्तर ईशपदनी चेतनभागमां लक्षणा पथी 'अल्पज्ञतादिधर्मविशिष्ट चेतन छे,' एवो त्रणे वाक्योनो अर्थ थशे. अने 'तत्त्वमसि'मां आदि ईशपद, तेना वाच्यनुं ग्रहण, अने द्वितीय जीवपदनी चेतनभागमां लक्षणा- पथी 'सर्वज्ञतादिधर्मविशिष्ट चेतन छे,' एवो 'तत्त्वमसि'नो अर्थ थवाथी परस्पर विरोध ज थशे. ए रीतिए प्रथम वा द्वितीय पदमां लक्षणानो नियम बने नहि. पथी 'सुलक्षणा' नाम सुंदर छे लक्षण जेनां, ते आचार्य बे पदमां लक्षणा भावे छे.

४४७. अने जो एम कहे केः–'प्रथम वा द्वितीय पदमां 'लक्षणा छे,' ए नियम न करे, किन्तु 'सर्व वाक्यमां जे ईश्वर- 'वाचक पद तेमां लक्षणा छे' ए नियम करे.–ते ईश्वर वाचक- (पद) पूर्व होय वा उत्तर होय–पथी वाक्योनो परस्पर विरोध नथी तेनुं समाधान.

दुहो.

ईशपद ज लक्षक कहे, सर्व अनर्थनी खानि

ज्ञेय थाय, श्रुतिवाक्यमां, थइ पुरुषार्थनी हानि. ४७.

टीकाः–जो ईश्वरवाचक पदने ज लक्षक कहे, तो सर्व अनर्थ–अल्पज्ञता, पराधीनता, जन्ममरणथी आदि लइने जे दुःखनां साधन–तेनी 'खानि' जे संसारी जीव, ते श्रुति-

वाक्यमां होय थाय. एथी 'पुरुषार्थनी' नाम मोक्षनी हानि थशे. एनो भाव आ छेः-जो ईश्वरवाचक पदमां ज लक्षणा माने तो महावाक्यनो आ अर्थ थशेः-तत्पदनुं लक्ष्य जे अद्वय, असंग, मायामलरहित चेतन, ते (चेतन) काम कर्म अविद्याने अधीन, अल्पज्ञ, अल्पशक्ति, परिच्छिन्न,-पुण्यपाप, सुखदुःख, जन्ममरण, गमनागमन, आदिक अनंत अनर्थनुं पात्र छे. जो महावाक्यनो एवो अर्थ थाय तो जिज्ञासुने ए ज अर्थविषे बुद्धिनी स्थिति करवी पडशे. अने जेमां बुद्धिनी स्थिति होय छे, प्राणवियोगथी अनंतर, तेने ज प्राप्त थाय छे. एथी वेदवाक्योना विचारेकरी, मुमुक्षुने अनर्थनी ज प्राप्ति थशे, आनंदनी प्राप्ति नहि थशे. एथी 'ईश्वरवाचक पदमां लक्षणा छे, जीववाचकमां नहि.' ए नियम असंगत छे.

४४८. अने जो आम कहे केः-सर्व महावाक्योमां जे जीववाचक पद छे तेओमां लक्षणा छे, ईशवाचकमां नहि, एथी पुरुषार्थनी हानि नथी. केमके जीववाचक पदमां लक्षणा मानिये तो महावाक्यनो आ अर्थ थशेः-जे त्वंपदनुं लक्ष्य-चेतनभाग,-ते सर्वशक्ति, सर्वज्ञ, स्वतंत्र, जन्मादिक-बंधरहित, ईश्वररूप छे. ए अर्थमां बुद्धिनी स्थितिएकरी जिज्ञासुने अतिउत्तम ईश्वरभावनी ज प्राप्ति थशे. एथी जीव-वाचक पदमां लक्षणानो नियम करे छे. तेनुं समाधान.

(जीव ते ईश्वर नथी.) दुहो.

साक्षी त्वंपदलक्ष्य कहो केम ईश्वरस्वरूप ?
एथी बे पद लक्षणा, भाषे यतिवरभूप. ४८.

टीकाः-त्वंपदनो लक्ष्य(अर्थ) जे साक्षी ते ईशस्वरूप केम ? ए कहो. अर्थ आः-त्वंपदना लक्ष्यने ईश्वररूप कहेवो बने नहि. एथी 'यति' जे संन्यासी, तेओमां 'वर' नाम जे

श्रेष्ठ, तेओनो 'भूप'=स्वामी (शंकराचार्य) बंने पदोमां लक्षणा कहे छे.[204] एनो भाव आ छे,–जो जीववाचक पदमां लक्षणा जे माने अने ईशवाचक(पद)मां माने नहि, तेने आ पूछिये छियेः-त्वंपदनी लक्षणा व्यापकचेतनमां छे, अथवा जेटला देशमां जीवनो उपाधि छे, एटला देशमां स्थित जे साक्षिचेतन तेमां त्वंपदनी लक्षणा छे ? जो व्यापकचेतनमां त्वंपदनी लक्षणा कहे तो बने नहि, केम के, वाच्यअर्थमां जेनो प्रवेश होय तेमां भागत्यागलक्षणा होय छे. अने व्यापकचेतननो प्रवेश वाच्यमां नथी, किन्तु जीवत्वना उपाधिदेशमां स्थित जे साक्षिचेतन तेनो वाच्यमां प्रवेश छे. एथी साक्षिचेतनमां ज त्वंपदनी लक्षणा छे, व्यापकचेतनमां नहि. ते साक्षिचेतनमां सर्वना हृदयनुं प्रेरण अने सर्वप्रपंचमां व्यापकतादिक ईश्वरना धर्मोनो असंभव छे. अने साक्षी सदा अपरोक्ष छे. तेने विषे परोक्षता (रूप) ईश्वरधर्मतानो अत्यंत असंभव छे. अने मायारहितने, मायाविशिष्ट कहेवो असंभव छे. जेम दंडरहितने दंडी कहेवो, अने संस्काररहित द्विजबालकने संस्कारविशिष्ट कहेवो असंभव छे. एथी साक्षिचेतननो ईश्वरसंग अभेद कहे, तो, महावाक्य असंभव अर्थनां प्रतिपादक थशे.

४४९. अने बन्ने पदमां लक्षणा माने तो दोष नथी. केम के, जे एकताना विरोधी धर्म छे, ते सर्वने त्यागीने, बन्ने पदमां प्रकाशरूप चेतन, जे वाच्यभाग, ते सर्वधर्मरहित

---

२०४. सोऽयं द्विज इति वाक्यं त्यक्त्वा परोक्षापरोक्षदेशादिकम् ।
द्विजमात्रलक्षकत्वात् कथयत्यैक्यं पदार्थयोरुभयोः ॥ ३६ ॥
तद्वत्तत्त्वमसीति त्यक्त्वा परोक्षापरोक्षतादीनि ।
चिद्वस्तु लक्षयित्वा बोधयति स्पष्टमसिपदेनैक्यम् ॥ ३७ ॥
स्वात्मनिरूपणम् ।

चेतनमां (त्वं अने तत्) बन्ने पदोनी लक्षणा. उपाधि अने उपाधिकृत धर्मोथी चेतननो भेद छे, स्वरूपेकरी नथी. उपाधि अने उपाधिकृत धर्मोनो त्याग कर्येथी, बन्ने पदोना लक्ष्यचेतननी एकता संभवे छे. जेम (केवल) घटाकाशमां घटदृष्टि त्यागीने मठविशिष्ट आकाशसाथे एकता बने नहि, अने मठदृष्टि (पण) त्याग कर्येथी (केवल आकाशसंगे) एकता बने छे.

दुहो.

तत् त्वं, त्वं तत्, रीति ए, सर्व वाक्यमां जाणि,
जेथी थाय परोक्षता परिछिन्नता हानि. ४९.

टीकाः-सर्व वाक्यमां तत् त्वं, त्वं तत् (ते तुं, तुं ते) ए रीतिए ओतप्रोतभावेनी रीति जाण. जे ओतप्रोतभाव कर्याथी वाक्यना अर्थमां परोक्षता अने परिछिन्नता (रूप) भ्रान्तिनी हानि थाय छे.

---

२०५. ईश्वरनी परोक्षता. जीवनी परीच्छिन्नता.

२०६. वस्त्रना वाणानुं अने वाणानुं सूत्र. गमन अने आगमनरूप परिचयविना मार्गना सम्यक्ज्ञानना अभावनी पेठे ओतप्रोतभाव विना सम्यक् अभेदज्ञान थाय नहि. एथी महावाक्यना उपदेशना अनन्तर जिज्ञासुने ओतप्रोतभाव (व्यापक-व्याप्यभाव) कर्तव्य छे. एने अन्वय अने व्यतिरेक पण कहे छे. पं. पी. पु.

२०७. इहां आ प्रश्न छेः—महावाक्यना उपदेशना अनन्तर जिज्ञासुने ब्रह्म अने आत्माविषे परोक्षता अने परिच्छिन्नता(रूप)भ्रान्ति प्रतीत थाय नहि. तिहां भ्रान्तिनुं कोई अन्य कारण तो संभवे नहि. किन्तु ब्रह्मविषे स्थिता माया अने आत्माविषे स्थिता अविद्या, भ्रान्तिनां कारण संभवे. ते माया—अविद्या, ब्रह्मने अने आत्माने आश्रिता थईने पूर्वे रह्यां हतां; ते ज्यारे जिज्ञासुए तत्त्वंपदार्थनुं शोधन कर्युं त्यारे बंने नष्ट थई गयां. जेम घटस्वरूपनो विचार करे घटनिष्ठ अविद्या रहे नहि; तेम ब्रह्म अने आत्मानो विचार करे सते तेओविषे स्थिता माया—अविद्या रहे नहि, किन्तु ते अधिकारीनी दृष्टिए बाधिता थाय छे. अने तृतीयचेतननो अभाव छे अने चेतन विना अन्य जडवस्तुने आश्रित माया—अविद्या रहे नहि. अने मायाअविद्यानी स्थिति विना उक्त बे प्रकारनी भ्रान्ति

'तत् त्वं' ए कहेवाथी 'तत्'पदना अर्थनो 'त्वं'पद अर्थ साथे अभेद कह्यो. ते त्वंपदनो अर्थ साक्षी नित्य अपरोक्ष छे. एथी (तत्पदार्थमां) परोक्षता भ्रान्तिनी हानि. अने 'त्वं तत्' ए कहेवाथी 'त्वं'पदना अर्थनो 'तत्'पदना अर्थ साथे अभेद कह्यो. ते तत्पदनो अर्थ व्यापक छे, एथी (त्वंपदार्थमां) परिच्छिन्नता भ्रान्तिनी हानि. तेम 'अहं ब्रह्म', 'प्रज्ञानं ब्रह्म', 'आत्मा ब्रह्म', एथी परिच्छिन्नतानी हानि. अने 'ब्रह्म अहं', 'ब्रह्म प्रज्ञानं', 'ब्रह्म आत्मा', एथी परोक्षताहानि.

दुहो.

जीवब्रह्मनी एकता, कहे वेदस्मृतिवाण,
शिष्य ! तिहां पीछाणिये भागत्यागनी सान. ५०.

टीकाः—हे शिष्य ! वेदवाण (वचन) अने स्मृतिवाण जीवब्रह्मनी जे एकता कहे त्यां सर्व भागत्यागनी संज्ञा जाणवी.

४६० दुहो.

शिष्य गुरुउपदेश सुणी, थयो ज सद्य निहाल;
जे सुविचारे एहने जाय तेनी जंजाल. ५१.

संभवे नहि. अने जिज्ञासुना चित्तमां प्रतीयमाना जे भ्रान्ति तेनी मायाअविद्याविना अन्यगति—कारण—संभवे नहि. अर्थापत्तिप्रमाणेकरी. मायाअविद्यानी ए स्थितिनी कल्पना थाय छे. एथी महावाक्यना उपदेश अनन्तर ए मायाअविद्या क्यां स्थिता थईने परोक्षतापरिच्छिन्नताभ्रान्तिने उपजावे छे, ए प्रश्न छे तेनुं आ उत्तर छेः—

यद्यपि पदार्थशोधनना अनन्तर ज्ञात—विचारित—जे ब्रह्म अने आत्मा,—तेओविषे तो मायाअविद्या संभवे नहि; तथापि महावाक्यनी अर्थरूप ब्रह्म—आत्मानी जे एकता ते सम्यक् ज्ञात थई नहि, किन्तु अज्ञात छे. ते एकताविषे माया—अविद्या स्थिता थईने परोक्षतारूप अने परिच्छिन्नतारूप भ्रान्तिने उपजावे छे. ते भ्रान्तिना निवारणअर्थ ओतप्रोतभाव कर्तव्य छे. ओतप्रोतभाव कर्ये एकतानुं सम्यक् ज्ञान थईने मायाअविद्यानी निवृत्तिद्वारा परोक्षतापरिच्छिन्नतारूप भ्रान्तिनी निवृत्ति थाय छे. पं. पी. पु.

सोरठो.

मिथ्या गुरु, सुरवाणी, कल्यो ग्रंथ उपदेश ए,
सुणे करे तम-हानि, आ तेनी भाषा करी. ५२.

दुहो.

अगृधदेवने स्वप्नमां गुरुए किध उपदेश;
पण न नाठ्युं दुःखमूल ए, मिथ्या वननो वेश. ५३.

वेश नाम स्वरूप अन्य अर्थ स्पष्ट.

४५१. (ए पूर्वोक्त ग्रंथ भणे सते पण दुःखनुं मूल भासे छे, एम शिष्य कहे छे.)

अगृध उवाच. चोपाई.

भगवन् ! आपे ग्रंथ भणाव्यो, अर्थसहित ते मज्ञ मन आव्यो;
वन दुःखमूल तोय मज भासे, कहो उपाय जेथी ए नासे. ५४.

४५२. गुरु उत्तर दे छेः-(तेप्रमाणे आचरतां स्वप्नरूप सर्वनो नाश थई स्वरूपनी प्राप्ति थाय छे.)

बोल्या गुरु, सुणि शिष्यनी वाणि, सुण शिशु थाय जेथी वनहानि,
एवो उपाय अन्य न कोई, वननाशक हेतु आ सोई. ५५.
महावाक्यनो अर्थ विचार ज,-'हुं अगृध' ए सबल पोकार ज,
सुणी शिष्ये करी वाक्य विचारी, 'अहं अगृध' दीधुं उच्चारी. ५६.
निद्रा गई, प्रकाशां नयन ज,-नाठयां वन, गुरु, ग्रंथ ज, सर्व ज
थयो सुखी, विसर्यो वनदुःख ते, हतो अगृध पाम्यो निजरूप ते.

(अंक ३३३ थी अंक ४५२ पर्यन्त अगृधदेव अर्थे रचित ग्रंथनी समाप्ति.)

४५३. दुहो.

निद्राथी अगृधविषे, थयुं वनदुःख जे रीति;
आतमामां अज्ञानथी, त्यम जगदुःखप्रतीति. ५८.

ज्यम मिथ्या गुरु-ग्रंथथी, मिथ्या वन संहार;
त्यम मिथ्या गुरु-वेदथी, मिथ्या जग परिहार. ५९.
लक्ष्यार्थ लक्षी वाक्यनो, थाय जिज्ञासु निहाल;
निरावरण ते आप छे, दादु दीनदयाल. ६०.

इति श्रीविचारसागरे गुरुवेदादिसाधनमिथ्यावर्णनं
नाम षष्ठस्तरंगः
समाप्तः ६



श्रीगणेशाय नमः ।

अथ श्रीविचारसागरस्य

सप्तमतरंगप्रारंभः

अथ जीवन्मुक्ति[208]-विदेहमुक्ति[209]वर्णनं.

४५४ दुहो

उत्तम मध्य कनिष्ठ त्रण सुण्यो ए गुरुउपदेश;
लह्यो ब्रह्मात्मा उत्तमे, रह्यो न संशय लेश. १.

टीकाः-यद्यपि गुरुए उपदेश त्रणेने (उत्तम, मध्यम, अने कनिष्ठ शिष्योने) साथे ज कर्यो, तथापि गुरुउपदेशथी साक्षात्कार उत्तम (अधिकारी) तत्त्वदृष्टिने थयो.

(जीवन्मुक्तनी स्थिति.) दुहा.

भ्रमण करे ज्यम पवनथी, पीपरपत्र सुकु आ य,
शेषकर्म प्रारब्धथी, क्रिया करे देसाय. २.
कदा चढी रथ वाजी गज, बागबगीचे सोई,
नग्नपाद चली एकला, फरी, आवे त्यां जोई. ३.
विविध वेश, शय्या शयन, उत्तम भोजन भोग;
कदापि अनशन, गिरिगुहा, रजनी शिला संयोग. ४.

---

२०८. बाधित देहादिक प्रपंचनी प्रतीति सहित ब्रह्मस्वरूपे अवस्थिति= जीवन्मुक्ति.

२०९. प्रपंचनी प्रतीतिरहित ब्रह्मस्वरूपे अवस्थिति=विदेहमुक्ति.

करीं प्रणाम पूजन करे, कहिं जन लाख हजार;
उभय लोकथी भ्रष्ट गणीं कर्मी कहे, धिक्कार. ५.
जे तेनी पूजा करे, संचित सुकृत्य सुलेय;
दोषदृष्टिथी जे लखे तेने पाप फल देय. ६.
एवो तेना देहनो, नियम विना व्यवहार;
थाय न कदि संदेह भ्रम, लह्युं तत्त्व निर्धार. ७.
नहि तेने कर्तव्य कई, थयो भेदभ्रम नाश;
उपज्यो वेदप्रमाणथी, अद्वय ब्रह्मप्रकाश.* ८.

४५५. (पूर्वपक्षीनो अंक ४५५ थी ४७३ पर्यन्त आक्षेप छे के:–ज्ञानी सदा समाधि इच्छे छे.)

ज्ञानीना व्यवहारमां, कोई नियम कहे ज;
त्रिपुटी तजे, दुःख हेतु गणी, प्रेमे समाधि ले ज. ९.
थाय कईक व्यवहार जो, भिक्षादान जळपान;
भूले नहि ज समाधिसुख, थाय त्रिपुटीथी ग्लान. १०.
लहे प्रयत्न समाधिनो वळी ज्ञानी ए हेत;
जे समाधि सुख त्यजी भ्रमे, नर कुंकुर खर प्रेत. ११.
गौडपादमुनिकारिका लिख्यो समाधिप्रकार;
ज्ञानी त्यजी विक्षेप इम, लहे सकल सुखसार. १२.
अष्टअंग विन थाय नहि, ते समाधि सुखमूल;
ते अष्टांग हवे सुणो, जे समाधिअनुकूल. १३.
नियम पंच, यम पंच, वळी आसन बहु प्रकार;
प्राणायाम अनेकविध, प्रत्याहार विचार. १४.

---

* ब्रह्मज्ञान.

छठुं धारणा, ध्यान पछी,ऽने सविकल्प समाधि;
अष्ट अंग ए साधीने, निर्विकल्प आराध्य*. १५.

टीकाः-दुहाना अक्षरअर्थ स्पष्ट छे. भाव आ छेः-ज्ञानवान्‌ने शरीरव्यवहारनो नियम नथी. केमके ज्ञानीना व्यवहारमां अज्ञान अने तेनुं कार्य-भेदभ्रान्ति, तथा भेदभ्रमनां कार्य-राग द्वेष-तो छे नहि; किन्तु ज्ञानवान्‌नां पण प्रारब्धकर्म शेष रहे छे, ते ज तेना व्यवहारमां निमित्त छे. ते प्रारब्धकर्म पुरुषभेदथी नानाप्रकारनुं होय छे, पथी ज्ञानीना प्रारब्धकर्मजन्य व्यवहारनो नियम नथी, ए (प्रथम दुहाथी ८ दुहापर्यन्तनो) सिद्धान्त पक्ष छे. (८.) (नवमा दुहाथी १५ मा दुहासुधी पूर्वपक्षनो अनुवाद छे तेनो भाव.) कोई आम कहे छे.-ज्ञानीना व्यवहारमां कोई अन्यकर्मनो तो नियम छे नहि, परंतु ज्ञानवान्‌ने निवृत्तिनो नियम छे. प्रवृत्ति थाय तो देहस्थितिना हेतु-भिक्षाअशन, कौपीन-आच्छादनमात्रग्रहणमां प्रवृत्ति थाय छे, अन्यप्रवृत्ति थाय नहि. केमके ज्ञाननी उत्पत्तिथी प्रथम जिज्ञासाकालमां विषयमां दोषदृष्टिपकरी वैराग्य थाय छे. ते वैराग्य ज्ञाननी उत्पत्तिथी अनंतर पण दोषदृष्टि तथा विषयोमां मिथ्याबुद्धिए होय छे. अपरोक्षरूपथी मिथ्या जाणेला पदार्थोमां सत्यबुद्धि थाय नहि. दोषदृष्टिथी राग थाय नहि, अने प्रवृत्ति रागथी थाय छे; ज्ञानीने राग संभवे नहि, पथी प्रवृत्ति थाय नहि.

(त्रण प्रकारनां कर्म.)

शरीरनिर्वाहक भोजनादिकोमां प्रवृत्ति तो राग विना प्रारब्ध-

---

* १६ मो दुहो हिन्दुस्थानी आवृत्तिमां अत्र मुद्रांकित कर्यो छे. परंतु तेने अंक ४७३ पछी आ आवृत्तिमां मूक्यो छे.

कर्मथी संभवे छे. कर्म त्रण प्रकारनां छे. संचित, आगामि, अने प्रारब्ध. तेमां भूतशरीरमां करेलां फलारंभरहित कर्म **संचित** कहेवाय छे. भविष्यत् (वर्तमान शरीरे थतां) कर्म **आगामि** कहेवाय छे. भूतशरीरमां करेलां वर्तमान शरीरना हेतु कर्म **प्रारब्ध** कहेवाय छे. तेओमांथी संचित् कर्मनो ज्ञानथी नाश थाय छे. ज्ञानवान्‌ना आत्मामां कर्तृत्वभ्रान्ति नथी, एथी तेने आगामि कर्मनो संभव नथी. अने जे प्रारब्धकर्मे ज्ञानीना शरीरनो आरंभ कर्यो छे, ते ज प्रारब्धकर्म, शरीरस्थितिना हेतु भिक्षादिकोमां प्रवृत्ति करावे छे. प्रारब्धकर्मनो नाश भोग विना थतो नथी.

अने कहिं आम लख्युं छेः-संचित (अने) आगामि कर्मनी पेठे ज्ञानीनां प्रारब्ध कर्म पण रहे नहि, तेथी भोजनादि प्रवृत्ति पण ज्ञानीने संभवे नहि, तेनो आ अभिप्राय छेः ज्ञानीनी दृष्टिथी आत्मामां कर्म अने तेनां फलनो सं बं ध नथी, एथी आत्मामां सर्व कर्मनो निषेध, (ए) अभिप्रायथी, प्रारब्धनो निषेध कर्यो छे; अने ज्ञानथी पूर्व करेलां प्रारब्धनो ज्ञानीना शरीरने भोग थाय नहि, ए अभिप्रायथी प्रारब्धनो निषेध नथी. केमके सूत्रकारे आ लख्युं छेः-ज्ञानीनां संचितकर्मनो ज्ञानथी नाश थाय छे, आगामिनो संबंध थाय नहि. (अने) प्रारब्धनो भोगथी नाश थाय छे. एथी प्रारब्धना बलथी शरीरनिर्वाहकक्रिया ज्ञानीनी थाय छे, अधिक नहि.

४५६. परंतु कर्म नाना प्रकारनां छे. ज्यां एक कर्म नाना शरीरनुं आरंभक होय, एवा कर्मथी रचित प्रथमशरीरमां जेने ज्ञान थाय, त्यां ज्ञानवान्‌ने अन्यशरीरनी प्राप्ति थइ जोइये, केमके, जे कर्मे फलनो आरंभ कर्यो छे ते प्रारब्ध कहेवाय छे, तेनो भोग विना नाश थाय नहि. अ ने क शरीर-

नो हेतु कर्म एक छे, तेणे प्रथमशरीर जे उपजाव्युं तेमां ज्ञान थयुं, ते कर्मनां फल, ज्ञानथी अनंतर, अन्यशरीर शेष रहे छे, एथी ज्ञानवान्ने पण अन्यशरीरनी प्राप्ति थवी जोइये.

४५७. अने जो आम कहेः-प्रारब्धकर्मनुं फल-जेटलां शरीर होय-तेटलां शरीर ज्ञानीने पण थाय छे, प्रारब्धना भोगथी अधिक थाय नहि, एथी, ज्ञान पण सफल थाय छे, ते बने नहि. केमके वेदनो ढंढेरो आ छेः-'ज्ञानवान्ना 'प्राण अन्यलोकमां, या आ लोकनां अन्यशरीरमां गमन 'नथी करता, किन्तु ते ज स्थानमां (ते ज देशावच्छिन्न-'चेतनमां) अंतःकरण इन्द्रियसहित लीन थाय छे' अने प्राणगमन विना अन्यशरीरनी प्राप्ति संभवे नहि. एथी 'ज्ञान-'वानने प्रारब्धशेषथी अन्यशरीर थाय छे', ए कहेवुं तो समवे नहि.

किन्तु आ समाधान छेः-ज्यां अनेक शरीरनुं आरंभक एक कर्म होय, त्यां अंतशरीरमां ज ज्ञान थाय छे. पूर्वशरीर-मां ज्ञान थाय नहि. केमके अनेक शरीरनुं आरभक प्रारब्ध ज ज्ञाननुं प्रतिबंधक छे. जेम विषयोमां आसक्ति बुद्धिमंदता भेदवादिवचनमां विश्वास, ज्ञानना प्रतिबंधक छे; तेम वि-लक्षण (जन्मांतरनो हेतुशेष) प्रारब्ध पण ज्ञाननु प्रतिबंधक छे. अने ज्ञानना प्रतिबंधक सते, ज्यां ज्ञाननां साधन श्रवणा-दिक होय त्यां, प्रतिबंधक दूर थयेथी, प्रथमजन्मविषे करेलां जे श्रवणादिक छे तेओनाथी ज, अन्यशरीरमां ज्ञान थाय छे, जेम वामदेवे पूर्वजन्मविषे श्रवणादिक कर्यां त्यारे प्रारब्ध-नुं फल एकशरीरशेष होतां ज्ञान थयुं नहि, किन्तु श्रवणा-दिक करतां वर्तमानशरीरनो पात थइने अन्यशरीरनी

प्राप्ति थयाथी, पूर्वजन्ममां करेलां श्रवणादिकोथी गर्भविषे ज्ञान थयुं छे. एथी ज्ञानथी अनंतर अन्यशरीरनो संबंध थाय नहि. अने वर्तमानशरीरनी चेष्टा प्रारब्धेकरी थाय छे, त्यां जेटली चेष्टा शरीरनी निर्वाहक छे ते ज थाय, रागजन्य अधिक-चेष्टा थाय नहि. एथी सर्वप्रवृत्तिरहित ज्ञानी होय छे.

४५८. ए रीतिए निवृत्तिप्रधान ज्ञानीनो व्यवहार होय छे. एनेविषे आवी शंका छेः-मननो स्वभाव अति चंचल छे. निरालंब (आश्रयरहित) मननी स्थिति होय नहि. कई आलंबनथी मननी स्थिति होय छे, एथी मनने कई आलंबननी प्राप्तिनिमित्त पण ज्ञानवान्नी प्रवृत्ति थाय छे.

तेनुं आ समाधान छेः-यद्यपि समाधिहीन पुरुषनुं मन चंचल होय छे, तथापि समाधिथी मननो विजय थाय छे, अने ज्ञानवान् समाधिविषे स्थित थाय छे, तेथी ज्ञानवान्नी प्रवृत्ति थाय नहि. ते समाधिनां अष्ट अंग. (अंक ४५९ थी ४६५ पर्यन्त.)

४५९. (योगनां अष्टांग.)

ते समाधि आ अष्ट अंगोथी थाय छेः-यम १, नियम २, आसन ३, प्राणायाम ४, प्रत्याहार ५, धारणा ६, ध्यान ७, सविकल्प समाधि ८, ए अष्ट अंगोथी समाधि थाय छे.

४६०. (यम.)

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, ए पांच **यम** कह्या छे.

४६१. (नियम.)

शौच, संतोष, तप (मनइन्द्रियनुं एकाग्र), स्वाध्याय (स्वशाखारूप वेदाध्ययन), ईश्वरप्रणिधान (उपासना), ए पांच **नियम** कहेवाय छे. अने (सुंदरदासकृत) **ज्ञान-**

समुद्र ग्रंथमां दश प्रकारना यम अने दश प्रकारना नियम कह्या छे, ते पुराणनी रीतिए कह्या छे. वेदान्तसंप्रदायमां यमनियमना पांच पांच ज भेद छे.

४६२. (आसन:)

अने आसनना भेद अनंत छे. तेओमां स्वस्तिक, गोमुख, वीर, कूर्म, पद्म, कुक्कुट, उत्तान, कूर्मक, धनुष्य, मत्स्य, पश्चिमतान, मयूर, शव, सिंह, भद्र, सिद्ध, इत्यादिक चोराशी आसन योगग्रंथोमां लख्यां छे. तेओनां लक्षण पण त्यां लख्यां छे. ग्रंथना विस्तारभयथी, तथा वेदान्तमां अत्यंत उपयोगी नहि एथी, लक्षण (अत्र) लख्यां नथी. तेओमां पण, सिंह, भद्र, पद्म, सिद्ध, ए चार आसन प्रधान छे. ते चारमां पण सिद्ध आसन अत्यंत प्रधान छे. तेनुं आ लक्षण छे:-वामपादनी एडी (पानी), गुदा अने मेढ्र(पुरुषनुं असाधारण चिह्न-उपस्थ)नी मध्य शीवणमां दाबीने मूके, दक्षिण पादनी एडी मेढ्रनी उपर दाबीने मूके; भ्रकुटीना अंतरमां दृष्टि राखे; स्थाणु(शाखाशून्य वृक्ष-स्तंभ)नी पेठे सरल निश्चल शरीरथी स्थितिने **सिद्धासन** कहे छे.

अने कोई आवुं कहे छे:-वामपादनी एडी शीवणमां न लगावे, किन्तु मेढ्रनी उपर लगावे, अने तेना उपर दक्षिण एडी मूके, बीजुं पूर्व प्रमाणे. ए सिद्धासन ज अतिप्रधान छे. केमके, केटलांक आसन तो रोगनाशना हेतु छे, अने कोई आसन एवां छे के, प्राणायामादिक समाधिनां अंग, जेओथी थाय छे. अने सिद्धासन समाधिकालमां होय छे, एथी (ते) अतिप्रधान छे. एने ज वज्रासन, मुक्तासन, गुप्तासन, कहे छे.

४६३. (प्राणायाम.)

आसनसिद्धिथी अनंतर *प्राणायाम* पण करे. ते प्राणायाम बहु प्रकारनो छे. तथापि संक्षेपथी आ लक्षण छेः-नासिकाना वाम (डाबा) -छिद्रद्वारा 'इडा'नामे नाडीएकरी वायुने पूरण करे तेने **पूरक** कहे छे; अने दक्षिणे (जमणी पास)करी छोडी दे तेने **रेचक** कहे छे. सुषुम्णा(नाडी)ए, रोके तेने **कुंभक** कहे छे. ए रीतिए पूरक, रेचक, कुंभकने **प्राणायाम** कहे छे. ते बे प्रकारनो छेः-एक अगर्भ छे, तेम बीजो सगर्भ छे [प्रणवना उच्चारणरहित प्राणायाम **अगर्भ** कहेवाय छे. प्रणवना उच्चारणसहित प्राणायाम **सगर्भ** कहेवाय छे.]

४६४. (प्रत्याहार, धारणा, अने ध्यान.)

विषयोथी सकल इन्द्रियना निरोधने **प्रत्याहार** कहे छे. अंतरायरहित अंतःकरणनी स्थिति **धारणा** कहेवाय छे. अंतरायसहित अद्वितीयवस्तु विषे अंतःकरणनो प्रवाह **ध्यान** कहेवाय छे.

४६५. (समाधि अने तेना प्रकार.)

व्युत्थान संस्कारनो तिरस्कार अने निरोध संस्कारनी प्रकटता सते अंतःकरणनो एकाग्रतारूपपरिणाम **समाधि** कहेवाय छे. ते समाधि बे प्रकारनो छेः-एक सविकल्प समाधि छे, अने बीजो निर्विकल्प समाधि छे. ज्ञाताज्ञानज्ञेयरूप त्रिपुटीभानसहित अद्वितीय ब्रह्मविषे अंतःकरणनी वृत्तिनी स्थिति **सविकल्पसमाधि** कहेवाय छे. ते सविकल्पसमाधि बे प्रकारनो छे.

एक तो शब्दानुविद्ध छे, अने बीजो शब्दाननुविद्ध छे. 'अहं ब्रह्मास्मि' ए शब्देकरीने 'अनुविद्ध' नाम सहित होय

ते **शब्दानुविद्ध** कहेवाय छे. शब्दरहितने **शब्दाननुविद्ध** कहे छे. त्रिपुटीभानरहित अखंडब्रह्माकारअंतःकरणवृत्तिनी स्थिति **निर्विकल्पसमाधि** कहेवाय छे. ए रीतिए सविकल्प अने निर्विकल्प समाधिना बे भेद छे. तेओमां सविकल्पसमाधि साधन छे; अने निर्विकल्पसमाधि फल छे. साधनरूप जे सविकल्पसमाधि छे, तेविषे यद्यपि त्रिपुटीरूप द्वैत प्रतीत थाय छे, तथापि ते द्वैत आ रीतिए ब्रह्मरूपेकरीने प्रतीत थाय छेः-जेम मृत्तिकाना विकारने मृत्तिकारूप जाणवाथी विवेकीने मृत्तिकाना विकार-घटादिक-प्रतीत पण थाय छे, परंतु मृत्तिकारूप ज प्रतीत थाय छे; तेम सविकल्पसमाधिमां त्रिपुटीद्वैत ब्रह्मरूप ज प्रतीत थाय छे. निर्विकल्पसमाधिविषे पण, सविकल्पसमाधिनी पेठे, त्रिपुटीरूप द्वैत विद्यमान पण होय छे, तोपण त्रिपुटीद्वैतनी प्रतीति थाय नहि. जेम जलनां लवणने (मिठाने) नांखे, त्यां लवण विद्यमान होय छे, परंतु नेत्रथी लवणनी सर्वथा प्रतीति थाय नहि. ए रीतिए सविकल्प निर्विकल्प(समाधि)नो आ भेद सिद्ध थयोः-सविकल्पसमाधिमां ब्रह्मरूपेकरीने (त्रिपुटीरूप) द्वैतनी प्रतीति अने निर्विकल्प समाधिमां त्रिपुटीरूप द्वैतनी अप्रतीति.

४६६. (सुषुप्तिअवस्था अने निर्विकल्पसमाधिमां भेद.)

सुषुप्तिथी निर्विकल्प(समाधि)नो भेद आ छेः-सुषुप्तिमा अंतःकरणनी ब्रह्माकारवृत्तिनो अभाव होय छे. अने निर्विकल्पसमाधिमां अंतःकरणनी ब्रह्माकारवृत्ति तो होय छे (परंतु) तेनुं भान होय नहि. ए रीतिए सुषुप्तिमां तो वृत्तिसहित अंतःकरणनो अभाव होय छे; अने निर्विकल्पसमाधिमां वृत्तिसहित अंतःकरण तो होय छे (कारण निद्रालुनी

पेठे समाधिस्थ योगी पडी जतो नथी. परंतु) ते (अंतःकरण)नी प्रतीति होय नहि. निर्विकल्पसमाधिविषे अंतःकरणनी जे ब्रह्माकारवृत्ति होय छे, तेनो हेतु सविकल्पसमाधिनो अभ्यास छे. एथी साधनरूप अष्टअंगोमां सविकल्पसमाधि गण्यो छे. **निर्विकल्प समाधि फल** छे.

४६७ (निर्विकल्पसमाधिना बे प्रकार.)

ते निर्विकल्पसमाधि पण बे प्रकारनो होय छेः-एक अद्वैतभावनारूप अने बीजो अद्वैतावस्थानरूप होय छे. अद्वैतब्रह्माकारअंतःकरणनी अज्ञातवृत्तिसहित (समाधि) होय ते 'अद्वैत भावनारूप निर्विकल्पसमाधि' कहेवाय छे. ए समाधिमां अभ्यास अधिक थयाथी (अज्ञात) ब्रह्माकारवृत्ति पण शान्त थई जाय छे, एथी वृत्तिरहितने 'अद्वैतावस्थानरूप निर्विकल्पसमाधि' कहे छे. जेम तप्त लोहना उपर जलनो बिंदु नांख्यो (ते) तप्तलोहमां प्रवेश करे छे (लय थाय छे), तेम अद्वैतभावनारूप समाधिना दृढ अभ्यासथी अत्यंत प्रकाशमान ब्रह्मविषे वृत्तिनो लय थाय छे, ते अद्वैतावस्थानरूप निर्विकल्पसमाधि ज मुख्य फल छे, तेनुं साधन अद्वैतभावनारूप निर्विकल्पसमाधि छे.

४६८. अद्वैतावस्थानरूप समाधि अने सुषुप्तिनो आटलो भेद छेः-सुषुप्तिमां वृत्तिनो लय **अज्ञानमां** थाय छे, अद्वैतावस्थानसमाधिमां वृत्तिनो लय **ब्रह्मप्रकाशमां** थाय छे.

---

२१०. निर्विकारतया वृत्त्या ब्रह्माकारतया पुनः ।
वृत्तिविस्मरणं सम्यक् समाधिरभिधीयते ॥

२११. इहां आ रहस्य छेः-यद्यपि उक्त समाधिविषे निःशेष रजतमना तिरोधानथी आविर्भावने प्राप्त थया शुद्धसत्त्वगुणरूप उपादानविषे ज वृत्तिनो लय संभवे छे, निर्विकार ब्रह्मप्रकाशविषे नहि; [तप्त लोहविषे जलबिंदुना लयनुं

अने सुषुप्तिनो आनंद अज्ञान आ वृ त छे, अने समाधिमां नि रा व र ण ब्रह्मानंदनुं भान थाय छे.

४६९. (निर्विकल्पसमाधिमां चार विघ्न.)

परंतु निर्विकल्पसमाधिमां चार विघ्न होय छे. ते निषेध करवाने कहेवाय छे. लय १, विक्षेप २, कषाय ३, अने रसास्वाद ४.

(लय अने तेनुं विरोधि चित्तसंबोधन.)

आलस्येकरीने अथवा निद्राएकरीने वृत्तिना अभावने लय कहे छे. ते लयथी सुषुप्तिसमान अवस्था थाय छे, ब्रह्मानंदनुं भान थाय नहि. एथी निद्राआलस्यादि निमित्तथी ज्यारे वृत्तिनो पोताना उपादान अंतःकरणमां लय थतो देखे, त्यारे योगी सावधान थईने निद्रादिकोने रोकीने वृत्तिने जगाडे. ए रीतिए लयरूप विघ्ननुं विरोधि (अने) निद्राआलस्यनिरोधसहितवृत्तिना प्रवाहरूप जे जागरण तेने गौडपादाचार्य **चित्तसंबोधन** कहे छे.

४७०. (विक्षेप अने तेनो विरोधी शम.)

विक्षेपनो आ अर्थ छे. जेम बाज अथवा बिलाडीथी डरीने चकली गृहमां प्रवेश करे, त्यारे भयव्याकुलने गृहना अन्तर् तत्काल स्थान देखाय नहि, एथी फरी बहिर् आवीने भय अथवा मरणरूप खेदने प्राप्त थाय छे. तेम अना-

---

दृष्टान्त कह्युं त्यां पण विचारदृष्टिए पार्थिव लोहविषे जलबिंदुनो लय नहि, किन्तु जलनुं उपादान जे अग्निमात्र तेविषे जलबिंदुनो लय थाय छे. तेनो तप्त लोहविषे उपचार-कथन-थाय छे.] तथापि ब्रह्मप्रकाशना मानरूप निमित्तेकरी वृत्तिनो लय थयो छे, एथी उपचारथी ब्रह्मप्रकाशविषे लय कहेवाय छे. किंवा ते समाधिमान् ब्रह्मविद्वरिष्ठनी दृष्टिए गुणादिक प्रतीत थाय नहि; किन्तु शुद्धब्रह्म प्रतीत थाय छे. त्यां ते वृत्तिनो ब्रह्मविवर्त दृष्टिनो-अभाव थयो, एथी पण ब्रह्मप्रकाशविषे प्रवृत्तिनो लय कहेवाय छे. पं. पी. पु.

त्मपदार्थोने दुःखहेतु जाणीने अद्वैतानंदने विषय करवा-सारू अंतर्मुखा थई जे वृत्ति,–त्यां वृत्तिनो विषय चेतन अति-सूक्ष्म छे, एथी, किञ्चित्काल वृत्तिनी स्थिति विना, तत्काल ज चेतनस्वरूप आनंदनो लाभ थाय नहि, तेथी–(ते) वृत्ति वहिर्मुखा थाय छे, ए रीतिए वहिर्मुखवृत्ति **विक्षेप** कहेवाय छे. ते वृत्तिनी स्थिरता विना स्वरूपानंदनो अलाभ होय छे. एथी अंतर्मुखवृत्ति थयाथी पण जेटलो काल वृत्ति ब्रह्माकारा थाय नहि, तेटलो काल बाह्यपदार्थोमां, दोषभावनाथी, वृत्तिने वहिर्मुखता योगी थवा दे नहि; किन्तु वृत्तिनी अंतर्मुखता ज स्थापन करे. विक्षेपरूप विघ्ननो विरोधी जे योगीनो प्रयत्न, तेने गौडपादाचार्ये **शम** कह्यो छे.

४७१. (कषाय अने तेनुं विरोधि-विषयमां दोषदर्शन.)

रागादि दोषने **कषाय** कहे छे. यद्यपि रागादिक बे प्रकारना छे–एक बाह्य छे अने बीजा आंतर छे. स्त्रीपुत्र-धनादिक जेओना विषय व र्त मा न होय ते (रागादि) बा ह्य कहेवाय छे. भूतनुं अथवा भा वी नुं चिन्तनरूप जे मनो-राज्य ते (रागादि) आं त र कहेवाय छे. ते बन्ने प्रकारना रागादिक समाधिमां प्रवृत्त योगीविषे संभवे नहि.

(चित्तनी पंचभूमिका.)

केमके चित्तनी पंचभूमिका छे. तेमां एक क्षेप नाम भूमिका छे, बीजी मूढता, त्रीजी विक्षेप, चोथी एकाग्रता अने पांचमी निरोधभूमिका छे.

लोकवासना, देहवासना, शास्त्रवासना एने आदिलेइने रजोगुणनो परिणाम जे दृढ अनात्मवासना (तेने) क्षेप कहे छे. निद्राआलस्यादिक तमोगुणपरिणामने **मूढता** कहे छे. ध्यानमां प्रवृत्तचित्तनी कदाचित् बाह्यप्रवृत्तिने **विक्षेप** कहे

छे. अंतःकरणनो अतीतपरिणाम अने वर्तमानपरिणाम समानाकार होय तेने **एकाग्रता** कहे छे. ए एकाग्रतानुं लक्षण **योगसूत्रमां** पतंजलिए कह्युं छे तेनो भाव आ छेः- समाधिकालमां योगीना अंतःकरणमां एकाग्रता होय छे, ते एकाग्रता वृत्तिना अभावरूप नहि, किन्तु जेटला अंतःकरणना परिणाम समाधिकालमां थाय छे ते सर्व, ब्रह्मने ज विषय करे छे; एथी अंतःकरणना अतीतपरिणाम अने वर्तमानपरिणाम केवल ब्रह्माकार होवाथी समानाकार थाय छे. ते एकाग्रतानी वृद्धिने **निरोध** कहे छे, ए पांच भूमिका अंतःकरणनी छे. [भूमिका नाम अवस्थानुं छे.]

ए पंचभूमिकासहित अंतःकरणनां आ क्रमथी नाम छेः- क्षिप्त १, मूढ २, विक्षिप्त ३, एकाग्र ४, निरुद्ध ५. तेओमां क्षिप्त अने मूढ अंतःकरणनो तो समाधिविषे अधिकार नथी. विक्षिप्त अंतःकरणने अधिकार छे. एकाग्र अने निरुद्ध अंतःकरण समाधिकालमां होय छे, ए योगग्रंथोमां कह्युं छे. रागादिक दोषसहित अंतःकरण क्षिप्त ज छे. ते क्षिप्तअंतःकरणनो योगमां अधिकार नथी. एथी रागादिक दोषरूप कषाय समाधिनां विघ्न छे, एम कहेवुं संभवे नहि. तथापि आ समाधान छेः-बाह्य अथवा आंतर जे रागादिक छे, ते तो क्षिप्त अंतःकरणमां ज होय छे. ते(क्षिप्तअंतःकरण)नो अधिकार पण नथी. तोपण अनेक जन्मविषे पूर्वे अनुभव कर्या जे बाह्य आंतर रागद्वेष तेओनो सूक्ष्मसंस्कार विक्षिप्तादिक अंतःकरणमां पण संभवे छे; एथी रागद्वेषनुं नाम कषाय नहि, किन्तु रागद्वेषादिकना संस्कार कषाय कहेवाय छे. ते संस्कार अंतःकरण रहे त्यांसुधी दूर थाय नहिः एथी समाधिकालमां पण अंतःकरणमां रहे छे. परंतु रागद्वेषादिकोना उद्भूत

संस्कार समाधिना विरोधी छे. अनुद्भूत विरोधी नथी. [प्रकटने उद्भूत कहे छे, अप्रकटने अनुद्भूत कहे छे.] समाधिमां प्रवृत्त योगीने, जो रागद्वेषना संस्कारनी प्रकटता थाय तो, विषयमां दोषदर्शनथी, (तेने) डावी दे. विक्षेप (अने) कषायनो आ भेद छेः-बाह्यविषयाकार वृत्तिने 'वि क्षे प' कहे छे. अने योगीना प्रयत्नथी ज्यां वृत्ति अंतर्मुखा तो थाय, परंतु रागादिकोना उद्भूतसंस्कारथी अंतर्मुख थयेली वृत्ति पण रोकाई जाय-ब्रह्मने विषय करे नहि-तेने 'क षा य' कहे छे. विषयमां दोषदर्शनसहित योगीना प्रयत्नथी कषाय(रूप) विघ्ननी निवृत्ति थाय छे.

४७२. (रसास्वाद.)

रसास्वादनो आ अर्थ छेः-योगीने ब्रह्मानंदनो अनुभव थाय छे अने विक्षेपरूप दुःखनी निवृत्तिनो अनुभव थाय छे. कहीं दुःखनी निवृत्तिए पण आनंद थाय छे. जेम भारवाही पुरुषनो भार उतर्येथी तेने आनंद थाय, त्यां आनंदमां बीजो तो कोई विषय हेतु छे नहि, किन्तु भारजन्य दुःखनी निवृत्तिथी आम कहे छेः—'मने आनंद थयो छे.' एथी दुःखनी निवृत्ति पण आनंदनो हेतु छे. तेम योगीने समाधिमां विक्षेपजन्य दुःखनी निवृत्तिपकरी जे आनंद थाय, तेनो अनुभव **रसास्वाद** कहेवाय छे. जो दुःखनिवृत्तिजन्य आनंदना अनुभवेकरी ज योगी अलंबुद्धि करी ले तो, सकलउपाधिरहित ब्रह्मानंदाकारवृत्तिना अभावथी ते(ब्रह्मानंद)नो अनुभव समाधिमां थाय नहि, एथी दुःखनिवृत्तिजन्य आनंदनो अनुभवरूप रसास्वाद पण समाधिमां विघ्न छे. वाञ्छितनी प्राप्ति विना पण विरोधिनीनी निवृत्तिपकरी आनंदनी उत्पत्तिमां अन्य दृष्टान्तः-जेम पृथ्वीमां निधि (दाटेला धननो भंडार)

होय ते निधि अत्यंतविषधर सर्पथी रक्षित होय, त्यां निधि-प्राप्तिथी प्रथम पण, निधिप्राप्तिनो विरोधी जे सर्प छे तेनी निवृत्तिपकरी, आनंद थाय छे. त्यां सर्पनिवृत्तिना आनंदमां जो अलंबुद्धि करे, तो उद्यम त्यागवाथी निधि-प्राप्तिनो परमानंद प्राप्त थाय नहि. तेम अद्वैतब्रह्मरूप निधि छे, देहादिक अनात्मपदार्थोनी प्रतीतिरूप जे विक्षेप ते सर्प छे. विक्षेपरूप सर्पनी निवृत्तिजन्य जे-अवान्तर आनंदरूपी रसना अनुभवरूप आस्वादन छे, ते (रसास्वादन),-निधिरूपी अद्वैतब्रह्मनी प्राप्तिजन्य जे महा आनंद छे, तेनी प्राप्तिनो प्रति-बंधक होवाथी, विघ्न कहेवाय छे.

अथवा रसास्वादनो आ बीजो अर्थ छेः-सविकल्पसमाधि-थी उत्तर निर्विकल्पसमाधि थाय छे. अने सविकल्पसमाधि-मां त्रिपुटी प्रतीता थाय छे, एथी सविकल्पसमाधिनो आनंद त्रिपुटीरूप उपाधिसहित होवाथी 'सोपाधिक' कहे-वाय छे. अने निर्विकल्पसमाधिमां त्रिपुटी प्रतीता थाय नहि, एथी 'निरुपाधिक' आनंद निर्विकल्पसमाधिमां थाय छे. ए रीतिए सविकल्पसमाधिथी उत्तर निर्विकल्पसमाधिना आरंभ-मां पण सविकल्पसमाधिना सोपाधिक आनंदने त्यागी शके नहि; किन्तु तेने ज अनुभव करे ते **रसास्वाद** कहे-वाय छे. एथी विक्षेपनिवृत्तिजन्य आनंदनो अनुभव, अथवा सविकल्पसमाधिना आनदनो अनुभव, **रसास्वाद** कहेवाय छे. ते बन्ने प्रकारनो रसास्वाद, निर्विकल्पसमाधिना **पर-मानंद**ना अनुभवनो विरोधी होवाथी, विघ्न छे; एथी तेने पण त्यागे. एम निर्विकल्पसमाधिमां चार विघ्न होय छे. चारे विघ्न समाधिना आरंभमां होय छे.

४७३. (पूर्वपक्षानुसार जीवन्मुक्त.)

एथी सावधानताथी चारे विघ्नने रोकीने समाधिमां परमानंदने विद्वान् अनुभव करे छे, तेने ज जीवन्मुक्त कहे छे. ए रीतिए ज्ञानीनुं चित्त निरालंब नथी होतुं. ज्यारे प्रारब्धवले समाधिथी उत्थान थाय, त्यारे पण समाधिमां जे परमानंदनो अनुभव कर्यो छे, तेनी स्मृति थाय छे. एथी उत्थानकालमां पण ज्ञानीनुं चित्त निरालंब नथी. अने ज्ञानवान्नी भोजनादिकमां जे प्रवृत्ति थाय छे; ते केवल प्रारब्धथी थाय छे; परंतु भोजनादिक व्यवहारमां ज्ञानी खेद मानीने प्रवृत्त थाय छे; केमके भोजनादिकोमां प्रवृत्ति पण समाधिसुखनी विरोधिनी छे. जेने भोजनादिक शरीरनिर्वाह-नी प्रवृत्ति ज खेदरूप थाय, तेनी अधिक प्रवृत्ति संभवे नहि. ए रीतिए बहु आचार्योए ए ज पक्ष लख्यो छे. अने जीवन्मुक्तिनो आनंद पण बाह्यप्रवृत्तिमां थाय नहि, किन्तु निवृत्तिमां थाय छे. एथी जीवन्मुक्तिना सुखार्थी ज्ञानवान्नी बाह्यप्रवृत्ति संभवे नहि.

४७४. (गतअंक ४५९ थी ४७३ पर्यन्तना आक्षेपनुं समाधान.) दुहो.

श्रुणी समाधिकर्तव्यता, तत्त्वदृष्टि हसी देत;
उत्तर कछु भाखे नहि, जाणी बकत सँप्रेत. १६

[जेम 'सप्रेत' नाम प्रेतसहित भूतना आवेशवालो बके तेवुं अन्यथा कहेवुं सांभलीने तत्त्वदृष्टि हसे छे.]

तथापि ज्ञानवान्नो निवृत्तिनो पण नियम कहेवो संभवे नहि. केमके निवृत्तिमां अथवा प्रवृत्तिमां वेदनी आज्ञा रूप विधि तो ज्ञानीने छे नहि, जेथी ज्ञानीना व्यवहारमां नियम थाय. एथी ज्ञानी निरंकुश छे, तेनो व्यवहार प्रारब्धे

करी थाय छे. जे ज्ञानीनुं प्रारब्ध भिक्षाभोजनमात्र फलनो हेतु छे, तेनी भिक्षाभोजनमात्रमां प्रवृत्ति होय छे. जेनुं प्रारब्ध अधिक भोगनो हेतु होय, तेनी अधिकमां पण प्रवृत्ति होय छे.

अने जो आम कहेः-'जेनुं प्रारब्ध भिक्षाभोजनमात्रनो हेतु होय, तेने ज ज्ञान थाय छे, अधिक व्यवहारनो हेतु जेनुं प्रारब्ध होय तेने ज्ञान थाय नहि, एथी भिक्षाभोजनादिक व्यवहारथी अधिक व्यवहार ज्ञानीनो होय नहि। जेनी अधिक प्रवृत्ति होय ते ज्ञानी नहि.'—

ते शंका बने नहि. केमके याज्ञवल्क्य, जनकादिक, ज्ञानी कहेवाया छे. सभाविजयवते धनसंग्रहव्यवहार याज्ञवल्क्यनो, तथा राज्यपालनव्यवहार जनकनो कह्यो छे. अने वासिष्ठ ग्रंथमां अनेक ज्ञानी पुरुषोना व्यवहार नाना प्रकारना कह्या छे. एथी ज्ञानीने प्रवृत्ति अथवा निवृत्तिनो नियम नथी. यद्यपि याज्ञवल्क्ये सभाविजयथी उत्तर विद्वत्संन्यासरूप निवृत्ति ज धारी छे; अने प्रवृत्तिमां ग्लानिना हेतु नाना दोष कह्या छे. तथापि याज्ञवल्क्यने विद्वत्संन्यासथी पूर्वे ज्ञान नहि हतुं, ए कहेवुं तो संभवे नहि. किन्तु ज्ञान तो प्रथम पण हतुं, परंतु विद्वत्संन्यासथी पूर्व जीवन्मुक्तिनो आनंद प्राप्त थयो नहि; एथी जीवन्मुक्तिना आनंदसारू सर्वसंग्रहनो त्याग कर्यो छे. याज्ञवल्क्यनुं प्रारब्ध कई काल अधिक भोगनो हेतु हतुं, अने उत्तरकाल न्यून भोगनो हेतु हतुं-एथी प्रथम तो याज्ञवल्क्यने ग्लानि विना अधिक भोग, अने पछी ग्लानिथी सर्व भोगनो त्याग थयो छे. अने जनकनुं प्रारब्ध मरणपर्यंत राज्यपालनादिक समृद्धिभोगनो हेतु थयुं छे, एथी सदा त्यागनो अभाव ज थयो छे; भोगोमां

ग्लानि पण थई नहि. अने वामदेवादिकोनुं प्रारब्ध न्यून भोगनो हेतु थयुं छे, तेओने सदा भोगोमां ग्लानिथी प्रवृत्तिनो अभाव ज कह्यो छे. अने वासिष्ठमां आवो पण प्रसंग छेः–शिखरध्वजनी ज्ञानथी अनंतर अधिक प्रवृत्ति थई छे. ए रीतिए नानाप्रकारना विलक्षण व्यवहार ज्ञानीपुरुषोना कह्या छे. तेओ सर्वने ज्ञान समान छे, अने तेनुं फल मोक्ष पण समानं छे; अने प्रारब्धभेदेकरी व्यवहारनो भेद छे. व्यवहारनी न्यूनताए जीवन्मुक्तिना सुखनी अधिकता; अने व्यवहारनी अधिकताए जीवन्मुक्तिना सुखनी न्यूनता थाय छे.

४७५. एनेविषे कोई आवी शंका करे छेः–'जे जीवन्मु

---

२१२. इहां आ साम्प्रदायिक श्लोक छेः–

कृष्णो भोगी शुकस्त्यागी नृपौ जनकराघवौ।
वसिष्ठः कर्मकर्ता च त एते ज्ञानिनः समाः॥

कृष्ण भोगी, शुकदेव त्यागी, जनक अने रामचंद्र ए बे राजा, अने वसिष्ठ कर्मकर्ता, हता, (ए रीतिए एओना प्रारब्धभेदथी विलक्षण व्यवहार हता तथापि) तेओ अने आ (आधुनिक)ज्ञानीओ समान छे. 'त एते'ने स्थाने पाठान्तरमां 'पंचैते' छे, त्यां ए कृष्णादि पांचे ज्ञानीओ समान छे, एम अर्थ थाय छे.

पंचदशीग्रंथगत चित्रदीपमां पण वदे छे केः—

आरब्धकर्मनानात्वाद्बुद्धानामन्यथाऽन्यथा।
वर्तनं तेन शास्त्रार्थे भ्रमितव्यं न पण्डितैः॥ २८७॥
स्वस्वकर्मानुसारेण वर्ततां ते यथा तथा।
अविशिष्टः सर्वबोधः समा मुक्तिरिति स्थितिः॥ २८८॥

अर्थः—प्रारब्धकर्म नानात्वथी बुद्ध(ज्ञानीओ)नुं वर्तन अन्यथा अन्यथा (परस्पर विलक्षण) होय छे. तेणेकरी पंडितोए शास्त्रार्थमां भ्रमित थवुं योग्य नथी. (२८७) तेओ (ज्ञानीओ) पोतपोताना कर्मने अनुसार यथा तथा (आम ते-विलक्षण) वर्तो, (परंतु) सर्वनो बोध अविशिष्ट (समान छे) अने (बोधनुं फल) मुक्ति (पण) समाना छे, एवी 'स्थिति' नाम मर्यादा (शास्त्रनो तथा विद्वानोनो निर्णय) छे.

किना सुखने त्यागीने तुच्छ भोगोमां प्रवृत्त थाय, ते विदेह-मोक्षने पण त्यागीने, वैकुंठादि लोकनी इच्छा धारीने जशे.'

ते शंका बने नहि. केमकेः–जीवन्मुक्तिना सुखनो त्याग अने भोगोमां प्रवृत्ति तो ज्ञानीनो प्रारब्धबलथी संभवे छे. अने विदेहमोक्षनो त्याग अने परलोक प्रति गमन संभवे नहि. केमके, ज्ञानीना प्राण बहिर्गमन करता नथी. पथी परलोक प्रति गमन संभवे नहि. अने विदेहमोक्षनो त्याग पण संभवे नहि. केमकेः–ज्ञानथी अज्ञाननी निवृत्ति थईने प्रारब्ध-भोगथी अनंतर स्थूलसूक्ष्मशरीराकार अज्ञाननो चेतनमां लय **विदेहमोक्ष**[213] कहेवाय छे, ते अवश्य थाय छे. जो मूल अज्ञान शेष रहे, अथवा नष्ट अज्ञाननी पुनः उत्पत्ति थाय तो विदेहमोक्षनो अभाव थाय. ते मूल अज्ञानतुं विरोधि ज्ञान थयेथी, अज्ञान शेष रहे नहि. अने प्रमाणथी नाश थयेला अज्ञाननी पुनः उत्पत्ति थाय नहि. पथी विदेहमोक्षनो अभाव थाय नहि. अने विदेहमोक्षना त्यागमां तथा परलोकना गमनमां ज्ञानीनी इच्छा पण संभवे नहि. केमके, ज्ञानीने इच्छा केवल प्रारब्धथी थाय छे. जेटली सामग्री विना प्रारब्धनो भोग संभवे नहि एटली सामग्रीने प्रारब्ध रचे छे. इच्छा विना भोग संभवे नहि, पथी ज्ञाननी इच्छा पण प्रारब्धनुं फल छे. अने अन्यलोकमां अथवा आ लोकमां अन्यशरीरनो संबंध ज्ञानीने प्रारब्धे करी पण थाय नहि, ए पूर्वे आ ज तरंगमां प्रतिपादन करी आव्या छिये. पथी ज्ञानीने प्रारब्धेकरी विदेहमोक्षना त्यागनी, वा परलोक प्रति गमननी इच्छा थाय नहि.

---

२१३. प्रारब्धक्षयवशात् देहत्रयभंगं प्राप्योपाधिविनिर्मुक्तघटाकाशवत् परिपूर्णता विदेहमुक्तिः ॥

४७६. वर्तमान शरीरमां जीवन्मुक्तिना सुखना विरोधी अधिक भोगोनी इच्छा तो, (संन्यासीने) भिक्षाभोजनादिकनी पेठे जनकादिकोने संभवे छे. ए स्थानमां आ रहस्य छेः- ज्ञानीनी बाह्यप्रवृत्ति जीवन्मुक्तिनी विरोधिनी नथी, किन्तु जीवनमुक्तिना विलक्षण सुखनी विरोधिनी छे. केमके आत्मा नित्यमुक्त छे. अविद्याथी बंध प्रतीत थाय छे. जे कालमां ज्ञान थाय छे ते ज कालमां अविद्याकृत बंधभ्रम नष्ट थाय छे. ज्ञान थयेथी पुनः बंधभ्रान्ति थाय नहि. शरीरसहित(पुरुष)ने बंधभ्रमनो अभाव ज जीवन्मुक्ति[२१४] कहेवाय छे. देहादिकोनी प्रवृत्तिमां तथा निवृत्तिमां ज्ञानीने बंधभ्रान्ति आत्मामां थाय नहि. एथी बाह्यप्रवृत्तिएकरी पण जीवन्मुक्ति दूर थाय नहि. तोपण बाह्यप्रवृत्तिमां जीवन्मुक्तने विलक्षण सुख थाय नहि. एकाग्रतारूप अंतःकरण(ना)परिणामथी सुख थाय छे. ते एकाग्रता(रूप अन्तःकरणनो)परिणाम बाह्यप्रवृत्तिमां थाय नहि. ए रीतिए प्रारब्धभेदथी ज्ञानी पुरुषोना व्यवहार नाना प्रकारना छे. परंतु जेनुं प्रारब्ध अधिक प्रवृत्तिनो हेतु होय छे तेनुं मंदप्रारब्ध[२१५] कहेवाय छे.

---

२१४. द्वैतनुं. अदर्शन नहि, किन्तु अज्ञाननिवृत्ति ज जीवन्मुक्ति कहेवाय छे.

२१५. जेम सर्व(शत्रुओनो संहार करीने) पृथिवीना राज्यने प्राप्त थयेला पुरुषने रोगनो हेतु प्रारब्ध,-भोगनुं विरोधि होवाथी,-मंद कहेवाय छे; तेम अविद्या (अने) तत्कार्यरूप शत्रुओनो संहार करीने ब्रह्मभावने प्राप्त थयेला ज्ञानीने अधिकप्रवृत्तिनो हेतु प्रारब्ध, (विलक्षण सुखप्रद) एकाग्रतानुं विरोधि होवाथी, मंद कहेवाय छे. इहां 'मंद' पदनो 'निकृष्ट' अर्थ छे, 'शिथिल' अर्थ नथी. केमके जेम उक्त राजा शिथिल प्रारब्धजन्य सुसाध्य वा कष्टसाध्य रोगनी तो औषधादिक प्रयत्नवडे निवृत्ति करे छे, परंतु तीव्रतर प्रारब्धजन्य असाध्य रोगनी निवृत्ति करवी ए ते राजाएकरी अशक्य छे. तेम शिथिल प्रारब्धना फलरूप प्रवृत्तिने तो ज्ञानी, जीवन्मुक्तिना सुखअर्थे, वासना-रागद्वेष-ना निवारणरूप प्रयत्नवडे दूर करे छे. परंतु तीव्रतर प्रारब्धनी फलरूपा प्रवृत्ति ते ज्ञानीएकरी

केमके अधिकप्रवृत्ति एकाग्रतानी विरोधिनी छे. अने एकाग्रता विना निरुपाधिक आनंद प्रतीत थाय नहि. ए समाधिनिरूपणमां कह्युं छे.

४७७. अने जे पूर्वे (अंक ४०६ विषे) कह्युंः-'ज्ञानवानने सर्व 'अनात्मपदार्थोमां मिथ्याबुद्धि होय छे; राग थाय नहि, एथी 'प्रवृत्ति संभवे नहि.'

ते शंका पण बने नहि. केमके जेम देहविषे मिथ्याबुद्धि पण ज्ञानीने होय छे, तो पण देहने अनुकूल जे भिक्षादिक छे तेओमां केवल प्रारब्धेकरी प्रवृत्ति थाय छेः तेम जेनुं अधिक भोगनुं प्रारब्ध होय ते ज्ञानीनी अधिकप्रवृत्ति पण थाय छे; जेम (मायावी) बाजीगरना तमाशाने मिथ्या जाणीने सर्व लोकोनी प्रवृत्ति थाय छे, तेम सर्व पदार्थोमां ज्ञानीने मिथ्याबुद्धि थयेथी पण प्रवृत्ति संभवे छे.

४७८. अने जो आम कहेः-'जेने जे पदार्थमां दोषदृष्टि 'होय, तेने विषे ते पुरुषनी प्रवृत्ति थाय नहि. ज्ञानीने अना- 'त्मपदार्थोमां दोषदृष्टि होय छे, राग होय नहि, एथी प्रवृत्ति 'संभवे नहि.'

ते पण बने नहि. केमके, जे अपथ्यसेवनमां, रोगीए अन्वय-व्यतिरेकथी दोषनिश्चय कर्यो छे, ते अपथ्यसेवनमां प्रारब्धेकरी जेम रोगीनी प्रवृत्ति थाय छे, तेम प्रारब्धेकरी ज्ञानीनी सर्व व्यवहारमां प्रवृत्ति, दोषदृष्टि सते पण, संभवे छे. ए रीतिए ज्ञानीना व्यवहारनो नियम नथी. ए पक्ष विद्यारण्यस्वामिए विस्तारथी (पंचदशीना) तृप्तिदीपमां (१४३ थी

निवारण करवाने अशक्य छे. ए रीतिए व्यवस्था कर्ये प्रारब्ध अने पुरुषार्थ उभय सफल थाय छे. एथी अधिकप्रवृत्तिनो हेतु प्रारब्ध शिथिल नथी, किन्तु 'निकृष्ट' छे, एथी 'मंद' कहेवाय छे. पं. पी. पु.

१६२. पर्यंत श्लोकेकरी) प्रतिपादन कर्यो छे एथी तत्त्वदृष्टिनो व्यवहार नियमरहित छे. समाधिरूप नियमनो विधि सांभलीने तत्त्वदृष्टि हसे छे. १६.

(तत्त्वदृष्टिनो देशादिक अपेक्षारहित देहपात.)

४७९. दुहो.

एम भ्रमण कइं काल करी, तत्त्वदृष्टि सुज्ञान;
भोगव्युं निज प्रारब्ध तव, थया लीन ते प्राण. १७.

टीकाः-प्रारब्धभोगथी अनंतर ज्ञानीना प्राण गमन करे नहि, एथी तत्त्वदृष्टिना प्राण लीन थया ए कह्युं. अने ज्ञानीना शरीरत्यागमां कालविशेषनी अपेक्षा नथी. उत्तरायणमां अथवा दक्षिणायनमां, देहपात थाय, सर्वथा (ते) मुक्त छे. तेम देशविशेषनी पण अपेक्षा नथी. काशीआदिक पवित्र देशमां अथवा अत्यंत मलिन देशमां (गमे त्यां) ज्ञानीनो देहपात थाय (पण ज्ञानी) सर्वथा मुक्त छे. तेम आसनविशेषनी अपेक्षा नथी. पृथिवीमां शव आसनथी अथवा सिद्धआसनथी देहपात थाय, तेम (कां तो) सावधान ब्रह्मचिन्तन करतां, अथवा रोगव्याकुल हाहा शब्द पोकारतां, देहपात थाय (पण ज्ञानी) सर्वथा मुक्त छे, केमके-जे कालमां **ज्ञानेकरी अज्ञान निवृत्ति थयुं ते ज कालमां ज्ञानी** मुक्त छे. एथी ज्ञानीने विदेहमोक्षमां देशकाल आसनादिकोनी अपेक्षा नथी, जेम ज्ञानीने देहपातमां देशकालादि-

---

२१६. इहां आ सांप्रदायिक वचनो छेः—

तीर्थे वा श्वपचगृहे नष्टस्मृतिर्वा परित्यजन देहं ।
ज्ञानफलकालसमये कैवल्यं याति विगतशोकः ॥
रथ्यान्तरे मूत्रपुरीषमध्ये चांडालगेहेऽथवा श्मशाने ।
कृतप्रयत्नोऽप्यकृतप्रयत्नो देहावसाने लभते च मोक्षम् ॥
देहः पततु वा काश्यां श्वपचस्य गृहेऽथवा ।
ज्ञानसंप्राप्तिसमये सर्वथा मुक्त एव सः ॥

कोनी अपेक्षा नथी, तेम ज्ञानना निमित्त श्रवणमां पण देश-कालआसनादिकोनी अपेक्षा नथी.

४८०. अने उपासकने देशकालादिकोनी अपेक्षा छे. यद्यपि भीष्मादिक ज्ञानी कह्या छे, अने भीष्मे उत्तरायण विना प्राणत्याग कर्यो नथी; तथापि भीष्मादिक अधिकारी पुरुष छे. एथी उपासकोना उपदेशअर्थे तेओए कालविशेषनी प्रतीक्षा करी छे (व्हाट जोई छे.) अने वसिष्ठ भीष्मादिक अधिकारी छे एथी ज तेओने अनेक जन्म थया छे. केमके अधिकारी पुरुषोनुं एक कल्पपर्यंत प्रारब्ध होय छे. कल्पना अंत विना विदेहमोक्ष थाय नहि. अने कल्पना अन्तरमां तेओने इच्छावृत्तथी नानाशरीर थाय छे. तथापि आत्मस्वरूपविषे तेओने जन्ममरणभ्रान्ति थाय नहि, एथी (तेओ) जीवन्मुक्त छे. ते अधिकारी पुरुषोना व्यवहार संपूर्ण अन्यना उपदेशना निमित्त छे. अने अन्यज्ञानीना व्यवहारमां कोई नियम नथी. ए अभिप्रायथी तत्त्वदृष्टिना देहपातनुं देशकालआसनादिक कंई कह्युं नहि.

४८१. (अदृष्टिनो देशादिक अपेक्षासहित देहपात.)

दुहा.

विजो शिष्य अदृष्ट ते गंगातट शुभ स्थान;
देशैकान्त पवित्र अति, कर्युं ब्रह्मनुं ध्यान. १८.
शास्त्ररीते त्यज्यो देहने, पूर्व कह्यो जे राह;
ज ईमिल्यो ते ब्रह्मसह, पाम्यो अधिक उत्साह. १९.

टीकाः—जेम ज्ञानीने देशकालनी अपेक्षा नथी, तेथी विपरीत, उपासकने (अपेक्षा) जाणवी. उत्तम देशमां, उत्तम उत्तरायणादिक कालमां उपासक शरीर त्यजे त्यारे उपासनानुं फल थाय. अने ज्ञानीने मरणसमये सावधानताथी ज्ञेयनी

स्मृतिनी अपेक्षा नथी. उपासकने मरणसमये ध्येयना स्वरूपनी स्मृतिनी अपेक्षा छे. जे ध्येयनुं पूर्वे ध्यान कर्युं छे, ते ध्येयनी स्मृति मरणसमये थाय, त्यारे उपासनानुं फल थाय छे. जेम ध्येयनी स्मृति जोइये, तेम ध्येयब्रह्मनी प्राप्तिनो जे मार्ग पंचमतरंगमां कह्यो छे, तेनी पण स्मृति जोइये. केमके मार्गचिन्तन पण उपासनानुं अंग छे. अने ज्ञाननिमित्त श्रवणमां देशकालआसननी अपेक्षा नथी. ध्यानमां उत्तमदेश, निरंतरकाल, सिद्धादिक आसननी अपेक्षा छे. एथी अदृष्टिने उत्तम देश, गंगातीरमां स्थिति, अने मरणसमये पण योगशास्त्ररीतिए देहपात कह्यो.

४८२. (तर्कदृष्टिनो निश्चय-सर्व शास्त्रोने ब्रह्मज्ञाननी हेतुता.)

दुहा.

तर्कदृष्टि त्रीजे चली, लई गुरुमुख उपदेश,
अष्टादश प्रस्थानमां कर्युं अवगाहन* वेश. २०.
यावत् वाणी वैखरी तेने अले पीछान,
हेतु मुक्तिनो ज्ञान लखी अद्वय निश्चय ज्ञान. २१.

टीकाः-तर्कदृष्टिनामे त्रीजे, गुरुद्वारा उपदेशने श्रवण करीने, सांभळेला अर्थमां अन्य शास्त्रोनो विरोध दूर करवाने, सर्व शास्त्रोना अभिप्राय विचारीने, आ निश्चय कर्योः-सकल शास्त्रोनुं परमप्रयोजन मोक्ष छे. मोक्षनुं साधन ज्ञान छे, ते ज्ञान अद्वयनिश्चयरूप छे, भेदनिश्चय यथार्थ ज्ञान नथी. (अने) सर्व शास्त्र साक्षात् अथवा परंपराथी ब्रह्मज्ञाननो हेतु छे.

यद्यपि संस्कृत वैखरीवाणीनां अष्टादश प्रस्थान छे. तेओमां कोई कर्मने प्रतिपादन करे छे, कोई विषयसुखना उपायोने

---

* स्नान, अन्तःप्रवेश.

प्रतिपादन करे छे, कोई ब्रह्मभिन्न देवोनी उपासनाने बोधन करे छे. तेम ज्ञाननिमित्त जे न्यायसांख्यआदि शास्त्र छे, ते पण भेदज्ञानने ज यथार्थ ज्ञान कहे छे. यथी सर्व(शास्त्रो)ने अद्वैतब्रह्मनी बोधकता बने नहि. तथापि सकल शास्त्रोना कर्ता (ऋषिमुनि) सर्वज्ञ थया छे, अने कृपालु थया छे. यथी तेओनां करेलां मूलसूत्रोनो तो वेदने अनुसार ज अर्थ छे. परंतु तेमना व्याख्यानकर्ता भ्रान्त थया छे. (तेओए) मूल-सूत्रकारोना अभिप्रायथी विलक्षण अर्थ कर्या छे ते वेदथी विरुद्ध ते सूत्रोनो अर्थ नथी, किन्तु सर्व शास्त्रनो वेदानुसारी अर्थ छे. तर्कदृष्टिए उत्तम संस्कारथी ए निश्चय कर्यो.

४८३. (विद्यानां अष्टादश प्रस्थान.)

विद्यानां अष्टादश प्रस्थान (मार्ग) आ छेः चार वेद, चार उपवेद, षट्‌ वेदनां अंग, (चार उपांग=) पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र; ए रीतिए वैखरीवाणीरूप विद्याना अढार भेद छे, तेओने प्रस्थान कहे छे.

४८४ (चार वेद अने तेओनुं ब्रह्मज्ञानमां तात्पर्य.)

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, ए चार वेद छे. तेओमां केटलांक वचन ज्ञेय ब्रह्मने बोधन करे छे; केटलांक ध्येय(ब्रह्म)ने बोधन करे छे; अने शेष कर्मने बोधन करे छे. जे कर्मनां बोधक वेदवचन छे, तेओनुं पण अंतःकरणशुद्धि-द्वारा ज्ञान ज प्रयोजन छे. अने प्रवृत्तिमां कोई वेदवचननो अभिप्राय नथी, किन्तु निषिद्ध स्वाभाविक प्रवृत्तिथी रोक-वामां अभिप्राय छे. यथी अभिचारादिक कर्मनो प्रतिपादक जे अथर्ववेद छे, तेनुं पण निवृत्तिमां तात्पर्य छे. जो द्वेषथी

२१७. उपदेश-उपाय. जेम श्रुतिस्मृतिन्यायप्रदर्शक उपनिषद् गीता-शारीरकसूत्ररूपत्रयभाष्यरूप प्रस्थानत्रय.

शत्रु मारवामां प्रवृत्त होय तो गर(विष)दाने अथवा अग्निदाहे शत्रुने मारे नहि, ए सारु अभिचारकर्म-श्येनयागादिक-कह्यां छे.[शत्रुमारणना निमित्त जे कर्म ते 'अभिचार' कहेवाय छे. एवो श्येननामक यज्ञ छे.] श्येनयागनुं बोधक जे वेदवचन छे, तेनो आ अर्थ नथीः-'शत्रुमारणकामनावालो श्येनयागमां प्रवृत्त थाय,' किन्तु शत्रु मारवानी जेने कामना थाय ते श्येनयागथी भिन्न जे गरदानादिक शत्रु मारवाना उपाय छे, तेओमां प्रवृत्त थाय नहि. ए रीतिए द्वेषथी प्राप्त जे गरदानादिक तेओथी निवृत्तिमां श्येनयागबोधक वचननो अभिप्राय छे, प्रवृत्तिमां नथी. केमके, प्रवृत्ति द्वेषथी प्राप्त छे. जे अन्यथी प्राप्त होय तेमां वाक्यनो अभिप्राय होय नहि. ए रीतिए सर्व अथर्ववेदनुं निवृत्तिमां तात्पर्य छे. अने त्रणे वेदमां कर्मबोधक वाक्यनो, अंतःकरणशुद्धिद्वारा, ज्ञानमां उपयोग स्पष्ट छे.

४८५. (चार उपवेद-अने तेओनुं ब्रह्मज्ञानमां तात्पर्य.)

तेम चार उपवेद छे. आयुर्वेद १, धनुर्वेद २, गान्धर्ववेद ३, अर्थवेद ४. तेओमां आयुर्वेदना कर्ता ब्रह्मा, प्रजापति, अश्विनीकुमार, धन्वंतरि आदिक छे. चरक, वाग्भट्टादिक चिकित्साशास्त्र आयुर्वेद छे. अने वात्स्यायनकृत कामशास्त्र पण आयुर्वेदना अंतर्भूत छे. केमके कामशास्त्रनो विषय-वाजीकरण, स्तंभनादिक पण-चरकादिकोए कथन कर्यो छे.ते आयुर्वेदनो वैराग्यमां ज अभिप्राय छे. केमके, आयुर्वेदनी रीतिए रोगादिकोनी निवृत्ति थयाथी पण, पुनः रोगादिक उत्पन्न थाय छे. एथी लौकिक उपाय तुच्छ छे. ए अर्थमां आयुर्वेदनो अभिप्राय छे. अने औषधदानादिकोथी पुण्य थइने अंतःकरणनी शुद्धिद्वारा पण ज्ञानमां उपयोग छे.

तेम विश्वामित्रकृत धनुर्वेदमां आयुध निरूपण कर्यां छे. आयुध चार प्रकारनां छेः-मुक्त १, अमुक्त २, मुक्तामुक्त ३, यंत्रमुक्त ४. [चक्रादिक हाथवते फेंकिये ते मुक्त कहेवाय छे. खड्गादिक अमुक्त कहेवाय छे. बरछी आदिक मुक्तामुक्त कहेवाय छे. शर, गोळी आदिक यंत्रमुक्त कहेवाय छे.] ए रीतिए चार प्रकारनां आयुध छे. तेओमां मुक्त आयुधने अस्त्र कहे छे. अमुक्तने शस्त्र कहे छे. ए चारे प्रकारनां आयुधोना, ब्रह्मा, विष्णु, पशुपति, प्रजापति, अग्नि, वरुण, आदिक देवता (अने) मंत्र कह्या छे. (ए आयुधोना) क्षत्रियकुमार अधिकारी कह्या छे. अने तेओना अनुसारी ब्राह्मणादिक पण अधिकारी कह्या छे. अने तेओना चार भेद कह्या छेः पदाति १, रथारूढ २, अश्वारूढ ३, गजारूढ ४. अने युद्धमां शकुनमंगल कह्यां छे. एटलो अर्थ धनुर्वेदना प्रथम पादमां कह्यो छे. अने आचार्यनां लक्षण तथा आचार्यथी शस्त्रोनां ग्रहणनी रीति धनुर्वेदना द्वितीय पादमां कही छे. अने गुरुसंप्रदायथी प्राप्त थयेलां शस्त्रोनो अभ्यास तथा मंत्रसिद्धि (अने) देवतासिद्धिनो प्रकार तृतीय पादमां कह्यो छे. सिद्ध थया मंत्रोनो प्रयोग चतुर्थ पादमां कह्यो छे. एटलो अर्थ धनुर्वेदमां छे. ते ब्रह्मा प्रजापति आदिकोथी विश्वामित्रने प्राप्त थयो छे. (अने) तेणे प्र क ट कर्यो छे, अने विश्वामित्रथी धनुर्वेद उ त्प न्न नथी थयो. दुष्ट चौरादिकोथी प्रजापालन क्षत्रियनो धर्मबोधक धनुर्वेद छे. एथी तेनो पण, अंतःकरणशुद्धि करीने, ज्ञानद्वारा, मोक्षमां ज अभिप्राय छे.

गान्धर्ववेद भरते प्रकट कर्यो छे. तेमां स्वर ताल मूर्छनासहित, गीत, नृत्य, वाद्यनुं निरूपण विस्तारवते कर्युं छे. देवतानुं आराधन, निर्विकल्प समाधिनी सिद्धि, गान्धर्व

वेदनुं प्रयोजन कह्युं छे. एथी तेनुं पण, अंतःकरणनी एकाग्रता करीने, ज्ञानद्वारा, मोक्ष ज प्रयोजन छे.

तेम अर्थवेद पण नानाप्रकारनो छे. नीतिशास्त्र, अश्वशास्त्र, शिल्पशास्त्र, सूपकार (पाक) शास्त्र, आदि लईने धनप्राप्तिना उपायबोधक शास्त्र अर्थवेद कहेवाय छे. धनप्राप्तिना सकल उपायोमां निपुण पुरुषने पण भाग्य विना धननी प्राप्ति थाय नहि. एथी अर्थवेदनुं पण वैराग्यमां ज तात्पर्य छे.

४८६. (चार वेदनां षडंगोनुं अर्थसहित प्रयोजन.)

चार वेदोनां छ अंग छेः शिक्षा १, कल्प २, व्याकरण ३, निरुक्त ४, ज्योतिष ५, (छंदस् किंवा) पिंगल ६. ए छ वेदनां उपयोगी होवाथी वेदनां अंग कहेवाय छे.

तेओमां शिक्षाना कर्ता पाणिनि छे. वेदना शब्दोमां अक्षरोना स्थाननुं ज्ञान, अने उदात्त, अनुदात्त, स्वरितनुं ज्ञान, शिक्षाथी थाय छे. वेदना व्याख्यानरूप जे अनेक प्रतिशाखा नामे ग्रंथो छे, ते पण शिक्षाना अंतर्भूत छे.

तेम वेदबोधित कर्मना अनुष्ठाननी रीति कल्पसूत्रोथी जाणी जाय छे. यज्ञ करावनारा ब्राह्मण ऋत्विक् कहेवाय छे. तेओमां भिन्न भिन्न करवायोग्य जे कर्म तेओना प्रकारनां बोधक कल्पसूत्र छे. ते कल्पसूत्रना कर्ता कात्यायन आश्वलायनादि मुनि छे. एथी कल्पसूत्र पण वेदनां उपयोगी होवाथी वेदनां अंग छे.

तेम व्याकरणथी वेदना शब्दोनी शुद्धतानुं ज्ञान थाय छे. ते व्याकरण सूत्ररूप अष्टाध्यायी पाणिनि नामे मुनिए कर्युं छे. कात्यायन अने पतंजलिए, ते सूत्रोनां व्याख्यानरूप वार्तिक अने भाष्य कर्यां छे. अन्य जे व्याकरणो छे तेओमां

वेदना शब्दोनो विचार नथी, तेथी पुराणादिकोमां तो उपयोगि छे, परंतु वेदनां उपयोगि नथी. अने पाणिनिकृत व्याकरण वेदना शब्दोनी पण सिद्धि करे छे; एथी वेदनुं अंग छे.

तेम यास्कनामे मुनिए त्रयोदशअध्यायरूप **निरुक्त** कर्युं छे. तेमां वेदना मंत्रोमां अप्रसिद्ध पदोना अर्थबोधना निमित्त नाम निरूपण कर्यां छे. एथी वैदिक अप्रसिद्ध पदोना अर्थज्ञानमां उपयोगि होवाथी, निरुक्त पण वेदनुं अंग छे. संज्ञानो बोधक जे पंचाध्यायरूप **निघंटु** नामे ग्रंथ **यास्के** कर्यो छे, ते पण निरुक्तना अंतर्भूत छे. अमरसिंह-हेमादिकोए करेला जे संज्ञाना बोधक अन्य कोश छे, ते सर्व निरुक्तना अंतर्भूत छे.

तेम **पिंगलमुनिए** सूत्रअष्टअध्यायथी छंद निरूपण कर्या छे. तेओथी वैदिकगायत्री आदिक छंदोनुं ज्ञान थाय छे, एथी पिंगलकृत सूत्र पण वेदनां अंग छे.

तेम **आदित्य, गर्गादिकृत ज्योतिष्** पण वेदनुं अंग छे. केमके, वैदिककर्मना आरंभमां काळनुं ज्ञान जोइये. ते काळज्ञान ज्योतिष्थी थाय छे, एथी वेदनुं अंग छे.

ए षट् जे वेदनां अंग छे तेओमांथी वेदमां उपयोगी जे अर्थ नथी तेनुं प्रसंगथी निरूपण कर्युं छे, प्रधानताए नथी कर्युं. एथी वेदनुं जे प्रयोजन छे, ते ज षड् अंगोनुं प्रयोजन छे, पृथक् नथी.

४८७. **पुराण अष्टादश** (अढार) छे. व्यास नाम मुनिए कर्यां छे. तेओनां आ नाम छेः-ब्रह्म १, पद्म २, विष्णु ३, शिव ४, भागवत ५, नारदीय ६, मार्कंडेय ७, अग्नि ८, भविष्य ९, ब्रह्मवैवर्त्त १०, लिंग ११, वराह १२,

स्कंद १३, वामन १४, कूर्म १५, मत्स्य १६, गरुड १७, ब्रह्माण्ड १८. ए अष्टादश पुराण व्यासे कर्यां छे. तेम कालीपुराणादि अन्य बहु छे, ते **उपपुराण** छे. कोई उपपुराण पण अष्टादश कहे छे, ते नियम नथी. उपपुराण बहु छे. **भागवत** बे छेः–एक तो वैष्णव भागवत छे, अने बीजुं भगवतीभागवत छे. बेनी समानसंख्या-अष्टादश सहस्र-छे. अने बन्नेना द्वादश स्कंध छे. परंतु तेओमां एक पुराण छे, अने बीजुं उपपुराण छे. बन्ने व्यासकृत छे, एथी बन्ने प्रमाण छे. जेम व्यासे पुराण कर्यां छे, तेम केटलांक उपपुराण पण व्यासे कर्यां छे. केटलांक उपपुराण पराशर आदि अन्य सर्वज्ञ मुनिओए कर्यां छे. एथी उपपुराण पण प्रमाण छे. जे उपनिषद्नो अर्थ छे, ते ज उपपुराणसहित पुराणनो अर्थ छे. ए वार्ता आगळ (अंक ५१० थी ५१७ पर्यन्त) प्रतिपादन करीशुं.

४८८. पंच अध्यायरूप **न्यायसूत्र** गौतमे कर्यां छे. तेओमां युक्ति प्रधान छे. युक्तिचिन्तनथी पुरुषनी तीव्रबुद्धि थाय, त्यारे मनन करवाविषे समर्थ थाय छे. एथी युक्तिप्रधान न्यायसूत्रोनुं पण मननद्वारा वेदान्तजन्य ज्ञान ज फल छे. अने कणाद नाम मुनिए दश अध्यायरूप **वैशेषिकसूत्र** कर्यां छे; तेओनो पण न्यायमां अन्तर्भाव छे.

४८९. तेम **मीमांसाना** बे भेद छेः–एक धर्ममीमांसा (किंवा कर्ममीमांसा) अने बीजी ब्रह्ममीमांसा. धर्ममीमांसाने **पूर्वमीमांसा** कहे छे अने ब्रह्ममीमांसाने **उत्तरमीमांसा** कहे छे. **धर्ममीमांसाना** द्वादश अध्याय छे. जैमिनि नामे तेना कर्ता छे. कर्मअनुष्ठाननी रीति तेमां प्रतिपादन करी छे. एथी विधिपूर्वक कर्ममां प्रवृत्ति ए धर्ममीमांसानुं फल छे. कर्ममां

प्रवृत्तिपकरी अंतःकरणशुद्धि, तेपेकरी ज्ञान, अने ज्ञानथी मोक्ष. ए रीतिए धर्ममीमांसानुं मोक्ष फल छे. अने धर्ममीमांसाना द्वादश अध्यायोमां पोतामां अर्थनो भेद छे. ते कठिन छे एथी लख्यो नथी. अने **संकर्षणकांड** पंच अध्यायरूप जैमिनिए कर्यो छे, तेविषे उपासना कही छे. तेनो पण धर्ममीमांसामां अंतर्भाव छे. तेम **ब्रह्ममीमांसाना** चार अध्याय छे. तेना कर्ता **व्यास** छे. एक एक अध्यायना चार चार पाद छे. त्यां प्रथम (समन्वय) अध्यायमां आ अर्थ छेः-सर्व उपनिषद्वाक्य, ब्रह्मने प्रतिपादन करे छे; अन्यने नहि. अने उपनिषद्वाक्यनो, मंदबुद्धि पुरुषने पोतामां विरोध प्रतीत थाय छे, तेनो परिहार द्वितीय (अविरोध) अध्यायमां कह्यो छे. अने ज्ञान तथा उपासनानां साधननो विचार तृतीय (साधन) अध्यायमां कह्यो छे. ज्ञानउपासनानुं फल चतुर्थ (फल)अध्यायमां कह्युं छे. ए **ब्रह्ममीमांसारूप शारीरकशास्त्र** ज सर्व शास्त्रमां **प्रधान** छे. मुमुक्षुने ए ज उपादेय छे. तेना **व्याख्यानरूप** ग्रंथ यद्यपि नाना छे, तथापि **श्रीशंकरकृत भाष्यरूप** व्याख्यान ज मुमुक्षुने श्रोतव्य छे. तेनुं ज्ञानद्वारा मोक्षफल स्पष्ट ज छे.

४९०. तेम **मनु, याज्ञवल्क्य, विष्णु, यम, अंगिरा, वसिष्ट, दक्ष, संवर्त, शातातप, पराशर, गौतम, शंख, लिखित, हारीत, आपस्तंब, शुक्र, बृहस्पति, व्यास, कात्यायन, देवल, नारद** इत्यादिक सर्वज्ञ थया छे, तेओए वेदने अनुसार **स्मृति** नाम ग्रंथो कर्या छे. ते **धर्मशास्त्र**

२१८. ब्रह्मसूत्रनां नामान्तरः—भिक्षुसूत्र, उत्तरमीमांसा, बादरायणसूत्र, ब्रह्ममीमांसा, वेदान्तसूत्र, व्यासमूत्र, शारीरकसूत्र.

ए उपर व्याख्यान ग्रंथो बहु छे. तेमांथी बहु प्रसिद्धनां नामः—

१. ब्रह्मसूत्र

२. शंकरभाष्य.

- ३. पञ्चपादिका (पद्मपादाचार्यकृत)
  - ४. विवरण(१) (प्रकाशात्मयतिकृत)
    - ५. तत्त्वदीपन(१) (अखण्डानन्दमुनिकृत)
    - भावप्रकाशिका(२) (नृसिंहाश्रमकृता)
  - दर्पण(२) (अमलानन्दकृत)
  - टीका(३) (आनन्दपूर्णविद्यासागरकृत)
- ३. भामती (वाचस्पतिमिश्रकृता)
  - ४. कल्पतरु (अमलानन्दकृत)
    - ५. परिमल (अप्पयदीक्षितकृत)

२. शंकरभाष्य उपरि अन्यटीकाओ

[पञ्चपादिका (१). भामती (२) पूर्वे उक्ता.]

शारीरकभाष्यन्यायनिर्णय (आनन्दगिरिकृत) ३. ब्रह्मविद्याभरण (अद्वैतानन्दकृत) ४ रत्नप्रभा (रामानन्दसरस्वतीकृता) ५. भाष्यदीपिका (जगन्नाथयतिकृता) ६. इत्यादि.

२. शंकरभाष्य उपरि वार्तिक

भिक्षुसूत्रभाष्यवार्तिक (बालकृष्णानन्दकृत)

१. ब्रह्मसूत्र उपरि वृत्तिओ

भगवान् उपवर्षकृतावृत्ति (१). ब्रह्मामृतवर्षिणी (रामानन्दसरस्वतीकृता) (२) ब्रह्मसूत्रवृत्ति (शंकरानन्दकृता) (३) ब्रह्मसूत्रार्थप्रकाशिका (ज्ञानेन्द्रस्वामिकृता) (४). सुबोधिनी (गंगाधरकृता) (५). मिताक्षरा (अन्नंभट्टकृता) (६). विद्वज्जनमनोरमा (रंगनाथकृता) (७). रामंजगा (अनूपनारायणकृता) (८) ब्रह्मसूत्रतात्पर्य (भैरवदीक्षित तिलककृत) (९) ब्रह्मसूत्रवृत्ति (रामभट्टकृता) (१०). भवदेवमिश्रकृता वृत्ति (११) दिग्दर्शिनी (१२). शंकरपादभूषण (रघुनाथशास्त्री पर्वतेकृत) (१३). नारायणभट्टकृता वृत्ति (१४) इत्यादि.

कहेवाय छे. तेमां वर्ण (अने) आश्रमना, कायिक, वाचिक, मानसिक, धर्म कह्या छे. तेओनु पण अंतःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञान थई मोक्ष ज प्रयोजन छे.

तेम व्यासे **माहाभारत** अने वाल्मिकीए **रामायण** कर्यु छे. तेओनो पण धर्मशास्त्रमां अंतर्भाव छे. अने देवता-आराधनाना निमित्त जे मंत्रशास्त्र छे तेनो पण धर्मशास्त्रमां अन्तर्भाव छे. देवताआराधननु अंत.करणशुद्धि प्रयोजन छे.

४२१. तेम सांख्यशास्त्र, योगशास्त्र, वैष्णवतंत्र, शैवतंत्र, आदिक पण धर्मशास्त्रना अंतर्भूत छे. केमके तेओमां पण मानसधर्म(उपासना)नु निरूपण छे.

त्यां **सांख्यशास्त्र** षडध्यायरूप कपिले कर्युं छे. तेना प्रथम अध्यायमां विषयनिरूपण कर्या छे. द्वितीय अध्यायमां महत्तत्त्व अहंकारादिक प्रधाननां कार्य कह्यां छे. तृतीय अध्यायमां विषयोथी वैराग्य कह्यो छे चोथा अध्यायमां विरक्तोनी आख्यायिका कही छे. पांचमा अध्यायमां परपक्षनुं खंडन कर्यु छे. छट्ठा अध्यायमां सर्व अर्थनो संक्षेपे संग्रह

---

१. ब्रह्मसूत्रना अधिकरण अनुसार रचित ग्रंथो शारीरकमीमांसान्याय संग्रह (प्रकाशात्मयतिकृत) (१) वेदांतनयभूषण (स्वयंप्रकाशानन्दसरस्वतीकृत) (२). वेदांतसूत्रमुक्तावलि (ब्रह्मानंदसरस्वतीकृत)(३) वेदांताधिकरणमाला सटीक (माधवाचार्यकृता) (४). शारीरकन्यायचूडामणि (अप्पय्यदीक्षितकृत) (५). ब्रह्मसूत्रेंदुशेखर (नागोजीभट्टकृता) (६). इत्यादि

१. ब्रह्मसूत्राद्यनुसारी निबंधो

संक्षेपशारीरक (पद्यात्मक) (सर्वज्ञात्ममुनिकृत) (१)

ए उपरि टीकाओ –तत्त्वबोधिनी (नृसिंहाश्रमकृत) (१). स. शा. सारसंग्रह (मधुसूदनसरस्वतीकृत) (२). विद्यामृतवर्षिणी (राघवानन्दसरस्वतीकृता) (३). सर्वार्थप्रकाशिका (रामतीर्थकृता) (४) सिद्धांतदीप विश्ववेदकृता (५).

विवरणप्रमेयसंग्रह (विद्यारण्यकृत) (२). शारीरकरहस्य (श्लोकात्मक) रामतीर्थकृत) (३). इत्यादि.

इत्यादि असंख्य प्रसिद्धाप्रसिद्ध ग्रंथो छे.

कर्यो छे. प्रकृतिपुरुषना विवेकथी पुरुषनुं असंग ज्ञान (ए) सांख्यशास्त्रनुं प्रयोजन छे. तेनुं पण, त्वंपदना लक्ष्यअर्थ शोधनद्वारा, महावाक्यजन्य ज्ञानमां उपयोग होवाथी, मोक्ष ज फल छे.

४९२. तेम **योगशास्त्र** चार पादरूप छे. पतंजलि तेना कर्ता छे. ते **पतंजलि** शेषनो अवतार छे. एक ऋषि संध्या-उपासन करता हता, तेमनी अंजलिमां प्रकट थईने पृथ्वीमां पड्या छे, एथी **पतंजलि** नाम कहेवाय छे. तेणे श री र ना रोगरूपी मलने दूर करवानेसारू **चिकित्सा** ग्रंथ कर्यो छे. अने अशुद्धशब्दना उच्चारणरूपी जे वा णी नो मल छे, तेना नाशसारू **पाणिनि** व्याकरणनुं **भाष्य** कर्युं छे. तेम विक्षेपरूप अं तःक र ण नो मल छे, ते(विक्षेप)ना नाशसारू **योगसूत्र** कर्यां छे. तहिं प्रथमपादमां चित्तवृत्तिना निरोध-रूप समाधि अने तेनां साधन-अभ्यास वैराग्यादिक-कह्यां छे. (तेने स मा धि पाद, वा सि द्ध पा द कहे छे). तेम विक्षिप्त चित्तने समाधिनां साधन-यम, नियम, आसन, प्राणयाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, ए आठ समाधि-नां अंग द्वितीयपादमां कह्यां छे. (तेने सा ध न पा द वा क्रि या पा द कहे छे.) तृतीयपादमां योगनी विभूति कही छे. (तेने वि भू ति पा द कहे छे.) चतुर्थपादमां योगनुं फल मोक्ष कह्यो छे. (तेने कै व ल्य पा द, वा फ ल पा द कहे छे.)

ए रीतिए योगशास्त्र पण ज्ञानसाधन-निदिध्यासन-ना संपादन-द्वारा मोक्षनो हेतु छे. अने शारीरकसूत्रमां जे सांख्य-योगनुं खंडन कर्युं छे, ते तेओमां व्याख्यान जे उपनिषद्-थी विरुद्ध कर्यां छे, तेओनुं खंडन कर्युं छे, सूत्रोनुं नहि. तेम न्यायवैशेषिकनुं खंडन पण विरुद्ध व्याख्याननुं छे.

४९३. तेम नारदे पंचरात्र नामे तत्र कर्यु छे तेमां वासुदेवमां अंतःकरणस्थापन कह्युं छे तेनुं पण अंतःकरणनी स्थिरताद्वारे ज्ञानद्वारा मोक्ष ज फळ छे सर्व वैष्णवग्रंथ पंचरात्रना अन्तर्भूत छे. ते पंचरात्र धर्मशास्त्रना अन्तर्भूत छे तेम पाशुपत तंत्रमां पशुपतिनुं आराधन कह्युं छे तेना कर्ता पशुपति छे तेनुं पण अंतःकरणनी निश्चलताद्वारा मोक्षसाधन ज्ञान फळ छे अन्य जे शैव ग्रंथ छे, ते सर्व पाशुपततंत्रने अंतर्भूत छे तेम गणेश, सूर्य, देवीनी उपासना बोधक ग्रंथोनुं, चित्तनी निश्चलताद्वारा, ज्ञान फळ छे अने सर्वनो धर्मशास्त्रमां अन्तर्भाव छे

४९४ परंतु देवीनी उपासनाना बोधक ग्रंथमां बे संप्रदाय छे एक दक्षिण संप्रदाय, अने बीजो उत्तर संप्रदाय छे. उत्तर संप्रदायने वाममार्ग कहे छे तेओमां दक्षिणसंप्रदायनी रीतिए जे ग्रंथमां देवीनी उपासना छे ते तो धर्मशास्त्रना अंतर्भूत छे अने वाममार्ग जे ग्रंथोमां छे ते धर्मशास्त्रथी विरुद्ध छे, एथी अप्रमाण छे यद्यपि वामतंत्र शिवे कर्युं छे, तथापि सकल शास्त्र अने वेदथी विरुद्ध छे, एथी प्रमाण नहि जेम विष्णुना बुद्धअवतारे नास्तिक ग्रंथ कर्या छे, ते वेदविरुद्ध छे, एथी प्रमाण नथी, तेम शिवकृत वामतंत्र पण अत्यंत विरुद्ध छे, एथी प्रमाण नथी मदिरादिक अत्यंतअशुद्ध पदार्थोनुं तेमां ग्रहण लख्युं छे, अने उत्तम पदार्थोना जे नाम छे, ते ज मलिन पदार्थोना नाम लोकवंचनने निमित्त कहे छे- मदिरानुं नाम तीर्थ, मांसनुं नाम शुद्ध, मदिरापाननुं नाम पद्म, पलांडु(प्याज=डुंगळी)नुं नाम व्यास लसुननुं नाम शुकदेव, मदिराकारी कलालनुं नाम दीक्षित कहे छे तेम वेश्यासेवी (गणिकाने सेव

नार) चर्मकारीआदिक चांडालीसेवीने, प्रयागसेवी, काशी-सेवी कहे छे. अने भैरवीचक्रमां स्थित जे चांडालादिक छे तेओने ब्राह्मण कहे छे; अने अत्यंतव्यभिचारिणीने योगिनी (कहे छे) अने व्यभिचारीने योगी कहे छे. एम अनेक प्रकारे निषिद्ध तेओनो व्यवहार छे. पूजनना समये अनेक दोषवती स्त्रीने उत्तमशक्ति कहे छे. जातिनी चांडाली, अतिव्यभिचारिणी रजस्वला स्त्रीने देवीबुद्धिथी पूजन करे छे. तेनुं उच्छिष्ट मदिरापान करे छे. अने अधिक मदिरापाने-करी जे वमन करी दे, तेने पृथ्वी उपर पडवा देता नथी, अने आचार्यसहित बीजा सावधान भक्षण करे छे. वमनने भैरवी कहे छे. अने स्त्रीनी-मां जीभ लगावीने मंत्रनो जप करे छे. मदिरा १, मांस २, मत्स्य ३, मुद्रा ४, मंत्र ५ (मैथुन,) ए पांच मकारोने भोगमोक्ष निमित्त सेवन करे छे. प्रथमा द्वितीयादिक त्रणे मकारोनो अप्रसिद्ध नामथी व्यवहार करे छे, एथी आदि लईने वामतंत्रनो सकल व्यवहार आ लोकथी अने परलोकथी भ्रष्ट करे छे. ए कारणथी कर्णछेदी योगी अने अवधूत गोसांई, तेम अनेक संन्यासी अने ब्राह्मणादिक वाममार्गने सेवन करे छे, तो पण लोकवेदनिंदित जाणीने गुप्त राखे छे. अधिक शुं कहिये ! ! वामतंत्रनी रीति सांभळीने म्लेच्छने पण रोमाञ्च थई जाय, एवुं निन्दित वामतंत्र छे. सर्वंगी (सर्वभक्षी) जे अ-(भक्ष्य)भक्षण करे छे ते सर्व निन्दित मार्ग वामतंत्रमां कह्या छे. अतिनीच व्यवहार लखवा योग्य नहि. एथी विशेष प्रकार लख्यां नथी. सर्वथा वामतंत्र त्यागवा योग्य छे.

४१५. तेम **नास्तिकमत** पण त्यागवा योग्य छे. नास्तिकना छ भेद छे.-माध्यमिक १, योगाचार २, सौत्रा-

न्तिक ३, वैभाषिक ४, चार्वाक ५, दिगंबर ६. ए छये वेदने प्रमाण नथी मानता. तेओना पोतामां विलक्षण सिद्धान्त छे. माध्यमिक शून्यवादी छे. योगाचारना मतमां सर्व पदार्थ विज्ञानथी भिन्न नथी, विज्ञान ज तत्त्व छे, ते विज्ञान क्षणिक छे. सौत्रान्तिक मतमां विज्ञाननो आकार बाह्यपदार्थविषय विना होय नहि, एथी विज्ञानेकरी बाह्यपदार्थोनुं अनुमान थाय छे; ए रीतिए सौत्रान्तिक मतमां अनुमानप्रमाणना विषय बाह्य पदार्थ छे; प्रत्यक्ष नथी; अने स्थिर नथी; किन्तु सर्व पदार्थ क्षणिक छे. अने वैभाषिक मतमां बाह्यपदार्थ क्षणिक तो छे, परन्तु प्रत्यक्ष प्रमाणना विषय छे. एटलो भेद छे. ए चारे मत सुगतना छे.

चार्वाक मतमां पदार्थ क्षणिक नथी, परंतु तेना मतमां देह आत्मा छे. अने दिगंबर मतमां देह आत्मा नथी; देहथी आत्मा भिन्न छे, परंतु जेटलुं देहनुं परिमाण होय एटलुं आत्मानुं परिमाण छे. ए रीतिए एओनो पोतामां मतनो भेद छे. बीजो पण तेमनी पोतामां मतनी विलक्षणता बहु छे. परंतु सर्व वेदना विरोधी छे, एथी नास्तिक छे. ए कारणथी तेओना मतनुं उपपादन अने खंडन विशेषे करीने लख्युं नथी

४९६. ए रीतिए वाममार्ग अने नास्तिक मतोना ग्रंथ यद्यपि संस्कृतवाणीरूप छे, तथापि वेदबाह्य छे. एथी वेदनां अनुसारी विद्यानां प्रस्थान अष्टादश ज छे. बीजा मम्मट आदिकोए जे साहित्यग्रंथ कर्या छे, तेओनो पण कामशास्त्रमां अन्तर्भाव छे. तेम सकल काव्योनो पण–कोईनो कामशास्त्रमां,–कोईनो धर्मशास्त्रमां,—अन्तर्भाव छे. ए रीतिए अष्टादश विद्यानां प्रस्थान सर्व ब्रह्मज्ञानद्वारा मोक्षना हेतु

छे. कोई साक्षात् ज्ञाननो हेतु छे, कोई परंपराथी ज्ञाननो हेतु छे. तर्कदृष्टिए सकल शास्त्रनो ए अभिप्रोय निश्चय कर्यो. यद्यपि **उत्तरमीमांसा** विना सर्व शास्त्र जिज्ञासुने हेय (त्याज्य) छे; ए **शारीरकमां** सूत्रकार भाष्यकारे प्रतिपादन कर्युं छे, एथी अन्यशास्त्र पण मोक्षनां उपयोगी छे एम कहेवुं संभवे नहि, तथापि सारग्राहिणी दृष्टिवते तर्कदृष्टिए ए सार निश्चय कर्यो.

४९७. (तर्कदृष्टिनो एक विद्वान्‌सह मिलाप.) दुहो.

गुणी प्रसिद्ध विद्वान् वर्से, मिल्यो आप त्यां आवी;
निज निश्चय तेने तहां, दीधो सकल सुणावी. २२.

टीकाः—गुरुद्वारा सांभळेला अर्थमां बुद्धिनी स्थिरताना निमित्त सकल शास्त्रोनो अभिप्राय विचार्यो. तो पण पुनः संदेह थयोः–'जे शास्त्रोनो अभिप्राय में निश्चय कर्यो ते ज छे, अथवा अन्य अभिप्राय छे. केमके तर्कदृष्टि कनिष्ठ अधिकारी कह्यो छे. एथी वारंवार कुतर्कथी संदेह थाय छे. तेनी निवृत्तिअर्थे अन्य विद्वान्‌ना निश्चयसाथे पोताना निश्चयनी एकता करवाने गयो.'

४९८. (ते विद्वान्‌नी अनुमति). दुहो.

तर्कदृष्टिनां वचन सुणी, बोलया ते बुधसंत;
'जे मजने तें ए कह्यो, ते ज मुख्य सिद्धान्त.'

---

२१९. कोई पंडित कहे छे केः—
भक्तिज्ञाने यत्र विष्णोर्यत्र वेदाः परा प्रमा ।
मतानि तानि सर्वाणि जीवोद्धारस्य हेतवः ॥
जे (मतो) विषे विष्णु(व्यापक परमात्मा)नी भक्ति वा ज्ञान छे अने जेविषे वेदो परम प्रमाण छे, ते सर्व मतो (साक्षात् किंवा परंपराए) जीवना उद्धारना हेतुओ छे. पं. पी. पु.

नशाडी संशय सकल इम, लख्यो ब्रह्म अपरोक्ष;
जगत् जाण्युं सौ असत् जम, तेम बंध ने मोक्ष. २४.

(ज्ञानीने इच्छासंबंधमां अभिप्राय.)

शेष रह्या प्रारब्धथी, इच्छा उपजी एह:–
जई तत्काल ज देखिये, जननीजनकयुत गेह. २५.

टीकाः–'ज्ञानीना सकल व्यवहार अज्ञानीनी पेठे प्रारब्धे॰ करी थाय छे.' ए पूर्वे कह्युं छे, पथी इच्छा संभवे छे. अने कहिं शास्त्रमां आवुं लख्युं छेः–'ज्ञानीने इच्छा थाय नहि.' तेनो आ अभिप्राय नथीः–ज्ञानीनुं अंतःकरण पदार्थनी इच्छा-रूप परिणामने प्राप्त थाय नहि.

केमके, अंतःकरणना इच्छादिक सहज धर्म छे. अने अंतः॰करण यद्यपि भूतोना सत्त्वगुणनुं कार्य कह्युं छे, तथापि रजोगुणतमोगुणसहित सत्त्वगुणनुं कार्य छे. केवल सत्त्वगुण-नुं नहि. केवल सत्त्वगुणनुं कार्य होय तो अंतःकरणनो चलस्वभाव नहि थवो जोइए. तेम राजसीवृत्ति–कामक्रोधा॰दिक, अने मूढतादिक तामसीवृत्ति कोई अंतःकरणनी नहि थई जोइए. (पण ते थाय छे.) पथी केवल सत्त्वगुणनुं अंतःकरण कार्य नथी, किन्तु अ प्र धा न रजोगुणतमोगुणसहित प्र धा न सत्त्वगुणवाळा भूतोथी अंतःकरण उपजे छे. पथी अंतःकरणमां त्रण गुण रह्या छे. ते त्रणे गुण पण पुरुषोनां जेटलां अंतःकरण छे, तेओमां सम नथी, किन्तु न्यून अधिक छे. पथी गुणोनी न्यूनता अधिकतापकरी सर्वना विलक्षण स्वभाव छे, ए रीतिए त्रणे गुणनुं कार्य अंतःकरण छे.

ज्यांसुधी अंतःकरण रहे त्यांसुधी रजोगुणना परिणाम-रूप इच्छानो अभाव बने नहि. पथी 'ज्ञानीने इच्छा थाय नहि' तेनो आ अभिप्राय छेः–अज्ञानी अने ज्ञानी बन्नेने इच्छा

तो समान थाय छे. परंतु अज्ञानी तो इच्छादिक आत्माना धर्म जाणे छे; अने ज्ञानीने जे कालमां इच्छादि थाय छे ते कालमां पण, इच्छादिकने आ त्मा ना धर्म (छे एम) जाणे नहि. किन्तु, काम, संकल्प, संदेह, राग, द्वेष, श्रद्धा, भय, लज्जा, इच्छादिक, अंतःकरणनां परिणाम छे, एथी अंतःकरणना धर्म (छे एम) जाणे छे. ए रीतिए इच्छादिक थाय पण छे, (किन्तु) इच्छादिक आ त्मा ना धर्म (छे एम) ज्ञानीने प्रतीत थाय नहि. एथी ज्ञानीमां इच्छानो अभाव कह्यो छे. तेम मन, वाणी, तनुवते जे व्यवहार ज्ञानी करे ते सर्व (व्यवहार) ज्ञानीने आत्मामां प्रतीत थाय नहि. किन्तु सर्व क्रिया मन वाणी तनुमां छे, अने 'आत्मा असंग छे.'–ए ज्ञानीनो निश्चय छे. एथी सर्व व्यवहार करतां पण ज्ञानी अकर्ता छे. ए ज कारणथी श्रुतिमां आ कह्युं छेः–'ज्ञानथी उत्तर 'कर्यां जे वर्तमान शरीरमां शुभ-अशुभकर्म तेओनां फल-पुण्य-'पापनो संबंध (ज्ञानीने) थाय नहि.' प्रारब्धबलथी अज्ञानीनी पेठे सर्व व्यवहार अने तेनी इच्छा (ज्ञानीने) संभवे छे.

शुभसंतति नाम राजाने त्यागीने त्रणे पुत्रो नीकल्या तेमां पुत्रनी कथा कही. हवे पितानो प्रसंग कहे छे.

४९९. (शुभसंततिनो प्रसंग. उपासना.) दुहो.

गृहथी पुत्र गया लखी, पितुचित उपज्यो खेद।
सूनुं राज्य त्यज्युं नहि, नहि यथार्थ निर्वेद. २६.

टीकाः–पुत्र गृहथी नीकल्या त्यारे राजाने, तीव्र वैराग्यना अभावथी, तेओना वियोगनुं दुःख थयुं. तेम मंद वैराग्य थयो छे तेथी विषयभोगनुं सुख थाय नहि; अने वहिर् निकळवानी इच्छा करी पुत्रोना नीकळयाथी सूनुं राज्यने छोडी शक्यो नहि; एथी पण दुःख थयुं. जो तीव्र वैराग्य

होत तो सूनुं राज्य पण त्यागी देत. ने वैराग्य तीव्र थयो नहि, किन्तु मंद थयो छे, एथी त्यागी शक्यो नहि. अने भोगोमां आसक्ति नहि. एथी उभयता खेद ज छे. ['नहि यथार्थ निर्वेद' नाम तीव्र वैराग्य नहि.] मंदवैराग्यनुं फल उपास्यनी जिज्ञासा (पंडितमंडल आगल राजा) कहे छे.

५००. (शुभसंततिना प्रश्न.) चोपाई

शुभसंतति पिता महाभाग, तेने उपज्यो मंदविराग;
कियो देव ध्येय ज हुं, जेने उपासुं ? ए जिज्ञासा तेनें. २७.
करवा निर्णय पंडित तेड्या, यथायोग्य आसन दई (छेड्या;)
प्रश्न कर्यो आ सहुनी आगे-'छे को देव, न सुवे, न जागे ? २८.
'जन पुरुषार्थ हित जेने याचे, भक्तिमानता मनमां राचे.'
शुणी ए पृथिवीपतिनी वाणी, तेमां एक वयो सुज्ञानी. २९.

५०१. (विष्णु उपासक पंडितनुं उत्तर)

शुण राजा तुं कहुं सुदेव, जेनी करे ब्रह्मा शिव सेव;
शंखचक्रधारी हितकारी, पद्मगदाधर परउपकारी. ३०.
मंगलमूर्ति विष्णु कृपाल, निज सेवक लखी करे निहाल;
शक्ति, गणेश, सुर, शिव, जे छे, आज्ञा तेनीमां सौ ते छे. ३१.
भारत सकल ग्रंथ भाखे छे, पद्मपुराण तापनी कहे छे;

['तापनी' नाम नृसिंहतापनी, रामतापनी, गोपालतापनी (नामक अथर्ववेदनी) उपनिषद्].

विष्णुरूपथी उपजे सर्व हि; पडे भीड तेप्रति याचे सहि. ३२.
विविध वेषनो धरी अवतार ज, सौ देवोने देय सहाय ज;
एथी करिये पूजा तेनी, नहि सेव्य कोई समान जेनी. ३३.
विष्णुभक्त शिव उत्तम कह्यो, तथापि सेव्यस्वरूप न लह्यो;
रूप अमंगल शवसम जेनुं, ध्यान अमे नव करिये तेनुं. ३४.

राख, डमरु, गजचर्म, कपाल, धरे आप; शुं करे निहाल !
तनो पुत्र गणेश ज तेवो, रूप विलक्षण नरपशु जेवो. ३५.
जे शठ हठथी ध्याये देवी, ते समरूप धरे ते सेवी;
स्त्री निंदितअशुचिअपवित्रा; अवगुण गण्या न जाय विचित्रा, ३६.
कूट कपटनो आकर कहियो, पराधीना निजतंत्र न लहियो,
एवुं रूप ज जोई रे जेने ते सेवो नर खरसम तेने. ३७.
निशदिन भानु भ्रमतो फरे ह, स्थान एक क्षण निश्चल न रेह
भ्रमतो फरे उपासक तेनो, ते समान सेवक जे जेनो. ३८.
जेथी अन्यदेव सहु त्याज्य ज, सेवनीय हरि जाग्रत् नित्य ज.
पूजनध्यानकरण विधि जे छे, **नारदपंचरात्र**मां ते छे. ३९,

टीकाः-विष्णुने त्यागीने प्रसिद्ध जे चारे उपासना छे, ते एकएकनो निषेध कर्‍येथी पण स्मार्तउपासनानो पण निषेध कर्‍यो. केमके पांचे देवोने समबुद्धि करीने उपासे तेने **स्मार्तउपासना** कहे छे. शिवआदि चारे देवोने विष्णुनी समता निषेधवाथी स्मार्तउपासनानो निषेध पण अर्थथी कर्यो.

५०२. (शिवउपासक पंडितनुं उत्तर.) चोपाई

'शिवसेवक' मुनि शुणी ते बोल्यो, क्रोधसहित चल नयने बोल्योः-
सुण राजन् ! मज वाणी एक ज, जेमां वचन प्रमाण कोटिज. ४०.
शिवसमान अन्य को कहिये ! मागे दे जेने जे जोइये,
सो *विभूति हरिने दे मागी, धरे विभूति† आप नित्य त्यागी ४१.
चर्म कपाल आ हेतु धारेः-सम,-नहि उत्तम अधम,-विचारे;
नग्न रही उपदेशे एवुं, सुख नहि कोई विराग जेवुं. ४२.

टीकाः-वैष्णवे चर्मकपालादिक निन्दित वस्तुनुं धारण

*ऐश्वर्य. आणिमादि सिद्धिओ. † भस्म, राख.

(शिवमां.) आक्षेप कर्यु, तेनु आ समाधान छे,-महादेवने सर्व पदार्थोमां समबुद्धि छे. द्वितीय पादनो अन्वय आम छे – सम विचारे उत्तम अधम न विचारे.

चोपाई.

सदाव्रत एवु दे भारी,-मरे काशीपुरीमां नरनारी;
ते सायुज्यमुक्ति प्रति जाय, गर्भवास सकट नहि थाय ४३.
शिवसमान नरनारी ते सहु, दिव्य भोग त्यांरे ले ते बहु,
करे आप अद्वयउपदेश, त्यजे लिंग इम ब्रह्मप्रवेश. ४४.
उच नीच किञ्चित नहि देखे, मुक्ति सर्वने दे एक लेखे;
राजन्! शिवसमान को दाता? भक्त अभक्त सर्वनो त्राता. ४५.
सुणो स्वभाव विष्णुनो एवो, जगमां जन प्राकृत छे जेवो,
त्राता भक्त, अभक्त न त्राता, प्रसिद्ध छे जगमां ए ताता. ४६.
हरिसेवक, हरसेव्य, चराण्या, रामे (जो) रामेश्वर माण्या,
व्यासे स्कंदपुराणे, माख्या हरिसेवक, हरसेव्य ज राख्या. ४७.
कह्यु थली भारत पद्मपुराणे, सो देवथी हरि अधिक माने,
भारततात्पर्य न देख्यु जे, अप्पयदीक्षित बुधे लख्यु जे. ४८.

टीका-वैष्णवे आ कह्यु (हतु)'-भारतादि ग्रथोमां सर्व देवोना पूज्य विष्णुने कह्या छे,' ते बने नहि. केमके भारत-ग्रथनु तात्पर्य देखतां शिव प्रति ज ईश्वरता प्रतीता थाय छे, ए, (शिवोत्कर्षमंजरी आदिना कर्ता) अप्पय्यदीक्षित नाम विद्वाने सकल पुराणइतिहासनु तात्पर्य लख्यु छे. त्यां भारतमा आ प्रसग छे-अश्वत्थामाए नारायणास्त्र अने आग्नेयास्त्रनो प्रयोग कर्या, त्यारे बहु सेनानो तो सहार पण थयो, परतु पचपांडवोमांथी कोई मर्या नहि त्यारे रथने त्यागीने धनु वेंद अने आचार्यनो धिक्कार करता वन प्रति चाल्या त्या व्यास भगवान् तेने मल्या, अने आ कह्यु-'हे ब्राह्मण! तु आचार्य

अने वेदने धिक्कार मा कहे. ए अर्जुन (अने) कृष्ण बन्ने नरनारायणरूप छे. एओए शिवनुं पूजन बहु कर्युं छे. एथी एओनी भक्तिने अधीन थयेला त्रिशूली महादेव एओना रथनी आगल रहे छे, एथी ए वेना उपर प्रयोग करेला अनेक शस्त्र-अस्त्रोना सामर्थ्यने महादेव नाश करी दे छे'. ए भारतप्रसंगथी नारायणरूप कृष्णनी विभूति महादेवनी कृपाथी उपजी छे, ए सिद्ध थाय छे. एथी विष्णुचरित्रना प्रतिपादक जे ग्रंथ छे, ते शिवनी अधिकताने प्रतिपादन करे छे. केमके, ते ग्रंथोमां विष्णु सेव्य कह्या छे, ते विष्णु भारतप्रसंगथी शिवना भक्त छे. एथी जे शिवनी भक्तिथी विष्णु सेव्य थाय छे, ते शिव ज परमसेव्य छे. ए रीतिए अप्पयदीक्षिते सकल वैष्णवग्रंथोना प्रतिपाद्य शिव कह्या छे.

चोपाई.

सौ प्रतिपाद्य शिव वरणाया, भक्तोमां उत्तम हरि गाया;
ईश, देव, पद सहुमां कहिये, 'महत्'सहित एक शिवमां लहिये.

[टीकाः–महादेव, महेश (मह+ईश) एम शिवने कहे छे. अन्यने तो (मात्र) देव, ईश कहे छे.]

शिवथी भिन्न अशिव जे कहिये, ते तजी, शिव कल्याण ज लहिये;
जलशायी जे नाम वखाणो, ते जागे ए मिथ्या मानो. ५०.

[टीकाः–कल्याणने शिव कहे छे, तेथी भिन्न अशिव छे. तेनो आ अर्थ सिद्ध थयो–शिवथी भिन्न अन्य देवता 'अशिव' नाम अकल्याणरूप छे ते अकल्याणरूप देवताने त्यागीने कल्याणरूप शिवने उपासे.]

विष ठंडीने सहुने उपजो दर, कन्या अभय सौ कंठ धरी गर;
जेनो पुत्र गणेश ज कहावे, विघ्नजाल तत्काल नशावे. ५१.
कार्यमांहि कारण गुण होय, इम शिव विघ्न मूलथी खोय;
जन्ममरणदुःख विघ्न कहावे, ते समूल शिवध्यान नशावे. ५२.

सेवनयोग्य सदाशिव एक, जागे, सहित समाधि विवेक;
तंत्रपाशुपतिरीति गावे, तेम पूजन करी ध्यान लगावे. ५३.
नारदपंचरात्र मत जूठो, **परिमल** खंडी करे छे फूटो;
एथी शिवसेवा चित लावे, जे पुरुषार्थ चहो ते आवे. ५४;
[टीकाः–नारदपंचरात्रनुं मत सूत्रभाष्यमां खंडन कर्युं छे. तेना अनुसारी **रामानुज** आदिक नवीन वैष्णवोनुं मत, (शंकरकृत) सूत्रभाष्यउपर वाचस्पतिमिश्रकृत **भामती** या शारीरकभाष्यविभाग नामे ग्रंथ छे तेनी टीका (अमलानन्दकृत) कल्पतरुनी टीका (अप्पयदीक्षितकृत) **परिमल**मां खंडन कर्युं छे.]

५०३. (गणेश उपासकनुं उत्तर.) चोपाई.

[शिवनो पुत्र गणेश बताव्यो, कह्युं 'कारणगुण कार्ये आव्यो';
सुणी गणेशनो पूजक बोल्यो, कर्यो कोप, सिंहासन डोल्यो.]५५.
राजन्! सुण वचे ए जूठा, वचन सत्य सम कहे छे जूठां;
शिवनो पुत्र गणेश बतावे पराधीनता तेमां गावे. ५६.
कहुं प्रसंग एक सुण एवो, लख्यो व्यास भगवाने जेवो;
त्रिपुर मारवा चड्यो सुरारि, हरिहर सहित देव अधिकारी. ५७.
गणेशपूजन न कर्युं एथी, जरा न त्रिपुर छिनायो तेथी;
मनव्या पछी पस्ताई गणेश, त्रिपुर विनाश्यो, रह्यो न लेश ५८.
थया समर्थ करी पूजा रीझा, सेवनयोग्य ते एक न बीजा.
राम पुत्र दशरथनो जेवो, विघ्नहरण शिवनो सुत तेवो. ५९.
जुवो **गणेशपुराण** व्यासकृत, गणेश सौनो हेतु कह्यो सत;
हरि,हर,विधि,रवि,शक्ति आदि बहु, तुंडोथी* उपजे ते तो सहु.६०.

२२०. दशरथनी भक्तिथी रामचंद्रजी तेना पुत्र थया, तेम शिवनी भक्तिथी गणपति तेना पुत्र थया छे. परंतु बन्ने पुत्रो पिताथी श्रेष्ठ छे, एवुं ते गणेशभक्तनुं कहेवुं छे. * गणपति.

करे ध्यान जन ज्यां क्षण मनमां, नाशे विघ्नो, प्रधान गणमां;
विघ्नहरण इम जाणे निशदिन,भक्तिसहित सेवो अनवच्छिन्न. ६१.

५०४. (देवीउपासकनुं उत्तर.)

[हेतु शक्तिनो गणेश सुणीने, भगवतीभक्त उचर्यो गुणीने;*]
सुण राजन ! मज वाणी साची, अणे सकल कहे ए काची. ६२.
विना शक्ति सूना सुर सारा, मृतक देह सम लख हत्यारा;
शक्तिहीन असमर्थ कहावे, कार्य केम ते तो उपजावे ? ६३.
जेणे शक्तिउपासन कर्युं भारी, ते थया सकल अधिकारी.
हरि, हर, गणेश, रवि सर्वेमां, नाना शक्ति देखिये तेमां; ६४.
शक्ति लोकमां भासे जेने, रूप भगवतीनुं लख तेने;

टीका:-भगवतीनां बे रूप छे,-एक सामान्य अने (बीजुं) विशेष. सर्व पदार्थोमां पोतानुं कार्य करवानी जे सामर्थ्यरूप शक्ति, ते भगवतीनुं सामान्यरूप छे. अने अष्टभुजादिक सहित मूर्ति विशेषरूप छे. सामान्यरूप शक्तिना संख्यारहित अनंत अंश छे. जेमां शक्तिना न्यून अंश होय ते अल्पशक्तिहोय छे.-(ते) असमर्थ कहेवाय छे. जेमां शक्तिना अधिक अंश होय-ते समर्थ कहेवाय छे. विष्णु, शिव आदिकोमां शक्तिना अंश अधिक छे. एथी अधिक समर्थ कहेवाय छे. ए रीतिए भगवतीनुं सामान्यरूप जे शक्ति, तेना अंशोनी अधिकताथी विष्णु, शिव, गणेश, सूर्यनो महिमा प्रसिद्ध छे. अने शक्तिए रहित होय तो, जेम प्राण विना शरीर अमंगलरूप थाय छे तेम सर्व देव 'हत्यारा' नाम अमंगलरूप थई जाय. एथी जे शक्तिनी अधिकताथी देवनो महिमा प्रसिद्ध छे, ते महिमा शक्तिनो छे; ते देवोनो नथी. विष्णु, शिव आदिकोए भगवतीनी सामान्यरूप शक्तिनी अधिक उपासना करी छे.

* विचारीने.

पथी तेओमां शक्तिना अंश अधिक छे. ए पूर्व ग्रंथोमां (अङ्क ६३-४ नी चोपाईमां) भगवतीभक्तनो अभिप्राय छे.

जेम भगवतीनी निराकाररूपशक्तिना अनंत अंश छे, तेम साकाररूपना पण अनंत अंश छे. ते साकार अंशोमां काली-रूप प्रधान छे. अने माहेश्वरी, वैष्णवी, सौरी, गाणेशी, आदिक पण प्रधान अंश छे. विष्णुने भगवतीनी उपासनाथी वैष्णवीनामे भगवतीना अंशनो लाभः तेम अन्य देवोने भगवतीना उपासनथी निज निज माहेश्वरी आदिक अंशोनो लाभ थयो छेः तेओमां पण भगवतीना विष्णु(अने) शिव (ए) बन्ने प्रधान भक्त छे. केमके ध्याताने ध्येयरूपनी प्राप्ति (ए) उपासनानो परम अवधि छे. विष्णुशिवने उपासनाथी ध्येय-रूपनी प्राप्ति थई छे, पथी प्रधान उपासक छे, ए अहीं चोपाइथी प्रतिपादन करे छेः–

लक्षकोटि मातृकागण (गुणी)तंत्रग्रंथमां लख्या अंश गुणी. ६५.
काली तेनो अंश प्रधाना, माहेश्वरी शांकरी आदि लप नाना;
हरि, हर, ब्रह्मा, सहु ते ध्याये, पामे निजांश तेनी कृपाए. ६६.
थाय ध्येयरूप ध्याता ज्यारे, सिद्ध उपासन कहवाय त्यारे;
उपासना पची हरिहरनी, नारी मूर्ति धरी, तजी नरनी. ६७.

दुहो.

अमृतमथनप्रसंगमां, हरि मोहिनीस्वरूप;
शोभे शिव अर्धांगमां, देवीरूप अनूप. ६८.

टीकाः–(समुद्र)मथन करीने अमृत प्रकट कर्युं त्यारे सुरअसुरनो विवाद मटाडवाने विष्णु असमर्थ थया, त्यारे पोतानी उपास्यरूपा भगवतीनुं एवुं एकाग्रचित्ते ध्यान कर्युं (के) जेथी पोते विष्णु उपास्यरूपने प्राप्त थया. ते रूपना माहात्म्यथी असुर पण तेने अनुकूल थया. तेम शिवे पण

समाधिमां एवुं भगवतीनुं ध्यान कर्युं जेथी अर्द्धविग्रह शिवनुं उपास्यरूप थयुं. कदाचित् विक्षेपथी समाधिनो अभाव थाय छे, एथी शिवनुं सर्व विग्रह (शरीर) उपास्यरूप नथी. ए रीतिए सर्व देव भगवतीना उपासक छे. ते उपासना बे रीतिए कही छे,–दक्षिण आम्नायथी (मार्गथी) अने उत्तर आम्नायथी. दक्षिण आम्नाय पूर्व कह्यो छे; अग्रे उत्तर आम्नाय कहे छे.

चोपाई.

भक्त भगवतीना हर हरि छे, ए सम कोणे उपासना करी छे;
तदपि महामाया ध्याये सहि, पामे तुरत सकल पुरुषार्थ हि. ६९.
जगमां साधन एवुं अन्य नहि, उपजे भोग मोक्ष एकत्र अहि;
भक्त भगवतीनो जे जगमां, भोग भोगवे, नावे भगमां. ७०.
शिवकृततंत्र रीति ए गायी, भक्ति भगवती अति सुखदायी;
पंच मकार न तजिये एवा, सनातन जेने सर्वे सेव्या. ७१.
कृष्णदेव, बलदेव सुंज्ञानी, प्रथमा पिये सदा ज्यम पाणी;
अन्य प्रधान पुरातन जे जे, सेवे सकल मकार ज ते ते. ७२.
विधि ते सेवननो उपकारी, कह्यो निज मुखे शिवे भारी.
शिवनां वचन धरे जे मनमां, लहे सुभोग मोक्ष एक तनमां. ७३.
ग्रंथ भागवत व्यासे बांध्यो, उपपुराण काली अनुसांध्यो;
एक भक्ति भगवतीनी गायी, पूजाविधि सकल समजावी. ७४.
ध्याता सकल भगवतीना छे, हरि, हर, सुर, गणेश जेटला छे;
सकल पिये प्रथमा मतिवाला, पूजे शक्तिमग्नमन सारा. ७५.
जगज्जननी जागे एक देवी, परमानंद लहे ते सेवी;

५०५. (सूर्यभक्तनुं उत्तर.)

'सूर्य, भक्त भगवतीनो'ए सुणी, क्रोधसहित बोल्यो एक मुनि. ७२.

गुण राजन्! मज वाणी एक ज, जूठ न भाखुं कोटी शपथ ज.
अतिपापिष्ठ नीच मत एनुं, श्रवण स्नेहथी श्रृण्युं तें जेनुं. ७७.
अवगुण जेह गणाये जगमां, गणे ज ते गुणगण ए भगमां;
मद्य मलीननुं 'तीर्थ' ज राखे, 'शुद्ध' नाम आमिषनुं भाखे.७८.
कहे अन्य इम सहु विपरीत, शंभुतंत्र सेवी मतिरहित,
दक्षिणसंप्रदाय जे दूजो, यद्यपि अनेक श्रेष्ठ पूजो. ७९.
तथापि भानु विना सौ अंध, ए सौनां मन जेमां बद्ध;
भानु करे सकल अजवालुं, ते विन थाय तुरत अंधारुं. ८०.
अन्य प्रकाशक जगमां जे छे, अंश सूर्यना सर्वे ते छे,
भानुसमान कोण हितकारी? भ्रमे आप परहितमतिधारी. ८१.
कालाधीन थाय सहु कार्य ज, काल त्रिविध भाखे आचार्य ज;
वर्तमान भावि ने भूत, सूर्य क्रिया करे ए सूत.* ८२.
ए विधि सकल भानुथी उपजे, ते कोपे सहु भस्म थाय जे;
द्विविध भानुरूप पीछानो, निराकार साकार ज जाणो. ८३.
निराकार जे प्रकाश कहिये, नामरूपमां व्यापक लहिये;
अधिष्ठान सर्वनुं ते एक, जगत्विवर्त, जेनो अविवेक. ८४.
अहं भानु ए वृत्ति उदय ज्यां, तेमां प्रकटी विनाशे तम त्यां. ८५.

टीकाः—सूर्यनां बे रूप छे,—निराकार प्रकाश अने साकार प्रकाश. ते बेमां निराकार प्रकाश सर्व नामरूपमां व्यापक छे. जेने वेदान्ती 'भाति' शब्दे करीने व्यवहार करे छे, ते निराकार प्रकाशरूप जे सूर्यनुं सामान्यरूप छे, ते सर्व जगत्-नुं अधिष्ठान छे. तेना अज्ञानथी जगत्‌रूपी विवर्त उपजे छे. ते ज निराकार प्रकाश अंतःकरणनी वृत्तिमां (चैतन्यना) प्रतिबिंबसहित ज्ञान कहेवाय छे. 'अहंभानु' एवी अंतःकर-

---

* उपजेला छे.

णनी वृत्ति प्रकाशना प्रतिबिंबसहिता थाय, त्यारे अज्ञाननी निवृत्तिद्वारा जगतनी निवृत्ति थाय छे.

चोपाई.

गुण साकाररूप आ तेनुं, थाये सुतेज दिनमां जेनुं;
तेना अंश अन्य छे झाझा, तारा चंद्र दीप नहि माझा. ८६.
एथी बे विध भानु बताव्यो, ज्ञेय ध्येयनो भेद जणाव्यो;
वेद सकल तेने भाखे छे-प्रकाशरूप सत्, तेने कहे छे. ८७.

टीकाः—निराकार साकार भेदथी भानुनां बे रूप छे. तेमां निराकाररूप ज्ञेय छे; अने साकाररूप ध्येय छे. एने ज वेदान्तो(उपनिषदो)मां निर्गुणसगुण भेदथी बे प्रकारनुं ब्रह्म कहे छे.

कदापि जेमां तमलेश नहि ते लखी जगजन सहु जागे सहि ८८.
कदापि न सुवे ते त्यम जागे, ध्यान करे तेनुं तम भागे;
अन्य ज आग्रत् भाखे, सघला, राजन् ! जाण जुठा ते झगडा.८९.
एवुं पांच उपासक बोल्या, निजगुण, परना अवगुण खोल्या;
पंडित अन्य अनेक ज आव्या, भिन्न भिन्न निजमत समजाव्यां.९०.

५०६.(स्मार्त मत.)

टीकाः—जेम पांच उपासक परस्पर विरुद्ध वचन बोल्या, तेम अनेक पंडित निजनिजबुद्धिने अनुसार विरुद्ध ज बोल्या. जेम ए पांचेनां परस्पर विरुद्ध मत छे, तेम स्मार्त जे पंडित-पांचे देवोमां भेदबुद्धि करे नहि—तेनुं मत पण ए सर्वथी विरुद्ध छे. केमके वैष्णवनुं आ मत छेः-'विष्णु-समान अन्य देव नथी. सर्व विष्णुना भक्त छे. अने विष्णुनां राम, कृष्ण, नारायणादिक जे नाम छे तेओना समान जे अन्य देवोनां नामने जाणे ते नामापराधी छे. तेने रामादिक

२२१. नामापराध दश प्रकारना छे. तेओमांथी कोई पण 'नामापराध' करे ते नामापराधी कहेवाय छे.

नामउच्चारणनुं यथार्थ फल थाय नहि.' तेम शैव मतमां शिव-समान अन्य देव नथी. अने शिवनां नामउच्चारनुं फल विष्णुनामउच्चारणथी थाय नहि. ए रीतिए सर्वना मतमां पोतपोताना उपास्य देवना समान अन्य देव नथी. अने स्मार्तमतमां सर्व देव सम छे. एथी तेनुं मत पण पांचेथी विरुद्ध छे.

५०७ (षट् शास्त्रनां भिन्नभिन्न मत.)

सांख्य, पातंजल, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा, उत्तर-मीमांसा, ए षट् शास्त्रोनुं मत पण परस्पर विरुद्ध छे. केमके सांख्यशास्त्रेकरी ईश्वरनो अंगीकार नथी, (अने) योगमां निरपेक्ष (एवा) प्रकृतिपुरुषना, विवेकज्ञानथी, मोक्ष मान्यो छे. अने पातंजलशास्त्रमां ईश्वरनो अंगीकार (अने) समाधिथी मोक्ष मान्यो छे. ए विरोध छे. न्यायमतमां चार प्रमाण, अने वैशेषिक मतमां बे प्रमाण, ए विरोध छे. एम न्यायवैशेषिकनो अन्य पण पोतामां बहु विरोध छे. (पण)

'सन्निन्दाऽसति नामवैभवकथा श्रीशेशयोर्भेदधी-
रश्रद्धा श्रुतिशास्त्रदैशिकगिरां नाम्न्यर्थवादभ्रमः ।
नामास्तीतिनिषिद्धवृत्तिविहितत्यागो हि धर्मान्तरैः
साम्यं नाम्नि जपे शिवस्य च हरेर्नामापराधा दश' ॥ १ ॥

अर्थः—(१)सत्पुरुषनी निन्दा, (२) असाधु (मनुष्य) पासे नामवैभवनी कथा, (३) श्रीईश (विष्णु) अने ईश (शिव) ए बेमां भेदबुद्धि, (४) श्रुतिवाक्यमां अश्रद्धा, (५)शास्त्रवाक्यमां अश्रद्धा, (६) गुरुवाक्यमां अश्रद्धा, (७) नाममां अर्थवादनो भ्रम, (८) नाम (जे पापनुं नाशक छे ते मारी पासे) छे ए हेतुथी, निषिद्धनुं आचरण, अने (९) विहितनो त्याग, (१०) अने ईश्वरनामविषे धर्मान्तरसाथे तुल्यता मानवी, ए दश शिव अने हरिना जप विषे नाम-अपराध छे.

भाषामां आ दुहो प्रचलित छेः—

राम राम सब को कहे, दशऋते कहे न कोय;
एकवार दशऋते कहे, कोटि यज्ञफल होय.

इहां रामना पिता थी दशरथनो ध्वनि छे, किन्तु अर्थ 'दश'=नामापराध, 'ऋते'=विना, एवो छे.

पं. पी. पु.

जिज्ञासुने अपेक्षित नथी एथी लख्यो नथी. तेम पूर्वमीमांसामां ईश्वरनो अंगीकार नथी, मोक्षरूप नित्य सुखनो अंगीकार नथी, किन्तु कर्मजन्य विषयसुख ज पुरुषार्थ छे. अने उत्तरमीमांसामां,-ईश्वरनो (अने) मोक्षनो,-अंगीकार (छे), विषयसुख पुरुषार्थ नथी. उत्तरमीमांसानुं अन्य मत आ ग्रंथमां स्पष्ट ज छे. सर्व शास्त्रोनां मत एथी विरुद्ध छे. अन्यमां भेदवाद छे. आमां (उत्तरमीमांसामां) भेदनुं खंडन अने अभेदनुं प्रतिपादन छे. ए रीतिए सकल शास्त्रोना सिद्धान्त परस्पर विरुद्ध छे.

५०८. (विरुद्ध मत सांभली राजानी स्थिति.)

चोपाई.

नृपे वचन विरुद्ध सुण्यां ज्यां, संशय ताजो उपज्यो आ त्यां:-
एमां सत्य कोण बुध के,छो युक्तिप्रमाण सकल सम दे छे. ९१.
संशयशोके दुःखित जीवमां, को उपास्य ए लख्युं न मनमां;
चिंता हृदय थई ए तेने, निजसंदेह सुणावुं केने. ९२.
शास्त्रनिपुण पंडित जग जे सहु, सुण्या विरुद्ध वक्ता आ ते सहु;
इम चिन्तत बहु काल थयो ज्यां, तर्कदृष्टि आवी मलियो त्यां.९३.

५०९. (शुभसन्तति पिता अने तर्कदृष्टि पुत्रनो मिलाप)

दुहा.

मल्या परस्पर ते उभय, पुत्र पितानी रीति;
कर्युं नमन, आशिष दिधी, आसन लीधां सप्रीति. ९४.
सचिन्त स्वपिताने लखी, सुत बोल्यो आ वात:—
शी चिन्ता चित आपने, मुख प्रसन्न नहि तात ? ९५.

चोपाई.

शुभसंततिए सुणी सुतवाणी, कही तेने निज सकल कहाणी;
चित चिन्तानो हेतु दिधो कही:-को उपास्य ए तत्त्व जडे नहि. ९६.
तर्कदृष्टि सुणी पितानुं वेण, कह्युं शुभसंततिने सुखदेणः-

(तर्कदृष्टि कार्यकारणना विवेके पिताने समाधान देखाडे छे.)
'कारणरूप उपास्य पिछाणो, तेनां नाम अनंत ज जाणो. ९७.
कार्यरूप तुच्छ लखी तजिये, ए सिद्धान्त वेदनो भजिये.
रच्यां पुराण इतिहास व्यासे, तेमां नहि नाना मत भासे. ९८.
मनमां मर्म न जाणे पंडित, करे परस्पर मत ते खंडित;
नीलकंठपंडित बुध भारी, करी टीका भारतनी सारी. ९९.
तेणे प्रथम प्रसंग लिख्यो छे, अदोष श्रुतिसिद्धान्त कह्यो छे. १००.

५१०. (अनेक देवोविषये समाधान.)

टीकाः यद्यपि सकल पुराणना कर्ता एक व्यास छे. तेणे स्कंदपुराणमां शिवने, स्वतंत्रतादिक ईश्वरधर्म कह्या अने अन्य देवोने शिवकृपाथी सर्व विभूतिनी प्राप्ति कही, एथी (अन्य देवना) जीवधर्म कह्या. तेम विष्णुपुराण, पद्मपुराणमां विष्णुने ईश्वरता कही. तेम कोईने पुराणमां कोईने उपपुराणमां, विष्णुशिवथी भिन्न जे गणेशादिक छे, तेओने ईश्वरता कही. ए रीतिए व्यासवाक्यमां विरोध प्रतीत थाय छे, तेनुं समाधान (नीलकंठ) आ (प्रमाणे) करे छेः- सर्व (पंचायतन देव) ईश्वर छे. जे प्रकरणमां अन्य देवनी निंदा छे, तेनी निंदा करीने तेनी उपासना त्यागमां व्यासनो अभिप्राय नथी; किन्तु वैष्णवपुराणमां शिवादिकनी निंदा अने विष्णुनी स्तुति करीने, विष्णुनी उपासनामां प्रवृत्तिनो हेतु छे. तेम शिवपुराणमां विष्णुआदिकोनी निंदा पण, तेओनी उपासनाना त्याग अर्थे नथी, किन्तु तेओनी निंदा शिवनी उपासनामां प्रवृत्तिने अर्थे छे. जो एक प्रकरणमां अन्यनी निंदा त्यागसारू होय तो, स र्व नी उपासनानो त्याग थशे. एथी अन्यनी निंदा एकनी स्तुतिने अर्थे छे, त्याग अर्थे नथी.

दृष्टांत-वेदमां अग्निहोत्रना बे काल कह्या छे, एक तो सूर्यउदयथी प्रथम, अने बीजो सूर्यउदयथी अनंतर काल कह्यो छे. त्यां उदयकालना प्रसंगमां अनुदयकालनी निंदा करी छे; अने अनुदयकालना प्रसंगमां उदयकालनी निंदा करी छे. त्यां निंदानुं तात्पर्य त्यागमां होय तो बन्ने कालमां होमनो त्याग थशे. अने नित्यकर्मनो त्याग संभवे नहि. एथी उदयकालनो स्तुतिसारू अनुदयकालनी निंदा छे. अने अनुदयकालनी स्तुतिसारू उदयकालनी निंदा छे. तेम एक देवनी उपासनाना प्रसंगमां अन्यनी निंदानुं एकनी स्तुतिमां तात्पर्य छे. अन्यनी निंदामां तात्पर्य नथी. जेम शाखाभेदथी कोई उदयकालमां होम करे छे, कोई अनुदयकालमां करे छे. फल बन्नेने समान थाय छे.

५११. तेम इच्छाभेदथी पांचे देवोमांथी जेनी उपासना करे ते सर्वथी ब्रह्मलोकनी प्राप्ति थाय छे. त्यां भोग भोगवीने विदेहमोक्ष थाय छे. यद्यपि विष्णु आदिकोनी उपासनाथी वैकुंठ लोकादिकोनी प्राप्ति पुराणमां कही छे, ब्रह्मलोकनी नहि; तथापि उत्तमउपासक विदेहमुक्तिना अधिकारी देवयानमार्गथी सर्व ब्रह्मलोक प्रति ज जाय छे. परतु एक ज ब्रह्मलोक वैष्णव उपासकने वैकुंठरूप प्रतीत थाय छे. अने (ते) लोकवासी सर्व तेने चतुर्भुज पार्षद(सभ्य, अनुचर)रूप प्रतीत थाय छे. अने पोते पण चतुर्भुज मूर्ति थाय छे. तेम शैवउपासकने ब्रह्मलोक ज शिवलोक (रूप) प्रतीत थाय छे. ते लोकवासी सर्व त्रिनेत्रमूर्ति पोतासहित प्रतीत थाय छे. ए रीतिए सर्व उपासकने ब्रह्मलोक ज पोताना उपास्यना लोक(रूप) प्रतीत थाय छे. केमके आ नियम छेः-देवयानमार्ग विना अन्यमार्गथी जे जाय छे तेओनुं संसारमां आगमन थाय छे. अने

देवयानमार्ग एक ब्रह्मलोकनो छे, एथी विदेहमोक्षना योग्य उपासक सर्व ब्रह्मलोक प्रति जाय छे. ते ब्रह्मलोकमां आवो अद्भुत महिमा छेः-उपासकनी इच्छाने अनुसार सर्वा सामग्री सहित ते ब्रह्मलोक ज तेने प्रतीत थाय छे. ए रीतिए पांचे देवना उपासकोने समफल थाय छे.

५१२. एविषे आ शंका थाय छेः-पांचे देवोनां नामरूप भिन्न भिन्न कह्यां छे, अने ईश्वर एक छे. एक ईश्वरनां नानारूप संभवे नहि. तेनुं आवुं समाधान छेः-परमार्थेकरी नामरूप कई परमात्मामां छे नहि. मंदबुद्धिने उपासनासारु, नामरूपरहित परमात्मानां मायाकृत कल्पित नामरूप, (शास्त्रे) कह्यां छे. एथी एक परमात्मामां मायाकृत कल्पित नामरूप नाना संभवे छे. ए रीतिए सर्व पुराणवाक्योनो विरोध दूर थाय छे.

५१३. (पुराणवाक्योमां विरोध भासे तेनुं समाधान)

अने पुराणवाक्योमां विरोधशंकानुं मुख्य समाधान तो आ छेः-विष्णु, शिव, गणेश, देवी, सूर्य, एथी आदिलईने जेटलां एकएकनां नाम छे, ते सर्व **कारण** ब्रह्मनां नाम छे. अने **कार्य** ब्रह्मनां पण ते सर्व नाम छे. जेम मायाविशिष्ट कारणने ब्रह्म कहे छे, अने हिरण्यगर्भ कार्य छे, तेने पण ब्रह्म कहे छे. ए रीतिए कारणब्रह्मने, विष्णु, शिव, गणेश, देवी, सूर्य (ए) पद बोधन करे छे; अने कार्यब्रह्मने पण ए पांचे पद बोधन करे छे. एम पांचे पदना जे नारायण, नीलकंठ, विघ्नेश, शक्ति, भानु, इत्यादि अनंत पर्याय छे ते सर्वे कारणब्रह्म अने कार्यब्रह्म बन्नेने बोधन करे छे. कांहि कारणब्रह्मने अने कांहि कार्यब्रह्मने प्रसंगथी बोधन करे छे. जेम 'सैंधव'पद,-अश्व, लवण,-बन्नेने बोधन करे छे. भोजनप्रसंगमां 'सैंधव'पद 'लवण'ने

बोधन करे छे, अने गमनप्रसंगमां 'सैंधव'पद 'अश्व'ने बोधन करे छे. (तेम) विष्णुपुराणमां विष्णु, नारायणादि पद कारण ब्रह्मनां बोधक छे; शिव, गणेश, सूर्यादिक पद कार्यब्रह्मनां बोधक छे.

५१४. पथी वैष्णव ग्रंथोमां विष्णुनी स्तुति अने शिव-आदिकोनी निंदाथी व्यासनो आ अभिप्राय छेः-का र ण ब्रह्म उपास्य छे; अने का र्य ब्रह्म उपास्य नथी तेम स्कंदपुराणादिक शैव ग्रंथोमां शिव-महेशादिकपद कारणब्रह्मनां बोधक छे; अने विष्णु, गणेश, देवी, सूर्यादिकपद कार्यब्रह्मनां बोधक छे. पथी तेमोमां पण कारणब्रह्मनी स्तुति अने कार्यब्रह्मनी निंदा छे. तेम गणेशपुराणमां गणेशपद कारणब्रह्मनुं वाचक अने विष्णु शिवादिकपद कार्यब्रह्मनां वाचक छे. पथी कारणनी स्तुति अने कार्यनी निंदा छे. तेम कालीपुराणमां काली, देवी, आदिकपद कारणब्रह्मनां बोधक (छे). अने विष्णु, शिव, गणेश, सूर्यआदिकपद कार्यब्रह्मनां बोधक (छे). पथी कालीपदबोध्य कारणनी स्तुति, अने विष्णु शिवादिकपद-बोध्य कार्यब्रह्मनी निंदा छे. तेम सौरपुराणमां सूर्य-भानु पद-बोध्य कारणब्रह्म छे, तेनी स्तुति; अने अन्यपदबोध्य कार्यनी निंदा छे. ए रीतिए सकल पुराणमां कार्य कारणनी संज्ञारूप संकेतनो तो भेद छे, (पण) उपादेय (ग्राह्य) हेय (त्याज्य) जे अर्थ तेनो भेद नथी. सकलपुराणमां कारणब्रह्मनी उपासना उपादेय छे, अने कार्यनी उपासना हेय छे. पथी सर्व पुराण एक कारणब्रह्मनी उपास्यता बोधन करे छे. तेओनो पोतामां विरोध नथी.

५१५. (मूर्त्तिसंबंधमां विचार)

यद्यपि चतुर्भुज, त्रिनेत्र, सतुंड, अष्टभुजादिक मूर्त्ति

मायाना परिणाम छे, अने चेतनना विवर्त छे, पथी कार्य छेः अने तेओनी पण उपासना कही छे;-तथापि ते चतुर्भुजादि मूर्तिओनुं जे मायाविशिष्ट कारण छे, तेथी विचार करवाथी, भेद नथी. पथी ते आकारोने बाधीने कारणरूपथी तेओनी उपासनामां तात्पर्य छे. केमके, आकार कार्य छे, पथी तुच्छ छे, अने कारण सत्य छे. अने जेनी मंदप्रज्ञा आकारमां ज स्थिता होय, ते शास्त्रउक्त आकारनी ज उपासना करे, तेथी पण प्रज्ञा निश्चला थईने कारणब्रह्मनी उपासनामां स्थिति थाय छे.

५१६. (कारणब्रह्मनी उपासनानी रीति.)

(मूर्त्तिप्रतिपादननो अभिप्राय.)

कारणब्रह्मनी उपासना आ रीतिए कही छेः-ब्रह्म जगतनुं कारण छे, सत्यकाम छे, सत्यसंकल्प छे, सर्वज्ञ छे, स्वतंत्र छे, सर्वनुं प्रेरक छे, कृपालु छे, एवा ईश्वरना धर्मोनुं चिन्तन करे. **मूर्त्तिचिन्तनमां शास्त्रनुं तात्पर्य नथी.** अने अनेक मूर्ति जे शास्त्रमां लखी छे ते उपासनाने निमित्त नथी, किन्तु सर्वे मूर्त्तिओ कारणब्रह्मनुं उपलक्षण छे. जे वस्तु जेना एकदेशमां होय, अने कदाचित् होय, अने व्यावर्तक होय ते **उपलक्षण** कहेवाय छे. जेम 'काकवाळुं देवदत्तनुं गृह छे.' ए वाक्यमां देवदत्तना गृहनुं काक उपलक्षण छे. केमके गृहना एक देशमां काक होय छे, अने कदाचित् होय छे, सर्वदा नहि, अने अन्य गृहथी देवदत्तना गृहनो व्यावर्तक छे. तेम जगतनुं कारण ब्रह्म छे. तेना एकदेशमां मूर्त्ति होय छे, अने कदाचित् होय छे. अने चतुर्भुजादिक मूर्त्ति कारण-ब्रह्म विषे ज होय छे, अन्यमां नहि, पथी व्यावर्तक होवाथी उपलक्षण छे. उपलक्षणनुं आ प्रयोजन होय छेः-वि शे ष्य

प स्तु ना स्व रू प नुं ज्ञान थाय. जेम फाकथी देवदत्तना गृहनुं ज्ञान थाय, अन्य प्रयोजन फाकथी नथी. तेम चतुर्भुजादिक आकारोथी निराकार कारणब्रह्मनुं ज्ञान ज, उपासनाना निमित्त मूर्त्तिप्रतिपादननुं प्रयोजन छे, अन्य नहि.

५१७. अने मंदप्रज्ञावाला शास्त्रअभिप्रायने समज्या विना ते आकारोमां आग्रह करे छे; अने 'श्यालसारमेयन्याय'थी परस्पर कलह करे छे; [स्त्रीना भाईने 'श्याल' (सालो) कहे छे, कुतराने 'सारमेय' कहे छे, अने दृष्टांतने 'न्याय' कहे छे.] कोईना सालानुं नाम उत्फालक हतुं, अने सालाना शत्रुनुं नाम धावक हतुं. ते पुरुषना गृहना कुतरानुं नाम धावक, अने बीजा गृहना कुतरानु नाम उत्फालक हतुं त्यां ते पुरुषनी स्त्री गृहविषे प्रथम आवी. त्यारे बन्ने कुतरा पोतामां हमेश लडे. त्यां स्त्रीनो पति, श्वशुर आदिक उत्फालक(कुतरा)ने गालो दे, अने पोताना धावक(कुतरा)नी वडाई करे, त्यारे ते स्त्रीने आ भ्रान्ति थई-मारा भाईने गालो दे छे, (अने) तेना शत्रुनी वडाई करे छे. तेथी दु.खिता थईने भर्ता साथे क्लेश करती थई. जेम तेओनो अभिप्राय जाण्या विना समान संज्ञाथी भ्रमे करीने स्त्रीए क्लेश कर्यो, तेम वैष्णव ग्रथनां शिवादिक नामथी कार्य ब्रह्मनी निंदा करी छे, ए अभिप्रायने न जाणीने शैवादि दु.खित थाय छे, अने विष्णुना नामथी कार्यनी निंदाने नहि जाणीने, वैष्णव दु.-खित थाय छे अने सकल पुराणनो आ अभिप्राय छे.-कारणब्रह्म उपास्य छे, कार्यब्रह्म त्याज्य छे. [माया-विशिष्ट चेतन कारण ब्रह्म कहेवाय छे. मायाकृत कार्यविशिष्ट चेतन कार्य ब्रह्म कहेवाय छे.] ए ज अर्थ भारतनी टीकाना आरभमां लख्यो छे, अने सर्व वेदान्तोनो ए ज सिद्धान्त छे.

५१८. चोपाई.

शुभसंततिने शुणी सुतवेण, जीवमां उपज्युं किञ्चित् चेन;
वली पुत्रने कर्यो ज प्रश्न ज; 'शास्त्र परस्पर कहे असूत ज. १०१.
'तेमां सत्य कोण ते कहिये, जेनो अर्थ बुद्धिमां लइये.' १०२.

टीकाः-[पुराणमां विरोध (लाग्यो हतो परंतु पुत्रनां वचन सांभलीने) तेनी शंकाना नाशथी 'चेन' नाम सुख थयुं, अने षट्शास्त्रनी परस्पर विरोध शंका मटी नहि, एथी 'किञ्चित्' चेन थयुं, सर्वथा नहि. 'असूत' नाम विरुद्ध कहे छे.]

५१९. (उत्तरमीमांसा सर्वमां श्रेष्ठ.)

तर्कदृष्टि शुणी निज पितृवाणी , बोल्यो वचन सुपरम प्रमाणीः-
'उत्तरमीमांसा' उपदेश, जेमां वेदविरुद्ध, न लेश. १०३.
पंचशास्त्र ते वेदविरुद्ध, एथी जाणो ते ज अशुद्ध;
किञ्चित् अंश वेदअनुसारी,लखी बहु ग्रहे मंद अधिकारी. १०४.

टीकाः-यद्यपि षट्शास्त्रोना कर्ता सर्वज्ञ कह्या छे. सांख्यना कर्ता कपिल, पातंजलना कर्ता पतंजलि शेषनो अवतार, न्यायना कर्ता गौतम, वैशेषिक शास्त्रना कर्ता कणाद, पूर्वमीमांसाना कर्ता जैमिनि, उत्तरमीमांसाना कर्ता व्यास, ए सर्वनुं माहात्म्य प्रसिद्ध छे. एथी एमनां वचनरूप सर्व शास्त्र पण समान प्रमाण जोइये, तथापि सर्व वाक्योमां प्रबल प्रमाण वेदवाक्य छे. केमके वेदना कर्ता सर्वज्ञ ईश्वर छे. तेनाविषे भ्रम, संदेह, विप्रलिप्सा दोष संभवे नहि. ए शास्त्रोना कर्ता जीव छे. तेओनेविषे भ्रम आदिक दोषोनो संभव छे. यद्यपि शास्त्रकार पण सर्वज्ञ कह्या छे; तथापि तेओने सर्वज्ञता योगमाहात्म्येकरी थई छे, एथी युं जा न योगी थया छे. अने ईश्वरने सर्वज्ञता स्वभावसिद्ध छे, एथी यु क्त·

योगी छे. [चिन्तन कर्या पदार्थनुं जेने ज्ञान थाय ते **युंजानयोगी** कहेवाय छे. जेने सर्वदा एकरस सर्व पदार्थ अपरोक्ष प्रतीत होय ते **युक्तयोगी** कहेवाय छे. एवो ईश्वर छे.] युक्तयोगी कृत वेदवचन प्रबल अने युंजानयोगीकृत शास्त्रवचन दुर्बल छे.

५२०. एथी वेदअनुसारी शास्त्र प्रमाण, अने वेदविरुद्ध अप्रमाण. पांच शास्त्र जेम वेदविरुद्ध छे, तेम **शारीरक** आदि ग्रंथोमां स्पष्ट छे. अने उत्तरमीमांसा कोई अंशमां वेदविरुद्ध नथी, एथी प्रमाण छे. अन्य शास्त्र पण कोई अंशमां वेदना अनुसारि देखीने मंदबुद्धि तेओमां विश्वास करे छे; परंतु बहु अंशमां वेदविरुद्ध छे, एथी त्याज्य छे. कोईक अंशमां वेद अनुसारि होवाथी उपादेय थाय तो, जैनशास्त्र पण अहिंसाअंशमां वेदअनुसारि छे, (ते) उपादेय थवुं जोइये अने त्याज्य छे, उपादेय नथी. यद्यपि सुगत ईश्वरनो अवतार छे, जेने बुद्ध कहे छे. तेनां वचन पण वेदसमान प्रमाण जोईये तथापि बुद्ध (अवतार) विप्रलिप्सानिमित्तथी थयो छे, एथी तेनां वचन सर्वथा अप्रमाण छे. [वंचननी इच्छाने **विप्रलिप्सा** कहे छे. जेने बहेकाववानी इच्छा कहे छे.] एथी सर्व अंशमां वेदअनुसारिणी **उत्तरमीमांसा** ज सर्वथा मुमुक्षुने उपादेया छे. यद्यपि उत्तरमीमांसा **व्यासकृत** सूत्ररूपा छे, तेनुं व्याख्यान पण अनेक पुरुषोए नाना रीतिए कर्युं छे. तथापि पूज्यचरण **शंकरकृत** व्याख्यान ज वेदानुसारि छे, अन्य नहि. ए पंचम तरंगमां प्रतिपादन कर्युं छे. एथी अन्य पंचशास्त्र अप्रमाण छे.

५२१. अने आ तरंगमां जे पूर्वे सर्व शास्त्र मोक्षउपयोगि कह्यां, ते तर्कदृष्टिना सारग्राही, विवेकथी कह्यां. जेम कोईनो

शत्रु तरवार मारे तेथी रुधिर नीकळीने दैवगतिथी रोग निवृत्त थई जाय, त्यारे सारग्राही पुरुष तरवार मारनारनो उपकार मानी ले: तेम अन्य शास्त्रोथी पण कोई रीतिए अंतःकरणनी शुद्धि वा निश्चलता थयेथी पुरुष निवृत्त थईने वेद अनुसार निश्चय करे, तो मोक्ष थाय छे. सर्वथा तेमां ज आग्रह करे तो अंधगोलांगूलन्यायथी अनर्थने प्राप्त थाय छे. एथी सकल शास्त्र त्यागीने, अद्वैतव्याख्यानरीतिए उत्तरमीमांसा उपादेया छे.

५२२. अंधगोलांगूलन्याय आ छेः-कोई धनीन भूषणयुक्त पुत्रने चोर लई गया. वनमां भूषण (काढी) लई, तेनां नेत्र फोडीने छोडी गया. त्यारे ते रुदनकरतां वालकने कोई निर्दय वंचक, वलउन्मत्त बलीवर्दनुं लांगूल (पुछडुं) पकडावी दे अने आ कहेः-'तुं एनुं पुछडुं छोडीश मा, तारा 'ग्राममां ए पहोंचाडी देशे'. ते दुःखी वालक तेना वचनमां विश्वास करीने दुःख अनुभव करीने नष्ट थाय छे. तेम विषयरूप चोर विवेकरूप नेत्रने फोडीने संसार (रूप) वनमां नांखे छे; त्यां भेदवादी निर्दय वंचक अन्यशास्त्रोना सिद्धान्तमां आग्रह करावे छे, अने आ कहे छेः-'अमारो उपदेश 'ज तने परमसुखप्राप्तिनो हेतु थशे, तेने छोडीश मा.' तेओनां वाक्योमां विश्वास करीने (तेवा मनुष्यो) पुरुषार्थसुखरहित थाय छे. अने जन्ममरणरूप महादुःखने अनुभव करे छे. एथी अन्यशास्त्र त्याज्य छे.

५२३. (शुभसंतति राजानुं मृत्यु अने ब्रह्मलोकनी प्राप्ति.)

दुहा.

तर्कदृष्टिनां वचन सुणी, शुभसंतति ने तात,
संशयशोक गयो सकल, थयो हृदय कुशलात. १०५.

कारणब्रह्मउपासना, करीं बहु चित्त लगावी;

तर्कदृष्टि निजगुरु गणी, राजसमाज चडावी. १०६.

[टीकाः-यद्यपि तर्कदृष्टि पुत्र हतो तथापि उपदेश उत्तम कर्यो एथी गुरुपदवीने प्राप्त थयो. ए ब्रह्मविद्यानुं माहात्म्य छे.]

५२४. पछी कई काल वीतो जतां, राजा त्यजी निजप्राण;

ब्रह्मलोकमां ते गयो, ज्यां मुनि जाय सध्यान. १०७.

टीकाः-राजाना मरणनो देशकाल कह्यो नहि, तेनो आ अभिप्राय छेः-उपासकना मरणमां देशकालनी अपेक्षा नथी. दिनमां मरे अथवा रात्रिमां, दक्षिणायनमां अथवा उत्तरायणमां पवित्र भूमिमां अथवा अपवित्रमां, सर्वथा, उपासनाना बलथी, देवयानमार्गद्वारा ब्रह्मलोकनी प्राप्ति थाय छे. अने अदृष्टिना प्रसगमां पूर्वे देशकालनी अपेक्षा कही, ते योगसहित उपासकने कही छे. केवल ईश्वरशरण उपासकने देशकालनी अपेक्षा नथी. ए अर्थ सूत्रकार-भाष्यकारे प्रतिपादन कर्यो छे.

५२५.(तर्कदृष्टिनो देहपात, अने परमात्मासह अभेद.)

दुहा.

राजकार्य सर्वे कर्यां, तर्कदृष्टिए सार,
पण न रंग लाग्यो जरा, रह्यो ब्रह्म निर्धार. १०८.
अंत थये प्रारब्धनो, पाम्यों *निश्चल गेह;
आत्मा परमात्मा मल्यो, देह खेहमां छेह. १०९.

टीकाः-'देहनो खेह' नाम (शरीरनो) राखमां 'छेह' नाम अन्त. 'आत्मा' कहेतां कूटस्थ-साक्षी-तेनो 'परमात्मा-सह' अभेद.

* अचलधाम,

यद्यपि कूटस्थनो परमात्मासाथे सदा अभेद छे, तथापि उपाधिकृत भेद छे, उपाधिना लयथी उपाधिकृत भेदनो अभाव थाय छे. परमात्मासह अभेद कह्यो तेनो आ अभिप्राय छे -विदेहमुक्तिमा ईश्वरसाथे अभेद थाय छे, शुद्ध चेतन ब्रह्म सह नहि. ए वार्त्ता शारीरकभाष्यना चतुर्थ अध्याय-मा प्रतिपादन करी छे. त्यां आ प्रसग छे -विदेहमुक्तिमां सत्यसकल्पादिकरूपनी प्राप्ति जैमिनिना मतवते कही छे. औडुलोमिना मतमां सत्यसकल्पादिकोनो अभाव कह्या छे. अने सिद्धान्तमतमां सत्यसकल्पादिकोनो भावअभाव बन्ने कह्यो छे. तेनो आ अभिप्राय छे -ईश्वरसाथे अभेद थाय छे. [ईश्वरना सत्यसकल्पादिक मुक्तमा, (छे पयो) अन्य जीवोप-करी व्यवहार कराय छे.] ते ईश्वर परमार्थदृष्टिए शुद्ध छे, तेने-विषे कोई गुण छे नहि, किन्तु निर्गुण छे, एथी सत्यस कल्पादिकोनो अभाव छे यद्यपि ससारदशाविषे पण जीव पर-मार्थेकरी निर्गुण छे, शुद्ध छे, तथापि जीवने ससार दशामा अविद्याएकरी, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, प्रतीत थाय छे. ईश्वर-ने कदा पण आत्मामा अथवा अन्यमा ससार प्रतीत थाय नहि एथी सदा असग, निर्गुण, शुद्ध छे एथी ईश्वरसाथे जे अभेद छे ते ज शुद्ध साथे अभेद छे. अने ईश्वरसाथे अभेदने शुद्धब्रह्मसह अभेद नहि माने तो, ईश्वरने शुद्धब्रह्मनी प्राप्ति कदा पण थाय नहि केमके जीवनी पेठे ईश्वरने उपदेशजन्य ज्ञान अने विदेहमोक्ष तो कदा थाय नहि, सदा प्राप्त जे तेनु रूप ते शुद्ध नहि, एथी जीवथी पण न्यून ईश्वर सदा बद्ध छे, ए सिद्ध थशे. एथी आ मानवु योग्य छे -ईश्वरने आवरण नहि एथी उपदेशज्ञाननी अपेक्षा नहि. आवरणना अभावथी भ्रान्ति नहि, एथी नित्यसर्वज्ञ छे, नित्यमुक्त छे. माया अने तेनु

कार्य (ईश्वरना) आत्मामां प्रतीत थाय नहि, एथी सदा असंग छे, एथी ज शुद्ध छे. ए रीतिए **ईश्वरसह अभेद ज शुद्ध चेतनसह अभेद** छे. अने दृष्टान्तवते पण ईश्वर-साथे ज अभेद सिद्ध थाय छे. जेम मठमां घटनो अभाव थाय तो मठाकाशमां घटाकाशनो लय थाय छे, महाकाशमां नहि. तेम विद्वान्नुं शरीर ईश्वरकृत ब्रह्माण्डमां नष्ट थाय छे, अने सर्व ब्रह्मांड ईश्वरशरीर मायाना अंतर्भूत छे. विद्वान्नो आत्मा विदेहमोक्षमां ब्रह्माण्डना बहिर् गमन करे नहि, एथी ईश्वरसाथे अभेद थाय छे. परंतु जेम मठाकाशसाथे घटाकाशनो अभेद थयो, ते मठाकाश महाकाशरूप ज छे; तेम ईश्वर-साथे अभेद थाय छे, ते ईश्वर शुद्धब्रह्म ज छे, एथी **शुद्धब्रह्मनी प्राप्ति** थाय छे.

५२६. (ग्रंथसमाप्ति.) दुहा.

आ **विचारसागर** कर्यो, जेमां रत्न अनेक;
गोप्य वेदसिद्धान्त ते, प्रकट लहे सविवेक ११०.
सांख्यन्यायमां श्रम कर्यो, पठी व्याकरण अशेष;
पढ्या ग्रंथ अद्वैतना, रह्यो न एके शेष. १११.
कठिन ज अन्य निबंध छे, जेमां मतना भेद,
श्रमथी *अवगाहन कर्या, **निश्चलदास** सवेद. ११२.
तेणे भाषाग्रंथ आ कर्यो, न उपजी लाज; ·
तेमां हेतु एक आ,-दया धर्मशिरताज. ११३.
विन व्याकरण न पढी शके, संस्कृत ग्रंथो मंद।
अनायास आने पठे, लहे सुपरमानंद. ११४.
५२७. दिल्हीथी पश्चिम दिशा कोश अराढे ग्राम;
तेमां आ पूरो थयो; किहडौलो ते नाम. ११५.

---

* स्नान-अन्तःप्रवेश.

ज्ञानी, विदेहमुक्तिमां, जे सह थाय अभेद;
दादु आदिरूप ते, जेह वखाणे वेद. ११६.
नामरूप व्यभिचारिमां, अनुगत एक अनूप;
दादुपदनुं लक्ष्य छे, अस्ति-भाति-प्रियरूप. ११७.

इति श्रीविचारसागरे जीवन्मुक्तिविदेहमुक्तिवर्णनं नाम सप्तमस्तरंगः समाप्तः ७

समाप्तोऽयं विचारसागरो ग्रंथः ।



वेदान्तविचारनुं
सूचिपत्र.

(अत्र अङ्को छे ते पृष्ठना छे.)

विचारसागरनुं
सूचिपत्र.[1]

(अत्र अंक छे ते पृष्ठना नहि, पण संख्या छे)

१ आ सूचिपत्रनी रचना श्रीयुत साक्षर रा. रा. कौशिकराम विघ्नहरराम महेता बी. ए. एमणे श्रम लई करी छे.

शुद्धिपत्र.

पृष्ठ.	पङ्क्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
३	११	किंवा अवसान—	अवसान किंवा निर्णय—
		भाग; अथवा	अथवा निश्चय-
४	८	आत्मत्वेकरी	आत्मत्वेकरी जे
४	११	उपदिशे छे	उपदेशे छे
४	१३	ज	ज,
४	२३	शास्त्र.	शास्त्र आत्मविषयक
			शास्त्र ए अध्यात्मशास्त्र.
४	२७	सम्यक्	सिद्धिसम्यक्
५	५	वेदान्तनो	वेदान्तनो आत्मा परमात्मानी एकतारूप
			परमानन्दजनक
८	२०	ज्ञातात्मा	ज्ञातात्मा—प्राप्तपरमपुरुषार्थ-कृतकृत्य—
९	७	तेओमांथी	ते पदार्थोमांथी
१३	११	प्रबल	प्रबल प्रवृत्त
१६२	१२	श्रवणादि	विवेकादि
१७०	६	आत्मारूप	आत्मरूप
१९८	१	तेना नाश	ते(बे)ना नाश
२४२	३	ग्रह	गृह
२४५	१०	निपद्ध	निषिद्ध
२४६	५	पर्ली	वर्ली
२४९	११	छो.	छो ?

पृष्ठ.	पङ्क्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
२९२	९	तुं छे.	तुं छुं.
३३७	१३	तुला	तूला
३४४	१	भगमां	भोगमां
३४८	२०	दृष्टारं	द्रष्टारं

३५९ ए पृष्ठनी टीपमां अन्ते नीचेप्रमाणे भाग रही गयो छे ते उमेरवोः—अने विचारदृष्टिथी जोइए तो अधिष्ठानरूप साधकमां अने अधिष्ठानना ज्ञानरूप बाधकमां समानसत्तानो नियम नथी, किन्तु अधिष्ठानरूप साधकनो विषमसत्तावान् ज होय छे, समसत्तावान् नहि. अने ज्ञानरूप बाधक तो कहिं विषमसत्तावान् होय छे;—जेम शुक्तिमां रजतनुं साधक शुक्तिज्ञान छे, अने स्वप्नजगतनुं बाधक जाग्रत्नुं ज्ञान छे: अने कहिं समसत्तावान् पण होय छे; जेम व्यावहारिक जगत्नुं बाधक ब्रह्मज्ञान छे. परंतु मिथ्याज्ञान ज मिथ्या वस्तुनुं बाधक छे. ए नियमित छे. एथी अहिं कह्यो जे नियम ते अधिष्ठानरूप साधक अने ज्ञानरूप बाधकने छोडीने अवशिष्ट रह्या पदार्थोने विषय करवावाळो छे. पं. पी. पु.

स्वात्मनिरूपणसारोद्धारः ।

नावेद्यमपि परोक्षं भवति ब्रह्म स्वयंप्रकाशत्वात् ।
'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मे'त्येतस्य लक्षणं प्रथते ॥ २० ॥
तस्मात्पदार्थशोधनपूर्वकवाक्यस्य चिन्तयन्नर्थम् ।
दैशिकदयाप्रभावादपरोक्षयति क्षणेन चात्मानम् ॥ २४ ॥
अहमालम्बनसिद्धं कस्य परोक्षं भवेदिदं ब्रह्म ।
तदपि विचारविहीनैरपरोक्षयितुं न शक्यते मुग्धैः ॥ ८४ ॥
तस्मादशेषसाक्षी परमात्मैवाहमर्थ इत्युचितम् ।
अजडवदेव जडोऽयं सत्संबन्धाद्भवत्यहङ्कारः ॥ ८७ ॥
चिन्मात्रममलमक्षयमद्वयमानन्दमनुभवारूढम् ।
ब्रह्मैवास्ति तदन्यन्न किञ्चिदस्तीति निश्चयो विदुषाम् ॥९६॥
निखिलं दृश्यविशेषं दृष्टृत्वेन पश्यतां विदुषाम् ।
बन्धो नापि न मुक्तिर्न च परमात्मत्वमपि न जीवत्वम् ॥१०२॥
इत्थं निबोध्य गुरुणा शिष्यो हृष्यन्प्रणम्य तं पदयोः ।
स्वानुभवसिद्धमर्थं स्वयमेवान्तर्विचारयामास ॥ १०४ ॥
अजरोऽहमक्षरोऽहं प्राज्ञोऽहं प्रत्यगात्मबोधोऽहम् ।
परमानन्दमयोऽहं परमशिवोऽहं भवामि परिपूर्णः ॥ १०५ ॥